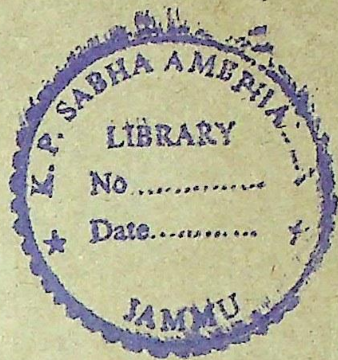
महर्षि वेदव्यास प्रणीत

"दिनेश"

महाभारत

भाषा

सम्पूर्ण अठारह पर्व



भाष्यकर्ता : दीनदयाल दिनेश] सर्वाधिकार प्रकाशक के आधीन हैं। [सम्पादक : चिरंजीलाल यादव

महर्षि वेदव्यास प्रणीत

महाभारत भाषा

सम्पूर्ण अठारह पर्व

महाभारत का यह हिन्दी भाष्य लगभग ५० वर्षों की विशेष खोज (Research) के बाद तैयार हो पाया है। इसी कारण यह ग्रंथ अनेक विशेषताओं से परिपूर्ण है। वास्तव में महर्षि वेदव्यास रचित महाभारत को कुछ महानुभाव पंचम वेद मानते हैं। भारत के ८०-९० करोड़ जनसमूह अर्थात् लगभग २०-२५ करोड़ परिवारों के लिए यह ग्रंथ धार्मिक महत्व रखता ही है, विश्व की पांच अरब जनता के लिए भी ज्ञान का केन्द्र है। इसका श्रद्धापूर्वक आद्योपांत पाठ करने वालों को मानसिक शान्ति प्राप्त होने के साथ-साथ सब प्रकार के पापों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। अतएव यह ग्रंथ हर घर में होना आवश्यक है।



महाभारत के रचयिता श्री वेदव्यासजी

1936 में स्थापित, विश्वविख्यात चिर-परिचित, पुराना प्रकाशक

देहाती पुस्तक भण्डार (रजि०)

चावड़ी बाजार, चौक बड़शाहबुला, दिल्ली-११०००६

फोन : २६१०३०

विदेश में : £ २० पौंड या $ ४० डालर] [मूल्य : १०१) एक सौ एक रुपये

१६ कला अवतार

श्री कृष्ण की महिमा




त्रैलोक्यनिर्माणकरं जनित्रं
देवासुराणामथ नागरक्षसाम्।
नराधिपानां विदुषां प्रधान-
मिन्द्रानुजं तं शरणं प्रपद्ये ॥

जिन्होंने तीनों लोकों की रचना की है, जो देवता, असुर, नाग और राक्षसों को उत्पन्न करने वाले हैं तथा राजाओं और तत्त्ववेत्ताओं में प्रधान हैं, उन इन्द्र के अनुज श्रीकृष्ण की मैं शरण हूँ।

(महाभारत, उद्योग पर्व)

भीष्म उवाच

वासुदेवो महद् भूतं सर्वदैवतदैवतम्। न परं पुण्डरीकाक्षाद् दृश्यते भरतर्षभ ॥
मार्कण्डेयश्च गोविन्दे कथयत्यद्भुतं महत्। सर्वभूतानि भूतात्मा महात्मा पुरुषोत्तमः ॥
आपो वायुश्च तेजश्च त्रयमेतदकल्पयत्। स सृष्ट्वा पृथिवीं देवीं सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ॥
अप्सु वै शयनं चक्रे महात्मा पुरुषोत्तमः। सर्वतेजोमयो देवो योगात् सुष्वाप तत्र ह ॥
मुखतः सोऽग्निमसृजत् प्राणाद् वायुमथापि च। सरस्वतीं च वेदांश्च मनसः ससृजेऽच्युतः ॥
एष लोकान् ससर्जादौ देवांश्च ऋषिभिः सह। निधिनं चैव मृत्युं च प्रजानां प्रभवाप्ययौ ॥
एष धर्मश्च धर्मज्ञो वरदः सर्वकामदः। एष कर्ता च कार्यं च पूर्वदेवः स्वयं प्रभुः ॥

× × ×

एष माता पिता चैव सर्वेषां प्राणिनां हरिः। परं हि पुण्डरीकाक्षान्न भूतं न भविष्यति ॥

भीष्मजी ने कहा—भगवान् वासुदेव परम महान् हैं, ये सब देवताओं के भी देवता हैं। कमलनयन भगवान् कृष्ण से बढ़कर कुछ भी नहीं दिखाई देता। महर्षि मार्कण्डेय ने इनके विषय में बड़ी अद्भुत बातें कही हैं। ये सर्वभूतस्वरूप हैं, सम्पूर्ण भूतों के आत्मा हैं, परमात्मा हैं और पुरुषोत्तम हैं। जल, वायु और तेज—इन तीन की भी इन्होंने ही रचना की है। इन सर्वलोकेश्वर देवदेव भगवान् पुरुषोत्तम ने पृथ्वी की रचना करके जल में शयन किया। वहाँ ये विशुद्ध तेजोमय प्रभु अपनी योगमाया से निद्रा के वशीभूत हो गये। उस समय इन अविनाशी परमात्मा ने अपने मुख से अग्नि, प्राणों से वायु और मन से सरस्वती और वेदों को प्रकट किया। सर्ग के आरम्भ में इन्होंने देवता और ऋषियों के सहित सम्पूर्ण लोकों की रचना की; तथा मृत्यु, मृत्यु का कारण और और प्रजाओं के उत्पत्ति और प्रलय के स्थानों को बनाया। ये धर्म हैं, धर्म के ज्ञाता हैं, वरदायक हैं और समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। ये ही कर्ता, कार्य, आदिदेव और स्वयं भगवान् हैं तथा ये श्रीहरि ही समस्त प्राणियों के माता-पिता हैं। इन कमलनयन श्रीकृष्ण से बढ़कर न तो कभी कोई हुआ है और न कभी होगा ही।

(महाभारत, भीष्म पर्व)

मुद्रक—विनोद कम्पोजिंग एण्ड प्रिंटिंग प्रैस, शिवाजी रोड, उत्तरी घोण्डा, दिल्ली-110053

भूमिका

महाभारत संसार के महानतम ऐतिहासिक महाकाव्यों में से एक है। वास्तव में भारतीय संस्कृति के निर्माण और रक्षा में जो भूमिका रामायण और महाभारत ने निभाई है, वैसी किसी अन्य ग्रन्थ ने नहीं निभाई। ऐसा कोई सुशिक्षित भारतीय नहीं मिलेगा जिसने महर्षि वेदव्यास विरचित महाभारत का नाम न सुना हो। इस महाकाव्य के अन्दर धर्म, संस्कृति, सभ्यता, राजनीति, आदर्श सभी कुछ तो है। साथ ही इसमें चारों वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के तथा चारों आश्रमों—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास के विविध धर्मों, कर्त्तव्यों और दायित्वों की विशद् व्यवस्था है व्याख्या है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के विषय में जितनी सटीक विवेचना और उपदेश इस ग्रन्थ में उपलब्ध हैं, उतनी अन्यत्र दुर्लभ है। भूले-भटकों को सन्मार्ग दिखाने वाला, विश्व के महान प्रबुद्ध-विद्वानों द्वारा प्रशंसित श्रीमद्‌भगवद्गीता भी इसी महान् ग्रन्थ का एक महत्वपूर्ण अंग है। बहुत से विद्वानों का यह निर्विवाद मत है कि महाभारत में वह सभी बातें पाई जाती हैं जिनकी संसार के किसी भी श्रेष्ठ आध्यात्मिक ग्रन्थ में मिलने की कल्पना की जा सकती है।

इस ग्रन्थ का नाम प्रारम्भ में वेदव्यास जी ने 'जय' रखा था। क्योंकि इसमें अधर्म पर धर्म की तथा छल-प्रपंच पर सत्य की विजय दिखाई गई है। इसका नामकरण 'जय' करते हुए एक स्थान पर कहा गया है, "जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो मोक्षमिच्छता।"

कुछ लोगों की मान्यता है कि रामायण और महाभारत काल्पनिक महाकाव्य हैं और राम तथा श्रीकृष्ण जैसे महापुरुषों का इस संसार में कभी प्रादुर्भाव ही नहीं हुआ। यह मान्यता मैकाले जैसे विदेशियों के दूषित प्रचार के कारण फैली है जो अपने स्वार्थ के लिए भारतीय इतिहास और संस्कृति को नष्ट करना चाहते थे। देश में विद्यमान अनेक स्थान और विवरण उनके अस्तित्व के साक्षी हैं। कोई भी कल्पना—चाहे कितनी ही सांगोपांग क्यों न हो—वास्तविक इतिहास का स्थान नहीं ले सकती। इतिहास, इतिहास है और कल्पना, कल्पना। अतएव रामायण और महाभारत दोनों ही हमारे जीते जागते इतिहास हैं।

महाभारत के अनेक संस्करण उपलब्ध हैं जो इतने संक्षिप्त हैं कि वे अपने विषय का पूर्णतया ज्ञान नहीं करा पाते या इतने विशाल और मूल्यवान हैं कि सर्वसाधारण की पहुँच के बाहर हैं। प्रस्तुत संस्करण न तो बहुत बड़ा है और न अति संक्षिप्त। इसके लेखन में इस बात का ध्यान रखा गया है कि कोई महत्वपूर्ण तथ्य छूटने न पाये। यदि यह ग्रन्थ अपने उद्देश्य में सफल हो सका तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा। इस कृति को पाठकों तक इस रूप में पहुँचाने के लिए देहाती पुस्तक भण्डार के संचालक बधाई के पात्र हैं, विशेषतः इसलिए भी कि वे धार्मिक ग्रन्थों को पाठकों तक पहुँचाने में निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं।

—दीनदयाल दिनेश

आवश्यक निवेदन—

इससे पूर्व 'देहाती पुस्तक भण्डार' दिल्ली ने कविराज पं० जयगोपाल विद्या भण्डार द्वारा हिन्दी भाषा में लिखित 'महाभारत' छापा था, परन्तु अब महर्षि वेदव्यास रचित महाभारत का हिन्दी भाष्य प्रकाण्ड विद्वान श्री दीनदयाल दिनेश द्वारा प्रस्तुत पाठकों के हाथों में है। इसका सम्पादन एवं मुद्रण श्री चिरंजीलाल यादव, (विनोद कम्पोजिग एण्ड प्रिंटिंग प्रेस, शिवाजी रोड, उत्तरी घोण्डा, दिल्ली) ने किया है। महाभारत के १८ (अठारह) पर्वों के अतिरिक्त इस बार महाभारत से सम्बद्ध आदर्श-पात्रों का संक्षिप्त चरित्र-चित्रण एवं प्राचीन युद्ध-यंत्रों के कुछ चित्र भी प्रामाणिकता के साथ दिये गए हैं। इस प्रकार आज तक हिन्दी भाषा में छपे अन्य महाभारतों की अपेक्षा यह ग्रन्थ कई गुना अधिक विशेषता लिए हुए है। —प्रकाशक

महाभारत

विषयानुक्रमणिका

१. आदि पर्व

२. सभा पर्व

३. वन पर्व

४. विराट पर्व

विषय पृष्ठ संख्या

५. उद्योग पर्व

६. भीष्म पर्व

विषय पृष्ठ संख्या

७. द्रोण पर्व

८. कर्ण पर्व

अन्य पठनीय सामग्री

।। श्रीहरिः ।।



महाभारत रचयिता व्यासजी

महर्षि वेदव्यास का सिंहनाद

अष्टादश पुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः ।
वेदाः सांगास्तथैकत्र भारतं चैकतः स्थितम् ॥
श्रूयतां सिंहनादोऽयमृषेस्तस्य महात्मनः ।
अष्टादशपुराणानां कर्तुर्वेदमहोदधेः ॥
धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्रचित् ॥

वेदविद्या के महासिन्धु एवं अठारह पुराणों के रचयिता महर्षि वेदव्यास का सिंहनाद सुनो। वे कहते हैं—'अठारह पुराण, सम्पूर्ण धर्मशास्त्र और छहों अंगों सहित चारों वेद एक ओर तथा अकेला महाभारत दूसरी ओर; यह अकेला ही उन सबके बराबर है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के विषय में जो कुछ महाभारत में कहा गया है, वही अन्यत्र है। जो इसमें नहीं है, वह कहीं नहीं है।'

(महाभारत, स्वर्गारोहण पर्व)

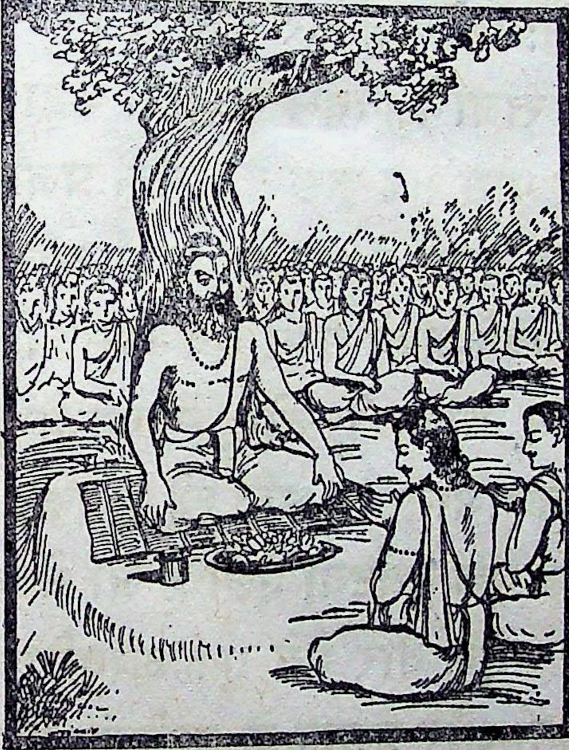


1057 RADHA KRISHNA HEM CHANDER BHARGAVA & Co DELHI-6.

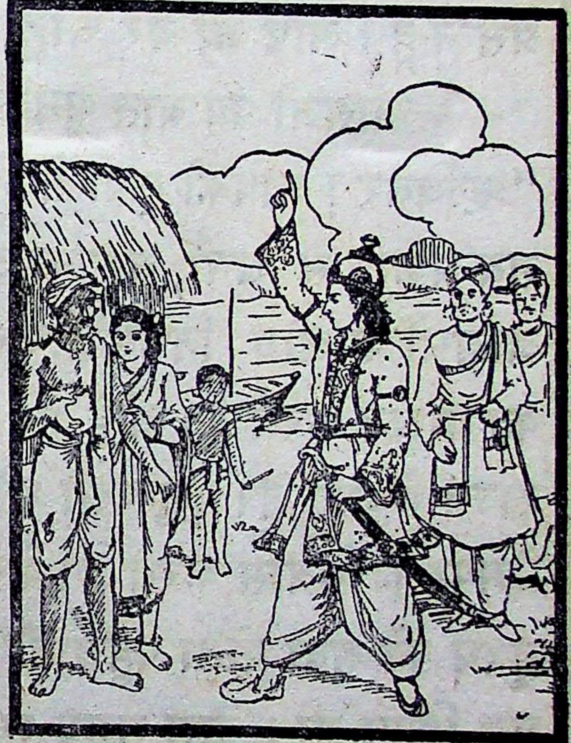
॥ ओ३म् ॥

महाभारत भाषा

१. आदि पर्व



वैशंपायन जी का जनमेजय को महाभारत की कथा सुनाना।



देवव्रत का निषादराज के समक्ष भीष्म प्रतिज्ञा करना।

पहला अध्याय

व्यासजी एवं जनमेजय का संवाद

एक समय की बात है। हस्तिनापुर नरेश महाराज जनमेजय अपने दरबार में विराजमान थे। दरबार मन्त्रियों, पुरोहितों, विद्वानों एवं ऋषियों से सुशोभित था। उसी समय महर्षि व्यासजी वहाँ पधारे। महाराज ने दरबारियों सहित उठकर उनका स्वागत किया और यथोचित सम्मान चरण वन्दना करके उन्हें आदरपूर्वक उनकी प्रतिष्ठा के अनुकूल

आसन प्रदान किया। महर्षि महाराज जनमेजय के स्वभाव एवं श्रद्धा भक्ति से अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनकी प्रशंसा करते हुए बोले, "राजन्! आप भूमण्डल के नरेशों में सर्वश्रेष्ठ हैं। संसार भर में आपके समान उदार, वीर, पराक्रमी और नीतिवान राजा कोई नहीं है। मैं आपकी श्रद्धा भक्ति से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। आप जो वर चाहें, निःसंकोच होकर माँग लें।"

व्यासजी की बात सुनकर राजा ने विनम्र शब्दों में कहा, "ऋषिवर! आपकी कृपा से मेरे पास सब कुछ है। मेरी प्रजा सब प्रकार से धनी, सम्पन्न और सुखी है। सभी वर्णों और आश्रमों के लोग निर्भय होकर अपने-अपने धर्मों एवं कर्त्तव्यों का पालन करते हैं। कोई भी दीन, भिखारी, चोर, लम्पट मेरे राज्य में नहीं है। पशु-पक्षी भी जन्मजात वैर-भाव को भूलकर प्रेमपूर्वक निवास करते हैं। केवल एक दुर्घटना ऐसी है जो मेरे हृदय को सदा पीड़ा पहुँचाती है। एक बार मैंने एक अश्वमेध यज्ञ किया था। उस समय मूर्खता और प्रमाद के वशीभूत हो कर मैंने अठारह ब्राह्मण-पुत्रों की हत्या करके उन्हें यज्ञ के कुण्ड में डालकर भस्म कर दिया था। बाद में मुझे अपने इस कुकृत्य पर बड़ी ग्लानि आई। यह ब्रह्म-हत्या मुझे निरन्तर मानसिक पीड़ा पहुँचाती रहती है। मेरा शरीर भी कुष्ठ रोग से पीड़ित हो गया है। इस शारीरिक एवं मानसिक पीड़ा के कारण मुझे समस्त सांसारिक भोग-विलास, यश-वैभव विष के समान प्रतीत होते हैं। इसलिए प्रभो! आपसे मेरी यही प्रार्थना है कि आप कृपा कर मुझे मानसिक पीड़ा एवं शारीरिक कुष्ठ रोग से मुक्ति दिलायें। यही मेरे लिए आपका अलभ्य वरदान होगा।"

राजा के वचन सुनकर महर्षि व्यास ने अपना वरदहस्त उठाकर कहा, "हे राजन् ! आपकी मनोकामना अवश्य पूर्ण होगी। आपका मन दुश्चिताओं से मुक्त होकर पूर्णतया स्वस्थ ही नहीं होगा, वरन् शरीर भी कुष्ठ रोग से छुटकारा पाकर कंचन जैसा देदीप्यमान हो जायेगा। इसका सरल उपाय यह है कि आप अठारह वस्त्र मंगवाकर उन्हें नीले रंग में रंगवायें। फिर उन्हें धारण करके नित्य महाभारत का पाठ सुनें। तत्पश्चात् १८ ब्रह्म-हत्याओं के पाप और प्रभाव से आपको मुक्ति मिल जायेगी। महाभारत के १८ पर्व हैं। एक-एक पर्व की समाप्ति पर एक-एक वस्त्र सफेद होता जायेगा, जो पापमुक्ति का प्रमाण होगा। इस प्रकार समस्त १८ पर्व समाप्त होने पर सभी वस्त्र सफेद हो जायेंगे और आप सब प्रकार से निष्कलंक हो जायेंगे। महाभारत की कथा सुनाने के लिए मैं अपने सुयोग्य शिष्य वैशंपायन को आपके पास भेज दूंगा।" यह कहकर राजा को आशीर्वाद दे व्यासजी बद्रिकाश्रम को चले गये।

वैशंपायन के पधारने पर राजा जनमेजय ने उनका यथोचित सत्कार किया और हाथ जोड़कर बोले, "वैशंपायनजी! आप नियमित रूप से मुझे महाभारत सुनाकर ब्रह्म-हत्या से मुझे छुटकारा दिलाकर मेरा कल्याण करें।" वैशंपायन बोले, "राजन्! महाभारत की कथा वास्तव में अत्यन्त कल्याणकारी है। इससे मनुष्य के सब प्रकार के पाप-रोग छूट जाते हैं और श्रोता को सांसारिक वैभव एवं सुख की प्राप्ति होती है। अन्त में वह वैकुण्ठ को प्राप्त होता है।" यह कहकर वे महाभारत की कथा सुनाने लगे, जिसे राजा जनमेजय दत्तचित्त होकर सुनने लगे।

दूसरा अध्याय

भीष्म के जन्म की कथा

वैशंपायनजी बोले--हे राजन् ! प्राचीन काल में ययाति नाम के एक महाप्रतापी, चक्रवर्ती, धर्मात्मा सम्राट् हुए हैं। उनके यदु और पुरु नाम के दो पुत्र थे। दोनों ही अत्यन्त सुन्दर, पराक्रमी एवं वीर थे। किन्तु राजा को छोटे पुत्र पुरु से अधिक प्रेम था। इसलिये मरते समय वे पुरु को अपना राज्य सौंप गये। इन्हीं दोनों पुत्रों के वंशज आजकल यादव और पौरव कहलाते हैं। राजा पुरु के वंश में दुष्यन्त हुए जिन्होंने मेनका नाम की अप्सरा की पुत्री शकुन्तला से विवाह किया था। शकुन्तला के तेजस्वी एवं यशस्वी पुत्र भरत के नाम पर ही इस देश का नाम आर्यावर्त्त से बदलकर भारतवर्ष रखा गया था। भरत के वंश में वितथ, वितथ के भवमन्यु, भवमन्यु के वृहत्क्षेत्र, वृहत्क्षेत्र के सुहोत्र, सुहोत्र के हस्ती, हस्ती के अजमीढ़, अजमीढ़ के ऋक्ष, ऋक्ष के संवरण, संवरण के कुरु, कुरु के जन्हु, जन्हु के सुरथ, सुरथ के विदूरथ, विदूरथ के सार्वभौम, सार्वभौम के जयसेन, जयसेन के अरावी, अरावी के आयुतायु, आयुतायु के अक्रोधन, अक्रोधन के देवानिधि, देवानिधि के ऋक्ष, ऋक्ष के भीमसेन, भीमसेन के दिलीप, दिलीप के प्रतीप और प्रतीप के महाबलवान एवं धर्मात्मा महाराज शान्तनु हुए। एक दिन शान्तनु अपने मंत्रियों के साथ गंगा तट पर आखेट के लिए गये। वहाँ गंगा देवी सुन्दर स्त्री का रूप धारण करके विचरण कर रही थीं, जिन्हें देखकर शान्तनु मोहित

हो गये और उन्होंने गंगा के पास जाकर उनका सम्पूर्ण परिचय जानना चाहा।

उस परम रूपवती सुन्दरी ने कहा, "मैं गंगा हूँ। शिवजी के शाप से भूतल पर आई हूँ। हिमाचल की पुत्री हूँ। सुयोग्य वर की खोज में निकली हूँ।" गंगा की बात सुनकर शान्तनु बोले, "हे रूपसि! मैं संसार के राजाओं में सर्वश्रेष्ठ हूँ। चारों दिशाओं में दूर-दूर तक मेरा साम्राज्य फैला हुआ है। मैं तुमसे विवाह करने की इच्छा रखता हूँ। मैं चाहता हूँ, तुम मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लो।"

गंगा ने उत्तर दिया, "मुझे आपका प्रस्ताव स्वीकार करने में आपत्ति नहीं है, परन्तु मेरी एक शर्त है। आप मेरे किसी कार्य में बाधा नहीं डालेंगे और न ही मुझे कोई कार्य करने से रोकेंगे। मेरी प्रत्येक बात स्वीकार करेंगे। आप जब भी इसके विषय में अपना वचन भंग करेंगे, मैं आपका परित्याग करके चली जाऊँगी।" महाराज शान्तनु ने गंगा की शर्तें स्वीकार कर लीं और उन्हें पत्नी बनाकर घर ले आये। कुछ दिन पश्चात् राजा के यहाँ एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र उत्पन्न होते ही गंगा के आदेशानुसार उसे गंगा में बहा दिया गया। इससे राजा बड़े दुःखी हुए, परन्तु वे अपनी प्रतिज्ञा से विवश थे। इसी प्रकार एक के पश्चात् एक सात पुत्र उत्पन्न हुए और वे सभी गंगा में बहा दिए गये। जब आठवाँ पुत्र उत्पन्न हुआ और उसे भी गंगा में बहाने की बात गंगा ने कही तो राजा ने विलाप करते हुए उन्हें ऐसा करने से रोका। गंगा ने उनकी बात मानते हुए कहा, "आपने अपने विवाह के समय की हुई प्रतिज्ञा

को तोड़ा है। इसलिए मैं इस बालक को तो आपकी आज्ञा मानकर नहीं बहाऊँगी, परन्तु स्वयं भी यहाँ नहीं रहूँगी।" यह कहकर गंगा कैलाश पर्वत को चली गईं। गंगा के गर्भ से जन्म लेने वाले आठों पुत्र आठ वसु थे जो एक शाप के कारण मनुष्य योनि को प्राप्त हुए थे। आठवाँ पुत्र परमपराक्रमी, महान धर्मात्मा गांगेय नाम से प्रसिद्ध हुआ। महाराज गंगा के वियोग में अत्यन्त दुःखी हुए। उन्होंने गांगेय का नाम देवव्रत रखा और बड़े स्नेह से बालक का लालन-पालन किया। देवव्रत सुन्दर शिक्षा पाकर अत्यंत रूपवान, तेजस्वी, गुणी एवं सब प्रकार की विद्याओं में निपुण एवं शास्त्रों का ज्ञाता धर्मात्मा हुआ। देवव्रत के युवा होने पर महाराज शान्तनु ने सब विद्वानों, महाजनों एवं ऋषि-मुनियों से परामर्श करके देवव्रत को युवराज बनाने की घोषणा कर दी।

एक दिन महाराज शान्तनु यमुना तट पर विचरण कर रहे थे। सहसा उनकी दृष्टि एक परम रूपवती नवयौवना पर पड़ी जो यमुना में नौका विहार कर रही थी। निर्जन नदी तट पर उस सुन्दर कन्या को देखकर महाराज शान्तनु ने उससे पूछा, "हे सुन्दरी! तू कौन है? किसकी कन्या है? इस निर्जन तट पर अकेली क्यों विचरण कर रही है?" महाराज का प्रश्न सुनकर उस सुकुमारी नवयौवना ने उत्तर दिया, "महाराज! मेरा नाम सत्यवती है और दासराज नामक केवट की मैं पुत्री हूँ। मैं अपने पिता की आज्ञा से यात्रियों को नौका से नदी पार कराती हूँ।"

सत्यवती के सौन्दर्य से शान्तनु इतने अधिक प्रभावित

हुए कि उन्होंने तत्काल दासराज के पास जाकर सत्यवती से अपना विवाह करने की इच्छा प्रगट की। महाराज का प्रस्ताव सुनकर दासराज बोला, "महाराज! इससे बढ़कर मेरा और मेरी पुत्री सत्यवती का सौभाग्य क्या होगा कि आप जैसा चक्रवर्ती सम्राट् उससे विवाह करने की कामना करे। यह तो सत्यवती के पूर्वजन्मों के सुफल का ही प्रभाव है। परन्तु मेरे मन में शंका होती है कि आप जैसे उच्चकुल के यशस्वी सम्राट् के महलों में मेरी निर्धन, छोटे कुल की कन्या को उचित सम्मान कैसे मिल सकेगा? कहीं वह साधारण दासी की भाँति दुत्कारी तो नहीं जायेगी।" दासराज की बात सुनकर उसे आश्वासन देते हुए शान्तनु ने कहा, "इस विषय में तुम जिस प्रकार चाहो आश्वस्त हो सकते हो। मैं तुम्हारी प्रत्येक बात मानकर इस शंका को निर्मूल करने के लिए प्रस्तुत हूँ।" यह सुनकर दासराज बोला, "महाराज! मेरी शंका एक प्रकार से ही निर्मूल हो सकती है कि आप मुझे प्रतिज्ञापूर्वक यह वचन दें कि सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न पुत्र ही आपके राजसिंहासन पर बैठेगा।"

वैशंपायनजी बोले--दासराज की बात सुनकर महाराज शान्तनु चिन्ता में पड़ गये। वे देवव्रत को युवराज घोषित कर चुके थे। फिर देवव्रत सर्वगुण सम्पन्न, धर्मात्मा, वीर, पराक्रमी और बुद्धिमान थे। उन्हें सम्पूर्ण प्रजा का प्रेम प्राप्त था। ऐसी दशा में उन्हें उनके उचित अधिकार से कैसे वंचित किया जा सकता था? इसलिए उन्होंने धर्म एवं राजनीति के विरुद्ध दासराज को वचन देने से इन्कार कर दिया और अपनी राज-

धानी को लौट आये। किन्तु राजधानी लौटकर भी वे सत्यवती के मोह को न छोड़ सके और विरहाकुल होने के कारण दिन-प्रतिदिन उनकी काया क्षीण होने लगी। समस्त मन्त्रिगण एवं परिजन महाराज की यह दशा देखकर अत्यन्त चिन्तित हुए और उन्होंने इसका कारण जानने का प्रयत्न किया। जब उन्हें यह बात मालूम हुई तो उन्होंने देवव्रत को भी शान्तनु के सत्यवती मोह की कथा कह सुनाई। देवव्रत ने मन ही मन राजा की चिन्ता को दूर करने का निश्चय किया और दासराज के पास जाकर बोले, "हे केवट! तुमने महाराज से जो वचन माँगा था, वह मैं देने के लिए तैयार हूँ। मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि हस्तिनापुर के राजसिंहासन पर सत्यवती का पुत्र ही बैठेगा। उसके होते हुए कोई दूसरा राजा नहीं बनेगा।" देवव्रत के वचन सुनकर केवट बोला, "हे राजकुमार! यदि सत्यवती के पुत्र से पहले आपका पुत्र हुआ तो वह सिंहासन पर बैठेगा। इसलिए क्या यह उचित न होगा कि आप स्वयं सत्यवती से विवाह कर लें।" दासराज का कथन सुनते ही क्रुद्ध नाग की भाँति फुङ्कारते हुए देवव्रत ने कहा, "दासराज! यह बात फिर कभी मुख पर न लाना। जिस नारी को मेरे पिता ने भार्या के रूप में देखा हो, क्या मैं उससे विवाह कर सकता हूँ? क्या माता से पुत्र का विवाह होता है? तुम इसका विवाह मेरे पिता के साथ कर दो। इससे उत्पन्न पुत्र का मैं अपने हाथों से राजतिलक करूँगा। यदि तुम्हें यह भय है कि मेरा पुत्र राजा बन जायेगा तो मैं शपथपूर्वक धर्म को साक्षी देकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं आजीवन अविवाहित रह कर ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करूँगा।

मेरी यह भीष्म प्रतिज्ञा सदा अटल रहेगी। मैं किसी भी दशा में विवाह नहीं करूँगा।''

देवव्रत की इस अद्भुत प्रतिज्ञा से आश्वस्त होकर दास-राज ने सत्यवती का विवाह राजा शान्तनु के साथ कर दिया। जिसने भी देवव्रत को इस भीष्म प्रतिज्ञा के विषय में सुना वह उनकी अद्भुत पितृ-भक्ति देखकर गद्गद् और आश्चर्य-चकित हो गया। महाराज ने अत्यन्त प्रसन्न हो देवव्रत को 'भीष्म' की उपाधि से विभूषित करते हुए वरदान दिया कि तुम अविवाहित रहकर भी 'पितामह' कहलाओगे। मृत्यु सदा तुम्हारे आधीन रहेगी और तुम इच्छानुसार उसका वरण करोगे।

तीसरा अध्याय

चित्रांगद व विचित्रवीर्य की उत्पत्ति

वैशंपायन जी बोले—हे राजन्! कुछ समय पश्चात् सत्यवती ने एक पुत्र को जन्म दिया। महाराज ने प्रसन्न होकर उसका नाम चित्रांगद रखा। कुछ वर्ष पश्चात् एक और पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम विचित्रवीर्य रखा गया। भीष्म उन्हें शस्त्र-शास्त्रों की शिक्षा देने लगे। अभी वे बालक छोटे ही थे कि महाराज शान्तनु का स्वर्गवास हो गया। भीष्म बालकों का बचपन और माता सत्यवती का युवावस्था में वैधव्य देख कर अत्यन्त चिन्तित हुए। वे स्वयं भी कष्टप्रद जीवन बिताने और भूमि पर शयन करने लगे। स्वयं समय निकालकर माता को वेदों-उपनिषदों आदि का अध्ययन कराने लगे। उचित

समय पर भीष्म ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार चित्रांगद का राजतिलक किया। वह अपने पिता की भाँति राजकाज चलाने लगा। जब उसका छोटा भाई विचित्रवीर्य भी युवावस्था को प्राप्त हुआ तो भीष्म को उन दोनों के विवाह की चिन्ता हुई। एक दिन जब भीष्म ने सुना कि काशी नरेश की तीन कन्याओं का शीघ्र ही स्वयंवर होनेवाला है तो वे अपनी सेना को लेकर काशी जा पहुँचे। स्वयंवर के लिए सजे हुए सभा मण्डप में देश-देशान्तरों के राजा महाराजा विराजमान थे। काशीराज की तीनों कन्याएँ--अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका मण्डप में उपस्थित थीं। सभा मण्डप में पहुँचकर भीष्म ने कहा, "उपस्थित नरेशो! मैं यहाँ अपने विवाह की इच्छा लेकर नहीं आया हूँ। मैंने आजीवन ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा की है। मेरे भाई चित्रांगद और विचित्रवीर्य सब प्रकार से योग्य और गुण-सम्पन्न हैं तथा अविवाहित हैं। मैं उनसे विवाह करने के लिए इन तीनों राजकन्याओं को लिए जा रहा हूँ।" यह कह कर वे तीनों राजकुमारियों को आदरपूर्वक रथ में बिठाकर चल दिये।

इस प्रकार इन कन्याओं को ले जाते देख आगत नरेशों ने अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र संभाल कर उनका पीछा किया। दोनों ओर से भयंकर युद्ध हुआ। स्वयं भीष्म ने भयंकर मार-काट मचाई और तीनों राजकुमारियों को लेकर सुरक्षित रूप से अपनी राजधानी पहुँच गये। जब विवाह की तैयारियाँ होने लगीं तो बड़ी राजकुमारी अम्बा ने विवाह करने से इन्कार करते हुए कहा, "महाराज! मैं हस्तिनापुर के राजकुमार से

विवाह न करूँगी, क्योंकि मैं मन ही मन शाल्व-नरेश को अपने पति के रूप में वरण कर चुकी हूँ। ऐसी दशा में किसी दूसरे व्यक्ति को कैसे स्वीकार कर सकती हूँ?" अम्बा की बात सुन भीष्म ने उसे सम्मानपूर्वक शाल्व-नरेश के पास भेज दिया। शेष दोनों कन्याओं को विवाह से कोई आपत्ति नहीं थी। इसलिए अम्बिका का विवाह चित्रांगद से और अम्बालिका का विचित्र-वीर्य के साथ कर दिया गया।

उधर शाल्व-नरेश ने अम्बा से विवाह करने से इन्कार कर दिया। उसने कहा, "स्वयंवर से पहले मैं तुमसे विवाह करने के लिए उत्सुक था, परन्तु जब स्वयंवर के दिन भीष्म ने बाँह पकड़कर तुम्हें रथ में बैठा लिया तो मैं किसी दूसरे के द्वारा जीती हुई स्त्री को अपनी पत्नी कदापि नहीं बना सकता। इसलिए तुम भीष्म के पास चली जाओ।" इस प्रकार प्रताड़ित होकर अम्बा अत्यन्त दुःखी हुई और यमुना के तट पर जाकर तपस्या करने लगी। ऋषियोंद्वारा इस घोर तपस्या का कारण पूछने पर उसने बताया, "शाल्व-नरेश ने मुझे पराई जानकर ठुकरा दिया है। मेरे इस अपमान का कारण भीष्म हैं जो मुझे छल कर लाये थे। अब मैं तपस्या करके अपने प्राण विसर्जित करूँगी और अगले जन्म में भीष्म का वध करके अपने अपमान का बदला लूंगी।"

वैशंपायनजी कहने लगे—इस प्रकार तप करते-करते अम्बा ने अपने प्राण दे दिए और अगले जन्म में वह राजा द्रुपद के यहाँ पुरुष रूप में उत्पन्न हुई। वहाँ उसका नाम शिखण्डी रखा गया।

चौथा अध्याय

धृतराष्ट्र, पाण्डुव विदुर का जन्म

वैशंपायनजी बोले--हे राजन् ! चित्रांगद और विचित्रवीर्य अपने विवाह के पश्चात् भोग-विलास में इतने अधिक तन्मय हो गये कि वे नाना प्रकार के रोगों के शिकार हो गये और युवावस्था में ही क्षय रोग के शिकार हो मृत्यु को प्राप्त हुए। उनकी असामयिक मृत्यु से भीष्म बहुत दुःखी हुए और सत्यवती नाना प्रकार से क्रन्दन करने लगी। दोनों रानियों का करुण क्रन्दन तो सारे परिवार को शोक मग्न किये डाल रहा था। कुछ दिन इसी प्रकार शोकाकुल रहने के पश्चात् भीष्म ने धैर्य धारण किया और वे सत्यवती को भी समझाने लगे। इस पर सत्यवती कहने लगी, "देवव्रत ! जो होना था, वह हो चुका। अब तुम राजपाट सँभालो। दोनों राजकुमारों की निःसन्तान रहते हुए मृत्यु हुई है। यदि तुम राज्य का भार न सँभालोगे तो कैसे काम चलेगा। देश में अराजकता फैल जायेगी।" माता की बात सुनकर भीष्म बोले, "माता ! तुम तो जानती ही हो। मैंने राजा न बनने की प्रतिज्ञा की है। उस प्रतिज्ञा को तोड़ना मेरे लिए संभव नहीं है। हाँ, एक बात सम्भव हो सकती है। एक प्राचीन कथा के अनुसार जब जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने इक्कीस बार क्षत्रियों से युद्ध करके पृथ्वी से क्षत्रिय वंश को समूल नष्ट कर दिया था तब क्षत्रियों की नारियाँ वेदपारंगत ब्राह्मणों के पास सन्तान प्राप्ति के लिए गई थीं जिसके फलस्वरूप फिर क्षत्रियों की उत्पत्ति

हुई थी। इसलिए तुम भी विचित्रवीर्य के क्षेत्र में किसी विद्वान् ब्राह्मण द्वारा सन्तान उत्पन्न कराओ। यह कार्य सर्वथा शास्त्र-सम्मत होगा।"

यह सुनकर सत्यवती बोली, "देवव्रत! मैं तुम्हें अपने जीवन की एक गोपनीय घटना सुनाती हूँ। एक बार जब मैं अपने यौवन काल में धर्मार्थ नौका चालन कर महर्षि पाराशर को यमुना पार करा रही थी, तो एकान्त संध्या वेला में महर्षि ने कामवश होकर मुझसे विहार करने का प्रस्ताव किया। साथ ही मेरे अस्वीकार करने पर उन्होंने शाप देने की धमकी भी दी। भय के कारण मैं उनका विरोध न कर सकी। अपना सतीत्व नष्ट हो जाने की कल्पना करके जब मैं विलाप करने लगी तो उन्होंने मुझे वरदान दिया कि इस घटना के पश्चात् भी तुम कन्या ही बनी रहोगी। ऋषि के वीर्य से उत्पन्न गर्भ को मैंने यमुना में ही छोड़ दिया। उसी से परम तपस्वी महायोगी द्वैपायन का जन्म हुआ। वे ही वेद-विद्या के ज्ञान के कारण वेदव्यास कहलाते हैं। मेरे पुत्र होने के कारण वे मेरे आग्रह पर तुम्हारे भ्राता के क्षेत्र में पुत्र उत्पन्न कर सकते हैं। यदि तुम उचित समझो तो उन्हें बुलवा लिया जाये।" भीष्म के सहमत होने पर वेदव्यास को बुलाया गया। उन्होंने माता की आज्ञा मानकर कहा, "आप दोनों स्त्रियों से कहिये कि वे बिलकुल निर्वसन होकर मेरे सामने से निकल जायें। वे मेरे देखने मात्र से गर्भवती हो जायेंगी।"

सत्यवती की आज्ञानुसार दोनों वधुओं को बुलाया गया। अत्यन्त लज्जा के कारण अम्बिका अपनी आँखों पर पट्टी बाँध

कर निकली और अम्बालिका ने लज्जा निवारण की दृष्टि से सम्पूर्ण शरीर पर चन्दन का लेप लगा लिया। अम्बालिका को इस प्रकार निर्वसन जाते देख एक दासी भी वस्त्र उतारकर हँसती मुस्कराती हाथ में माला फेरती उनके पीछे हो ली। तीनों स्त्रियों के निकल जाने के पश्चात् व्यासजी बोले, "जिस स्त्री ने अपनी आँखों पर पट्टी बाँध रखी थी उसके अंधा पुत्र होगा। चन्दन लगाकर आने वाली स्त्री के पाण्डु रोग से पीड़ित पुत्र होगा और तीसरी के उदर से अत्यन्त बुद्धिमान और ईश्वर भक्त पुत्र होगा।" इस प्रकार अम्बिका के धृतराष्ट्र, अम्बालिका के पाण्डु और दासी के गर्भ से विदुर का जन्म हुआ। धृतराष्ट्र जन्मान्ध, पाण्डु पाण्डुरोग से पीड़ित और दासी-पुत्र विदुर ईश्वर भक्त हुए।

पाँचवाँ अध्याय

कर्ण तथा पाण्डवों की उत्पत्ति

वैशंपायनजी बोले—हे राजन्! कुन्तीभोज नामक एक यादव नरेश थे। उनकी पुत्री कुन्ती ने महर्षि दुर्वासा की बड़ी तपस्या की। मुनि ने प्रसन्न होकर कुन्ती को एक मंत्र प्रदान किया जिसके अनुसार वह जिस देवता को चाहे सशरीर आमन्त्रित कर सकती थी। इस मंत्र की वास्तविकता जानने के लिए दूसरे दिन प्रातःकाल कुन्ती ने नदी के तट पर आकर भगवान सूर्य का आह्वान किया। मंत्र पढ़ते ही सूर्य देवता आ उपस्थित हुए। उन्होंने कुन्ती से आह्वान का कारण पूछा। पहले तो कुन्ती कुछ घबड़ाई, फिर बोली, "मैंने आपको केवल दुर्वासा ऋषि

द्वारा दिये गये मंत्र की सच्चाई जानने के लिए बुलाया था। मेरा और कोई उद्देश्य नहीं है।" यह सुनकर सूर्यदेव बोले, "हे सुन्दरि! मुझे बुलाया है तो तुम्हें मेरे साथ भोग करना होगा। इससे तुम्हें एक परम पराक्रमी विश्वविख्यात पुत्र प्राप्त होगा।" सूर्य ने अपने तेजस्वी रूप को सौम्य रूप में परिवर्तित करके कुन्ती से सहवास किया जिससे कर्ण की उत्पत्ति हुई। कर्ण की उत्पत्ति के पश्चात् लोक निन्दा से बचने के लिए कुन्ती ने कर्ण को एक सन्दूक में बन्द कर नदी तट पर छोड़ दिया। जिस समय वह बालक सन्दूक में रुदन कर रहा था तो उस रुदन का स्वर सुनकर अधिरथ नामक एक व्यक्ति--जो उधर से निकल रहा था--बच्चे को सन्दूक से निकाल कर अपने घर ले गया। उसने और उसकी पत्नी राधा ने बड़े यत्न से उसका पालन किया। इसी कुन्ती का विवाह मथुरापुरी में पाण्डु के साथ हुआ। धृतराष्ट्र का विवाह गांधार देश के नरेश सुवल की कन्या के साथ हुआ। जब उस कन्या ने देखा कि उसका पति अंधा है तो उसने भी अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली और अपने नेत्रों को कभी न खोलने की प्रतिज्ञा की। इसके पश्चात् पाण्डु का विवाह मद्र देश के राजा शल्य की कन्या माद्री के साथ कर दिया गया।

वैशंपायनजी बोले—हे जनमेजय! भीष्म ने दोनों राजकुमारों का विवाह करके पाण्डु को सिंहासन पर बैठाया। एक दिन पाण्डु शिकार खेलने वन में गये। वहाँ उन्होंने एक मृग-मृगी को विहार करते देखा। न जाने उन्हें क्या सूझा कि उन्होंने मृगों पर बाण छोड़ दिया। जब उन्हें मरा समझ वे मृगों को

उठाने के लिए पहुँचे तो देखा कि मृग-मृगी के स्थान पर एक ब्राह्मण-दम्पति आहत होकर पड़े हुए थे। उनकी यह दशा देखकर पाण्डु अत्यन्त दुःखी हुए और हाथ जोड़कर बोले, "हे विप्रवर! मैंने मृग जानकर आप पर बाण चलाया था। मैं दण्ड का भागी हूँ।" यह सुनकर ब्राह्मण-दम्पत्ति ने कहा, "जिस अवस्था में तूने हमको मारा है, उसी अवस्था में संभोग करते हुए तू भी मृत्यु को प्राप्त होगा।"

इसप्रकार ब्राह्मण-ब्राह्मणी की हत्या से दुःखी होकर राजा पाण्डु ने संन्यास व्रत लेकर ब्रह्मचर्यपूर्वक जीवन बिताने का निश्चय किया। एक दिन वे कुन्ती और माद्री के साथ वन में बैठे हुए थे तभी उनके मन में विचार आया कि निःसन्तान व्यक्ति स्वर्ग नहीं जा सकता। उन्हें दुर्वासा द्वारा कुन्ती को दिये गये मन्त्र की बात ज्ञात थी। इसलिए उन्होंने कुन्ती को एकान्त में बुलाकर कहा, "हे कुन्ती! तुम आपद्धर्म समझकर धर्मराज को बुलाकर उनसे संतान प्राप्त करो, जिससे हमारे घर धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न हो सके।" कुन्ती ने धर्मराज का आवाहन किया, जिससे युधिष्ठिर का जन्म हुआ।

कुछ समय पश्चात् पाण्डु कुन्ती से बोले, "प्रिये! युधिष्ठिर तो पूर्णतः धर्मात्मा और सत्यवादी है। हमें एक वीर पराक्रमी एवं अद्भुत बलवान पुत्र प्राप्त करना चाहिए जिसमें क्षत्रिय के गुण हों।" पति की सम्मति पाकर कुन्ती ने वायुदेव का आवाहन किया जिससे भीमसेन का जन्म हुआ। जिस दिन भीम पैदा हुए उसी दिन गांधारी ने दुर्योधन को जन्म दिया। पाण्डु के एक और पुत्र की इच्छा कर परने कुन्ती ने इन्द्र के

द्वारा अर्जुन को प्राप्त किया। जब पाण्डु ने कुन्ती से और पुत्र की कामना की तो उसने अस्वीकार करते हुए कहा, "अधिक पुत्रों को इस प्रकार जन्म देना शास्त्रानुकूल नहीं होगा। यदि आप चाहें और माद्री सहमत हो तो मैं उसके लिए देवता का आह्वान कर सकती हूँ।" दोनों की सहमति मिलने पर कुन्ती ने दोनों अश्विनीकुमारों का आह्वान किया जिनसे माद्री के नकुल और सहदेव उत्पन्न हुए। उधर गाँधारी के उदर से दो वर्ष पश्चात् मांस का एक लोथड़ा उत्पन्न हुआ। वेदव्यास के कहने पर उस माँस पिण्ड के सौ टुकड़े कर प्रत्येक टुकड़े को घी से भरे घड़ों में एकान्त स्थल पर रख दिया गया। एक वर्ष पश्चात् उन घड़ों से दुर्योधन सहित सौ पुत्र उत्पन्न हुए।

छठा अध्याय

महाराज पाण्डु का स्वर्गवास

वैशंपायनजी बोले—हे राजन्! जब पाण्डु अपनी रानियों के साथ शतशृंग पर्वत पर निवास कर रहे थे, तब एक दिन वसन्त ऋतु में माद्री को देखकर इतने कामातुर हुए कि अपने ऊपर संयम न रख सके। ब्राह्मण के शाप को स्मरण कर माद्री भय से काँपने लगी और पति को रोकने के लिए अनुनय-विनय करने लगी, परन्तु पाण्डु पर इस अनुनय-विनय का कोई प्रभाव न पड़ा। परिणामस्वरूप सम्भोग करते ही उनका देहान्त हो गया। माद्री भी उनके साथ सती हो गई।

सातवाँ अध्याय

भीम को विष देना

वैशंपायनजी बोले—हे राजन्! पाण्डु की श्राद्ध क्रिया सम्पन्न हो जाने के बाद व्यासजी ने सत्यवती से कहा, "हे

माता ! अब पृथ्वी पर पाप का प्रसार होगा। कौरवों की अनीति से धर्माचार नष्ट हो जायेंगे। इसलिए तुम वन में जाकर योग साधना करो। अपने वंश का नाश देखने के लिए यहाँ न रहो।" यह सुनकर सत्यवती भीष्म से परामर्श करके वन को चली गई। अम्बिका और अम्बालिका भी उनके साथ हो लीं। उन तीनों ने दीर्घकाल तक वन में तप करके अपना शरीर त्याग दिया।

इधर पाण्डव और कौरव खेल कूद कर बड़े होने लगे। साथ ही वे शस्त्र-शास्त्रों का अध्ययन भी करने लगे। सब पुत्रों में भीमसेन सबसे अधिक बलवान थे। वे खेल में धृतराष्ट्र के पुत्रों को बहुत तंग करते थे। इस प्रकार तंग करने में उनकी द्वेष-भावना नहीं थी, केवल लड़कपन था। उनके बल को देख कर दुर्योधन उनसे ईर्ष्या-द्वेष करने लगा। उसने सोचा किसी प्रकार भीम को मारकर उससे मुक्ति पानी चाहिये। यह सोचकर उसने एक दिन जल-क्रीड़ा के लिये गंगा तट पर सबको आमन्त्रित किया। प्रीतिभोज की व्यवस्था की गई। दुर्योधन ने अवसर पाकर भीमसेन के भोजन में विष मिला दिया और बहुत आग्रह के साथ उन्हें खिलाया। फिर जल-क्रीड़ा आरम्भ हुई। क्रीड़ा के पश्चात् वे विष के प्रभाव से मूर्छित हो गये। जब दुर्योधन ने भीम को मूर्छित देखा तो उन्हें मरा समझकर उसने चुपचाप लता जाल से बाँधकर गंगा में डुबो दिया। भीम गंगा में गिरकर नाग लोक में नागों के बच्चों पर जा गिरे। चारों ओर से विषैले सर्प उनसे लिपट गये और उन्हें डसने लगे। इस दंशन से दुर्योधन द्वारा दिया

गया विष समाप्त हो गया। भीमसेन को सचेत होते देख सर्पों ने नागराज वासुकि को इस घटना की सूचना दी। इन सर्पों में आर्यक नामक एक सर्प था जो कुन्ती के पिता शूरसेन का नाना था। उसने भीम को पहचान वासुकि से उनका परिचय कराया। वासुकि ने अनेक उपहार देकर भीम को विदा किया। वासुकि ने उन्हें एक ऐसा रस भी पिलाया जिससे उनके शरीर में हजार हाथियों का बल आ गया। इस प्रकार आठ दिन पश्चात् भीमसेन अपने चिन्ताकुल माता और भाइयों से आ मिले। उन्होंने विदुर और युधिष्ठिर की सम्मति से दुर्योधन की दुष्टता का समाचार किसी से नहीं कहा। भीष्म की सम्मति से कौरवों की शिक्षा-दीक्षा का कार्य कृपाचार्य को सौंपा गया जो धनुर्वेद के अद्वितीय ज्ञाता थे।

आठवाँ अध्याय

कृपाचार्य और द्रोणाचार्य की कथा

राजा जनमेजय के कृपाचार्य का वृतान्त जानने की जिज्ञासा प्रगट करने पर वैशंपायनजी बोले--महर्षि गौतम के शरद्वान नाम का पुत्र था। वह शस्त्र और शास्त्र दोनों ही विद्याओं में पारंगत था। एक बार जब वह भीषण तप कर रहा था तो उस तप को भंग करने के लिए इन्द्र ने जालपदी नामक देव कन्या को भेजा। इस अनुपम लावण्यमयी कन्या को देखकर शरद्वान आसक्त हो गये और उनका वीर्य स्खलित होकर वहाँ सरकंड़ों में गिर गया, किन्तु उन्होंने फिर भी स्वयं पर संयम रखा और वहाँ से भाग गये। सरकंड़े की लकड़ी पर गिरे वीर्य के दो भाग हो गये जिनसे एक पुत्र और एक पुत्री का जन्म हुआ।

उसी समय राजा शान्तनु उधर से निकले। वे दोनों अनाथ बालकों को उठा लाये और कृपा तथा कृपी नाम रखकर उनका पालन करने लगे। जब शरद्वान को ज्ञात हुआ कि उनकी संतान राजा शान्तनु के पास है तो वे राजा के पास पहुँचे और उन्होंने कृपाचार्य को शस्त्रों एवं शास्त्रों की शिक्षा प्रदान की। इस प्रकार कृपा, कृपाचार्य बन गये।

अब यह सुनो कि द्रोणाचार्य कौरव पाण्डवों के गुरु कैसे बने! द्रोण महर्षि भरद्वाज के पुत्र थे जो घृताची नामक अप्सरा से उत्पन्न हुए थे। उनका वीर्य एक द्रोण में स्खलित हुआ था, इसलिए वे द्रोण कहलाये। द्रोण ने अल्पकाल में ही समस्त विधाओं का अध्ययन कर लिया। बड़े होकर द्रोणाचार्य ने शरद्वान की पुत्री कृपी से विवाह कर लिया। उससे अश्वत्थामा नाम का विश्वविख्यात पुत्र उत्पन्न हुआ। जब द्रोणाचार्य को ज्ञात हुआ कि परशुराम के पास अनेक महत्वपूर्ण अस्त्र-शस्त्र हैं और अब वे उनका परित्याग करके तपस्या करने जा रहे हैं तो उन्होंने परशुराम से याचना करके उनके समस्त अस्त्र प्राप्त कर लिये। द्रोणाचार्य का यश सर्वत्र फैल गया।

एक बार द्रोणाचार्य घूमते हुए हस्तिनापुर के निकट आये। वहाँ कुरु राजकुमार गेंद से खेल रहे थे। अचानक उन की गेंद एक कुएँ में गिर गई। बहुत प्रयत्न करने पर भी जब वह गेंद नहीं निकली तो द्रोणाचार्य ने वहाँ पहुँचकर धनुष बाण की सहायता से उस गेंद को कुएँ से निकाल दिया। जब इस घटना की सूचना भीष्म को मिली तो वे उन्हें सम्मानपूर्वक ले आए और राजकुमारों की शिक्षा का भार उन्हें सौंप दिया।

नवाँ अध्याय

एकलव्य की गुरु दक्षिणा

वैशम्पायनजी बोले—हस्तिनापुर में आकर द्रोणाचार्य विधिपूर्वक राजकुमारों को धनुर्वेद की शिक्षा देने लगे। अर्जुन की लगन और अभ्यास से प्रभावित होकर वे उनसे विशेष स्नेह करने लगे। एक दिन बोले, "अर्जुन! मैं तुम्हें धनुर्विद्या में इतना पारंगत बना दूंगा कि संसार का कोई भी व्यक्ति तुम्हारी तुलना में खड़ा न रह सके।" इसके पश्चात् अर्जुन का पठन पाठन और भी विशेष लगन से होने लगा। एक दिन हिरण्यधनु नामक निषाद राजकुमार एकलव्य धनुर्विद्या सीखने के उद्देश्य से द्रोणाचार्य के पास आया, परन्तु उन्होंने व्याध पुत्र समझकर उसे शिक्षा देना स्वीकार नहीं किया। एकलव्य निराश नहीं हुआ। वह गुरु द्रोणा की प्रतिमा बनाकर निरन्तर अभ्यास करने लगा और शीघ्र ही अद्वितीत धनुर्धारी बन गया।

एक दिन सभी राजकुमार वन में आखेट के लिए गए। उनके साथ एक कुत्ता भी हो लिया। एकलव्य वन में धनुर्विद्या का अभ्यास कर रहा था। एकलव्य को देखकर कुत्ता उस पर भौंकने लगा। एकलव्य ने बाण मारकर उसका मुँह बन्द कर दिया। कुत्ता व्याकुल होकर राजकुमारों के पास लौट आया। इस चतुराई को देखकर राजकुमार दंग रह गये। जब उन्होंने एकलव्य के पास जाकर उसका परिचय पूछा तो उसने बताया, मैं द्रोणाचार्य का शिष्य हूँ। घर जाकर अर्जुन ने द्रोणचार्य को वृतान्त बताकर उपालम्भ दिया, "गुरुदेव! आप तो कहते थे कि तुम मेरे सर्वश्रेष्ठ धनुर्ज्ञाता हो, परन्तु आपका शिष्य एक-

लव्य तो मुझसे भी श्रेष्ठ है।" यह सुनकर दोनों एकलव्य के पास पहुँचे। उन्हें प्रणाम करके एकलव्य ने सारी बात बताई और कहा कि आपके अस्वीकार कर देने पर भी मैं आपको गुरु मानकर निरन्तर अभ्यास करता रहा हूँ। इस पर द्रोण बोले, "यदि तुम मेरे शिष्य हो तो मुझे गुरु दक्षिणा दो। और इस दक्षिणा स्वरूप अपने दायें हाथ का अगूँठा काटकर मुझे दे दो।" एकलव्य ने तत्काल अगूँठा काटकर गुरु को समर्पित कर दिया।

द्रोणाचार्य सब राजकुमारों को समान रूप से शिक्षा दे रहे थे। एक दिन उन्होंने सबकी परीक्षा लेने का निश्चय किया। एक नकली गृद्ध बनवाकर एक वृक्ष पर रखवा दिया और सबको बारी-बारी से अपने अपने बाणों से गृद्ध का सिर काटने का आदेश दिया। गुरु ने एक एक कर सबको बुलाकर पूछा, "तुम्हें गृद्ध, मैं तथा अन्य राजकुमार दीख रहे हैं?" जब सबने स्वीकारात्मक उत्तर दिया तो उन्होंने उन्हें लौटा दिया। केवल अर्जुन ने कहा मुझे गृद्ध की गर्दन के अतिरिक्त और कुछ नहीं दीख रहा। यह सुनकर प्रसन्न हो उन्होंने अर्जुन को बाण चलाने की आज्ञा दी। बाण चलते ही पक्षी का सिर कट कर नीचे गिर पड़ा।

दसवाँ अध्याय

कर्ण की राज्य प्राप्ति

वैशंपायन जी बोले—हे राजन्! एक दिन महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञानुसार सब राजकुमारों की धनुर्विद्या में परीक्षा लेने का निश्चय किया गया। एक विशाल मण्डप बनाया गया

जिसमें राजकुल, प्रजा के सब गण्य-मान्य व्यक्ति तथा महारानियाँ उपस्थित थीं। सब राजकुमारों ने अपने-अपने रणकौशल और व्यायाम का प्रदर्शन किया। भीमसेन और दुर्योधन के प्रदर्शन तो बहुत ही अद्भुत थे। शीघ्र ही दर्शकों में दो दल हो गये। एक दल भीम का और दूसरा दुर्योधन का प्रशंसक हो गया। द्रोणाचार्य की आज्ञा से अश्वत्थामा ने दोनों वीरों को अलग करके विरोध भावना को दबा दिया। इसके पश्चात् अर्जुन ने अपने बाणों से नाना प्रकार के कौशल दिखाये। सब उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। उसी समय रंगमंच पर एक युवक आया। उसने गुरुजनों को प्रणाम करके अर्जुन से कहा, "अर्जुन! तुमने जो कौशल दिखाया है, मैं उसे उससे भी अधिक चमत्कारिक ढंग से दिखा सकता हूँ।" उसने अपना नाम कर्ण बताया। कर्ण की बात सुनकर दुर्योधन अत्यन्त प्रसन्न हुआ। आचार्य की आज्ञा पाकर कर्ण ने अपना कौशल दिखाया जो निःसंदेह अर्जुन से श्रेष्ठ था। दुर्योधन ने प्रसन्न होकर कर्ण को गले से लगा लिया। इससे चिढ़कर अर्जुन ने कर्ण को द्वन्द्व-युद्ध के लिए ललकारा। कुन्ती अपने दोनों पुत्रों को इस प्रकार लड़ते देखकर मूर्छित हो गई।

इसी समय कृपाचार्य ने सम्मुख आकर कर्ण से अर्जुन का राजवंश का परिचय कराया और उससे उसके वंश का परिचय पूछा। उन्होंने कहा कि तुम्हारे वंश का परिचय प्राप्त होने पर ही यह द्वन्द्व हो सकता है। कोई छोटे वंश का व्यक्ति किसी राजपुत्र से द्वन्द्व नहीं कर सकता। जब कर्ण इस विषय में कोई समाधान न कर सका तो दुर्योधन ने कर्ण का अभिषेक करके

उसे अंग देश का राजा बना दिया और उसे अपना मित्र बनाकर राजप्रासाद की ओर ले चला।

ग्यारहवाँ अध्याय

धृष्टद्युम्न व द्रौपदी का जन्म

वैशंपायनजी बोले--हे राजन्! एक दिन द्रोणाचार्य ने अपने सभी शिष्यों को समीप बुलाकर कहा कि तुम सब मिल कर पांचालराज द्रुपद को जीतकर मुझे गुरु दक्षिणा के रूप में भेंट दो। सभी शिष्यों ने आज्ञा शिरोधार्य कर तुरन्त पांचाल देश को प्रस्थान किया। रास्ते के सब नगर ग्रामों को जीतते, रौंदते वे द्रुपद के नगर तक पहुँच गये और उसे मन्त्रियों सहित युद्ध में हराकर बन्दी बना लिया। तत्पश्चात् उन्हें गुरु द्रोण के चरणों में ला पटका।

द्रोणाचार्य ने बन्दी द्रुपद को देखकर उसके कहे कटु-वचनों को याद करते हुए कहा, "हे द्रुपद! बचपन में गुरु के आश्रम में संग खेलने के कारण ही मेरी तुमसे प्रीति बनी थी। परन्तु राजपद प्राप्त होने पर तुमने मेरी मित्रता को ये कहकर ठुकरा दिया था कि राजा का मित्र राजा ही होता है। आज तुम्हारे राज्य को जीतकर मैं फिर तुमसे पहले के समान मित्रता चाहता हूँ।" इतना कहकर हँस कर फिर बोले, "हे वीर! डरो मत। मैं तुम्हारा आधा राज्य तुम्हें लौटा रहा हूँ और आधा राज्य मैं स्वयं रखूँगा। इस प्रकार हम दोनों बराबर हो जायेंगे, जो तुम्हारे कहे अनुसार मित्रता के लिए जरूरी है। आज से तुम दक्षिण पांचाल के और मैं उत्तर पांचाल का राजा होऊँगा।" द्रोणाचार्य के चंगुल से किसी भाँति छुटकारा

न पाते देखकर द्रुपद बोले, "हे ब्रह्मन ! मुझे आपकी मित्रता स्वीकार है।"

वैशंपायन जी बोले--हे भारत ! द्रुपद के ऐसा कहते ही द्रोण ने उन्हें मुक्त कर दिया। द्रुपद दुःखी मन से अपने नगर को लौट आये और द्रोण की शत्रुता को यादकर उन्हें नष्ट करने का उपाय सोचने लगे। उन्होंने विचार किया कि वे क्षत्रिय बल से द्रोण को नहीं जीत सकते। अतः वे मंत्रज्ञ ब्राह्मण की खोज में निकल पड़े। अन्त में उन्हें याज नामक एक ब्राह्मण मिला। उसकी विधिपूर्वक पूजा करके द्रुपद ने कहा, "विप्रवर ! मुझे ऐसा पुत्र प्राप्त करने की कामना है जो बड़ा होकर द्रोणाचार्य का संहार कर सके। इसके बदले में मैं आपको जो कुछ आप चाहेंगे अर्पण करूँगा।"

द्रुपद का सारा वृतान्त सुनकर याज ने द्रोणाचार्य का विनाश करने की प्रतिज्ञा की। उन्होंने एक विशिष्ट यज्ञ का विधान किया जिसके फलस्वरूप राजा द्रुपद के एक पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न हुए। पुत्र का नाम धृष्टद्युम्न और पुत्री का नाम कृष्णा रखा गया। कृष्णा आगे चलकर द्रौपदी के नाम से विख्यात हुई और महाभारत के युद्ध का मुख्य कारण बनी। द्रुपद ने शस्त्र विद्या का अध्ययन करने के लिए धृष्टद्युम्न को द्रोणाचार्य के पास ही भेजा। सब कुछ जानकर भी अपनी कीर्ति की रक्षा के लिये गुरु द्रोण ने उसे शिक्षा दी।

वैशंपायनजी बोले--जनमेजय ! मैं तुम्हें द्रौपदी के पूर्व जन्म की कथा सुनाता हूँ। पिछले जन्म में वह एक ऋषि की सर्वांग सुन्दर कन्या थी, परन्तु कर्म दोष से उसे कोई योग्य पति नहीं

मिल रहा था। इसलिए उसने भगवान शंकर की घोर तपस्या की। तपस्या से प्रसन्न हो शंकर प्रगट हुए और कन्या से वर माँगने को कहा। कन्या ने शंकर को सामने देखकर अनेक बार कहा, "प्रभो! मैं सर्वगुणसम्पन्न पति चाहती हूँ।" यह सुनकर भगवान शंकर बोले, "हे कन्ये! तुमने एक साँस में मुझसे पाँच बार पति की याचना की है। इसलिए अगले जन्म में तुम्हें पाँच पति प्राप्त होंगे और वे पाँचों भारत वंशी होंगे और तथा एक साथ मिलेंगे।" यह कहकर शंकर अन्तर्ध्यान हो गये। वही कन्या राजा द्रुपद के यहाँ कृष्णा के नाम से उत्पन्न हुई।

बारहवाँ अध्याय

युधिष्ठिर को युवराज पद और लाक्षागृह दाह

वैशंपायनजी बोले—कुछ समय पश्चात् राजा धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को सब प्रकार से योग्य समझ युवराज बनाने की घोषणा कर दी, किन्तु दुर्योधन ने नित्य प्रति पाण्डवों की निन्दा कर-करके धृतराष्ट्र को पाण्डवों के विरुद्ध कर दिया। उन्हें अपने पुत्रों का भविष्य अन्धकारमय दिखाई देने लगा। एक दिन उन्होंने अपने मन्त्री कणिक को बुलाकर कहा, "मैं देख रहा हूँ, आजकल पाण्डु कुमार नित्य प्रतिदिन शक्तिशाली होते जा रहे हैं। इसलिए हमें इस विषय पर कुछ विचार करना चाहिए।" यह सुनकर कणिक बोला, "राजन्! पाण्डवों के पर कतरने के लिए यह आवश्यक है कि साम, दाम, दण्ड, भेद की राजनीति अपनाई जाय। दिखावे के रूप में उनके साथ सौहार्दपूर्ण बर्ताव किया जाय, परन्तु अन्दर ही अन्दर उन्हें नष्ट करने के उपाय किये जायें। इसी उपाय से आपकी और

आपके पुत्रों के ऐश्वर्य की रक्षा हो सकती है।" कणिक के चले जाने के पश्चात् राजा धृतराष्ट्र इस पर गंभीरता से विचार करने लगे।

उधर युवराज के रूप में युधिष्ठिर जिस कुशल शासन पद्धति का परिचय दे रहे थे, उसे देखते हुए प्रजाजन उन्हें राजा बनाने की माँग करने लगे। एक दिन दुर्योधन ने अपने मामा शकुनि, मित्र कर्ण और भाई दुःशासन से विचार-विमर्श करके अपने पिता धृतराष्ट्र से कहा, "यदि युधिष्ठिर को राजा बना दिया गया तो यह सिंहासन उसके पुत्र-पौत्रों के अधिकार में चला जायेगा और हम लोग दीन-हीन भिखारी बनकर रह जायेंगे।" दुर्योधन की बात सुनकर धृतराष्ट्र ने पूछा, "इसका उपाय क्या है?" इसके उत्तर में उसने कहा, "आप किसी प्रकार से पाण्डवों का वारणावत नगर भेज दीजिए। वहाँ हम किसी-न-किसी प्रकार से उन्हें जलाकर भस्म कर देंगे। पाण्डवों के यहाँ से जाते ही मैं धन और लालच से प्रजाजनों को अपने वश में कर लूँगा।" धृतराष्ट्र ने चतुर मन्त्रियों को बुलवाकर वारणावत में पशुपतिनाथ के उत्सव का भव्य आयोजन करने के लिए कहा। फिर पाण्डवों को बुलाकर उन्हें वहाँ जाने के लिए प्रेरित किया।

जब पाण्डवों के वारणावत जाने की बात दुर्योधन को पता चली तो वह अत्यंत प्रसन्न हुआ और उसने अपने षड्यंत्र-कारी सेवकों तथा मंत्रियों की सहायता से एक अत्यंत आकर्षक लाक्षागृह बनवाया जो देखने में अत्यन्त रमणीय था, परन्तु अग्नि के स्पर्श मात्र से धू धू करके जल सकता था। विदुर के

गुप्तचरों से दुर्योधन का यह षड्यन्त्र छिपा न रह सका। उन्होंने इस बात की सूचना विदुर को दे दी और विदुर ने युधिष्ठिर को सावधान कर दिया। जब पाण्डव वारणावत में जाकर लाक्षागृह में ठहरे, उसी दिन विदुर ने कुछ विश्वासी कुशल सैनिकों को युधिष्ठिर के पास भेजा। वे दासों के रूप में पाण्डवों की सेवा करने लगे, परन्तु समय पाकर अंदर ही अंदर द्रुतगति से सुरंग भी खोदने लगे। शीघ्र ही सुरंग खुद कर तैयार हो गई। एक दिन कुन्ती ने कुछ ब्राह्मणों एवं भिखारियों को भोज के लिये आमंत्रित किया। दैवात् उसी रात्रि को एक केवट की पत्नी अपने पाँच पुत्रों के साथ लाक्षागृह में भोजन माँगने के लिये आई। मन्दिर मानकर वे सब रात्रि को वहीं सो गए। अवसर पाकर भीमसेन लाक्षागृह में आग लगा कर माता और भाइयों के साथ सुरंग के द्वारा एक अज्ञात स्थान को निकल गये। गंगा किनारे पहुँचकर एक नौका से गंगा पार कर वे दक्षिण की ओर चले गये। धृतराष्ट्र को इसकी सूचना भेजी गई और मल्लाह स्त्री तथा उसके पुत्रों को कुन्ती एवं पाण्डव समझ कर उनका राजसी संस्कार किया गया।

तेरहवाँ अध्याय

हिडिम्ब का वध और घटोत्कच का जन्म

वैशंपायनजी बोले—हे जनमेजय! लाक्षागृह से निकल गंगा को पार कर पाँचों पाण्डव कुन्ती सहित ऐसे निर्जन वन में पहुँचे जहाँ न तो फल-फूल थे और न जल। काफी खोज-बीन करने के पश्चात् उन्हें एक बड़ा सरोवर दिखाई दिया।

जहाँ स्नान करके और जल पीकर उन्होंने अपनी थकावट मिटाई। पास ही शाल का एक विशाल वृक्ष था जिस पर हिडम्ब नामक एक भयानक एवं बलवान राक्षस रहता था। पाण्डवों को देखकर हिडम्ब ने अपनी बहिन से कहा, "तू इन मनुष्यों को मारकर मेरे पास ले आ। हम लोगों ने बहुत दिनों से मनुष्य का माँस नहीं खाया है।" यह सुनकर हिडिम्बा राक्षसी उन्हें मारने के लिए पहुँची, परन्तु सुन्दर बलवान भीमसेन को देखते ही कामान्ध हो गई और सुन्दर स्त्री का रूप धारण करके भीमसेन को मुग्ध करने के विचार से उनके पास जाकर लजाती हुई बोली, "हे पुरुषश्रेष्ठ! आप कौन हैं? मैं इस वन के स्वामी हिडिम्ब की बहिन हूँ। उसने मुझे आप लोगों को मारने के लिए भेजा है, परन्तु आप पर मुग्ध होकर आपसे विवाह करना चाहती हूँ। आप मेरे साथ भाग चलिये। मैं आपकी रक्षा करूँगी।" यह सुनकर भीमसेन बोले, "हे मूर्खा! क्या तू समझती है कि मैं तेरे सुख के लिए अपनी माता और भाइयों को उस राक्षस का भोजन बनने के लिए छोड़ दूँगा?"

इधर हिडिम्बा के लौटने में देर होती देख हिडिम्ब क्रोध से भुनभुनाता हुआ और हिडिम्बा को शृंगार करके भीम को रिझाता देख और भी क्रुद्ध हो गया। वह हिडिम्बा सहित सभी पाण्डवों को मारने के लिये दौड़ा। भीम ने उसे ललकारते हुये कहा, "तू इस स्त्री को क्यों मारना चाहता है। इसमें इसका क्या दोष है? यह तो कामदेव के दोष हैं। और जो तू मुझे तथा मेरे भाइयों व माता को मारना चाहता है, उसका

उत्तर यह ले।" कहते हुए भीमसेन उस राक्षस पर पिल पड़े। थोड़ी देर के युद्ध के पश्चात् उन्होंने हिडिम्ब को मृत्यु के घाट उतार दिया। फिर वे हिडिम्बा को मारने के लिए दौड़े तो वह कुन्ती के चरणों में गिर पड़ी और बोली, "माता! मैं आपकी पुत्रवधू बनना चाहती हूँ। मेरी इच्छा पूरी कीजिए। मैं चाहती हूँ कि मेरे उदर से भीमसेन जैसा महाबली पुत्र उत्पन्न हो।" माता की आज्ञा से भीमसेन ने हिडिम्बा का वरण किया। कुछ समय पश्चात् हिडिम्बा के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम घटोत्कच रखा गया। वह बड़ा पराक्रमी, बुद्धिमान, मायावी और भयानक वेषधारी सिद्ध हुआ। उसने शैशवावस्था में ही पूर्ण यौवन प्राप्त कर लिया था। जब घटोत्कच ने कुन्ती तथा अन्य पाण्डवों को आकर प्रणाम किया तो कुन्ती ने कहा, "तुम पाण्डवों के सबसे बड़े पुत्र हो। समय आने पर हमारी सहायता करना। अब तुम जहाँ चाहो, जाकर विचरण करो।" मातामही की अनुमति पाकर घटोत्कच उत्तर की ओर चला गया।

चौदहवाँ अध्याय

बकासुर वध

वैशंपायनजी बोले--हे राजन्! एक दिन पाण्डव साधारण भेष में घूमते-घूमते एकचक्रापुरी नामक नगर में पहुँचे और एक ब्राह्मण के यहाँ रहने लगे। वे तपस्वी के वेश में दिन भर नगर में भिक्षाटन करते और संध्या को सब लोग मिलकर उसे खाकर सो रहते। एक दिन किसी कारणवश भीमसेन भिक्षा के लिये नहीं जा सके। शेष सब पाण्डव भिक्षा

माँगने चले गये। तभी कुन्ती ने अपने आतिथेय ब्राह्मण परिवार में रोने का स्वर सुना। जब कुन्ती ने वहाँ जाकर इसका कारण पूछा तो उस ब्राह्मणी ने रोते-रोते बताया, "इस नगर के निकट बक नाम का एक महाबली राक्षस रहता है। वह शत्रु से तो इस नगर की रक्षा करता है, परन्तु उसके स्वयं के भोजन के लिए छकड़ा अन्न, दो भैंसें और एक मनुष्य नगर निवासियों को प्रतिदिन 'कर' के रूप में देना होता है। नगर निवासियों ने यह योजना बनाई है कि मनुष्य सहित सम्पूर्ण सामग्री प्रत्येक घर से बारी-बारी से दी जाय। आज यह 'कर' देने की हमारी बारी है। आज मुझे अपने परिवार से एक मनुष्य को उस राक्षस के भोजन के लिये भेजना है। अपने परिवार के हम किसी एक मनुष्य को राक्षस के पास नहीं भेज सकते। इसलिए हम सब लोग एक साथ उसके पास जाकर मरने की तैयारी कर रहे हैं।"

यह सुनकर कुन्ती ने कहा, "तुम कोई चिन्ता मत करो। मैं अपने पुत्र को राक्षस के पास भेज दूंगी। मेरा पुत्र भीमसेन इस समय घर पर ही है।" ब्राह्मण भीम को मृत्यु के मुख में भेजने को तैयार नहीं हुये तो कुन्ती ने कहा, "तुम निश्चिन्त रहो। मेरा पुत्र मरेगा नहीं। वह अद्‌भुत पराक्रमी है। उस राक्षस को अवश्य मारकर लौटेगा।" अन्त में जब ब्राह्मण परिवार भीमसेन को भेजने के लिये तैयार हो गया तो भीमसेन सम्पूर्ण खाद्य-सामग्री छकड़े पर लादकर निश्चित स्थान पर जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर भीम स्वयं ही उस खाद्य-सामग्री को खाने लगे। यह देखकर बकासुर बहुत क्रुद्ध हुआ और भीमसेन को मारने

के लिये दौड़ा। भीम ने उसे एक ही हाथ से पीछे धकेल दिया। इस पर राक्षस ने एक वृक्ष उखाड़कर भीम की ओर फेंका जिसे उन्होंने बाएँ हाथ से रोक राक्षस पर ही दे मारा। फिर दोनों परस्पर मल्लयुद्ध करने लगे। अवसर पाकर भीमसेन ने राक्षस को भूमि पर पटककर मार डाला। राक्षस को मरा देख उसके कुटम्बी भय से काँपने लगे। भीमसेन ने उन्हें इस शर्त पर अभयदान दिया कि भविष्य में वे कभी किसी को नहीं सतायेंगे। फिर विजयपूर्वक भीमसेन घर लौट आये।

पन्द्रहवाँ अध्याय

द्रौपदी का स्वयंवर

वैशंपायन जी बोले—हे राजन्! अद्भुत धनुर्धारी के रूप में अर्जुन का यश दूर-दूर तक पहुँच गया था। इसलिये राजा द्रुपद की हार्दिक इच्छा थी कि द्रौपदी का विवाह अर्जुन के साथ हो जाये, किन्तु उन्होंने अपनी इस इच्छा को किसी पर प्रगट नहीं किया था। उन्होंने एक ऐसा सुदृढ़ धनुष बनवाया था जिसे कोई साधारण बलवान व्यक्ति न झुका सके। फिर उन्होंने एक चक्राकार घूमने वाले मंच को ऊपर टँगवाकर उसके ऊपर एक मछली रखवा दी थी। फिर सर्वत्र यह घोषणा करा दी कि जो वीर इस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर बाण द्वारा चक्र में घूमती हुई मछली को वेध देगा उसके साथ द्रौपदी का विवाह कर दिया जायेगा। द्रुपद जानते थे कि यह कार्य केवल अर्जुन कर सकते हैं और कोई नहीं।

स्वयंवर का दिन निश्चित हुआ। उस दिन देश-देशान्तर के राजा लोग अपना भाग्य आजमाने के लिये आये। पांचाल

नरेश ने सबका यथोचित सत्कार किया। यथासमय वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर द्रौपदी हाथ में स्वर्ण वरमाला लिये रंगभूमि में आई। उसी समय राजकुमार धृष्टद्युम्न ने घोषणा की, "हे नरपतियो! आपके सामने यह धनुष, ये पाँच बाण और ऊपर वह लक्ष्य है। जो सत्कुलपुरुष इन पाँच बाणों से इस यंत्र के भीतर से उस मछली को वेध देगा, उसे मेरी भगिनी कृष्णा अपने पति के रूप में वरण करेगी।"

रंगभूमि में पाण्डव भी अपरिचित के रूप में उपस्थित थे। उन्हें यदुवंशी कृष्ण के अतिरिक्त किसी ने नहीं पहचाना। राजा लोग नाना प्रकार से प्रयत्न करने लगे। कृष्ण बैठे हुए यह तमाशा देख रहे थे और मन ही मन मुस्करा रहे थे। दुर्योधन, शाल्व, अश्वत्थामा आदि ने भी अपना बल और कौशल दिखाया। उनमें से कोई भी धनुष पर प्रत्यंचा तक नहीं चढ़ा सका। जब कर्ण ने आगे बढ़कर धनुष पर बाण चढ़ाया तभी द्रौपदी ने कहा, "मैं सूत-पुत्र के साथ विवाह नहीं करूँगी।" यह सुनकर कर्ण पैर पटकता हुआ वहाँ से चला गया।

इस प्रकार सबके असफल हो जाने पर ब्राह्मण समुदाय में से अर्जुन उठ खड़े हुए। रंगभूमि में जाकर अर्जुन ने शंकर भगवान को प्रणाम किया और कृष्ण का स्मरण किया। फिर चतुराई से धनुष पर बाण चढ़ाकर मछली को वेधकर पृथ्वी पर गिरा दिया। लक्ष्य भेदन देखकर राजा द्रुपद बहुत प्रसन्न हुए। कुछ उत्तेजित राजाओं ने अव्यवस्था फैलानी चाही तो द्रुपद और अर्जुन ने उन्हें अपनी शक्ति से शान्त कर दिया। द्रौपदी ने प्रसन्नचित्त होकर अर्जुन के गले में वरमाला डाल

दी और उसके पीछे चल पड़ी। घर पहुँचते-पहुँचते रात्रि हो गई। अर्जुन ने द्वार से ही पुकारा, "माता! हम भिक्षा लेकर आ गये हैं। यह सुनकर कुन्ती बोली, "तुम सब भाई उसे आपस में बाँट लो।" अतएव द्रौपदी पाँचों भाइयों की वधू हुई।

उधर कृष्ण भी बलदेव सहित पाण्डवों का पीछा करते हुए उनके निवास स्थान पर आ पहुँचे। कृष्ण को देखकर पाण्डवों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने उन्हें परामर्श दिया कि वे अभी कुछ समय तक और इसी प्रकार छिपकर रहें। फिर वे वहाँ से चले गये। कृष्ण और बलदेव के अतिरिक्त धृष्टद्युम्न ने भी अपने अनुचरों के साथ गुप्त रूप से अर्जुन का पीछा किया। रात्रि भर उनका वार्तालाप सुनकर उसे विश्वास हो गया कि ब्राह्मण वेषधारी वे लोग पाण्डव ही हैं। उसने अपने पिता को भी इस बात से अवगत करा दिया। फिर द्रुपद ने युधिष्ठिर को एकान्त में बुलाकर सत्कार करने के पश्चात् उनसे कहा, "आप मुझे अपना वास्तविक परिचय दीजिये। आप कौन हैं?" यह सुनकर युधिष्ठिर बोले, "हे पांचाल नरेश! हम क्षत्रियवंशी महाराज पाण्डु के पुत्र हैं। मैं युधिष्ठिर हूँ और रंगरंच में लक्ष्य वेध करने वाला मेरा भाई अर्जुन है। हमारी माता कुन्ती आपकी पुत्री के साथ आपके अन्तःपुर में गई हैं।" युधिष्ठिर से द्रुपद ने जब धृतराष्ट्र के दुर्व्यवहार की कथा सुनी तो उन्हें बहुत दुःख हुआ। उन्होंने उनका राज्य वापिस दिलाने की प्रतिज्ञा की और पाण्डवों के रहने के लिए एक सुन्दर भवन दिया जिसमें वे सुखपूर्वक निवास करने लगे।

सोलहवाँ अध्याय

पाण्डवों के पुनर्जन्म का वृत्तान्त

वैशंपायन जी बोले—हे जनमेजय! एक दिन द्रुपद ने युधिष्ठिर से कहा, "स्वयंवर की रीति से तो कृष्णा अर्जुन की पत्नी बन चुकी है, परन्तु अब वैदिक विधान के अनुसार भी उनका परस्पर विवाह हो जाना चाहिए।" यह सुनकर युधिष्ठिर बोले, "महाराज! आपका विचार अति उत्तम है, परन्तु कृष्णा का विवाह केवल अर्जुन से नहीं, हम सबके साथ होगा। ऐसा हमारी माता का आदेश है।" युधिष्ठिर के वचन सुनकर द्रुपद आश्चर्यपूर्ण चिन्ता से बोले, "यह कैसे सम्भव है? एक पति की बहुत-सी पत्नियाँ तो हो सकती हैं, परन्तु एक स्त्री के बहुत से पति हों ऐसा कभी सुना भी नहीं गया।"

अभी इस विषय पर वाद-विवाद चल रहा था कि वहाँ अकस्मात वेदव्यास जी आ पहुँचे। राजा द्रुपद ने उनसे इस विषय में व्यवस्था देने की प्रार्थना की। वेदव्यास जी बोले, "हे राजन्! वेद और लोकाचार में प्रसिद्ध न होने के कारण एक स्त्री के अनेक पति होने की व्यवस्था लोप हो गई है, परन्तु यह सनातन धर्म के विपरीत नहीं है। इस विषय में मैं तुम्हें एक कथा सुनाता हूँ। एक बार देवताओं ने नैमिषारण्य वन में एक यज्ञ किया। पशुओं को मारने का कार्य सूर्य के पुत्र यमराज को सौंपा गया। यज्ञ में दीक्षित होने के कारण जब बहुत दिनों तक मनुष्य की मृत्यु नहीं हुई तो वे अत्यन्त चिन्तित हुए। इसी चिन्ता में निमग्न वे इन्द्र के साथ चले जा रहे थे कि उन्होंने गंगा में एक स्त्री को रोते देखा। उन्होंने रोने का कारण

पूछा तो वह उन्हें हिमालय की चोटी पर ले गई जहाँ भगवान शंकर पार्वती के साथ मानव भेष धारण किये चौसर खेल रहे थे। इन्द्र ने बिना कुछ पूछे शिव-पार्वती का अपमान करने का प्रयत्न किया। इससे क्रुद्ध हो उन्होंने उसे एक गुफा में बन्द कर दिया। जहाँ चार इन्द्र पहले से ही बन्द थे। जब इन्द्र उन्हें पहचान कर अनुनय-विनय करने लगे तो पार्वती जी बोलीं, "तुम लोग अहंकार के वशीभूत हो गये हो। तुम इसी कन्दरा में चिरकाल तक पड़े रहोगे। इसके पश्चात् तुम पाँचों इन्द्र और यह स्त्री मनुष्य योनि को प्राप्त होगी। यह स्त्री तुम पाँचों की पत्नी होगी। तुम संसार में अद्भुत कार्य करके असंख्य प्राणियों का नाश करने के पश्चात् पुनः इन्द्र का स्थान प्राप्त करोगे। इस प्रकार उन पाँचों इन्द्रों ने पृथ्वी पर जन्म लिया। उनके नाम क्रमशः विश्वभुक, भूत-धाम, शिवि, शांति और तेजस्वी थे। उन इन्द्रों को लेकर भगवान शिव विष्णु के पास गये। विष्णु ने अपने सिर के दो बाल उखाड़कर देवकी और रोहिणी के गर्भ में स्थापित किये जिनसे कृष्ण और बलराम का जन्म हुआ। वे ही इन्द्र ये पाँचों पाण्डव हैं और कृष्णा रुदन करने वाली स्त्री है।" इस प्रकार वेदव्यास की सम्मति पाकर राजा द्रुपद ने अपनी कन्या का विवाह पाँचों पाण्डवों के साथ कर दिया।

सत्रहवाँ अध्याय

पाण्डवों को आधे राज्य की प्राप्ति

वैशंपायनजी बोले--हे राजन्! जब कौरवों को पाण्डवों के जीवित होने का वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो वे बड़े दुःखी हुए।

उन्होंने अपने पिता धृतराष्ट्र के साथ मिलकर उनका अनिष्ट करने की योजना बनानी चाही, किन्तु भीष्म, द्रोणाचार्य एवं विदुर के विरोध के कारण वे कुछ न कर सके। अन्त में भीष्म की आज्ञा के अनुसार विदुर को भेजकर पाण्डवों को पांचाल से बुला लिया। जब युधिष्ठिर अपने भ्राताओं के साथ धृतराष्ट्र के पास प्रणाम करने के लिए पहुँचे तो उन्होंने उनका स्वागत करते हुए कहा, "मैं और भीष्म जी चाहते हैं कि तुममें और दुर्योधन आदि तुम्हारे भाइयों में फिर किसी प्रकार का झगड़ा न हो, इसलिए तुम आधा राज्य लेकर खाण्डवप्रस्थ को अपनी राजधानी बनाकर सुखपूर्वक राज्य करो।" वीर पाण्डवों ने धृतराष्ट्र की आज्ञा का पालन करते हुए खाण्डवप्रस्थ को अपनी राजधानी बनाया और उसका नाम इन्द्रप्रस्थ रखा। सम्पूर्ण नगर का बड़ी सुरुचि से निर्माण कराया गया। जिसमें कला तथा उपयोगिता का अद्भुत सम्मिश्रण था। नगर की समृद्धि को देखते हुए बड़े-बड़े विद्वान, श्रेष्ठि एवं उद्योगपति वहाँ आकर निवास करने लगे। युधिष्ठिर अपने भाइयों की सहायता से धर्मानुसार शासन चलाते हुए प्रजा का पालन करने लगे।

एक दिन महाराज युधिष्ठिर अपने भ्राताओं के साथ राजदरबार में विराजमान थे। तभी संसार का भ्रमण करते हुए देवर्षि नारद वहाँ पधारे। सब भाइयों ने उनका यथोचित सम्मान किया। द्रौपदी ने भी आकर उनका आशीर्वाद ग्रहण किया। द्रौपदी के चले जाने के बाद नारदजी बोले, "हे पाण्डु पुत्रो! यशस्वनी द्रौपदी तुम सबकी सम्मिलित पत्नी है। इसलिए इस विषय में तुम ऐसा नियम बना लो जिससे द्रौपदी

के कारण तुम लोगों में कभी क्लेश न हो।" नारदजी के वचन सुनकर पाण्डवों ने प्रतिज्ञा की कि एक नियमित समय तक ही द्रौपदी एक भाई के पास रहेगी। जब वह भाई द्रौपदी के पास एकान्त में होगा तो दूसरा भाई उस स्थान पर नहीं जायेगा। यदि कोई भाई उनके एकान्तवास के समय पहुँच जायेगा तो उसे बारह वर्ष तक वन में रहकर प्रायश्चित करना होगा। इस प्रकार की व्यवस्था कराके नारदजी अपनी भ्रमण-यात्रा पर चल पड़े। इस व्यवस्था के कारण पाण्डवों में कभी कोई विवाद नहीं हुआ।

अठारहवाँ अध्याय

अर्जुन का बारह वर्ष का वनवास और चित्रांगद तथा सुभद्रा से विवाह

वैशंपायनजी बोले--हे राजन्! पाण्डव लोग महर्षि नारद द्वारा बताये गये नियम का दृढ़ता से पालन कर रहे थे। एक दिन एक दुःखद घटना घटी। एक क्रुद्ध ब्राह्मण इन्द्रप्रस्थ में राजभवन के द्वार पर आकर पाण्डवों को बुरा-भला कहने लगा। उसका आरोप था कि कुछ लुटेरे उसकी गायें छीनकर भाग गये हैं, और पाण्डव लोग इस विषय में कुछ नहीं कर रहे हैं। प्रजा की रक्षा न करने वाला राजा पापाचारी होता है। मेरा सर्वस्व लुट गया और तुम लोग आनन्द से विलास कर रहे हो।" ब्राह्मण के ये वचन सुनकर अर्जुन ने उसे आश्वासन दिया और कहा कि मैं अभी जाकर तुम्हारी गायें छुड़ाकर लाता हूँ। ऐसा कहकर अर्जुन धनुष बाण लेने के लिए चले, परन्तु जिस प्रकोष्ठ में उनके धनुष बाण रखे थे उसमें युधिष्ठिर द्रौपदी के साथ बैठे एकान्त में बातें कर रहे

थे। अतएव नियमानुसार अर्जुन वहाँ नहीं जा सकते थे, परन्तु इस समय वहाँ जाना आवश्यक था क्योंकि द्वार पर ब्राह्मण विलाप कर रहा था और वह कोई तर्क सुनने को तैयार नहीं था। कुछ क्षण विचार कर अर्जुन उस प्रकोष्ठ में घुस गये और युधिष्ठिर की अनुमति से धनुष बाण लेकर तत्काल बाहर निकल आये। फिर लुटेरों का पीछा करके उन्होंने उन्हें मार भगाया और गायें लाकर ब्राह्मण को सौंप दी। लौटकर अर्जुन युधिष्ठिर के पास आकर बोले, "भैया! मैंने एकान्त में आकर प्रतिज्ञाभंग की है इसलिए मैं बारह वर्ष के लिए वनवास को जा रहा हूँ।" वे युधिष्ठिर के समझाने पर भी न माने और वन को चल दिये। उनके साथ कुछ विद्वान भी देशाटन और तीर्थयात्रा के बहाने चल पड़े जो उन्हें मार्ग में वेद-वेदांगों के उपाख्यान सुनाते जाते थे।

इस प्रकार भ्रमण करते हुए वे हरिद्वार पहुँचे। हरिद्वार में गंगा जी में स्नान कर वे बाहर निकलने का विचार कर ही रहे थे कि उन पर पाताल निवासिनी उलूपी की दृष्टि पड़ी जो नागराज की कन्या थी। वह बलात् अर्जुन को पाताल में ले गई। वहाँ जाकर उलूपी ने अर्जुन के सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रखा और कहा कि यदि तुम मेरा पाणिग्रहण नहीं करोगे तो मैं यहीं तुम्हारे सम्मुख आत्महत्या करके मर जाऊँगी। अर्जुन उलूपी के आग्रह को न टाल सके और उन्होंने उसके साथ विवाह कर लिया। एक रात वहाँ पर रहकर वे उलूपी से विदा हो पुनः हरिद्वार लौट आये और ब्राह्मण-मण्डली के साथ हिमालय की ओर चल पड़े। मार्ग में अनेक दर्शनीय एवं तीर्थ

स्थानों को देखते हुए वे समुद्र तट पर स्थित मणिपुर पहुँचे। चित्रवाहन वहाँ के राजा थे और चित्रांगदा उनकी सर्वाङ्ग सुन्दर, सर्वगुण सम्पन्न कन्या थी। उसे देखकर अर्जुन मोहित हो गये। चित्रवाहन अर्जुन का परिचय और प्रस्ताव सुनकर बोले, "हे वीरश्रेष्ठ! तुम्हारे साथ मुझे अपनी कन्या का विवाह करने में तो कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु मेरी एक शर्त है। हमारे कुल में इस कन्या के अतिरिक्त कोई सन्तान नहीं है। यदि तुम चित्रांगदा से उत्पन्न पुत्र को मुझे देने का वचन दो तो मैं चित्रांगदा का विवाह तुम्हारे साथ कर सकता हूँ।" जब अर्जुन ने यह वचन दे दिया तो राजा ने अपनी पुत्री का विवाह अर्जुन के साथ कर दिया। वे तीन वर्ष नवविवाहिता पत्नी के साथ मणिपुर में रहे। पुत्र उत्पन्न होने पर उसे वहीं छोड़ राजा की अनुमति से तीर्थ यात्रा के लिये चले गये। चित्रांगदा को वचन दे गये कि वनवास की अवधि समाप्त हो जाने पर मैं तुम्हें इन्द्रप्रस्थ ले जाऊँगा। पुत्र का नाम बभ्रु वाहन रखा गया।

वहाँ से यात्रा करते हुए वे दक्षिण समुद्र के तीर्थों पर पहुँचे। वहाँ पाँच प्रमुख तीर्थ थे--अगस्त्य तीर्थ, सौभद्र तीर्थ पौलोम तीर्थ, करान्धम तीर्थ और भारद्वाज तीर्थ। वे तीर्थ बड़े मनोरथ थे, परन्तु कोई भी उनमें स्नान नहीं करता था। इसका कारण यह था कि प्रत्येक तीर्थ में एक-एक ग्राह रहता था जो स्नान करने वालों को पकड़कर पानी में ले जाता था। यह जानकर अर्जुन भी सौभद्र तीर्थ में स्नान करने के लिए गये। जब वे स्नान करके बाहर निकल रहे थे तो एक ग्राह

उन्हें पकड़कर खींचने लगा, परन्तु अर्जुन उसे घसीट कर किनारे पर ले आए। तट पर आते ही ग्राह ने एक सुन्दर स्त्री का रूप धारण कर लिया। जब अर्जुन ने उससे उसका परिचय पूछा तो वह बोली, "मैं एक अप्सरा हूँ। मेरा नाम वर्गा है। मेरी अन्य चार सखियाँ भी निकटवर्ती तीर्थों में ग्राह के रूप में रहती हैं। एक बार हम सबने मिलकर एक तपस्यारत महर्षि के तप में विघ्न डालने की कुचेष्ठा की थी जिससे उन्होंने हमें सौ वर्ष तक ग्राह की योनि में रहने का शाप दिया था। जब हमने उनसे अपनी मुक्ति का उपाय पूछा। तो उन्होंने कहा, जब कोई श्रेष्ठ पुरुष तुमको जल से बाहर निकाल लेगा तो तुम्हारा उद्धार हो जायेगा। तब से हम ऐसे ही श्रेष्ठ पुरुष की प्रतिक्षा में प्रत्येक स्नानार्थी को खींचकर ले जाती हैं। आज आपने मेरा उद्धार किया है। कृपा करके मेरी उन चार सखियों का भी इस प्रकार उद्धार करें।" अर्जुन ने ऐसा ही किया। वे सब पुनः अप्सरा बनकर अपने-अपने लोकों को चली गईं।

इसके बाद वे द्वारिका पुरी के निकट प्रभास क्षेत्र पहुँचे। जब श्रीकृष्ण को अर्जुन के आगमन की सूचना मिली तो वे उनसे मिलने आये। अर्जुन ने अपने वनवास का कारण बताया। यह सुनकर श्रीकृष्ण ने रैवतक पर्वत पर उनके निवास के लिए सुरम्य व्यवस्था करा दी। उन्होंने वहाँ एक भव्य महोत्सव भी कराया जिसे देखने के लिए बहुत से गण्य-मान्य यादव और प्रतिष्ठत प्रजाजन आये। उनमें वसुदेव की कन्या सुभद्रा भी थी। सुभद्रा को देखते ही अर्जुन उस पर मुग्ध हो गये। जब श्रीकृष्ण को यह बात ज्ञात हुई तो बोले, "अर्जुन! यह

मेरी बहन है। यदि तुम उससे विवाह करना चाहते हो तो मुझसे स्पष्ट कहो ताकि मैं पिताजी को इसके लिए तैयार करूँ।" अर्जुन की स्वीकृति प्राप्त होने पर कुछ सोचकर श्री कृष्ण बोले, "पिताजी के सम्मुख मैं यह प्रस्ताव तो रख सकता हूँ, परन्तु हमारे यहाँ स्वयंवर की रीति है। और यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि सुभद्रा तुम्हेंहो वरमाला पहना-येगी। इसलिए यह उचित होगा कि उचित अवसर देखकर तुम उसका हरण कर लो। क्षत्रियों में इसे अनुचित नहीं माना जाता।" एक दिन सुभद्रा जब देवी पूजन करके मन्दिर से लौट रही थी तो अर्जुन ने उसका अपहरण कर लिया। समस्त यादव इस अपमान से क्रुद्ध हो गये। श्रीकृष्ण ने उन्हें समझाया, "यह अपमान की बात नहीं है। अर्जुन जैसे उच्च पाण्डुवंशी से सम्बन्ध होना हमारे लिए गौरव की बात है। अतएव हमें उसे आदरपूर्वक लाकर सुभद्रा का विवाह उसके साथ कर देना चाहिए। सबने ऐसा ही किया और सुभद्रा का विवाह अर्जुन के साथ धूम-धाम से हो गया।

उन्नीसवाँ अध्याय

खाण्डव वन दहन

वैशंपायनजी बोले--हे राजन्! इस प्रकार बारह वर्ष का वनवास पूरा करके अर्जुन इन्द्रप्रस्थ लौट आये। समय आने पर सुभद्रा के अभिमन्यु नामक तेजस्वी पुत्र हुआ जिसे स्वयं अर्जुन ने धनुर्विद्या एवं शस्त्र-चालन की शिक्षा दी। द्रौपदी के भी पाँचों पतियों से पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। उनके नाम क्रमशः प्रतिविन्ध्य, सुतसोम, श्रुतकर्मा, शतानीक तथा श्रुतसेन रखे

गये। वे सब परस्पर स्नेहपूर्वक रहते हुए विद्यार्जन करने लगे।

एक दिन श्रीकृष्ण और अर्जुन खाण्डव वन में भ्रमण कर रहे थे, तभी एक अत्यन्त तेजस्वी ब्राह्मण उनके सम्मुख आकर बोला, "तुम दोनों ही वीर श्रेष्ठ हो। मैं बहुत अधिक भोजन करने वाला ब्राह्मण हूँ। इसलिए मुझे भोजन देकर तृप्त करो। किन्तु स्मरण रहे, अन्न खाकर मेरी तृप्ति नहीं होती है। मैं अग्नि हूँ। मैं इस खाण्डव वन को खाना चाहता हूँ, परन्तु इस वन में इन्द्र का प्रिय सखा तक्षक नामक सर्प रहता है। इसलिए इन्द्र इस वन की रक्षा करते हैं। जब कभी मैं इसे जलाने के लिए प्रज्ज्वलित होता हूँ तो वे मेघ वर्षा करके मुझे शान्त कर देते हैं। मैं चाहता हूँ कि मेघों से गिरने वाले जल और यहाँ से भागने वाले जीवों को आप अपनी अद्भुत अस्त्र-विद्या से रोक कर रखें।" यह वचन सुनकर अर्जुन बोले, "हे अग्नि देव! मेरे पास ऐसा कोई धनुष नहीं है जिसकी सहायता से मैं इन्द्र से युद्ध कर सकूँ और न ऐसा रथ ही है जो यथेष्ठ बाणों को रख सके। अतएव आप कोई ऐसा उपाय बताइये जिससे हम आपका कार्य सिद्ध कर सकें।" यह सुनकर अग्निदेव ने वरुण को बुलाया और उनसे कहा कि वे गाण्डीव धनुष अर्जुन को दे दें। साथ ही वह रथ भी अर्जुन को दे दें जिसका पताका पर वानर का चिह्न है। इन वस्तुओं को पाकर अर्जुन रथ पर सवार हो अग्निदेव से बोले, "भगवन्! अब आप अपना कार्य प्रारम्भ करें।"

तब अग्निदेव चारों ओर से वन को जलाने लगे और कृष्ण व अर्जुन उस वन को घेरकर भागकर जाने वाले असुरों

तथा पिशाचों को रोकने लगे। चारों ओर भयंकर विनाश होने लगा। पशु, पक्षी, वनचर, जलचर तथा राक्षस सब अग्नि में भस्म होने लगे। सरोवरों का जल उबलने लगा। उधर इन्द्र मेघों से मूसलाधार वर्षा करते, किन्तु अग्नि की ज्वाला से पानी मार्ग में ही भाप बनकर ऊपर उड़ जाता। फिर इन्द्र ने और भी घने बादलों के द्वारा वर्षा की जिसे अर्जुन ने अपने बाणों से ऊपर ही रोक दिया। उस समय तक्षक कुरुक्षेत्र गया हुआ था। उसके पुत्र अश्वसेन ने खाण्डव वन से निकलने का प्रयत्न किया, किन्तु अर्जुन की सावधानी के कारण निकल न सका। तब उसकी माता नागनन्दिनी उसकी रक्षा के लिए उसको सिर की ओर से निगलकर उसकी पूंछ को निगलते हुए आकाश मार्ग से निकल चली। यह देख अर्जुन ने बाण मार नागनन्दिनी का सिर काट डाला, परन्तु इन्द्र ने अर्जुन को मोहित करके अश्वसेन को बचा लिया। इस भयंकर युद्ध के बीच वन में से मय नामक दानव निकलकर भागा। उसी समय अग्निदेव उसे भस्म करने के लिए बढ़े और श्रीकृष्ण ने उसे मारने के लिए अपना चक्र घुमाया। दोनों ओर से आसन्न मृत्यु देख मय चिल्लाया, "हे अर्जुन! मेरी रक्षा करो। मैं तुम्हारा शरणागत हूँ। त्राहिमाम्! त्राहिमाम्!!" यह सुनकर अर्जुन को उस पर दया आ गई। उन्होंने चिल्लाकर कहा, "तुम मेरी शरणागत हो तो तुम्हें कोई नहीं मारेगा।" अर्जुन की वाणी सुनकर अग्नि और श्रीकृष्ण दोनों ने उसे छोड़ दिया।

॥ इति आदि पर्व सम्पूर्ण ॥

॥ ओ३म् ॥

महाभारत भाषा

२. सभा पर्व



शिशुपाल वध



दुशासन का द्रौपदी को खींचकर लाना

पहला अध्याय

पाण्डवों का सभा भवन

वैशंपायनजी बोले–हे नरश्रेष्ठ जनमेजय ! जब अर्जुन ने खाण्डव वन में मय दानव को अग्नि के प्रकोप से बचा लिया तो वह अर्जुन के सम्मुख हाथ जोड़कर बोला, "हे वीर श्रेष्ठ ! आपने मेरे प्राणों की रक्षा की है, इसलिए मैं कृतज्ञता-स्वरूप आपकी कुछ सेवा करना चाहता हूँ। मैं शिलपकला का विशेष ज्ञाता हूँ और दानवों में विश्वकर्मा के समान माना जाता हूँ।" मय के वचन सुनकर श्रीकृष्ण बोले, "यदि कुछ करने की ही

तुम्हारी इच्छा है, तो तुम अपनी इच्छानुसार युधिष्ठिर के लिए एक ऐसा सभा भवन बना दो जो सब प्रकार से अभूत-पूर्व और अत्यन्त कलापूर्ण हो।" यह सुनकर मय अत्यन्त प्रसन्न हुआ और दूसरे दिन से ही वह सभागार के निर्माण में लग गया। कुछ ही समय में उसने एक अद्‌भुत मणिमय सभा भवन बनाकर तैयार कर दिया। उसके निर्माण में उसने आठ हजार किन्नरों से सहायता ली। सभा भवन में एक विचित्र सरोवर बनाया गया था जिसमें मणि जटित सुनहले वृक्ष थे जिन पर पक्षी क्रीड़ा कर रहे थे। सरोवर के चारों ओर स्फटिक की सीढ़ियाँ तथा मणिमय फर्श बनाये गये थे। सरोवर होते हुए भी वह स्फटिक फर्श-सा प्रतीत होता था जिसमें अनजान व्यक्ति चलते-चलते गिर जाता था। गिरने पर ही उसे ज्ञात होता था कि वह चौरस भूमि नहीं, सरोवर है। अनेक प्राँगण इस प्रकार के बनाये गए थे कि उनको देखकर सरोवर का आभास होता था। लोग ठोस धरातल को जल समझकर अपने वस्त्र समेट कर चलने का उपक्रम करने लगते थे।

भवन निर्मित हो जाने पर युधिष्ठिर ने सहस्रों ब्राह्मणों को भोजन कराकर तथा वस्त्राभूषण दक्षिणा आदि देकर गृह प्रवेश किया। एक दिन जब महाराज युधिष्ठिर अपने भ्राताओं के साथ सभागार में बैठे थे तभी महामुनि नारद वहाँ पधारे। उनका उचित सत्कार करके युधिष्ठिर ने उन्हें आसन पर बैठने का आग्रह किया। नारदजी ने उन्हें धर्म एवं राजनीति का उपदेश देकर कहा, "तुम्हें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि राज्य के लोग धनी और राजभक्त हों। वे मदिरापान आदि

दुर्व्यसनों से दूर रहें। दूसरे राजाओं के गुप्तचर तुम्हारा भेद न जान सकें। कृषकों के साथ सदा उदार व्यवहार होना चाहिए। सभी विद्याओं एवं कलाओं का विकास करने में तुम लोगों को दत्तचित्त रहना चाहिए। सुयोग्य व्यक्तियों को सदैव सम्मानित एवं पुरस्कृत करना चाहिए। प्रजा से सदा उचित एवं युक्तिसंगत ही कर लेना चाहिए।" इस प्रकार की और भी अनेक उपयोगी बातें नारदजी ने युधिष्ठिर को बताईं। इन बातों को सुन युधिष्ठिर ने विनम्रतापूर्वक कहा, "हे महामुने! आपके अमूल्य उपदेशों को मैं सदैव सब प्रकार से क्रियान्वित करने का प्रयत्न करूँगा। भगवन्! मैं आपसे एक बात जानना चाहता हूँ। आपका सभी लोकों में आवागमन होता है। क्या आपने कहीं इस सभागार जैसा सुन्दर भवन देखा है?

यह सुनकर नारदजी ने यमराज, वरुण, इन्द्र, कुवेर, ब्रह्माजी आदि की दिव्य सभाओं का वर्णन किया। फिर बोले, "हे आर्य! इस समय इस मर्त्य-लोक में इसके समान कोई सभा नहीं है। हे भारत! तुम्हारे भाई आज्ञाकारी हैं और तुम सारी पृथ्वी को जीतने में समर्थ हो। अतः अब तुम राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान करो। स्वर्ग में तुम्हारे पिता महाराज पाण्डु की भी इससे तृप्ति होगी।" यह कहकर नारदजी वहाँ से विदा हुए।

दूसरा अध्याय

राजसूय यज्ञ की योजना

नारदजी के प्रस्थान करने के पश्चात् युधिष्ठिर ने अपने सब भ्राताओं के साथ मिलकर राजसूय यज्ञ की योजना पर

विचार किया। सभी इस महत्वपूर्ण प्रस्ताव पर सहमत थे। निश्चय किया गया कि द्वारिकापुरी से भगवान श्रीकृष्ण को बुलाकर उनसे भी परामर्श किया। अतएव एक दूत द्वारिकापुरी भेज दिया गया। श्रीकृष्ण सन्देश मिलते ही इन्द्रप्रस्थ आ पहुँचे। युधिष्ठिर की बात सुनकर वे बोले, "राजन्! आप सब प्रकार से राजसूय यज्ञ करने के योग्य हैं, किन्तु आज के क्षत्रिय अपने पूर्वजों से सब प्रकार से हीन हो गये हैं। मगध के राजा जरासन्ध ने अपने बाहुबल से लगभग सब राजाओं को अपने वश में कर लिया है। पराक्रमी शिशुपाल जरासन्ध का सहायक और सेनापति है। मायायुद्ध करने में पारंगत करुष देश का नरेश उसकी चाटुकारिता में उसके शिष्य की भाँति रहता है। हंस और डिभक नामक महापराक्रमी वीर जरासन्ध के आज्ञापालक हैं। लोकविख्यात यवनाधिपति और आपके पिता के मित्र वृद्ध भगदत्त भी आजकल जरासंध के अनुकूल हैं। आपके मामा पुरुजित भी उसके पक्षपाती हैं। इसके अतिरिक्त जरासंध राजाओं की बलि देकर भगवान शंकर की कृपा से अपना मनोवांछित वरदान प्राप्त कर चुका है। अब भी उसने छियासी राजाओं को बलि चढ़ाने के लिए अपने यहाँ बन्दी बना रखा है। राजाओं की संख्या सौ होते ही वह उनकी बलि चढ़ा देगा। यदि आप राजसूय यज्ञ करना ही चाहते हैं तो पहले आपको जरासंध को मारकर बन्दी राजाओं को मुक्त करना होगा। ऐसा किये बिना यह यज्ञ पूरा नहीं हो सकेगा।"

श्रीकृष्ण की बात सुनकर राजा युधिष्ठिर बोले, "जब आप जैसे नीतिकुशल और पराक्रमी वीर भी जरासन्ध से

भयभीत हैं तो हमारी मनोकामना कैसे पूरी हो सकेगी ?" तब उनकी बात काटते हुए अर्जुन ने कहा, "हम क्षत्रिय होकर दुर्बल के समान बैठे रहकर क्षत्रिय धर्म को कलंकित करें, इससे अच्छा यह होगा कि हम गेरुए वस्त्र धारण करके वन में रहने लगे। हमें प्रत्येक स्थिति में संघर्ष करना चाहिए।" श्रीकृष्ण बोले, "अर्जुन ! तुमने एक वीर पुरुष की भाँति ही बात कही है। मेरा मन्तव्य वह नहीं था कि हम लोग निराश होकर बैठ जायें। हमें युद्ध करना चाहिए, फल ईश्वर के हाथ में है।"

युधिष्ठिर ने पूछा, "श्रीकृष्ण! यह जरासंध कौन है जिसने सम्पूर्ण संसार को इतना आतंकित कर रखा है ?" यह प्रश्न सुनकर श्रीकृष्ण बोले, "मगध देश में बृहद्रथ नाम के एक प्रतापी राजा थे। काशीराज की दो यमज कन्याएँ उनकी पत्नी थीं। जब बहुत दिन तक उनके कोई सन्तान नहीं हुई तो वे गौतम ऋषि के पुत्र चण्ड कौशिक के पास गये और अपनी चिन्ता का कारण बताया। चण्ड कौशिक ने उन्हें एक अभिमन्त्रित फल दिया। राजा ने उस फल का आधा-आधा भाग दोनों रानियों को खिला दिया। उसके फलस्वरूप दोनों रानियों के शरीर से प्राणहीन बालक के दो आधे-आधे अंग उत्पन्न हुए। यह आश्चर्यजनक घटना देखकर दोनों रानियाँ अत्यन्त भयभीत हुईं। उन्होंने परस्पर परामर्श करके दोनों माँस पिण्डों को कपड़े में लपेटकर एक विश्वस्त दासी द्वारा चौराहे पर रखवा दिया।

दैवयोग से जरा नामक दानवी उधर आ निकली। उसने दोनों माँस पिण्डों को एक कपड़े में मिलाकर रख लिया। इससे

वे टुकड़े जुड़ गये ओर एक सजीव बालक बन गया। यह देख कर उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ। जब दानवी उस बालक को उठाने लगी तो वह जोर-जोर से क्रन्दन करने लगा। शिशु के रुदन का स्वर सुनकर राजा, रानी तथा अन्य व्यक्ति वहाँ आ गये। जरा ने सोचा कि राजा निःसन्तान हैं। इसलिए यह पुत्र उन्हें दे दिया जाए। यह सोचकर उसने एक सुन्दर स्त्री का रूप धारण करके वह पुत्र राजा को दे दिया और यह भी बता दिया कि किस प्रकार इस पृथक-पृथक भाग उत्पन्न होने के कारण रानियों ने उसे चौराहे पर रखवा दिया था। मैंने उसे जीवित कर दिया है। राजा ने प्रसन्न होकर उस पुत्र को ले लिया और उसका नाम जरासंध रखा। जरासंध के बड़े होने पर बृहद्रथ उसे राजपाट सौंपकर अपनी पत्नियों सहित वन में तपस्या करने के लिए चले गये। राजा बनने के पश्चात् से ही जरासन्ध देश का चक्रवर्ती सम्राट् बनने का प्रयत्न कर रहा है। जरासन्ध केवल द्वन्द्व युद्ध में हराया और मारा जा सकता है। मैं, भीमसेन और अर्जुन तीनों मिलकर उसे मारने का प्रयत्न करेंगे। इसका उपाय मैंने सोच लिया है। हम तीनों उसके पास जाकर उससे एकान्त में युद्ध करने की इच्छा प्रगट करेंगे। वह हम में से एक के साथ युद्ध करने को अवश्य तैयार हो जायेगा। बहुत सम्भव है, वह भीमसेन से ही युद्ध करना चाहे। मुझे विश्वास है कि भीमसेन जरासन्ध को अवश्य मृत्यु के घाट उतार देंगे। इसलिए आप भीमसेन और अर्जुन को शीघ्र मेरे साथ भेज दीजिए ताकि हम इस कार्य को पूरा कर सकें और फिर राजसूय यज्ञ की तैयारियाँ की जा सकें।"

युधिष्ठिर की अनुमति पाकर भीम और अर्जुन दोनों श्रीकृष्ण के साथ चले। वे रात्रि के समय निशंक भाव से जरासंध के शयनागार में पहुँचकर उससे कहने लगे, "राजन्! हम लोग क्षत्रिय हैं। हम चाहते हैं कि तुम या तो समस्त क्षत्रिय नरेशों को अपने कारागार से मुक्त कर दो अथवा हमारे साथ द्वन्द्व युद्ध करो। यदि तुम युद्ध से पूर्व हमारा परिचय जानना चाहो तो मैं तुम्हें बता दूँ कि मैं कृष्ण हूँ, ये भीमसेन हैं और ये अर्जुन हैं।" जरासंध बोला, "पराजित शत्रु के साथ मनमाना व्यवहार करने का प्रत्येक राजा को अधिकार है। इसलिए मैं उन्हें मुक्त नहीं कर सकता। मैं तुममें से प्रत्येक से युद्ध करने को तैयार हूँ। पहले भीमसेन मुझसे द्वन्द्व करें।"

जरासंध और भीमसेन दोनों मस्त गजराजों की भाँति भिड़ गये और गरज-गरज कर एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। चौदह दिन तक निरन्तर दोनों योद्धाओं में भयंकर द्वन्द्व होता रहा। तेरहवें दिन जरासंध ने थोड़ा विश्राम लेने की इच्छा प्रगट की, किन्तु श्रीकृष्ण का संकेत पाकर भीमसेन ने युद्ध विराम करना अस्वीकार कर दिया। अकस्मात् भीमसेन ने जरासंध को उठाकर ऊपर सौ बार घुमाया और पृथ्वी पर पटककर घुटने से उसका मेरुदण्ड तोड़ दिया और उसकी टाँग पकड़कर चीर डाला। इसके पश्चात् जरासंध के शव को राज द्वार पर छोड़ समस्त बंदी राजाओं को मुक्त करके अपने साथ ले चले। दूसरे दिन प्रातःकाल श्रीकृष्ण ने भीम और अर्जुन द्वारा जरासंध के पुत्र सहदेव का राज्याभिषेक कराया। फिर वे इन्द्रप्रस्थ को लौट आये।

तीसरा अध्याय

पाण्डवों की दिग्विजय

वैशंपायनजी बोले—हे राजन् ! जरासन्ध की मृत्यु से राजसूय यज्ञ के मार्ग की एक बहुत बड़ी बाधा दूर हो गई। राजसूय यज्ञ से पूर्व दिग्विजय करना अति आवश्यक था। अतएव चारों पाण्डव भ्राता युधिष्ठिर की आज्ञा लेकर दिग्विजय के लिए निकल पड़े। अर्जुन ने अग्निदेव से प्राप्त दिव्य रथ पर बैठकर सेना सहित उत्तर दिशा के लिए प्रस्थान किया। भीमसेन पूर्व दिशा को, नकुल पश्चिम दिशा को और सहदेव सेना सहित दक्षिण दिशा को चल पड़े।

सर्वप्रथम अर्जुन ने आनर्त्त, कालकूट, कुणिन्द और सुमण्डल के राजाओं को पराजित किया। फिर उन्होंने उनकी सेनाओं सहित राजाओं को अपने साथ लेकर शाकल द्वीप आदि सात द्वीपों पर अपनी विजय पताका फहराई। इन स्थानों पर उन्हें विशेष संघर्ष नहीं करना पड़ा। प्राग्ज्योतिषपुर नरेश भगदत्त ने किरात, चीन आदि की सारी सेना को साथ लेकर आठ दिन तक अर्जुन से भयंकर युद्ध किया। जब दोनों ओर से कोई निर्णय न हो सका तो भगदत्त ने हँसते हुए अर्जुन के पास आकर कहा, "अर्जुन ! तुम इन्द्र के पुत्र और मैं इन्द्र का मित्र हूँ। बोलो, तुम क्या चाहते हो ?" यह सुनकर अर्जुन ने कहा, "हे वीरवर ! मैं दिग्विजय के लिए निकला हूँ क्योंकि धर्मराज युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं। मैं चाहता हूँ, आप उन्हें 'कर' दें।" भगदत्त ने कहा, "मैं युधिष्ठिर की धर्म बुद्धि से प्रभावित होकर उससे स्नेह करता हूँ।

अतएव उनके राजसूय यज्ञ की पूर्ति के लिए मैं अवश्य 'कर' दूँगा।" इसके पश्चात् अर्जुन कुलूत देश पहुँचे। वहाँ के राजा बृहन्त ने भयंकर युद्ध किया, परन्तु उसे पराजित होना पड़ा। उसके पश्चात् उन्होंने मोदापुर, वामदेव, सुदामा, सुसंकुल एवं पंचगण देशों को जीता। इस प्रकार राज्यों को जीतते हुए उन्होंने काश्मीर, त्रिगर्त, दासक, कोकनद, सिंहपुर, सुह्म, चोल, वाह्लीक, दरद, काम्बोज आदि देशों एवं राज्यों पर विजय प्राप्त की। इस अभियान में उन्होंने यक्षों, गंधर्वों आदि की राजधानियों पर भी अपनी विजय पताका फहराई। जब वे हरिवर्ष पहुँचे तो महाबली द्वारपालों ने उन्हें रोकते हुए कहा, "अर्जुन! तुम इस प्रदेश में घुसने की चेष्टा मत करो। तुम इसे नहीं जीत सकोगे, इस देश में मनुष्य प्रवेश नहीं कर सकते। इस स्थान का नाम उत्तर कुरु देश है। यहाँ तुम्हारा परिश्रम सफल नहीं हो सकेगा। यदि विजय प्राप्ति के अतिरिक्त तुम्हारी कोई अन्य अभिलाषा हो तो कहो, हम उसे पूरा करेंगे।" यह सुनकर अर्जुन ने कहा, "यदि तुम महाराज युधिष्ठिर को कर देना स्वीकार करो तो मैं बिना युद्ध के लौट जाऊँगा।" अर्जुन के प्रस्ताव को सुनकर उन्होंने उन्हें अनेक वस्त्राभूषण एवं रत्न 'कर' के रूप में दिये जिन्हें पाकर वे इन्द्रप्रस्थ लौट आये।

वैशंपायनजी बोले—पूर्व दिशा में दिग्विजय करते हुए भीमसेन सबसे पहले अपने सम्बन्धी पांचाल नरेश के पास पहुँचे वे तत्काल 'कर' देने के लिए प्रस्तुत हो गये। उनकी सेना को साथ लेकर भीमसेन ने गण्डक, विदेह, तथा अश्वमेध

पुलिन्द को जीता और चेदिनरेश शिशुपाल के पास पहुँचे। कुरुवंश और चेदिवंश के पारस्परिक सौहार्दपूर्ण सम्बंधों का ध्यान करके शिशुपाल ने तत्काल 'कर' दे दिया। फिर उन्होंने कुमार, कोशल, अयोध्या, मल्ल, जरद्गव, उन्नाट, सुपार्श्व, काशी, मत्स्य, मलय, गय, सोपदेश, वत्स, निषाद आदि अनेक देशों के नरेशों को अपने आधीन करके उनसे 'कर' प्राप्त किया। इसके पश्चात् उन्होंने दक्षिण के मल्लों, विदेहराज, किरातों, सुह्मों, प्राच्यसुह्मों, समक्षों मागधों, गिरिव्रज आदि को जीतकर अंग देश के राजा कर्ण पर चढ़ाई की। कर्ण ने भीमसेन के साथ भयंकर युद्ध किया, परन्तु अन्त में उसे पराजित होना पड़ा। इसके पश्चान् वे पुण्ड्र, कच्छ, बंग, ताम्रलिप्त, लौहित्य, देश को हराते हुए 'कर' प्राप्त कर इन्द्रप्रस्थ लौट आये।

सहदेव अपनी दक्षिण यात्रा में शूरसेन, मत्स्य देश के राजाओं, नवराष्ट्र, कुन्तिभोज, सेन्य, अमरसेक के नरेशों को युद्ध में परास्त करते हुए नर्मदा तट स्थित अवन्ती पहुँचे और और उस पर विजय प्राप्त की। प्राक्कोसल, नारकेय, हेरम्बक, मारुध, नाचीन, अर्बुक नरेश को हराते हुए किष्किन्धा पहुँचे जहाँ उनका वानरों से भयंकर युद्ध हुआ। अन्त में सहदेव की वीरता से प्रभावित हो उन्होंने भी प्रसन्नतापूर्वक 'कर' दिया। इसके पश्चान् जब वे माहिष्मती पहुँचे तो उन्हें यह देखकर महान आश्चर्य हुआ कि अग्निदेव वहाँ के राजा नील की सहायता कर रहे थे और वे भयंकर रूप से सहदेव की सेना को भस्म करने में लगे हुए थे। यह देखकर उन्होंने अग्नि की स्तुति की और कहा, "हे अग्निदेव! यह दिग्विजय कि उपभोग

तो आपकी ही आराधना के लिए किया जा रहा है। यह तो आपका ही रूप है।" सहदेव की स्तुति से प्रसन्न होकर अग्नि देव ने कहा, "हे सहदेव! मैं राजा नील की रक्षा करने के लिए विवश हूँ। क्योंकि उनकी पुत्री से विवाह करते समय मैंने उन्हें उनके राज्य की रक्षा का वचन दिया था। फिर भी मैं उन्हें इस बात के लिए सहमत कर लूंगा कि वे तुम्हें 'कर' दें।" और अग्निदेव ने अपना वचन पूरा किया। नील से 'कर' लेकर सहदेव त्रिपुर, पोतनेश्वर, सुराष्ट्र, भोजकटपुर, शूर्पारक, तालाकटक, दण्डक, केरल, संजयन्ती, पाषण्ड देश, पाण्ड्य, द्रविड़, उण्ड्र, आन्ध्र, कलिग, कच्छ आदि को अपने आधीन कर उनसे 'कर' प्राप्त कर इन्द्रप्रस्थ लौट आये।

नकुल ने पश्चिम दिशा के अभियान में दशार्ण, शिबि, त्रिगर्त, अम्ष्ठ, मालव, पंचकर्पट, पंजाब, उत्तर ज्योतिष देश, दिव्यकट, रामठ, हारहूण आदि को परास्त किया। यादव नरेश वासुदेव एवं मद्र देश के अपने सौहार्दपूर्ण सम्बंधों के कारण स्वतः 'कर' देना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार सम्पूर्ण पश्चिम दिशा को अपने आधीन करके दस हजार ऊँटों पर धन, रत्न आदि असंख्य पदार्थ–जो कर रूप में प्राप्त हुए थे–लेकर नकुल महाराज युधिष्ठिर की सेवा में इन्द्रप्रस्थ पहुँचे।

चौथा अध्याय

राजसूय यज्ञ

वैशंपायनजी बोले—हे राजन्! जब चारों पाण्डव भ्राता दिग्विजय करके अपार सेना सहित इन्द्रप्रस्थ लौट आये तो महाराज युधिष्ठिर ने द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण को बुलाकर

राजसूय यज्ञ की तैयारियाँ आरम्भ कराईं। धौम्य ऋषि के निर्देशानुसार समस्त यज्ञ सामग्री एकत्रित कराई गई। साम्राज्य में रहने वाले चारों वर्णों को यज्ञ में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया गया। भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, विदुर, कृपाचार्य, दुर्योधन आदि को निमंत्रण देने के लिये नकुल को हस्तिनापुर भेजा गया। देश-देश के राजाओं, विद्वानों, ऋषि-मुनियों एव गण्य-मान्य व्यक्तियों के पास भी निमंत्रण भेजे गये।

सब के आ जाने पर तेजस्वी ब्राह्मणों को ऋत्विक् बना कर व्यासजी ने ब्रह्मा का आसन ग्रहण किया। सुसामा ऋषि सामवेद के उद्गाता और याज्ञवल्क्य ऋषि अध्वर्यु बने। पैल तथा धौम्य ऋषि ने होता का कार्य किया। सबने राजा युधिष्ठिर को यज्ञ के लिए दीक्षा दी। सब ऋषियों ने स्वस्ति-पुण्याहवाचन-शान्ति पाठ के पश्चात् शास्त्र की विधि से देवताओं एवं यज्ञभूमि का पूजन करके यज्ञ प्रारम्भ किया। यज्ञ में भोजन-सामग्री की देख-रेख का कार्य दुःशासन को सौंपा गया। ब्राह्मणों की सेवा का कार्य अश्वत्थामा पर था। राजाओं के सत्कार का भार संजय को दिया गया। दक्षिणा देने का कार्य कृपाचार्य के आधीन था। द्रोणाचार्य भीष्म के साथ मिल कर समस्त कार्यों का निरीक्षण कर रहे थे। सब प्रकार के व्यय का दायित्व विदुरजी पर था। यज्ञ की पूर्णाहुति पर प्रत्येक भिक्षु, ब्राह्मण और याचक की मनोकामना पूरी की गई।

यज्ञ के अन्त में भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा, "राजन्! अब आप इन सब आगत नरेशों का सत्कार करें। आचार्य,

ऋत्विक्, स्नातक, सम्बन्धी, मित्र और राजा ये छः व्यक्ति अर्घ्य पाने के अधिकारी होते हैं।" इस पर युधिष्ठिर ने पूछा, "हे पितामह! आप यह बतायें कि सबसे पहले किसको अर्घ्य दिया जाय। इनमें सबसे योग्य कौन हैं?" यह सुनकर भीष्म बोले, "इनमें सबसे अधिक योग्य एवं उपयुक्त महापुरुष श्री कृष्ण हैं। सबसे पहले उनका पूजन करो।" भीष्म की इच्छा और युधिष्ठिर की आज्ञानुसार सहदेव ने श्रीकृष्ण को अर्घ्य दिया। यह बात चेदिनरेश शिशुपाल को सहन नहीं हुई। उसने युधिष्ठिर के पास आकर कहा, "युधिष्ठिर! तुमने श्रीकृष्ण को अर्घ्य देकर उचित नहीं किया। गंगापुत्र भीष्म की बुद्धि वृद्धावस्था के कारण भ्रष्ट हो गई है। इसलिए उसने तुम्हें यह अनुचित परामर्श दिया है। कृष्ण कोई राजा नहीं है और न वह वयोवृद्ध अथवा विद्वान् है।" यदि तुमने कृष्ण को अपना प्रिय समझकर उसकी पूजा की है तो तुम्हारे सुहृद् सम्बन्धी द्रुपद उपस्थित हैं। आचार्य मानने पर वह द्रोणाचार्य से बढ़कर नहीं हो सकता। ऋत्विक की दृष्टि से वेदव्यास उससे श्रेष्ठ हैं। इस प्रकार ऐसे अनेक महापुरुष यहाँ उपस्थित हैं जिनके सम्मुख कृष्ण पूर्णतया नगण्य है। तुमने सब महापुरुषों का अपमान किया है।" फिर वह कृष्ण से बोला "हे कृष्ण! यदि किसी मूर्खतावश पाण्डवों ने तुम्हें अर्घ्य दिया था तो तुम्हें तो सोचना चाहिए था कि मैं इस योग्य नहीं हूँ। यह मत भूलो कि पाण्डवों ने पूजा के बहाने तुम्हारी हँसी उड़ाई है। तुम्हारी पूजा बिल्कुल वैसी ही है जैसे किसी नपुंसक व्यक्ति का विवाह करना। इस सभा में तो बैठना भी अपमान

की बात है।" यह कहकर शिशुपाल अपने पक्ष के राजाओं को लेकर वहाँ से चल पड़ा।

पाँचवाँ अध्याय

शिशुपाल वध

वैशंपायनजी बोले—हे राजन्! जब शिशुपाल वहाँ से क्रुद्ध होकर अपने निवास स्थान को जाने लगा तो युधिष्ठिर उसके पास जाकर नम्रतापूर्वक उसे मनाने का प्रयास करने लगे। वहाँ खड़े हुए भीष्म ने भी उसे समझाते हुए कहा, "शिशुपाल! तुम विचारकर देखो, इन राजाओं में कोई भी ऐसा नहीं है जिसे श्रीकृष्ण युद्धभूमि में परास्त न कर सकें। वे अच्युत हैं, तीनों लोकों में पूज्य हैं, उन्होंने अब तक अनेक अलौकिक कार्य किये हैं। विद्वान् हैं, धर्मात्मा हैं। वे सब प्रकार से पूजनीय हैं।" यह सुनकर अत्यन्त कुपित हो शिशुपाल राजाओं से बोला, "हे महाबली महीपतियो! तुम्हारा क्या विचार है? मेरे विचार से हम सबको मिलकर पाण्डवों और यादवों से युद्ध करना चाहिए। इस यज्ञ को भी विध्वंस करना चाहिए।

शिशुपाल के समर्थक राजा लोग अपनी अपार सेना को लेकर शिशुपाल की इच्छानुसार युद्ध करने को तैयार हो गये। जब भीष्मजी शिशुपाल को पुनः समझाने की चेष्टा करने लगे तो उसने बिगड़कर कहा, "हे भीष्म! तुम कुलनाशक हो। तुमने नपुंसक का जीवन व्यतीत किया है, इसलिए नपुंसक की भाँति धर्म के विरुद्ध कार्य करके उसका समर्थन करना चाहते हो। तुम अभिमानी और मूर्ख हो, इसलिए कृष्ण को ईश्वर

मानते हो। जिन दैत्यों को इसने मारा वे बेचारे युद्ध करना ही नहीं जानते थे। यही कारण है कि इसे अनुचित श्रेय मिल गया है। जिस कंस का अन्न खाकर यह बड़ा हुआ उसी को इस कृतघ्न ने मार डाला। गौ और स्त्री की सब रक्षा करते हैं, परन्तु इस दुष्ट ने वृषासुर और पूतना को भी हत्या कर दी। फिर भी तुम इसे धर्मात्मा कहते हो। धिक्कार है तुम्हारी बुद्धि पर। तुम्हारी संगति से पाण्डवों की बुद्धि भी भ्रष्ट हो गई है।"

शिशुपाल के मुख से ऐसी अपमानजनक बातें सुनकर भीमसेन क्रोध से काँपने लगे और उसे मारने के लिए दौड़े, परन्तु भीष्म ने उन्हें रोक लिया। वे भीम को समझाते हुए बोले, "भीम! तुम इसका जीवन वृत्तान्त नहीं जानते। जब यह उत्पन्न हुआ था तो इसके चार भुजाएँ और तीन आँखें थीं। पैदा होते ही हय गधे की भांति रेंकने लगा था। इससे विरक्त होकर इसके माता-पिता इसका त्याग करने जा रहे थे तभी ज्योतिषियों ने बताया था कि यह बड़ा बलवान और पराक्रमी होगा। इसकी मृत्यु केवल महाकाल द्वारा ही होगी और वह महाकाल संसार में प्रगट हो चुका है। जब इसे गोद में लेकर इसकी माता ने पूछा कि इसकी मृत्यु किसके हाथ से होगी तो ज्योतिषियों ने बताया, जिसकी गोद में जाने से इसके दो हाथ और एक नेत्र अदृश्य हो जायेंगे, उसी के द्वारा इसकी मृत्यु होगी। इस विचित्र पुत्र को देखने दूर-दूर से राजा और सम्बन्धी लोग पहुँचे। आने वालों में कृष्ण और बलराम भी थे क्योंकि इसकी माता श्रीकृष्ण की बुआ है। बुआ ने स्नेह प्रदर्शित करने के लिए बालक को श्रीकृष्ण की गोद में दे दिया। उनकी

गोद में आते ही इसके दो हाथ गिर गये और तीसरा नेत्र अदृश्य हो गया। यह देखकर इसकी माता ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की, "वत्स! तुम वीर हो। सभी लोगों को अभय प्रदान करते हो। यदि इस बालक से भूल हो जाय तो इसे क्षमा कर देना। इस पर श्रीकृष्ण ने आश्वासन दिया कि यदि यह सौ भयंकर अपराध भी करेगा तो भी मैं इसका अनिष्ट नहीं करूँगा। यही कारण है कि यह दुष्ट श्रीकृष्ण के वरदान से निश्चित होकर सबका अपमान किये जा रहा है।"

भीष्म की बात सुनकर शिशुपाल बोला, "भीष्म! तुम्हें स्तुति करनी है तो किसी योग्य व्यक्ति की करो। राजा कंस के नौकर, गौओं को पालने वाले, दुरात्मा कृष्ण को जगद्गुरु कहते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती? हे कृष्ण! तुम टुकुर-टुकुर क्या देख रहेहो? मैं तुम्हें युद्ध के लिए ललकारता हूँ। साहस है तो आओ, मुझसे युद्ध करो।" शिशुपाल की ललकार सुनकर राजाओं को संबोधित करते हुए श्रीकृष्ण बोले, "हे नरेशो! शिशुपाल यद्यपि यादवकुल की माता से उत्पन्न है, फिर भी इसने सदैव हमारा और यादवों के कुल का अहित करने का प्रयत्न किया है। इसी दुष्ट ने तपस्वी वभ्रु की पत्नी के साथ बलात्कार किया है। इस पापी ने बहुत से भयंकर पाप किये हैं। मैं इसकी माता को दिये हुए वचन के अनुसार अब तक इसके सौ अपराध क्षमा कर चुका हूँ। अब यह नराधम मेरे हाथों से कदापि नहीं बच सकता।" यह कहकर श्रीकृष्ण ने क्रोधपूर्वक सुदर्शन चक्र उसकी ओर घुमा दिया। चक्र से शिशुपाल का सिर कटकर पृथ्वी पर गिर गया और उसका धड़

धराशायी होकर तड़पने लगा। युधिष्ठिर ने शिशुपाल की अन्त्येष्टि-क्रिया करके उसके पुत्र को चेदि का राज्य-सिंहासन सौंप दिया।

युधिष्ठिर ने यज्ञ का शेष कार्य समाप्त करके समस्त आगत अतिथियों को विदा किया। केवल दुर्योधन और राजा सुबल के पुत्र शकुनि रह गये।

छठा अध्याय

युधिष्ठिर का जुआ खेलना

जब दुर्योधन और शकुनि अकेले रह गये तो उन्होंने सब ओर घूम फिरकर युधिष्ठिर का सभागार देखने का निश्चय किया। जब वे घूमते हुए स्फटिक पाषाण निर्मित फर्श के निकट पहुँचे तो वे उसे निर्मल जल से भरा सरोवर समझकर अपने वस्त्र समेटने लगे। जब उन्होंने उसे केवल फर्श पाया तो वे अत्यन्त लज्जित हुए। आगे चलकर वे एक निर्मल जल युक्त सरोवर पर पहुँचे, परन्तु दुर्योधन ने उसे स्फटिक फर्श समझा और आगे पैर बढ़ाते ही उसमें गिर पड़ा। उसे इस प्रकार गिरते देख दास-दासियाँ हँस पड़े। इससे उसे बहुत क्रोध आया। आगे फिर फर्श को जल समझकर जब वह अपने वस्त्र समेटने लगा तो दास-दासियाँ अपनी हँसी न रोक सके। एक स्थान पर स्फटिक की सुन्दर दीवार बनी हुई थी। उसने उसे बाहर जाने का द्वार समझा और क्रोध में भरा हुआ बाहर जाने के लिए लपका। दीवार से उसके माथे पर इतने जोर की टक्कर लगी कि वह चक्कर खाकर पीछे गिर पड़ा। जैसे तैसे उठकर वह एक वास्तविक द्वार पर पहुँचा जो उसे बन्द

प्रतीत हुआ। ज्योंही उसने उसे खोलने के लिए धक्का दिया त्योंही वह आगे की ओर गिर पड़ा। चारों ओर की खिल-खिलाहट और व्यंग को वह अधिक न सह सका। अतएव युधिष्ठिर की सहायता से बाहर निकलकर तत्काल हस्तिना-पुर चला गया।

मार्ग में वह अपने अपमान, क्रोध एवं द्वेष की ज्वाला से जला जा रहा था। उसी क्रोध में उसने पाण्डवों का सर्व-नाश करने की प्रतिज्ञा कर डाली। जब उसने अपने मन की बात शकुनि को बताई तो उसने कहा, "दुर्योधन! पाण्डवों को परास्त करके नष्ट करना इतना सरल नहीं है, जितना तुम समझ रहे हो। उनके नाश का एक ही उपाय हो सकता है। वह मैं तुम्हें बताता हूँ।" दुर्योधन के पूछने पर उसने कहा, "युधिष्ठिर को जुआ खेलने का बहुत चाव है, किन्तु जितना उसे खेलने का चाव है, उतना अच्छा खिलाड़ी वह नहीं है। इसके विपरीत मैं इसमें बहुत पारंगत हूँ। यह तो तुम जानते ही हो कि मैं अनेक विश्वविख्यात जुआरियों को पराजित कर चुका हूँ। यदि एक बार तुम उसे मेरे साथ खेलने के लिए सहमत कर लो तो मैं उसका सम्पूर्ण धन-वैभव एवं राजपाट जुए में जीतकर तुम्हें समर्पित कर सकता हूँ। यदि तुम उसे जुआ खेलने के लिए चतुराई से आमंत्रित करोगे तो मुझे विश्वास है कि वह अस्वीकार नहीं करेगा।"

दुर्योधन ओर शकुनि दोनों ने धृतराष्ट्र से जाकर प्रार्थना की कि हम लोग युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में आतिथ्य स्वीकार करके आये हैं। अब हमारा कर्त्तव्य है कि हम लोग भी

युधिष्ठिर को कुछ दिन के लिए यहाँ बुलाकर उनका आतिथ्य करें। उनके साथ आखेट, मनोरंजन करके अपनी मैत्री को सुदृढ़ करें। मित्रभाव से जुआ आदि खेलकर भी हम लोग पारस्परिक सौहार्द की वृद्धि कर सकते हैं। आशा हैं इसमें आपको तथा भीष्मपितामह आदि को कोई आपत्ति नहीं होगी। धृतराष्ट्र ने इसके लिए तत्काल अपनी अनुमति दे दी। मैत्री को सुदृढ़ करने की बात सुनकर भीष्मजी ने भी कोई आपत्ति नहीं की। युधिष्ठिर को जब हस्तिनापुर में आमंत्रित किया गया तो वे अपने भ्राताओं, द्रौपदी आदि रानियों तथा अन्य परिजनों के साथ वहाँ पहुँच गये।

दूसरे दिन शकुनि ने जब युधिष्ठिर से जुआ खेलने के लिए कहा तो वे बोले, "मामा! यद्यपि जुआ काल रूप और पाप की जड़ है तो भी यह मेरा नियम है कि कोई मुझे किसी कार्य के लिए बुलाता है तो मैं उसकी इच्छा की अवहेलना नहीं करता। अतएव तुम मुझे यह बताओ कि मेरे साथ कौन कौन खेलेगा?" यह सुनकर दुर्योधन बोला, "महाराज! दाँव लगाने के लिए रत्न और धन तो मैं दूंगा और पासे हमारे मामाजी खेलेंगे।" यह निश्चय हो जाने पर खेल प्रारम्भ हुआ। सभागार उत्सुक दर्शकों से भर गया। युधिष्ठिर ने सबसे पहले उत्तम मणियों से युक्त स्वर्णहार दाँव पर लगाया। इसके उत्तर में दुर्योधन ने अनेक मणियाँ और मूल्यवान् रत्न एक साथ लगाये। शकुनि ने दाँव फेंका और जीत गया। तब युधिष्ठिर ने सहस्त्रों स्वर्ण मुद्राओं से भरे घड़े और असंख्य मणिरत्न दाँव पर लगाये। शकुनि ने वह दाँव भी जीत लिया।

इस बार युधिष्ठिर ने मणिजटित आभूषणों से अलंकृत एक लाख दास दासियों को दाँव पर लगाया। विजय फिर शकुनि के हाथ रही। इस प्रकार जुए में युधिष्ठिर धीरे-धीरे अमूल्य निधियाँ हारते गये। अन्त में उनके पास कुछ नहीं बचा।

सातवाँ अध्याय

द्रोपदी चीर हरण

वैशंपायनजी बोले--हे राजन्। इसप्रकार जब युधिष्ठिर ने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति गँवा दी तो उन्हें बड़ी निराशा हुई, परन्तु फिर भी दाँव जीत जाने की दुराशा मन में बनी रही। उन्होंने जुए से मुख नहीं मोड़ा और एक-एक करके चारों भाइयों--भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव--को भी दाँव पर लगाकर वे हार गये। अन्त में उन्होंने स्वयं को भी दाँव पर लगा दिया, किन्तु बाजी जीत न सके। यह देखकर शकुनि ने कहा, "महाराज! अभी आपकी एक सम्पत्ति शेष है जो आप नहीं हारे हैं। संभव है, वह आपका भाग्य फेर दे। यदि आप यह दाँव जीत जायेंगे तो आपको दासत्व से मुक्त कर दिया जायेगा।" जब युधिष्ठिर ने पूछा, "ऐसी कौनसी सम्पत्ति मेरे पास शेष रह गई है जिसे मैं अब तक नहीं हार चुका हूँ।" यह सुनकर शकुनि ने कहा "आप महारानी द्रौपदी को दाँव पर लगा दीजिये। संभव है, इस बार विजय आपको मिल जाय।"

द्रौपदी को दाँव पर लगाने का प्रस्ताव सुनते ही सम्पूर्ण सभामण्डप क्षोभ से भर गया और 'धिक्कार है, धिक्कार है' ध्वनि गूंज उठी। किन्तु होनी बलवान् होती है। युधिष्ठिर शकुनि की चाल में फँस गये और द्रौपदी को दाँव पर हार

बैठे। धृतराष्ट्र अपने मन के भावों को न छिपा सके और बार बार प्रसन्न होकर पूछने लगे, "कौन जीता? कौन जीता?" दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन आदि हर्ष से नाच उठे। उसी समय दुर्योधन ने विदुरजी से कहा, "आप जाइये! और द्रौपदी को तत्काल बुला लाइये। उससे कहिये, आज से वह इस राज-भवन में झाड़ू लगाया करेगी।" दुर्योधन का आदेश सुनकर विदुरजी बोले, "हे मन्दबुद्धि दुर्योधन! इतना अहंकार करके नियम आदि को मत भूल। द्रौपदी तुम्हारी दासी नहीं हो सकती। न उसे जुए में हारा गया है और न तुमने उसे जीता है। जो युधिष्ठिर स्वयं को हार जाने के बाद अपनी स्वतंत्र सत्ता खो चुके थे, उन्हें द्रौपदी को हारने का कोई अधिकार नहीं था। वे स्वयं को दाँव पर लगाने से पहले द्रौपदी को दाँव पर लगा सकते थे, बाद में नहीं।" विदुर की बात की अवहेलना करते हुए दुर्योधन ने प्रतिकामी को आदेश दिया कि वह जाकर द्रौपदी को यहाँ ले आवे। प्रतिकामी से संपूर्ण वृत्तान्त सुनकर द्रौपदी ने कहा, "पहले तुम महाराज युधिष्ठिर से यह पूछकर आओ कि पहले उन्होंने स्वयं को हारा है या मुझे?" जब प्रतिकामी ने सभा में आकर द्रौपदी का प्रश्न दुहराया तो युधिष्ठिर के उत्तर देने से पूर्व ही दुर्योधन ने कहा, "उससे कह दो जो कुछ पूछना है, स्वयं यहाँ आकर पूछे।" फिर दुःशासन को आज्ञा दी कि वह द्रौपदी को सभा भवन में ले आवे। यदि वह स्वयं न आवे तो बलपूर्वक ले आवें।

जब द्रौपदी वहाँ आने को प्रस्तुत नहीं हुई तो दुःशासन उसके बाल पकड़कर खींचता हुआ सबके सामने ले आया।

द्रौपदी मन-ही-मन क्रुद्ध हो रहे पाण्डवों की ओर रोषपूर्ण दृष्टि से देखने लगी। उसने अपना प्रश्न फिर दुहराया, "क्या हारे हुए व्यक्ति को अपनी पत्नी को हारने का अधिकार है?" जब सभा भवन में किसी ने इसका उचित उत्तर नहीं दिया तो धृतराष्ट्र के नीतिवान पुत्र विकर्ण ने खड़े होकर कहा, "हे सभासदो! आप लोग निष्पक्ष होकर द्रौपदी के प्रश्न का उत्तर क्यों नहीं देते? मेरी दृष्टि से मदिरापान जुआ, आदि व्यसनों में ग्रस्त मनुष्य कभी धर्म का विचार नहीं कर सकता। इसी कारण उसके कार्य को कभी उचित और न्यायसंगत नहीं माना जा सकता। जब युधिष्ठिर स्वयं को जुए में हार गये तो उनकी स्वतन्त्र सत्ता समाप्त हो गई। उन्होंने शकुनि की प्रेरणा से द्रौपदी को दाँव पर लगाया। ऐसा करने का उनको कोई अधिकार नहीं था। अतएव मेरी मान्यता है कि द्रौपदी जुए में नहीं हारी गई।"

विकर्ण की बात सुनकर कर्ण ने कहा, "विकर्ण! तुम अभी बच्चे हो, इसलिए गुरुजनों के होते हुए बीच में बोलकर तुमने अपनी चपलता का परिचय दिया है। दुःशासन! तुम इस मूर्ख की बात पर ध्यान न दो और समस्त पाण्डवों एवं द्रौपदी के बहुमूल्य वस्त्राभूषण उतार लो।" यह सुनकर पाण्डवों ने अपने आभूषण एवं वस्त्र स्वयं उतार दिये और दुःशासन बलपूर्वक द्रौपदी के वस्त्र उतारने लगा। द्रौपदी विलाप करते हुए भगवान कृष्ण को पुकारने और अपनी लज्जा की रक्षा के लिए गुहार लगाने लगी। इस प्रकार वह बिलख-बिलखकर कृष्ण को सहायता के लिए पुकारती हुई रुदन-क्रन्दन करने लगी।

द्रौपदी की पुकार सुन श्रीकृष्ण ने द्रौपदी द्वारा पहने हुए वस्त्र में स्वयं को समाहित किया और ज्यों-ज्यों दुःशासन द्रौपदी का वस्त्र खींचने लगा, वे त्यों-त्यों वस्त्र रूप होकर बढ़ने लगे। इस प्रकार वस्त्रों का ढेर लग गया, किन्तु द्रौपदी नग्न न हुई। अन्त में वह वस्त्र खींचते-खींचते थककर बैठ गया। दुःशासन के कार्य को देखकर भीमसेन क्रोध से जले जा रहे थे। उन्होंने उसी समय उठकर प्रतिज्ञा की, "हे सभासदो! मैं आपके सम्मुख प्रण करता हूँ कि यदि मैं समरभूमि में इस दुष्ट दुःशासन का हृदय चीरकर रक्तपान न करूँ तो अपने पूर्वजों की गति प्राप्त न करूँ।"

जब दुर्योधन के आदेश से दुःशासन द्रौपदी को रनिवास में ले जाने लगा तो दुर्योधन ने बांई जँघा से वस्त्र हटाकर द्रौपदी को उस पर बैठने का संकेत किया। यह देखकर भीमसेन ने दूसरी प्रतिज्ञा की, "हे दुर्योधन! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि मैं युद्ध में गदा से तेरी यह जँघा न तोड़ूं तो मैं नरकगामी बनूं।"

जब विदुर ने धृतराष्ट्र को नाना प्रकार से समझाया तो उन्होंने द्रौपदी को बुलाकर कहा, "हे द्रौपदी! तुम कुरुवंश की सर्वश्रेष्ठ वधू हो। मैं तुम्हें दासता के बन्धन से मुक्त करता हूँ। तुम जो चाहो सो वरदान मुझसे माँग लो।" यह सुनकर द्रौपदी बोली, "यदि ऐसा है तो आप पाँचों पाण्डवों को दासत्व से मुक्त कर दीजिए।" धृतराष्ट्र ने कहा, "ऐसा ही होगा। तुम और कुछ चाहो तो वह भी माँग लो।" यह सुनकर द्रौपदी बोली, "मेरे लिए यही पर्याप्त है। मैं चाहती हूँ कि कोई मेरी सन्तान को दास-दासी का पुत्र न कहे।"

आठवाँ अध्याय

पुनः जुए का आयोजन और पाण्डवों का वनगमन

वैशंपायनजी बोले--हे जनमेजय! जब धृतराष्ट्र ने द्रौपदी की प्रार्थना पर सब पाण्डवों को स्वतन्त्र कर दिया तो कर्ण ने पाण्डवों को सुनाते हुए दुर्योधन से कहा, "हमने आज तक द्रौपदी जैसी गुणवती स्त्री नहीं देखी जिसने दया कर पाण्डवों को दासता के बन्धन से मुक्त करा लिया। अब वे पत्नी की कृपा से स्वतन्त्र होकर भ्रमण करेंगे।" कर्ण के इन व्यंग-बाणों से बिद्ध होकर भीमसेन मन-ही-मन झुलस उठे। उनकी इच्छा हुई कि इन शत्रुओं को तत्काल समूल नष्ट कर दें। भीमसेन को यह मुद्रा देखकर युधिष्ठिर धर्मराज ने उन्हें शान्त किया। इसके पश्चात् धृतराष्ट्र से अनुमति लेकर वह अपने परिजनों सहित अपनी राजधानी चले आये। चलते समय धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर से कहा, "वत्स! जो कुछ हुआ, उसे भूल जाना। द्यूत-क्रीड़ा को केवल एक दुःस्वप्न की भाँति समझना। अब भी तुम्हारी धन-सम्पत्ति पूर्व की भाँति तुम्हारी ही है।" धृतराष्ट्र के वचन सुनकर दुर्योधन आदि को बड़ा दुःख हुआ कि उनके द्वारा जीती गई धन-संपत्ति इस प्रकार उनके हाथों से निकल गई। वह एकान्त में जाकर धृतराष्ट्र से बोले, "पिताजी! आपने यह क्या किया? पाण्डव यहाँ से घायल सर्प की भाँति गये हैं। क्या वे हमारा सर्वनाश किये बिना रहेंगे। आपने आगे होकर हमें और अपने कुल को सर्वनाश की सुलगती हुई भट्टी में झोंक दिया है।" दुर्योधन की बात सुनकर धृतराष्ट्र बोले, " पुत्र! तुम्हारी बात में मुझे बल दिखाई देता है, किन्तु अब क्या हो सकता है?

अब तो तीर हाथ से निकल गया। मैं द्रौपदी को दिया हुआ वचन कैसे लौटा सकता हूँ।" धृतराष्ट्र के ये वचन सुनकर और उन्हें अपने अनुकूल पाकर दुर्योधन ने कर्ण, शकुनि एवं दुःशासन से परामर्श किया। फिर बोला, "पिताजी ! आप हमें पुनः जुआ खेलने की अनुमति दे दें। हम केवल एक बाजी खेलेंगे और शर्त रखेंगे कि पराजित होने वाला बारह वर्ष तक वन में रहे और तेरहवें वर्ष अज्ञातवास करे। यदि इस अज्ञात वास में उसका पता चल जाय तो वह फिर बारह वर्ष तक वन में और तेरह वर्ष अज्ञातवास में रहे। इसी प्रकार यह क्रम निरन्तर चलता रहे जब तक कि अज्ञातवास में उसका पता न चले। आप केवल हमें अनुमति दे दीजिये। हमें विश्वास है, मामा शकुनि की कृपा से यह बाजी हम अवश्य जीतेंगे और तेरहवें वर्ष में हमारे गुप्तचर उनका पता अवश्य लगा लेंगे। यदि तेरहवें वर्ष में उनका पता न चला और वे वन से लौट भी आये तो इस लम्बी अवधि में हम प्रजा को साम, दाम, दण्ड, भेद से पूर्णतया अपने अनुकूल बना लेंगे। फिर हम सरलता से युद्ध में उनका विनाश कर सकेंगे। केवल आप अपनी स्वीकृति दे दें, इसी में आपके पुत्रों का कल्याण है।"

धृतराष्ट्र ने दुर्योधन की बात से सहमत होकर पाण्डवों को बुलाने के लिए दूत भेज दिया। जब गांधारी को इस षड्-यन्त्र का आभास मिला तो उसने धृतराष्ट्र को बहुत समझाया, परन्तु पुत्र के मोह में उन्होंने उसकी एक न सुनी।

जब पाण्डव लौट आये तो शकुनि बोला, "महाराज ! युधिष्ठिर ! इस बार हम जुए की एक बाजी और खेलना

चाहते हैं। इसके लिए दुर्योधन ने महाराज की अनुमति ले ली है। इस बार का दाँव पहले से सर्वथा भिन्न होगा। इसमें दो पक्ष होंगे। एक में आप और आपके भ्राता, और दूसरे में दुर्योधन तथा उनके भ्राता। आपके पक्ष का नेतृत्व आप करेंगे, खेल में दुर्योधन के पक्ष का नेतृत्व मैं करूँगा। जो पक्ष हारेगा, वह बारह वर्ष तक वन में निवास करेगा और तेरहवें वर्ष अज्ञात वास में रहेगा। यदि अज्ञातवास की अवधि में उसका पता चल जायेगा तो वह पक्ष फिर बारह वर्ष तक वन में और तेरहवें वर्ष पुनः अज्ञातवास में रहेगा। जब तक अज्ञातवास में पता चलता रहेगा, तब तक यही क्रम चलता रहेगा। वनवास में उसे मृगछाला धारण करके वनवासी का जीवन व्यतीत करना होगा। समय समाप्त होने पर वनवासी जीवन से लौटकर उसे पुनः उसका राज्य यथावत मिल जायेगा।" शकुनि की बात सुनकर युधिष्ठिर ने कहा, "हे शकुनि! क्षत्रिय होने के नाते मैं तुम्हारी चुनौती को अस्वीकार नहीं कर सकता। चाहे वह चुनौती समरभूमि में युद्ध करने के लिए हो अथवा यहाँ जुआ खेलने के लिए हो। मैं प्रस्तुत हूँ।"

पाण्डवराज युधिष्ठिर की स्वीकृति मिल जाने पर चौसर बिछाई गई और पाँसे फेंककर शकुनि ने कहा "लो युधिष्ठिर यह शर्त हम जीत गये। अब तुम लोग वन जाने की तैयारी करो।" पाण्डवों ने जाने के लिए मृगचर्म ले लिये। द्रौपदी भी उनके साथ जाने की तैयारी करने लगी तो दुःशासन उसके पास आकर बोला, "हे पांचाली! इनके साथ वन में जाकर तुझे क्या सुख मिलेगा? ये बेचारे तो स्वयं ही दीन-हीन हो

रहे हैं। तू हम भाइयों में से किसी एक को अपना पति स्वीकार करले और यहीं सुखपूर्वक राजभवन में निवास कर।" दु:शासन के ये वचन सुनकर भीमसेन ने क्रुद्ध होकर कहा, "नराधम दु:शासन! जिस प्रकार आज तू अपने घृणित वाक्य-बाणों से हमारे मर्म-स्थलों को वेध रहा है, उसी प्रकार समर-क्षेत्र में तेरे इन शब्दों को स्मरण करके मैं तेरा वक्ष-स्थल चीर कर तेरा रक्तपान करूँगा और तुझे तेरे इन शब्दों का स्मरण कराऊँगा।" अर्जुन ने भीमसेन को शान्त करते हुए कहा, "तेरह वर्ष पश्चात् जो कुछ होगा, उसे सारा संसार देखेगा। अभी से कहने से क्या लाभ?" इसके पश्चात् युधिष्ठिर ने गुरुजनों को प्रणाम करके भाइयों सहित विदा ली। किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। सबके सिर लज्जा से झुके हुए थे। विदुरजी के आग्रह पर युधिष्ठिर ने कुन्ती को उन्हीं के पास छोड़ दिया क्योंकि वे वृद्ध थीं और वन के कष्ट नहीं सह सकती थीं।

पाण्डवों के वन के लिए प्रस्थान करते ही इन्द्रप्रस्थ की ही नहीं, हस्तिनापुर की स्त्रियाँ भी हाहाकार कर उठीं। असंख्य प्रजाजन उनके साथ वन में जाने के लिए तैयार हो गये। युधिष्ठिर ने बड़ी कठिनाई से उन्हें समझा बुझाकर वापिस किया। सभी लोग दुर्योधन तथा कौरवों को धिक्कारने लगे। धृतराष्ट्र ही नहीं; भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य आदि गुरुजन भी अपने मौन के कारण प्रजा की भर्त्सना से न बच सके। पाण्डवों के हस्तिनापुर से निकलते ही बिना बादलों के मूसलाधार वर्षा होने लगी, भूकम्प की भयानक गड़गड़ाहट होने

लगी, बिना पर्व के ही सूर्यग्रहण हो गया। नगर के दाहिनी ओर भारी उल्कापात हुआ। जब इस प्रकार के अमंगलसूचक कार्य हो रहे थे तभी नारदजी वहाँ पधारे।

नारदजी को देखकर धृतराष्ट्र ने स्वागत-सत्कार करते हुए उन्हें उचित आसन प्रदान किया। कुशल-क्षेम के वार्तालाप के पश्चात् धृतराष्ट्र ने कहा, "देवर्षि! आज सभी पाण्डव पुत्र वन के लिए प्रस्थान कर गये हैं।" यह सुन नारदजी बोले, "मैं सब कुछ सुन चुका हूँ राजन्! जो कुछ हुआ, वह कौरव-वंश के लिए कल्याणकारी नहीं है। आज से चौदहवें वर्ष में दुर्योधन और दुःशासन के अपराध के कारण राज्य पर भयानक विपत्ति आयेगी, भीमसेन एवं अर्जुन के हाथों कौरवों तथा उनके पक्षपातियों का विनाश होगा। इसका फल शताब्दियों तक भारत की भावी सन्तानों को भी भुगतना पड़ेगा।" यह कहकर नारदजी वहाँ से प्रस्थान कर गये।

॥ इति सभा पर्व सम्पूर्ण ॥

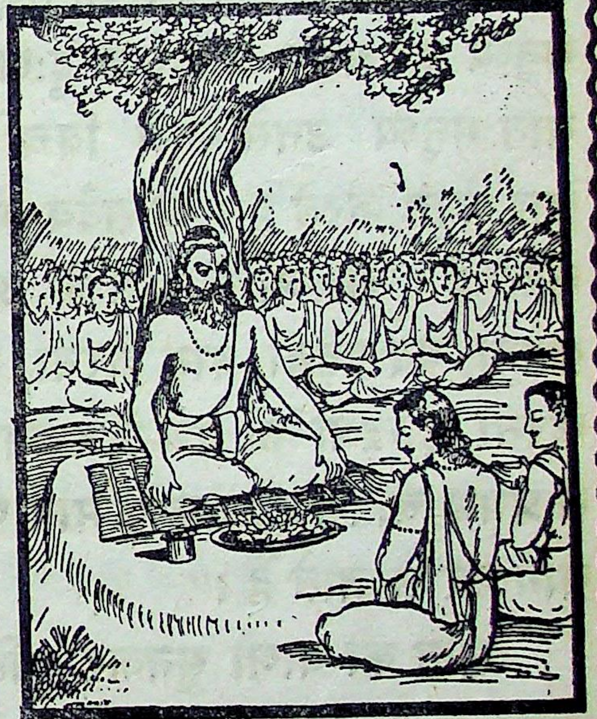
॥ ओ३म् ॥

महाभारत भाषा

३. वन पर्व



पाण्डवों का वन गमन



ऋषियों ब्राह्मणों के साथ सत्संग

पहला अध्याय

युधिष्ठिर को सूर्य का वरदान और किर्मीर वध

वैशंपायनजी बोले–हे राजा जनमेजय ! पाण्डव हस्तिनापुर से अपने साथ द्रौपदी एवं आवश्यक अस्त्र-शस्त्र लेकर उत्तर दिशा की ओर चल दिये। साथ में आने वाले नगर निवासी युधिष्ठिर के विशेष आग्रह पर भारी मन से अपने-अपने निवास स्थान के लिए लौट गये थे। दिन भर चलने के पश्चात् उन्होंने गंगा के किनारे एक विशाल वट वृक्ष के नीचे विश्राम किया।

कुछ क्रोध-क्षोभ एवं कुछ विरक्ति के कारण उन्होंने रात्रि का भोजन भी नहीं किया और निराहार ही सो गये। जब वन में निवास करने वाले तपस्वी ब्राह्मणों को पाण्डवों के आगमन का समाचार मिला तो वे प्रातःकाल उनसे मिलने के लिए आये। उनमें परमज्ञानी, योग व शास्त्रों के ज्ञाता शौनक ऋषि भी थे। उन्होंने प्रवचन देते हुए कहा, "हे राजन्! संसार में मनुष्य को अनेक प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं, किन्तु बुद्धिमान मनुष्य उनसे कभी विचलित नहीं होते, धैर्यपूर्वक सब कुछ सहन करते हैं। वे सदैव कर्त्तव्य समझकर निष्काम कर्म करते हैं। शास्त्रों में धर्म के आठ मार्ग बताये गये हैं। यज्ञ करना, वेद पढ़ना, दान करना, तप करना, सत्य बोलना, क्षमा करना, इन्द्रियों को वश में रखना और लोभ न करना। इनमें से प्रथम चार पितृलोक के मार्ग पर तथा अन्तिम चार देवयान मार्ग पर ले जाते हैं।"

ऋषि की वाणी सुनकर युधिष्ठिर बोले, "हे ऋषिराज! संसार में रहते हुए मैं सब प्रकार की इच्छाओं का त्याग कर सकता हूँ, परन्तु एक इच्छा का त्याग नहीं कर सकता। मेरे वन आगमन का समाचार सुनकर अनेक ऋषि, मुनि, ब्राह्मण, तपस्वी मुझे आशीर्वाद देने के लिए आयेंगे। मैं चाहता हूँ कि मेरे पास इतना अन्न अवश्य हो कि मैं उनकी क्षुधा शान्त करके उन्हें तृप्त कर सकूँ।" युधिष्ठिर का युक्ति-युक्त कथन सुनकर वहाँ उपस्थित धौम्य ऋषि बोले, "वत्स, भगवान सूर्य की कृपा से सब प्रकार का अन्न उत्पन्न होता है। वही समस्त प्राणियों का आधार है इसलिए तुम सूर्य की आराधना करके

उन्हें प्रसन्न करो मैं तुम्हें अष्टोत्तर शतनाम स्तोत्र सुनाता हूँ। तुम सूर्योदय के समय एकाग्रमन से इस स्तोत्र का पाठ करना तुम्हारी यह मनोकामना अवश्य पूरी होगी।"

दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदय के समय स्नानादि से शुद्ध होकर एकाग्रभाव से युधिष्ठिर ने अष्टोत्तर शतनाम स्तोत्र का पाठ किया तो सूर्य भगवान ने स्वयं प्रगट होकर कहा, "हे युधिष्ठिर! तुम्हारे सब मनोरथ सिद्ध होंगे। मैं तुम्हें बारह वर्ष तक नित्य अन्न दूँगा। लो, यह पात्र लो। इस पात्र में बने पदार्थ को द्रौपदी जब तक परोसेगी, तब तक यह पूरा भरा रहेगा और चौदह वर्ष पूर्ण होने पूर्व ही तुम्हें तुम्हारा राज्य पुनः प्राप्त हो जायेगा।" ऐसा कहकर सूर्य भगवान अन्तर्ध्यान हो गये। वह पात्र युधिष्ठिर ने ले जाकर द्रौपदी को दे दिया जिसकी सहायता से उसने सबको भोजन खिलाकर तृप्त किया। इस प्रकार ब्राह्मणों को नित्य भोजन कराने का युधिष्ठिर का मनोरथ सफल हुआ।

वहाँ से चलकर पाण्डवगण भ्रमण करते हुए काम्यक वन पहुँचे। वन में प्रवेश करते ही उन्हें एक दीर्घकाय भयंकर राक्षस मिला जो उनका मार्ग रोककर खड़ा हो गया। परिचय पूछने पर उसने बताया, "मैं बकासुर का भाई किर्मीर दैत्य हूँ। इस वन में आने वाले मनुष्यों का मैं भोजन करता हूँ। आज मैं तुम्हें खाकर अपनी क्षुधा शान्त करूँगा। शायद तुम लोग पाण्डव हो। तुम में भमीसेन कौन है? उसने मेरे भाई बकासुर और मित्र हिडम्ब को मारा है। आज मैं उसे मारकर अपने भाई और मित्र का बदला लूँगा।" यह सुनते ही भीम एक वृक्ष को उखाड़कर

उस पर प्रहार करते हुए बोले, "मूर्ख ! मैं ही भीमसेन हूँ। अब तू भी बकासुर और हिडम्ब के पास जा।" इस प्रकार उन्होंने उस दैत्य का वध कर डाला।

दूसरा अध्याय

श्रीकृष्ण व धृष्टद्युम्न का सुभद्रा व पुत्रों को ले जाना

पाण्डवों के वनवास का समाचार सुनकर भोज, अन्धक, राजा द्रुपद के पुत्र, चेदिनरेश धृष्टकेतु तथा श्रीकृष्ण उनसे मिलने के लिए वन में पहुँचे। श्रीकृष्ण को देखकर उपालम्भ देती हुई द्रौपदी बोली, "हे मधुसूदन ! आपको सब लोग सर्व-व्यापी और दुःखहर्त्ता कहते हैं। आप मुझे अपनी भगिनी मानते हैं। इतना सब कुछ होतेहुए भी और आपकी स्नेहपात्री होते हुए भी कौरवों की सभा में मेरा अपमान किया गया। पांचाल, वृष्णि और पाण्डवों के जीवित रहते हुए दुष्टों ने दासी भाव से मेरा उपभोग करना चाहा। मैं इन वीर कह-लाने वाले पाण्डवों की भी निन्दा करती हूँ जो उस समय मेरी रक्षा न कर सके। मेरा अपमान करने वाले दुर्योधन और दुःशासन अब भी जीवित हैं और मैं वनों में भटकती हुई दुःख भोग रही हूँ।" यह कहते-कहते द्रौपदी बिलख-बिलखकर रोने लगी और बोली, "मेरा कोई नहीं है। न पिता, न भाई और न पति। तुम भी मेरे सहायक नहीं हो, अन्यथा क्या दुष्ट दुःशासन मेरे बाल पकड़कर खींच सकता था और कर्ण इस प्रकार भरी सभा में मेरा उपहास कर सकता था ?"

अनेक प्रकार से द्रौपदी को शान्त करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा, "कृष्णे ! तू शान्त हो। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं तुझे

राजरानी बनाऊँगा।" धृष्टद्युम्न ने भी उसे आश्वासन दिया कि केवल दुर्योधन और दुःशासन ही नहीं, कौरव पक्ष के वे सभी लोग मारे जायेंगे जिन्होंने दुर्योधन का समर्थन किया है अथवा राजसभा में अन्याय देखते हुए मौन रहे हैं। यह सुनकर द्रौपदी शान्त हुई। लौटते समय श्रीकृष्ण सुभद्रा और अभिमन्यु को तथा धृष्टद्युम्न द्रौपदी के पाँचों पुत्रों को अपने साथ ले गये।

वन में कोई कार्य न देखकर अर्जुन शिव, इन्द्र तथा अन्य देवताओं से दैवी अस्त्र प्राप्त करने के लिए शस्त्रों से सुसज्जित हो तपस्या करने के लिए उत्तर की ओर चले गये। जब वे गन्धमादन पर्वत को लाँघकर इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचे तो उन्होंने एक वृक्ष के नीचे एक तेजस्वी ब्राह्मण को धनुष-बाण आदि धारण किये देखा। उसने अर्जुन को रोककर पूछा, "हे शस्त्रधारी तेजस्वी पुरुष, आप कौन हैं? क्षत्रिय वेश में इस शान्त वन में क्यों आये हो।" प्रश्न सुनकर अर्जुन ने बताया, "मैं पाण्डु-पुत्र अर्जुन हूँ। मैं इन्द्रदेव से सम्पूर्ण शस्त्र विद्या सीखने आया हूँ।" अर्जुन की बात सुन ब्राह्मण बोला, "मैं ही इन्द्र हूँ। तुम जाकर महादेवजी के दर्शन करो। मैं वहीं आकर तुम्हें सम्पूर्ण शस्त्र विद्या दूंगा।"

तीसरा अध्याय

अर्जुन को दिव्य शस्त्रों एवं नृत्य विद्या की प्राप्ति

वैशंपायनजी बोले—हे जनमेजय! देवराज इन्द्र के निर्देशानुसार अर्जुन ने हिमालय की उपत्यकाओं में रहकर चार मास तक कठोर तपस्या की। एक दिन शिव किरात का रूप धारण करके अर्जुन के सम्मुख उपस्थित हुए। तभी मूक

नामक दैत्य वाराह का रूप धारणकर वीर अर्जुन को मारने के लिए दौड़ा। अर्जुन ने तत्काल अपने धनुष पर बाण चढ़ाया तो किरातरूपी शिव ने उन्हें रोकते हुए कहा, "हे तपस्वी! मैं पहले ही इस वाराह को अपना लक्ष्य बना चुका हूँ।" परन्तु अर्जुन ने उधर ध्यान दिए बिना अपना बाण छोड़ दिया। दोनों के बाण एक साथ छूटकर उसके लगे और वाराह ने दैत्य का रूप धारण करके प्राण त्याग दिये। इस पर अर्जुन ने क्रुद्ध होकर कहा, "तुम कौन हो जो तुमने मेरे लक्ष्य पर बाण चलाकर मृगया-धर्म का परित्याग किया है। मैं तुम्हारे प्राण लिए बिना नहीं छोड़ूँगा। अर्जुन के वचन सुनकर शिवजी बोले, पहले लक्ष्य मैंने साधा था। इसलिए मृगया-धर्म की अवहेलना तुमने की है। यदि तुमको अपने बल का बड़ा अभिमान है तो आओ, युद्ध करके निपटारा कर लें।" यह सुन कर अर्जुन ने उन पर बाणों की वर्षा प्रारम्भ कर दी, किन्तु उन सब बाणों को शिवजी ने हाथों से पकड़ लिया। कोई भी बाण उन्हें आहत न कर सका। अर्जुन के जब सारे बाण समाप्त हो गये तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। जब वे शिवजी से मल्ल युद्ध करने के लिए बढ़े तो शिवजी ने उन्हें उठाकर पृथ्वी पर पटक दिया, जिससे वे अचेत हो गये। स्वस्थ हो उन्होंने शिव की स्तुति की और भक्तिभाव से शिव की मूर्ति पर माला चढ़ाई तो वह उड़कर किरातरूपी शिव के गले में जा पड़ी। अर्जुन समझ गये कि किरात ही वास्तव में शिव हैं। वे क्षमा प्रार्थना करते हुए उनके चरणों में गिर पड़े।

शिव ने प्रसन्न होकर उन्हें अपने दिव्य रूप के दर्शन

दिये। साथ ही उन्होंने अर्जुन को पाशुपत नामक दिव्य अस्त्र भी प्रदान किया और कहा इसकी मार से कोई नहीं बच सकेगा। यह सब प्रकार के आक्रामक शस्त्रों को नष्ट करके सदैव तुम्हारी रक्षा करेगा। उसी समय यमराज ने आकर अपना दण्ड, वरुण ने पाश, कुबेर ने अन्तर्ध्यान कर देने वाला प्रस्वापन नामक अस्त्र दिया। इसके पश्चात् इन्द्र द्वारा भेजे गये रथ में बैठकर अर्जुन इन्द्रलोक को पहुँचे। इन्द्र ने उन्हें राजप्रासाद में पाँच वर्ष तक रखकर उन्हें नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा दी। जब वे शस्त्र विद्या में पारंगत हो गए तो इन्द्र ने चित्रसेन गन्धर्व को आज्ञा देकर अर्जुन को नाचने, गाने एवं संगीत की शिक्षा दिलवाई। इस विद्या में भी अर्जुन पारंगत हो गये।

नृत्य विद्या सीखते हुए अर्जुन उर्वशी के संसर्ग में आये। उनके मेल मिलाप को देखकर इन्द्र समझने लगे कि अर्जुन उर्वशी पर आसक्त हो गए हैं। इसलिए उन्होंने उर्वशी को अर्जुन के पास भेज दिया। उर्वशी अर्जुन के शौर्य पर मुग्ध थी। इसलिए वह शृंगार करके अर्जुन के पास पहुँची। उसे देखकर अर्जुन बोले, "हे देवि! मैं तुम्हारी क्या सेवा कर सकता हूँ। तुम पुरुवंश की माता हो, इसलिए मेरे लिए पूज्या हो।" अर्जुन के इस व्यवहार से वह अत्यन्त क्रुद्ध हुई और बोली, "हे अर्जुन! तुमने मेरी इच्छा पूरी नहीं की है। अतएव मैं तुम्हें शाप देती हूँ कि तुम्हें स्त्रियों के बीच में नाचना गाना पड़ेगा और नपुंसक कहलाओगे।" यह कहकर उर्वशी चली गई।

चौथा अध्याय

नल दमयन्ती की कथा

वैशंपायनजी बोले--हे राजन्! जब अर्जुन को तपस्या के लिए गए हुए पाँच वर्ष से भी अधिक समय बीत गया और वे लौटकर नहीं आये तो उनके भ्राता तथा द्रौपदी अत्यधिक चिन्ता करने लगे। एक दिन युधिष्ठिर इसी प्रकार चिन्ता में निमग्न बैठे थे तभी ऋषि बृहदश्व वहाँ पधारे। वे पाण्डवों को इस प्रकार वनवास भोगते देख दुःखी हुए और द्यूतक्रीड़ा के अनौचित्य पर प्रवचन देने लगे। ऋषि का प्रवचन सुनकर युधिष्ठिर बोले, "भगवन्! मैं जानता हूँ, यह द्यूतक्रीड़ा बहुत बुरा व्यसन है। मैं इस क्रीड़ा के विषय में कुछ नहीं जानता, किन्तु उन छली और जुआरी लोगों ने कपटपूर्वक मुझे खिला कर मेरा सर्वस्व ही नहीं लूट लिया, मुझे भी मेरे भाइयों सहित मृग चर्म देकर बारह वर्ष के लिए वनवास तथा एक वर्ष के लिए अज्ञातवास हेतु भेज दिया। इसके अतिरिक्त मेरा अनुज अर्जुन पाँच वर्ष से तपस्या के लिए गया हुआ है। वह भी अभी तक लौटकर नहीं आया। अतएव हम सब प्रकार से दुःखी हो रहे हैं।

युधिष्ठिर को इस प्रकार दुःखी होते देख बृहदश्व ने कहा, "राजन्! आप इस प्रकार दुःखी न हों। द्यूतक्रीड़ा के कारण कुछ अभागे व्यक्तियों ने तो ऐसे-ऐसे भयंकर दुःख उठाये हैं जिनके सम्मुख तुम्हारा दुःख बिल्कुल नगण्य है। मैं तुम्हें एक ऐसे ही अभागे राजा का वृत्तान्त सुनाता हूँ—निषद देश में वीरसेन नाम का एक प्रतापी राजा था। उसके नल

नाम का अति सुन्दर विद्वान्, धर्मात्मा एवं पराक्रमी पुत्र था। बड़ा होकर वह अत्यन्त उदार, प्रजापालक एवं सुयोग्य राजा बना। उधर विदर्भ देश के ऐश्वर्यवान् अधिपति भीम की पुत्री दमयन्ती अति रूपवती, तेजस्वी एवं सुलक्षणा थी। नल और दमयन्ती दोनों ही अत्यन्त सुन्दर थे। वे कुमार अवस्था में एक दूसरे को देखे बिना ही परस्पर प्रेम करने लगे थे क्योंकि उन दोनों की विशेषताओं का वृत्तान्त लोक में फैलता हुआ उनके कानों तक भी पहुँच चुका था। वे दोनों ही एक दूसरे से अथाह प्रेम करने लगे थे और विवाह करने को उत्सुक थे। एक दिन जब राजा नल वन में भ्रमण कर रहे थे तो उन्होंने एक सुन्दर हंस को देखा और उसे पकड़ लिया। हंस ने नल से प्रार्थना की, "राजन्! यदि आप मुझे छोड़ दें तो मैं दमयन्ती के पास जाकर उससे आपके रूप तथा गुणों की प्रशंसा करूँगा जिससे वह आपसे विवाह करने को कटिबद्ध हो जायेगी।" हंस की बात मानकर नल ने उसे मुक्त कर दिया।

वहाँ से उड़कर वह हंस दमयन्ती के पास पहुँचा। हंस के मुख से नल की प्रशंसा सुनकर दमयन्ती उस पर आसक्त हो गई और उसने उसी के द्वारा नल के पास प्रेम सन्देश भिजवा दिया। साथ ही वह नल के विरह में दिन प्रतिदिन दुर्बल होने लगी। राजा भीम ने उसकी सखियों से सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर स्वयंवर की घोषणा कर दी। देश-विदेश के नरेशों को निमंत्रण-पत्र भिजवा दिये। जब देवराज इन्द्र को दमयन्ती के स्वयंवर की सूचना मिली तो वे तथा अनेक देवगण दमयन्ती से विवाह की कामना लिये हुए विदर्भ की ओर चल

पड़े। वे आकाश मार्ग से उड़े हुए विदर्भ जा रहे थे, तभी उन्होंने पृथ्वी पर रथ में सवार कामदेव जैसे अति सुन्दर नल को भी विदर्भ की ओर जाते देखा। उन्होंने सोचा, नल जैसे सुन्दर युवक के होते हुए दमयन्ती हमें स्वीकार नहीं करेगी। अतएव उन्होंने आकाश में अपने-अपने विमान रोककर नल से अनुरोध किया कि हम स्वर्ग के देवता हैं। यदि तुम दूत बनकर हमारी सहायता करने की प्रतिज्ञा करो तो हम अपना प्रस्ताव तुम्हारे सामने रखें। जब राजा नल ने उनकी सहायता करने का आश्वासन दिया तो इन्द्र ने कहा, "हम लोग अर्थात् इन्द्र, अग्नि, वरुण तथा यम दमयन्ती से विवाह करने के लिए विदर्भ जा रहे हैं। तुम दमयन्ती से जाकर कहो कि हम में से किसी एक को पति चुन ले।" नल ने कहा, "भगवन्! मैं ऐसा कैसे कह सकता हूँ? मैं स्वयं दमयन्ती से विवाह करने का इच्छुक हूँ।" यह सुनकर इन्द्र ने कहा, "तुम हमारी सहायता करने की प्रतिज्ञा कर चुके हो। क्या क्षत्रिय होकर तुम अपनी प्रतिज्ञा भंग करोगे? जाओ, अपनी प्रतिज्ञा का पालन करो। तुम्हें हम ऐसी विधि बता देते हैं जिससे तुम बिना किसी बाधा के दमयन्ती से एकान्त में मिलकर हमारी बात कह सको।"

प्रतिज्ञा से बँधा हुआ नल राजकुमारी दमयन्ती के पास पहुँचा। वह उसका असाधारण रूप एवं तेज देखकर स्तब्ध रह गया। फिर अवसर पाकर बोला, "हे सुन्दरी! मैं निषध देश का राजा नल हूँ और देवताओं का दूत बनकर यह कहने के लिये आया हूँ कि तुम इन्द्र, अग्नि, वरुण अथवा यम में से

किसी एक को पति के रूप में वरण कर लो।" नल के वचन सुनकर दमयन्ती ने कहा, "महाराज! आपका सन्देश मैंने सुन लिया, किन्तु मैं उन देवताओं में से किसी को अंगीकार नहीं कर सकती। मैंने आपको पति मानकर आप ही से विवाह करने का निश्चय किया है। यदि आप मुझे स्वीकार नहीं करेंगे तो मैं अग्नि में जलकर अपने प्राण दे दूंगी।" दमयन्ती का निश्चय सुनकर नल मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने दमयन्ती का सन्देश देवताओं को जाकर सुना दिया। देवगण फिर भी निराश नहीं हुए। वे राजा नल के पास ही नल का रूप धारण करके बैठ गए। दमयन्ती एक साथ पाँच नलों को देखकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गई। वह यह न जान सकी कि उनमें वास्तविक नल कौन है। उसने करुण क्रन्दन करते हुए देवताओं से प्रार्थना की कि वे उसके सत्यव्रत से विच-लित न करें और बतायें कि वास्तविक नल कौन है। दमयन्ती का नल के प्रति सच्चा अनुराग देखकर देवता अपने वास्त-विक रूप में आ गये और दमयन्ती ने प्रसन्नचित्त हो नल के गले में वरमाला डाल दी। भीम ने नल के साथ दमयन्ती का विवाह कर दिया। नल के एक पुत्र और पुत्री ने जन्म लिया जिनके नाम इन्द्रसेन और इन्द्रसेना रखे गये।

उधर जब देवता लोग स्वयंवर से लौट रहे थे तो उन्हें मार्ग में कलियुग मिला जो दमयन्ती से बिवाह करना चाहता था। जब उसे ज्ञात हुआ कि दमयन्ती ने नल से विवाह कर लिया है तो वह नल से बदला लेने के लिए अवसर पाकर उसके शरीर में प्रवेश कर गया। इसके पश्चात् उसने नल के

भाई पुष्कर के पास जाकर उसे निषध देश का राजा बनने का प्रलोभन देकर नल के साथ जुआ खेलने को प्रेरित किया। कलियुग ने नल को हराने के लिए स्वयं पाँसों का रूप ग्रहण कर लिया। परिणाम यह हुआ कि नल जुए में अपना सर्वस्व हार गए। दमयन्ती ने इस प्रकार सर्वनाश होते देख अपने पुत्र-पुत्री को विदर्भ भिजवा दिया। जब नल जुए में सब कुछ हार गया तो वह केवल एक वस्त्र पहनकर वहाँ से चल पड़ा। दमयन्ती भी अपने बहुमूल्य वस्त्राभूषण उतार उसके साथ चल दी। पुष्कर ने राज्य भर में घोषणा करा दी, जो कोई नल की किसी भी प्रकार से सहायता करेगा, उसे कठोर दण्ड दिया जायेगा।

दुःखी होकर नल और दमयन्ती वनों में भटकने और कन्द-मूल फल खाकर अपनी क्षुधा शान्त करने लगे। एक दिन वन में नल ने एक सुन्दर हंस देखा। उसे पकड़ने के लिए उसने हंस पर अपनी धोती फेंकी। हंस उस धोती को लेकर उड़ गया और साथ ही यह कहता गया, 'मैं कलियुग हूँ, अभी मेरा प्रतिशोध पूरा नहीं हुआ है।' यह सुनकर नल ने दमयन्ती से कहा, "प्रिये! कलियुग मेरे पीछे पड़ा है। वह मुझे शान्ति से नहीं रहने देगा। इसलिए यह उचित होगा कि तुम यहाँ से विदर्भ चली जाओ। ऐसा प्रतीत होता है कि मैं तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकूँगा।" जब दमयन्ती नल को छोड़कर जाने के लिए तैयार नहीं हुई तो वह दमयन्ती की आधी साड़ी फाड़ कर उसे स्वयं पहन उस समय चुपचाप चला गया जब वह घोर निद्रा में सो रही थी। अनेक स्थानों पर घूमता हुआ वह

अन्त में छद्म वेष में अयोध्या नरेश के यहाँ सारथि बनकर रहने लगा।

नल के चले जाने पर जब दमयन्ती निद्रा से जागी तो वहाँ नल को न पाकर विलाप करने लगी। कई दिन रात भटकने के बाद वह एक दिन अपने पिता के यहाँ पहुँच गई। वहाँ पहुँचकर उसने अपनी माता से अनुग्रह किया कि वह नल की खोज कराकर उसे लाने का प्रयत्न करें। पुत्री की बात महारानी ने अपने पति महाराज भीम से कही। उन्होंने तुरन्त अपने दूतों को आज्ञा दी कि वे चारों दिशाओं में, प्रत्येक राज्य में जाकर राजा नल की खोज करें।

बहुत दिन पश्चात् पर्णाद नामक ब्राह्मण ने लौटकर सूचना दी कि अयोध्यानरेश ऋतुपर्ण की राजसभा में जब मैंने राजकुमारी दमयन्ती की विरहगाथा सुनाई तो एक पुरुष ने मेरे पास एकान्त में आकर कहा, "अच्छे कुल की स्त्रियाँ घोर विपत्ति में पड़ जाने पर भी सब प्रकार से अपनी रक्षा करती हैं। पति पर क्रोध करके कुमार्ग पर पग बढ़ाने की प्रवृत्ति उनकी कभी नहीं होती। इसलिए वे मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग की अधिकारिणी होती हैं। यदि राजा नल ने विपत्ति में पड़कर अपनी प्रिय पत्नी को वन में अकेला छोड़ दिया है तो दमयन्ती को उनसे क्रुद्ध नहीं होना चाहिए। इस समय भी वे मानसिक पीड़ा से दुःखी हैं।" यह कहकर वह पुरुष दीर्घ श्वास छोड़कर विलाप करने लगा। जब दमयन्ती ने उसका रूप, रंग तथा नाम जानना चाहा तो उसने बताया कि उसका नाम बाहुक है। वह अत्यंत कुरूप है। महाराज ऋतुपर्ण के यहाँ सारथि का काम करता है।

ब्राह्मण के चले जाने पर दमयन्ती ने अपनी माता से परामर्श करके अयोध्या नरेश ऋतुपर्ण को यह सूचना भिजवाई कि दमयन्ती का पुनः स्वयंवर होने वाला है। स्वयंवर के लिए कल का दिन निश्चित हुआ है। कल सूर्योदय होते ही स्वयंवर सम्पन्न होगा। यदि आप स्वयंवर में भाग लेना चाहें तो निश्चित समय से पूर्व पहुँच जायें। महाराज ऋतुपर्ण ने बाहुक को बुलाकर कहा, "मैं दमयन्ती के स्वयंवर में समय पर पहुँच जाना चाहता हूँ। तुम अपना विशिष्ट कौशल दिखाकर यदि मुझे आज ही विदर्भ पहुँचा सको तो मैं तुम्हें पुरस्कार देकर प्रसन्न कर दूँगा।" नल भी इस स्वयंवर की वास्तविकता से परिचित होना चाहता था। इसलिए उसने ऋतुपर्ण को उसी दिन विदर्भ पहुँचा देने का वचन दिया। तत्काल अच्छे घोड़े छाँटकर रथ में ऋतुपर्ण को सवारकर बाहुक ने रास संभाली। कुछ ही क्षणों में घोड़े हवा से बातें करने लगे।

जब महाराज ऋतुपर्ण विदर्भ पहुँचे तो उन्हें यह देख कर महान् आश्चर्य हुआ कि न तो वहाँ स्वयंवर की कोई तैयारी थी और न कोई अन्य विवाहार्थी राजा अथवा राजकुमार ही वहाँ उपस्थित था। जब महाराजा भीम ने अकस्मात् ऋतुपर्ण के आगमन का समाचार सुना तो उन्हें भी महान् आश्चर्य हुआ क्योंकि उन्हें भी यह ज्ञान न था कि ऋतुपर्ण के पास किसी स्वयंवर का सन्देश भेजा गया है। अतएव उन्होंने ऋतुपर्ण का यथायोग्य स्वागत करके कुशलक्षेम पूछी। फिर सहसा आगमन का कारण पूछा। यह प्रश्न सुनकर ऋतुपर्ण यह न समझ सके कि क्या उत्तर दें। फिर बात बनाते हुए

बोले "बहुत दिनों से आपसे भेंट नहीं हुई थी। इसलिए मैं दर्शनार्थ चला आया।" इस उत्तर से राजा भीम को सन्तोष नहीं हुआ, किन्तु वे मौन रहे और सेवकों को उनके सत्कार के लिए उचित आदेश दिये।

उधर दमयन्ती ने अपनी चतुर दासी केशिनी को बाहुक का वास्तविक परिचय प्राप्त करने के लिए रथशाला में भेजा। केशिनी ने बाहुक के पास आकर पूछा, "आप लोग अयोध्या से किस समय चले थे और आपके यहाँ आने का क्या कारण है ?" यह प्रश्न सुनकर बाहुक ने कहा, मैं महाराजा ऋतुपर्ण का सारथि हूँ। उन्हें राजकुमारी दमयन्ती के स्वयंवर के लिए आमंत्रित किया गया है। इसलिए आज प्रातःकाल अयोध्या से चलकर चार सौ कोस का मार्ग पार करके हम यहाँ पहुँचे हैं।" केशिनी ने वार्तालाप करते हुए नल की सब गति-विधियाँ एवं भाव-मुद्राओं का सूक्ष्म अध्ययन किया। फिर उनका यथावत् वर्णन दमयन्ती को जा सुनाया। दमयन्ती को लगभग विश्वास हो गया कि सारथि बाहुक वास्तव में राजा नल है। उसने केशिनी के साथ अपने पुत्र तथा पुत्री को नल के पास भेज दिया। बाहुक उन्हें देखकर अपनी प्रसन्नता को न रोक सका और लपककर दोनों शिशुओं को अपनी गोद में उठाकर प्यार करने लगा। उसकी आँखें भर आईं। फिर केशिनी से बोला, "हे भद्रे! मेरे पुत्र-पुत्री भी लगभग इन्हीं की आयु के हैं। इन्हें देखकर मुझे उनका स्मरण हो आया। बहुत दिनों से उन्हें देखा नहीं था, इसलिए मेरे नेत्र भर आये। तुम अपने मन में किसी प्रकार की शंका न करना।" यह कह

कर बाहुक ने दोनों बच्चों को अपनी गोद से उतार दिया। केशिनी ने यह सारा वृत्तान्त भी दमयन्ती को जाकर बता दिया।

यह वृत्तान्त सुनकर दमयन्ती ने अपने माता-पिता की अनुमति लेकर बाहुक को रनिवास की ड्योढ़ी पर बुला भेजा। मलिन वस्त्र धारण किये दुर्बलकाय दमयन्ती को देखकर नल के नेत्रों से अश्रुधारा बह चली। दमयन्ती ने पूछा, "बाहुक! क्या तुमने कभी ऐसा धर्मात्मा पुरुष देखा है जो अपनी अकेली पत्नी को वन में सोता हुआ वन्य पशुओं का भोजन अथवा आततायी नराधम व्यक्तियों का शिकार बनने के लिए छोड़ गया हो।" यह कहकर दमयन्ती विलाप करने लगी। उसे सान्त्वना देते हुए नल ने कहा, "दमयन्ती! इसमें मेरा अपराध नहीं है। यह सब कलियुग के दुष्प्रभाव के कारण हुआ जिसने उस समय मेरी बुद्धि भ्रष्ट कर दी थी। मैं यहाँ केवल तुम्हारे अन्तिम दर्शनों के लिए आया हूँ क्योंकि कल प्रातः तुम अपना दूसरा विवाह कर रही हो।" नल के वचन सुनकर दमयन्ती ने बिलखते हुए कहा, "हे नाथ! मैंने देवताओं को साक्षी देकर आपको अपना पति बनाया है। अतः आप मेरे विषय में शंका न करें। मैंने इस उपाय का आश्रय केवल आपको पुनः प्राप्त करने के लिए किया था। इस रहस्य को मेरे पिताजी भी नहीं जानते। आपके अतिरिक्त कोई व्यक्ति चार सौ कोस का मार्ग एक दिन में पार नहीं कर सकता। यह मैं जानती थी। इसीलिए आपके विषय में सब प्रकार की शंकाओं का समाधान करने के लिए ही मैंने अयोध्या नरेश को सन्देश भिजवाया

था। आप देख ही रहे हैं। यहाँ स्वयंवर का कोई आयोजन नहीं है।"

स्नानादि करके नल ने अपना छद्म वेष त्यागकर पुनः अपना देदीप्यमान सुन्दर स्वरूप धारण कर लिया। महाराज भीम यह सुख संवाद को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। ऋतुपर्ण को भी यह जानकर सुखद आश्चर्य हुआ कि उनका सारथि बाहुक स्वयं राजा नल के अतिरिक्त और कोई नहीं था। राजा नल ने ऋतुपर्ण को अश्व विद्या और ऋतुपर्ण ने नल को पाँसों की सूक्ष्म कला सिखाई। इसके पश्चात् ऋतुपर्ण अयोध्या लौट गये। नल ने राजा भीम से प्राप्त धन को लेकर पुष्कर के साथ फिर जुआ खेला और अपना खोया हुआ राजपाट, धन सम्पत्ति, वैभव फिर से जीत लिया। अपना राज्य पाकर वे सुखपूर्वक शासन करने लगे।

यह कथा सुनाकर बृहदश्व ने कहा, "हे युधिष्ठिर! धैर्य एवं लगन का विशेष महत्व है। विपत्ति के समय शोक करना कायरता का लक्षण है। दैव के प्रतिकूल होने तथा पौरुष के विफल होने पर भी धीर पुरुष हताश नहीं होते।" इस प्रकार युधिष्ठिर कोधैर्य बँधाकरऔर यह बता क रकिइस समयअर्जुन इन्द्रलोक में देवराज के अतिथि हैं और वे वहाँ से शीघ्र लौट कर तुम लोगों से मिलेंगे, महर्षि बृहदश्व ने वहाँ से प्रस्थान किया।

पाँचवाँ अध्याय

अगस्त्य और परशुराम की कथा

वैशंपायनजी बोले—हे जनमेजय! जब अर्जुन को देवराज

इन्द्र के प्रासाद में रहते हुए बहुत समय व्यतीत हो गया तो वे सोचने लगे कि अर्जुन के वियोग में उनके भ्राता तथा द्रौपदी अत्यन्त दुःखी होंगे। इधर अभी अर्जुन को दी जाने वाली शिक्षा समाप्त नहीं हुई है। अतएव उन्होंने लोमश ऋषि को बुलाकर कहा कि आप महाराज युधिष्ठिर को जाकर बता दीजिये कि यहाँ उनके भ्राता अर्जुन कुशलपूर्वक हैं। उनका उद्देश्य पूरा होते ही वे उनसे आकर मिलेंगे। तब तक आप लोग धार्मिक स्थानों की तीर्थयात्रा कर लें। साथ ही उन्होंने लोमश ऋषि से आग्रह किया कि वे इस तीर्थयात्रा में उनके साथ रहें। संभावित विपत्तियों से उनकी रक्षा करें तथा धार्मिक प्रवचन आदि से उन्हें मानसिक शान्ति पहुँचायें। इन्द्र के निर्देशानुसार लोमश ऋषि ने युधिष्ठिर को अर्जुन का समाचार दिया और उन्हें तीर्थयात्रा पर ले चले।

अनेक स्थानों का भ्रमण करते हुए वे लोग गयशिर नामक पर्वत पर पहुँचे, जहाँ से अगस्त्यजी यमराज के पास गये थे। यहीं भगवान शंकर सदैव निवास करते हैं। पाण्डवों ने वहाँ ऋषि यज्ञ करके अक्षयवट के नीचे उपवास किया। इस यज्ञ में सैकड़ों ऋषि, मुनि, विद्वान् एवं तपस्वी पधारे। आगत महानुभावों में शमठ नामक ऋषि भी थे। उन्होंने अमूर्तरयस के गय नामक पुत्र का इतिहास बताया जिसने इसी स्थान पर अनन्त दक्षिणा वाला यज्ञ किया था। उस समय दक्षिणा के लिए अन्नकेतु पर्वत जैसे बड़े-बड़े ढेर लगे हुए थे। घी एवं दही की सैकड़ों नदियाँ भरी हुई थीं। याचकों को सहस्रों स्थानों से भोजन वितरित किया जा रहा था। कहते हैं कि

यज्ञ की समाप्ति पर पच्चीस पर्वत के बराबर भोजन शेष रहा था। इस प्रकार के अनेक यज्ञ गय ने किये थे।

इसके पश्चात् युधिष्ठिर आदि उस स्थान पर पहुँचे जहाँ अगस्त्य मुनि ने वातापी का वध किया था। जब युधिष्ठिर ने वातापी के विषय में विस्तृत रूप से पूछा तो लोमश ऋषि ने बताया, "इस स्थान का नाम पहले मणिमतिपुरी था। इसमें इल्बल नामक दैत्य निवास करता था। वातापी उसी का छोटा भाई था। एक दिन इल्वल ने एक तपस्वी ब्राह्मण से अनुरोध किया कि मुझे अपने मंत्रबल से ऐसा पुत्र दो जो इन्द्र के समान पराक्रमी हो। जब तपस्वी ने उसका अनुरोध स्वीकार नहीं किया तो वह ब्राह्मणों से वैर रखकर उन्हें मारने लगा। ब्राह्मणों को मारने की उसकी एक विचित्र विधि थी। उस मायावी को यह शक्ति प्राप्त थी कि वह मरे हुए व्यक्ति को सशरीर बुला कर जीवित कर देता था। ब्राह्मणों को मारने के लिए वह वातापी को बकरा बना देता। फिर उसका माँस पकाकर ब्राह्मणों को खिला देता। जब ब्राह्मण भोजन कर चुके होते तो वह वातापी को पुकारता। वातापी ब्राह्मणों का पेट चीरकर बाहर निकल आता और बेचारे ब्राह्मण मर जाते। इस प्रकार उसने अनेक ब्राह्मणों को मृत्यु के घाट उतार दिया। एक बार उसने अगस्त्य मुनि को भी इसी प्रकार मार डालने की चेष्टा की थी।"

लोमश ऋषि की बात काटते हुए युधिष्ठिर बोले, "ऋषि-राज! पहले यह बताने की कृपा कीजिये कि अगस्त्य मुनि उस मायावी दैत्य के पास कैसे जा पहुँचे।" युधिष्ठिर का प्रश्न

सुनकर ऋषि बोले, "इसका प्रसंग कुछ भिन्न है। फिर भी मैं तुम्हें बताता हूँ। एक बार अगस्त्यजी ने अपने पितरों को नीचा मुख किये गड्ढे में लटके देखा तो उन्होंने उनसे इसका कारण पूछा। पितरों ने बताया कि तुम्हारे कोई पुत्र न होने के कारण हम इस दशा को पहुँचे हैं। यदि तुम्हारे पुत्र उत्पन्न हो जाय तो हमारा उद्धार हो जाय। यह सुनकर अगस्त्यजी ने विवाह करने का विचार किया, परन्तु उन्हें कहीं भी अपने योग्य कन्या दिखाई न दी। उन्होंने अपने तप के बल से एक सर्वांग सुन्दरी कन्या की सृष्टि की और उसका पालन करने के लिए विदर्भराज को दे दिया। उसका नाम लोपामुद्रा रखा गया। युवा होने पर कन्या का विवाह अगस्त्यजी के साथ हो गया। लोपामुद्रा ने उनसे अपनी इच्छा प्रकट करते हुए कहा कि मैं दिव्य आभूषण एवं वस्त्र धारण करके आपके साथ विहार करूँ। जब वे कुछ नरेशों के पास धन की याचना करने गये तो उन सबने कहा, हमारा आय-व्यय समान है, इसलिए हमारे धन देने से प्रजा पर अनुचित भार पड़ेगा। इल्वल दैत्य बड़ा धनी है, हम सब उसके पास चलते हैं। आशा है, वह आपको धन अवश्य दे देगा। जब वे लोग इल्वल के पास पहुँचे तो उसने कपटपूर्वक उनका सत्कार करके वातापी को बकरा बनाकर उसका माँस अगस्त्यजी को खिला दिया। अन्य राजाओं ने इसका रहस्य अगस्त्यजी को बता दिया और स्वयं मृत्यु के भय के कारण माँस नहीं खाया। जब अगस्त्यजी ने वातापी का सारा माँस समाप्त कर लिया तो इल्वल ने वातापी को पुकारा। जब अनेक बार पुकारने पर भी वातापी

नहीं आया तो अगस्त्यजी ने मुस्कराते हुए कहा, "अब वातापी कहाँ है ? उसे तो मैंने पचा डाला ।"

लोमश ऋषि बोले, "यह सुनकर इल्वल बहुत व्याकुल हुआ। फिर उसने हाथ जोड़कर अपने अपराध की क्षमा माँगते हुए उन्हें मनोवाँछित धन दिया। उस धन से ऋषि ने लोपा-मुद्रा की अभिलाषा पूरी की। अगस्त्यजी के इध्मवाह नाम का पुत्र हुआ जिससे उनके पितरों का उद्धार हुआ।" इसी प्रकार की कथा कहते सुनते वे लोग भृगुतीर्थ पर पहुँचे। लोमश ऋषि ने कहा, "यही वह तीर्थ है जहाँ परशुरामजी ने अपना खोया हुआ तेज पाया था।" यह सुनकर युधिष्ठिर ने यह जानने की जिज्ञासा प्रकट की कि परशुरामजी का तेज नष्ट कैसे हुआ था और उन्होंने उसे फिर कैसे प्राप्त किया था।

लोमश ऋषि बोले, "हे युधिष्ठिर ! यह तो तुम जानते ही हो कि त्रेता युग में भगवान विष्णु ने रावण को मारने के लिये अयोध्या में रामचन्द्र के रूप में जन्म लिया था और सीतास्वयंवर में उन्होंने शिव के धनुष को तोड़ा था। उस समय जमदग्नि एवं रेणुका के पुत्र परशुरामजी रामचन्द्र के पराक्रम की परीक्षा लेने के लिये दिव्य धनुष लेकर उनके पास गये और बोले, यदि तुम स्वयं को समर्थ समझते हो तो इस धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाकर दिखाओ। जब राम ने प्रत्यंचा चढ़ा दी तो परशुरामजी बोले, अब इस बाण को धनुष पर चढ़ाकर प्रत्यंचा को कान तक खींचो। धनुष को खींचते हुए रामचन्द्र बोले, आप बहुत अभिमानी हैं। आपका अभिमान आपके तेज के कारण है। अतएव मैं उस तेज को समाप्त करता हूँ। यह

कहकर बाण छोड़ दिया जिससे उनका तेज समाप्त हो गया। जब परशुरामजी तेजहीन होकर व्याकुल हो गये तो भगवान की प्रार्थना करने लगे। भगवान ने कहा आप दीप्तोद तीर्थ में जाकर स्नान करें। आपका तेज आपको फिर मिल जायेगा। यही वह दीप्तोद तीर्थ है जहाँ उन्हें अपना तेज फिर से प्राप्त हुआ था।"

छठा अध्याय

दधीचि तथा वृत्रासुर की कथा

युधिष्ठिर लोमश ऋषि से बोले, "हे मुनिराज! क्या इल्वल की भाँति कोई और भी ऋषि मुनि-द्रोही राक्षस हआ था?" युधिष्ठिर का प्रश्न सुनकर ऋषि बोले, "प्राचीनकाल में ऐसे बहुत से राक्षस हुए हैं उनमें से एक वृत्रासुर था, जिसने समस्त देवताओं को अपने अत्याचारों से दुःखी कर रखा था। हर प्रकार का प्रयत्न करके भी जब वे वृत्रासुर से त्राण न पा सके तो वे सब एकत्रित होकर ब्रह्माजी के पास गये। उनकी प्रार्थना सुनकर ब्रह्माजी ने कहा, "तुम लोग महर्षि दधीचि के पास जाकर उनसे उनकी अस्थियाँ दान में माँगो। यदि वे अपनी अस्थियाँ दे दें तो उनसे अस्त्र-शस्त्र बनाकर तुम वृत्रासुर से युद्ध करना, तुम्हारी अवश्य विजय होगी।" ब्रह्माजी के वचन सुनकर देवगण सरस्वती नदी के तट पर पहुँचे जहाँ महर्षि दधीचि अपने आश्रम में तपस्या कर रहे थे। जब देवताओं ने सम्पूर्ण स्थिति बताकर महर्षि से उनकी अस्थियों का दान माँगा तो उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक अपने प्राण त्यागकर उनकी इच्छा पूरी कर दी। विश्वकर्मा ने उन अस्थियों से भीम नाशक वज्र

बनाया जिससे वृत्रासुर मारा गया। वृत्रासुर के मरते ही शेष राक्षसों को मारने के लिए देवता लोग उन पर टूट पड़े। बहुत से राक्षस भागकर समुद्र में छिप गये। दिन भर वे समुद्र में छिपे रहते और रात्रि को निकलकर तपस्वियों को खा जाते। रातोंरात वे सागर में लौटकर छिप जाते, इसलिये किसी को यह पता न चल पाता कि वे लोग रहते कहाँ हैं।

"जब वे लोग दुःखी होकर विष्णु भगवान के पास पहुँचे तो उन्होंने बताया वे सब समुद्र में छिपे हुए हैं जहाँ से वे रात्रि को निकलते हैं। ऐसी दशा में उनका विनाश तभी हो सकता है जबकि समुद्र को सोखा जाय और यह कार्य केवल अगस्त्य मुनि कर सकते हैं। यह सुनकर सब देवता अगस्त्य मुनि के आश्रम में पहुँचे और उनसे समुद्र सोखने की प्रार्थना की। समुद्र तट पर पहुँचकर महर्षि अगस्त्य ने देखते-देखते समुद्र का सम्पूर्ण जल पी लिया। जब समुद्र का केवल मैदान बन गया और दानवों को छिपने के लिए कोई स्थान नहीं रहा तो देवताओं ने अपने दिव्य अस्त्रों से सबका संहार कर डाला। केवल कुछ दानव पृथ्वी खोदकर पाताल भाग सके। राक्षस सेना नष्ट हो जाने पर देवताओं ने समुद्र को फिर से भरने की अगस्त्यजी से प्रार्थना की। उन्होंने कहा, मैंने तो सारा जल पचा लिया। अब सागर कैसे भरा जा सकता है? यह सुनकर सब देवगण उदास हो गये और उन्होंने ब्रह्माजी के पास जाकर उनको अपनी समस्या बताई। उन्होंने कहा जब भगीरथ अपने पूर्वजों का उद्धार करने के लिए गंगा को लेकर आयेंगे तो सागर फिर जल से भर जायेगा।"

यह कथा सुनकर युधिष्ठिर बोले, "हे महर्षे! मैंने सुना है कि एक बार कुपित होकर विन्ध्याचल पर्वत बहुत ऊँचा हो गया था। उसकी क्या कथा है?" युधिष्ठिर का प्रश्न सुन कर लोमश ऋषि बोले, "सूर्य भगवान उदय और अस्त की बेला में सुमेरु की प्रदक्षिणा किया करते हैं। एक दिन उनसे विन्ध्याचल ने अपनी भी प्रदक्षिणा करने को कहा। इस पर सूर्य ने उत्तर दिया, ऐसा मैं कैसे कर सकता हूँ? मेरा मार्ग तो सृष्टि ने निश्चित कर दिया है। इससे क्रुद्ध होकर सूर्य और चन्द्र की गति को रोकने के लिए विन्ध्याचल ऊपर की ओर बढ़ने लगा। सब देवताओं ने उसे समझाने का प्रयास किया, परन्तु वह नहीं माना। तब अगस्त्य मुनि ने उससे जाकर कहा, मैं दक्षिण दिशा की ओर जाना चाहता हूँ। मेरा अनुरोध है कि जब तक मैं न लौटूँ तुम बढ़ना बन्द कर दो ताकि मैं लौट सकूँ। विन्ध्याचल ने यह अनुरोध मान लिया, परन्तु अगस्त्य जी नहीं लौटे। इसलिए विन्ध्याचल भी ऊपर नहीं बढ़ा।"

यह सुनकर युधिष्ठिरजी बोले, "ऋषिदेव! मुझे यह बताइये कि भगीरथ के पूर्वज कौन थे और गंगा पृथ्वी पर कैसे आई?" लोमश ऋषि बोले, "हे राजन्! यह कथा भी सुनो। इक्ष्वाकु वंश में सगर नाम के एक प्रतापी राजा थे। जब उनके कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ तो उन्होंने वैदर्भी एवं शैल्या नामक रानियों के साथ हिमालय पर्वत पर जाकर घोर तपस्या की। इससे प्रसन्न होकर भगवान शिव ने वैदर्भी को साठ हजार पुत्र होने का वरदान देते हुए कहा कि उन सबकी मृत्यु एक ही दिन होगी, दूसरी रानी को एक शूरवीर एवं यशस्वी पुत्र

होने का वर दिया। उचित समय पर वैदर्भी के गर्भ से एक तूम्बी निकली। उस तूम्बी में साठ हजार बीज थे जिन्हें राजा ने घी से भरे साठ हजार घड़ों में भर पानी में रखवा दिया। शैल्या के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। समय पाकर तूम्बी के समस्त बीजों ने शिशुओं के रूप में बढ़ना आरम्भ कर दिया। वे सभी पुत्र पराक्रमी एवं क्रूरकर्मा निकले। जब राजा सगर ने अश्वमेध यज्ञ करने के विचार से श्यामकर्ण अश्व छोड़ा तो सभी पुत्र उसकी रक्षा करने एवं दिग्विजय के लिए निकल पड़े। इन्द्र ने अवसर पाकर उस घोड़े का हरण किया और पाताल लोक में कपिल मुनि के आश्रम में बाँध दिया। मुनि तमस्या में लीन थे। अतएव उन्हें इस घटना का कोई पता न चला। सगर पुत्रों ने सर्वत्र घोड़े की खोज की, किन्तु वह कहीं नहीं मिला। राजा सगर को यह समाचार सुनकर अत्यन्त क्षोभ हुआ। उन्होंने क्रुद्ध होकर पुत्रों को आदेश दिया कि वे घोड़े की पुनः खोज करें। वे फिर घोड़े की खोज में निकले और खोजते-खोजते कपिल मुनि के आश्रम में पहुँच गये। वहाँ अपने घोड़े को बँधा देखकर उन्होंने कपिल मुनि का अपमान किया और उन्हें गालियाँ देने लगे। इससे मुनि की समाधि भंग हो गई और उन्होंने सगर के सब पुत्रों को क्रोध से भस्म कर दिया।

"नारदजी ने राजा सगर को उनके पुत्रों के दुःखद अन्त का समाचार सुनाया। राजा सगर ने अपने बड़े पुत्र असमंजस के पुत्र अंशुमान को बुलाकर पाताल से घोड़ा लाने के लिये कहा। अंशुमान ने अपनी विनम्रता से कपिलजी से घोड़ा तो ले ही लिया, साथ ही यह वरदान भी प्राप्त कर लिया, कि

तुम्हारे पौत्र भगीरथ स्वर्ग से जो गंगा लायेंगे, उसके प्रभाव से तुम्हारे सभी चाचाओं का उद्धार हो जायेगा। घोड़ा पाकर राजा सगर ने यज्ञ सम्पन्न किया और अंशुमान को राज्य सौंप तपस्या करने चले गये। अंशुमान के बाद दिलीप सिंहासन पर बैठे। कुछ समय पश्चात् वे पृथ्वी पर गंगा लाने के लिए तपस्या करने चले गये, किन्तु अपने उद्देश्य में सफल न हो सके। फिर भगीरथ ने घोर तपस्या करके गंगा को प्रसन्न किया। गंगा ने कहा, मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करने को प्रस्तुत हूँ, परन्तु जब मैं पृथ्वी पर अवतरित होऊँगी तो पृथ्वी मेरे वेग को नहीं संभाल सकेगी। इसलिए तुम शिव की तपस्या करके इस बात के लिए तैयार करो कि वे मेरे वेग को संभाल सकें। भगीरथ ने ऐसा ही किया। शिवजी की अनुमति मिल जाने पर गंगाजी पृथ्वी पर अवतरित हुईं। पृथ्वी पर गंगा के आजाने पर भगीरथ उन्हें उस मार्ग से ले चले जिधर उनके पूर्वज भस्म हुए थे। इस प्रकार गंगाजी अन्त में सूखे समुद्र में पहुँची और उसे फिर जल से भर दिया।"

सातवाँ अध्याय

ऋष्यशृंग का वर्णन एवं परशुराम की कथा

वैशंपायनजी बोले—हे राजन्! युधिष्ठिर आदि पाण्डव लोग लोमश ऋषि के साथ इसी प्रकार कथा वार्ता सुनते एवं अनेक स्थानों का भ्रमण करते हुए ऋष्यशृंग के आश्रम पर पर पहुँचे। उन्होंने कहा, "यही वह स्थान है जहाँ ऋष्यशृंग ने तपस्या की थी।" युधिष्ठिर ने पूछा, "ऋष्यशृंग कौन थे? उनका क्या वृत्तान्त है?" युधिष्ठिर की जिज्ञासा देखकर

लोमश ऋषि बोले, "महातेजस्वी कश्यप के पुत्र विभाण्डक के उर्वशी के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। उसके मस्तक पर जन्म के समय एक सींग था, इसलिये उस बालक का नाम ऋष्यश्रृंग पड़ा। एक बार अंग देश के राजा लोमपाद ने जान-बूझकर एक ब्राह्मण से असत्य बोला। इससे क्रोधित होकर इन्द्र ने उनके राज्य में जल बरसाना बन्द कर दिया। जब राज्य में अकाल पड़ने लगा तो राजा चिन्तित हुए। कुछ विद्वान् ज्योतिषियों ने बताया यदि ऋष्यश्रृंग किसी प्रकार से राजधानी में आ जायें तो वर्षा हो सकती है। ऋष्यश्रृंग को राजधानी में लाना सरल नहीं था। वे बाल ब्रह्मचारी थे। उन्होंने कभी किसी स्त्री को नहीं देखा था। राजा ने घोषणा कराई जो ऋषि को राजधानी में ले आयेगा उसे अपार धनराशि दी जायेगी। यह घोषणा सुनकर एक अत्यन्त रूपवती वेश्या देवकुमार का वेष धारण कर उनसे मिली। वे स्त्री जाति से अनभिज्ञ होने के कारण स्त्री-पुरुष में भेद न कर सके। वेश्या उन्हें अपने जाल में फँसाकर उन्हें अंगदेश ले आई। ऋषि के आते ही अंगदेश में भारी वर्षा हुई। अवसर पाकर लोमपाद ने अपनी पुत्री का विवाह ऋष्यश्रृंग के साथ कर दिया।"

वैशंपायनजी बोले—हे राजन्! इसके पश्चात् घूमते हुए युधिष्ठिर गंगासागर पर पहुँचे। वहाँ परशुरामजी के अनन्य भक्त अकृतव्रण ने परशुराम का पूर्व चरित्र सुनाया। उन्होंने बताया, "हैहयाधिपात कार्त्तवीर्य अर्जुन के सहस्र हाथ थे। दत्तात्रेय की कृपा से उन्हें स्वर्ण का विमान प्राप्त था। यह विमान बिना किसी बाधा के प्रत्येक स्थान पर जा सकता था।

इस विमान को पाकर राजा ने ऋषि-मुनियों आदि को सताना आरम्भ कर दिया। इससे दुःखी होकर ऋषि-मुनियों ने भगवान विष्णु के पास जाकर गुहार मचाई। भगवान ने कार्त्तवीर्य अर्जुन के विनाश के लिए कुछ करने का आश्वासन दिया। उन्हीं दिनों कान्यकुब्ज प्रदेश में गाधि राजा राज्य करते थे। उनकी सुन्दर कन्या का विवाह भृगुवंशी ऋचीक से हुआ था। इन्हीं ऋचीक के पुत्र जमदग्नि के पुत्र परशुरामजी थे, उनकी माता का नाम रेणुका था। परशुराम से बड़े चार भाई और थे। एक बार जमदग्नि अपनी पत्नी रेणुका से इतने क्रुद्ध हुए कि उन्होंने अपने पुत्रों को उसका वध करने का आदेश दिया। चारों बड़े भ्राता मातृ-स्नेह के कारण ऐसा न कर सके, किन्तु परशुराम ने तत्काल पिता की आज्ञा का पालन किया। क्रोध शान्त होने पर उन्होंने परशुरामजी से वर माँगने के लिए कहा तो उन्होंने वर माँगा कि मेरी माता पुनः जीवित हो जायें उन्हें यह घटना याद न रहे और युद्ध में मेरी कोई समता न कर सके। जमदग्नि ने प्रसन्न होकर उन्हें तीनों वर दे दिये।

एक दिन राजा कार्त्तवीर्य अर्जुन ने जमदग्नि के आश्रम में आकर उसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और गौ के बछड़े को खोल दिया। जब परशुरामजी ने आश्रम की यह दशा देखी तो उन्होंने क्रुद्ध होकर कार्त्तवीर्य का पीछा किया और युद्ध में उसके सब हाथ काट डाले। कार्त्तवीर्य की यह दशा देखकर उसके पुत्र, समर्थकों एवं अन्य राजाओं ने आश्रम पर चढ़ाई कर दी और वृद्ध जमदग्नि को मारकर लौट गये। पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर परशुराम क्षत्रियों के नाश की प्रतिज्ञा करके

घर से निकल पड़े। उन्होंने अपने फरशे से अकेले ही इक्कीस बार पृथ्वी के समस्त क्षत्रियों का नाश किया। फिर उन्होंने समन्तपंचक तीर्थ में रक्त से भरे पाँच कुण्ड बनाये और उनमें पितरों का तर्पण किया। उन्होंने महायज्ञ करके यह सम्पूर्ण पृथ्वी ऋत्विजों में बाँट दी और स्वयं महेन्द्र पर्वत पर निवास करने लगे।"

आठवाँ अध्याय

च्यवन ऋषि, मान्धाता आदि के आख्यान

वैशंपायनजी बोले—हे राजा जनमेजय! तत्पश्चात् सभी पाण्डव भ्रमण करते हुए प्रभास तीर्थ में पहुँचे। यहाँ युधिष्ठिर ने बारह दिन तक घोर तपस्या की। पाण्डवों का समाचार सुनकर श्रीकृष्ण और बलराम उनसे मिलने के लिए वहाँ आये। वहाँ से चलकर पाण्डव मण्डली पयोष्णी नदी के तट पर आई और वहाँ के पवित्र जल में स्नान करके वैडूर्य पर्वत पर पहुँची। लोमशजी ने बताया, "हे युधिष्ठिर! इस स्थान पर भृगुनन्दन च्यवन ऋषि ने क्रुद्ध होकर इन्द्र को निष्प्राण कर दिया था और यहीं सुकन्या से विवाह किया था।"

युधिष्ठिर के जिज्ञासा प्रकट करने पर उन्होंने कहा, "च्यवन ऋषि महर्षि भृगु के पुत्र थे। उन्होंने एक ही स्थान पर बैठकर ऐसा घोर तप किया था कि उनके सम्पूर्ण शरीर को मिट्टी के ढेर ने आवृत्त कर लिया था और चींटियों ने उसमें बिल बना लिये थे। उस पर लताएँ उग आई थीं। मिट्टी के उस ढेर में से उनकी केवल दो आँखें दिखाई देती थीं। उधर से भ्रमण करती हुई राजा शर्याति की सुन्दर पुत्री सुकन्या

निकली। मिट्टी के ढेर में से आँखें चमकते देख उसे भारी कौतूहल हुआ और अनजाने में एक काँटे से उनकी दोनों आँखें फोड़ डालीं। जब राजा को यह ज्ञात हुआ तो वे ऋषि के पास जाकर क्षमा-प्रार्थना करने लगे। ऋषि बोले—इस अभिमानी कन्या ने मेरी आँखें फोड़ डाली हैं। इसे प्राप्त किये बिना मेरा क्रोध शान्त नहीं होगा। यह सुनकर राजा ने सुकन्या का विवाह च्यवन ऋषि के साथ कर दिया। सुकन्या अपने तपस्वी पति की श्रद्धा-भक्ति के साथ सेवा करने लगी।

"एक दिन अश्विनीकुमार सुकन्या को देखकर मुग्ध हो हो गए। उन्होंने कहा—यदि तुम चाहो तो हम तुम्हारे वृद्ध पति को पुनः युवा बना सकते हैं। यह बात सुकन्या ने जाकर च्यवन ऋषि से कही। वे इस प्रस्ताव से सहमत हो गये। अश्विनीकुमारों ने ऋषि को बुलाकर सरोवर में स्नान करने को कहा। उनके साथ-साथ वे दोनों भी सरोवर में घुस गये। जब तीनों स्नान करके सरोवर से बाहर निकले तो तीनों एक ही रूप-रंग नख-शिख वाले अद्भुत सुन्दर नवयुवक बन गये। वे युवक बोले, हम में से तुम किसी एक का हाथ अपना पति समझकर पकड़ लो। सुकन्या थोड़ी देर तक तीनों को ध्यान से देखती रही। फिर उसने भलीभाँति परखकर एक युवक का हाथ पकड़ लिया। वही वास्तव में च्यवन मुनि थे। सुकन्या की पतिनिष्ठा देखकर मुनि बड़े प्रसन्न हुए। अश्विनीकुमारों से युवा बने च्यवन ने प्रसन्न होकर उन्हें सोमरस पिलाने का वचन दिया, किन्तु जब वे उन्हें सोमरस पिलाने लगे तो इन्द्र ने यह कहकर रोक दिया कि अश्विनीकुमार सोमरस के अधि-

कारी नहीं हैं क्योंकि वे स्वर्ग में चिकित्सा करते हैं। जब इन्द्र की बात की अवहेलना करके अपने वचन का पालन करने के लिए वे उन्हें सोमरस पिलाने लगे तो इन्द्र उन पर आक्रमण करने के लिए झपटा, परन्तु च्यवन ऋषि ने मंत्रबल से उसके दोनों हाथ बेकार कर दिये। फिर उसने तपोबल से मदनामक भयंकर राक्षस को उत्पन्न किया। जब वह इन्द्र को खाने के लिए दौड़ा तो इन्द्र ने च्यवन ऋषि से क्षमा माँगते हुए अस्विनी कुमारों को सोमरस का अधिकारी मान लिया। शरणागत इन्द्र की रक्षा करके ऋषि ने मदासुर के चार भाग कर दिये और उनका नाम स्त्रीसंग, मदिरापान, जुआ और आखेट रख दिया।"

इसके पश्चात् पाण्डव लोग यमुना तट पर स्थित आर्चीक पर्वत पर पहुँचे जहाँ मान्धाता और सोमक ने यज्ञ किये थे। मान्धाता और सोमक के विषय में पूछने पर लोमश ऋषि ने बतलाया, "इक्ष्वाकु वंश में युवनाश्व नामक राजा थे। उनके कोई पुत्र नहीं था। उन्होंने ब्राह्मणों को बुलाकर पुत्र प्राप्ति के लिए यज्ञ कराया। ब्राह्मणों ने अभिमंत्रित करके एक घड़े में जल भरा जिसके पीने से रानी गर्भवती हो सके और राजा को पुत्र प्राप्ति के लिए निराहार उपवास करने के लिये कहा। रात्रि को ब्राह्मण लोग सो गये। राजा को अकस्मात बड़े जोर की प्यास लगी। उन्हें आस-पास कहीं जल नहीं मिला तो उन्होंने उसी घड़े का जल पी लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि स्वयं राजा के शरीर में गर्भ रह गया। समय पाकर राजा की बाईं कोख फाड़कर एक तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। इस

बालक का नाम मान्धाता रखा गया। इसी मान्धाता ने विश्व विजय करके इन्द्र का आधा सिंहासन प्राप्त किया था।

"मान्धाता के समान ही सोमक भी एक पराक्रमी एवं धर्मात्मा राजा थे। उनके जन्तु नामक एक पुत्र था। वह प्रायः रोगी रहता था। सोमक ने गुरु से कहा, एक पुत्र सदा चिंता का कारण रहता है। मनुष्य के एक से अधिक पुत्र होने चाहिएँ। गुरु ने कहा, यदि आप जन्तु की बलि चढ़ाकर यज्ञ करें तो आपके सौ पुत्र उत्पन्न हो सकते हैं। उन सौ पुत्रों में से एक पुत्र जन्तु भी होगा। राजा की अनुमति से गुरु ने यज्ञ कराया। राजा के सौ पुत्र हुए, परन्तु मरने के पश्चात् गुरु को नरक यातना भोगनी पड़ी। जब राजा ने मरने के पश्चात् अपने गुरु को नरक में देखा तो उन्होंने धर्मराज से इसका कारण पूछा। धर्मराज ने नर बलि देकर यज्ञ करना इसका कारण बताया। तो वे बोले, इस कार्य में जितना दोष मेरे गुरु का है, उतना ही मेरा है। इसलिये उनको दी जाने वाली यातना हम दोनों को समान रूप से मिलनी चाहिए। राजा की तर्क-संगत बात सुनकर धर्मराज ने कहा, तो तुम दोनों समान समय तक नरक भोग करो। इस प्रकार नरक-यातना सहकर गुरुभक्त सोमक गुरु के साथ सद्गति को प्राप्त हुए।"

नवाँ अध्याय

अष्टावक्र तथा यवक्रीत की कथाएं

जब लोमशजी ने बताया कि एक बार कहोड़ मुनि के पुत्र अष्टावक्र ने विदेहराज के यज्ञमण्डप में परम विद्वान् बंदी को शास्त्रार्थ में परास्त किया था तो युधिष्ठिर बोले, "अष्टावक्र

तो बड़ा विचित्र नाम है। उनका यह नाम कैसे पड़ा?" तब लोमश ऋषि ने बताया, "कहोड़ की पत्नी का नाम सुजाता था। जब वह गर्भवती हुई तब एक दिन कहोड़ मुनि वेद पाठ कर रहे थे। एकाध स्थान पर पाठ अशुद्ध हो गया तो सुजाता के गर्भस्थ बालक ने कहा, 'पिताजी आप, पाठ तो करते हैं, परन्तु आपका पाठ शुद्ध नहीं होता।' इससे क्रोधित होकर मुनि ने कहा, 'दुष्ट! तू उत्पन्न होने से पहले ही टेढ़ी मेढ़ी (वक्र) बातें करता है, इसलिये तू आठ स्थानों से वक्र होकर उत्पन्न होगा।' अतएव यह बालक आठ स्थानों से वक्र हो उत्पन्न हुआ और उसका नाम अष्टावक्र रखा गया।"

यह सुनकर युधिष्ठिर बोले, "महर्षे, अब यह बताइये कि अष्टावक्र ने बंदी को कैसे परास्त किया?" इसके उत्तर में लोमश ऋषि ने कहा, "जब अष्टावक्रजी बारह वर्ष के थे तभी एक दिन वे विदेहराज के दरबार में गये। द्वारपाल ने उन्हें यह कहकर रोक दिया कि महाविद्वान् बंदी की आज्ञा है कि इस समय बूढ़े और विद्वान् व्यक्तियों के अतिरिक्त किसी अन्य को प्रवेश न करने दिया जाय। इस पर अष्टावक्र क्रोधित होकर बोले–'तुम कैसे कह सकते हो कि हम विद्वान् नहीं हैं। हम महापण्डित बंदी को भी शास्त्रार्थ में परास्त कर सकते हैं।' यह सुनकर द्वारपाल उन्हें महाराज जनक के पास ले गया। महाराज के पास जाकर अष्टावक्र ने कहा, 'राजन्! हमने सुना है कि आपके यहाँ का विद्वान् बंदी पण्डितों से शास्त्रार्थ करके उनके पराजित हो जाने पर उन्हें जल में डुबवा देता है। हम उससे शास्त्रार्थ करना चाहते हैं।' यह सुनकर राजा

जनक ने कहा, 'पहले आप मेरे प्रश्नों का उत्तर दीजिए। फिर मैं आपको उनके पास ले चलूँगा।'

जब अष्टावक्र ने राजा से प्रश्न पूछने के लिए कहा तो राजा ने पूछा, 'तीस अंग वाला, बारह अंश वाला, चौबीस पर्व वाला और तीन सौ साठ आरे वाला पदार्थ क्या है?' अष्टावक्र ने उत्तर दिया, 'वह शीघ्रगामी कालचक्र है।' अगला प्रश्न था, 'जो दो वस्तुएँ घोड़ों के समान संयुक्त और बाज पक्षी के सदृश टूट पड़ने वाला है, उसका गर्भाधान कौनसा देवता करता है?' अष्टावक्रजी का उत्तर था, 'वायु जिसका सारथि है, वह मेघ उनका जन्मदाता है।' फिर राजा ने पूछा, 'सोते हुए अपने नेत्र कौन बन्द नहीं करता। जन्म लेकर कौन नहीं हिलता? हृदय किसके नहीं होता? वेग से कौनसी वस्तु बढ़ती है?' अष्टावक्र ने उत्तर दिया, 'सोते समय मछली नेत्र बंद नहीं करती। उत्पन्न होकर अण्डा नहीं हिलता। पत्थर के हृदय नहीं होता। वेग से नदी बढ़ती है।' इन प्रश्नों से संतुष्ट होकर राजा जनक ने उन्हें यज्ञमण्डप में बंदी के पास पहुँचा दिया। शास्त्रार्थ में बंदी ने एकाकी विख्यात वस्तुएँ गिनाईं तो अष्टावक्र ने दो संख्या वाली, जब बंदी ने तीन वाली गिनाई तो अष्टावक्र ने चार संख्या वाली। इस प्रकार बंदी बिषम संख्या वाली और अष्टावक्र सम संख्या वाली वस्तुएँ गिनाते गये। तेरह की संख्या पर पहुँचकर जब बंदी केवल दो नाम गिनाकर चुप हो गये तो शेष नाम गिनाकर अष्टावक्र ने उनका वाक्य पूरा किया। इस प्रकार जब बंदी पराजित हो गये तो अष्टावक्र बोले, 'इस अभिमानी पण्डित ने शास्त्रार्थ

में पराजित विद्वानों को जल में डुबवाकर मरवा दिया है इसलिये इसे भी जल में डुबा देना चाहिए।' अंत में वरुणदेव की कृपा से जल में डूबे हुए विद्वानों का उद्धार हुआ और वे फिर जीवित हो गये। जब कहोड़ मुनि ने प्रसन्न होकर अष्टावक्रजी को समङ्गा नदी में स्नान करने को कहा तो स्नान करने के पश्चात् उनकी सम्पूर्ण वक्रता दूर हो गई।"

इसके पश्चात् अनेक तीर्थ स्थानों पर होते हुए पाण्डव लोग गंगा के निकट स्थित कनखल पर्वतमाला पर पहुँचे जहाँ भारद्वाज के पुत्र यवक्रीत की मृत्यु हुई थी। यवक्रीत के विषय में पूछे जाने पर उन्होंने बताया कि वे भारद्वाज के पुत्र थे। एक बार भ्रमण करते हुए वे रैभ्य मुनि के आश्रम में पहुँचे। वहाँ वे रैभ्य मुनि की पुत्रवधू को देखकर उस पर मुग्ध हो गये। उन्होंने उसके सम्मुख अपना कुत्सित प्रस्ताव रखा। उसने जाकर विलाप करते हुए रैभ्य मुनि से सारा वृत्तान्त कहा। मुनि ने क्रोधित होकर अपनी जटा का एक भाग उखाड़कर अग्नि में डाल दिया जिससे एक राक्षस उत्पन्न हुआ। रैभ्य मुनि ने उसे यवक्रीत को मार डालने की आज्ञा दी। इस प्रकार यवक्रीत राक्षस के हाथों मारे गये।

दसवाँ अध्याय

भीम हनुमान सम्वाद

वहाँ से चलकर पाण्डव लोग श्वेतगिरि तथा मंदराचल के मध्य में पहुँचे जहाँ से कैलाश पर्वत स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यही वह स्थान है जहाँ मणिभद्र यक्ष और यक्षराज कुबेर अट्ठासी हजार गन्धर्वों एवं उससे चौगुने यक्षों के साथ

निवास करते हैं। निकट ही मन्दराचल पर्वत पर उन दिनों अर्जुन तपस्या करते थे। इसलिए वे सब लोग अर्जुन से मिलने के लिए पर्वत की चढ़ाई चढ़ने लगे। लगभग एक कोस की चढ़ाई पार करके द्रौपदी थककर बैठ गई तो युधिष्ठिर ने पूछा, अब हम ऊपर कैसे पहुँचेंगे। इस प्रकार युधिष्ठिर को चिंतित देख भीमसेन ने कहा, "मैं आप सबको अपने कंधों पर बिठाकर पर्वत पर ले चलूँगा। यदि आप कहें तो मैं हिडिम्बा के पुत्र घटोत्कच को बुला लूँ। वह भी मेरे ही समान बलवान है।" युधिष्ठिर का आदेश मिलने पर भीमसेन ने स्मरण करके घटोत्कच को बुला लिया। अपने पिता की अनुमति पाकर उसने अनेक शूरवीर राक्षसों को और बुला लिया। वे उन सबको अपने-अपने कंधों पर बिठाकर पर्वत की चढ़ाई चढ़ने लगे। विदुसर तीर्थ पर पहुँचकर वे वहाँ सैर करने लगे। तभी एक सुन्दर कमल का फूल उड़ता हुआ द्रौपदी के पास आकर गिरा। उसकी सुन्दरता एवं सुगंधि को देखकर द्रौपदी मुग्ध हो गई। उसने भीमसेन से अनुग्रह किया कि वह खोजकर ऐसे कुछ पुष्प और लायें।

द्रौपदी की इच्छा पूरी करने के लिए हाथ में धनुष बाण व गदा लेकर भीमसेन उस ओर चल दिये जिधर से उड़कर वह कमल का फूल आया था। गंधमादन के पर्वत शिखर पर कई योजन लम्बा-चौड़ा कदली वन फैला हुआ था। पुष्प की खोज में वे उसी वन में घुस गये। सहसा उन्होंने अपना शंख निकालकर भारी ध्वनि की। उसकी ध्वनि उस समय पवन सुत हनुमान ने सुनी जो कदली वन में विश्राम कर रहे थे।

शंख ध्वनि से वे समझ गये कि इस वन में भीमसेन आये हैं। अतः वे उस मार्ग पर लेट गये जिस पर होकर भीमसेन को जाना था और बार-बार अपनी पूंछ को पटकने लगे। हनुमान के पास पहुँचकर भीमसेन ने गर्जना की। हनुमान ने लापरवाही से अपने नेत्र खोलते हुए कुछ धीरे से कहा, "मैं रुग्ण हूँ। तुमने शोर मचाकर मुझे व्यर्थ ही क्यों जगा दिया ? मैं यहाँ सुख से पड़ा सो रहा था ? तुम कौन हो ?"

भीमसेन ने उत्तर, "मैं सोमवंशी महाराज पाण्डु का पुत्र भीमसेन हूँ। तुम कौन हो और यहाँ क्यों पड़े हो ?" हनुमान ने उत्तर दिया, "मैं एक वानर हूँ। मैं तुम्हें यहाँ से आगे नहीं जाने दूंगा। आगे जाने पर तुम जीवित नहीं बचोगे।" भीमसेन ने कहा, "इससे तुम्हें क्या ? मुझे जाने दो।" यह सुनकर हनुमान बोले, "यदि तुम्हें जाना हो तो मुझे लाँघकर चले जाओ। मुझमें उठने की शक्ति नहीं है। यदि मुझे न लाँघना चाहो तो मेरी पूंछ पकड़कर मुझे एक ओर सरका दो और निकल जाओ।" यह सुनकर भीमसेन ने निरादरपूर्वक बायें हाथ से पूंछ पकड़कर वानर को उठाना चाहा, परन्तु वह नहीं उठी। तब उन्होंने उसे दोनों हाथों से उठाना चाहा। फिर भी उठाना तो एक ओर वे उसे हिला भी न सके। तब लज्जित होकर भीमसेन ने दोनों हाथ जोड़कर कहा, "हे वानरराज! मैं अपनी धृष्टता के लिए अत्यन्त लज्जित हूँ। कृपया आप अपना परिचय दें।" तब हनुमान बोले, "भीमसेन! मैं पवनपुत्र हनुमान हूँ। रामचन्द्रजी की कृपा से मैं इस पर्वत पर रहकर अपना जीवन यापन करता हूँ। यहाँ गन्धर्व एवं

अप्सरायें रामचरित गाकर मेरा मनोरंजन करते हैं। यह मार्ग मनुष्यों के लिए अगम्य है। मैं यहाँ इसलिए बैठा था कि कोई तुम्हारा अनिष्ट न कर दे। तुम जिस कमल को लेने के लिए आए हो, वह निकटवर्ती सरोवर में ही खिलता है।"

फिर भीमसेन के आग्रह पर हनुमानजी ने चारों युगों--सतयुग, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग--के गुणों एवं विशेषताओं का वर्णन किया। इसके पश्चात् भीमसेन के आग्रह पर हनुमानजी ने उन्हें अपना पूर्ण रूप दिखाया। उस भयंकर रूप को देखकर भीमसेन ने अपने नेत्र बन्द कर लिये और कहा, "हे वानर राज! मैं आपके इस रौद्र रूप को देखने में असमर्थ हूँ। कृपया पुनः अपना सौम्य रूप धारण कर लीजिए।" हनुमानजी ने मुस्कराकर वैसा ही किया।

जब भीम कमल लेने के लिए सरोवर पर पहुँचे तो कुबेर के रक्षकों ने उन्हें सरोवर पर जाने से रोक दिया और उन्हें मारने के लिए लपके। भीमसेन भी गदा लेकर तैयार हो गये और उन्होंने सैकड़ों रक्षकों को यमपुरी पहुँचा दिया। इस भयानक युद्ध के लक्षणों के संकेत जब युधिष्ठिर ने देखे तो उन्होंने अपने भाइयों तथा द्रौपदी से पूछा, भीमसेन कहाँ हैं? जब द्रौपदी ने बताया कि वे कमल लेने गये हैं तो उन्हें आशंका हुई कि कहीं वे देवताओं से न भिड़ गये हों। उन्होंने घटोत्कच से कहा, हमें तत्काल वहाँ पहुँचाओ जहाँ वह सरोवर है। जब घटोत्कच तथा उसके साथी उन्हें लेकर सरोवर पर पहुँचे तो युधिष्ठिर ने देखा कि हाथ में गदा लिए क्रोध से भरे भीमसेन खड़े हैं और सामने सैकड़ों रक्षक तथा यक्ष मरे पड़े हैं। उन्होंने

भीमसेन की भर्त्सना करते हुए कहा, "तुमने यह क्या किया ? मैं नहीं चाहता कि तुम कोई ऐसा कार्य करो जो देवताओं को अप्रिय हो।"

इसी समय कुबेर के रक्षकों ने आकर पाण्डवों से कुबेर की ओर से खेद प्रकट किया और प्रसन्नतापूर्वक कमल-पुष्प भेंट किये इसके पश्चात् वे सब बद्रिकाश्रम को लौट आये। घटोत्कच आदि भी अपने स्थानों को चले गये।

ग्यारहवाँ अध्याय

जटासुर वध एवं अर्जुन का प्रत्यागमन

वैशंपायनजी बोले—हे जनमेजय ! जब पाण्डव लोग बद्रिकाश्रम में रहते थे तब जटासुर नाम का एक राक्षस भी ब्राह्मण के वेष में युधिष्ठिर के पास रहता था। उन्हें कपट वेशधारी असुर के विषय में कुछ ज्ञात नहीं था। एक दिन जब भीमसेन आखेट के लिए और लोमश ऋषि ध्यान तप आदि के लिए सरोवर के तट पर गये तो जटासुर अपना असली रूप धारण करके तीनों पाण्डवों, द्रौपदी एवं उनके सब अस्त्र-शस्त्र लेकर वहाँ से भाग गया। सहदेव ने जैसे तैसे स्वयं को उसके पंजे से मुक्त करा लिया और अपना कौशिक नामक खड्ग भी छीन लिया। फिर वन में घुसकर भीमसेन को पुकारने लगे। उधर युधिष्ठिर ने जटासुर को बहुत समझाया, किन्तु वह न माना।

सहदेव की पुकार सुनकर भीमसेन भी वहाँ पहुँच गये। बोले, "तुझे शस्त्रों की परीक्षा करके देख मैं पहले ही समझ गया था कि तू ब्राह्मण नहीं है, परन्तु उस समय तेरे वेश के कारण मैंने तुझे नहीं मारा था।" यह कहकर एक वृक्ष उखाड़कर

भीमसेन उस पर झपट पड़े। दोनों एक दूसरे पर पहले तो वृक्षों से आक्रमण करते रहे फिर शिलाखण्ड उठाकर एक दूसरे को मारने लगे। अन्त में अवसर पाकर भीमसेन ने उसकी गर्दन पर घूंसा मारा। घूंसा लगते ही वह गिरने लगा तो उसे ऊँचा उठाकर पृथ्वी पर दे मारा। जिससे उसके प्राण पखेरू उड़ गये।

वहाँ से चलकर पाण्डव लोग महामेरु पर्वत पर पहुँचे और अर्जुन के लौटने की प्रतीक्षा करने लगे। अर्जुन ने पाँच वर्ष के अन्दर लौट आने का आश्वासन दिया था। अब यह अवधि समाप्त होने में केवल एक मास शेष था। अतः वे बड़ी आतुरता से पार्थ के लौटने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

उधर अर्जुन ने भी इन्द्रलोक में पाँच वर्ष व्यतीत करके अग्नि, वरुण, चन्द्र, वायु, विष्णु, इन्द्र, परमेष्ठी ब्रह्मा, पशुपति, यम, धाता, सविता, त्वष्ट, कुबेर आदि सुरों से सब प्रकार के अस्त्र और उनको चलाने की शिक्षा प्राप्त कर अपने भाइयों के पास लौटने की इच्छा प्रकट की। अतएव इन्द्र की अनुमति से मातुलि रथ ले आया। उस पर सवार होकर अर्जुन गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे जहाँ उनके भ्राता एवं द्रौपदी उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। वे सब परस्पर मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

बारहवाँ अध्याय

भीमसेन अजगर की लपेट में

वैशंपायनजी बोले—हे राजन्! इन्द्रलोक से लौटकर अर्जुन ने सब पाण्डवों को अपने पाँच वर्ष की दिनचर्या विस्तार

पूर्वक सुनाई कि उन्होंने किस प्रकार तपस्या करके नाना प्रकार की अस्त्र विद्याओं का अध्ययन किया और देवराज इन्द्र के कहने से किस प्रकार नृत्य एवं संगीत की शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने यह भी बताया कि इन्द्रलोक से लौटते समय उन्हें मार्ग में अनेक बार दानवों की विशाल सेनाओं से युद्ध करना पड़ा और देवलोक में प्राप्त अस्त्रों एवं उनके चालन की शिक्षा के फलस्वरूप प्रत्येक बार उन्हें महत्वपूर्ण विजय प्राप्त हुई। इस प्रकार अनेक दिवस तक उन्हें वे अपनी दिनचर्या सुनाते रहे। जब पाण्डवों को यह विश्वास हो गया कि अर्जुन ने शस्त्र विद्या में अभूतपूर्व सफलता पाई है तो उनके आनन्द का पारावार न रहा। कई दिन तक गंधमादन पर्वत पर विश्राम करने के पश्चात् वे लोग घटोत्कच और उसके साथियों की सहायता से पुनः नीचे उतर आये और अनेक स्थानों के दर्शन करते हुए तथा अर्जुन को मार्ग में पड़ने वाले तीर्थ स्थानों से सम्बंधित कथाएँ सुनाते हुए यह दल विशाखयूप नामक प्रसिद्ध स्थान पर पहुँचा।

एक दिन भ्रमण करते हुए भीमसेन ने एक विशाल पर्वत कन्दरा में एक भूखे अजगर को देखा। अजगर पीले रंग का, दैत्याकार तथा अत्यंत भयंकर था और भूख से पीड़ित होकर अपनी जीभ लपलपा रहा था। भीमसेन को देखते ही वह उन पर झपटा और उनके दोनों हाथ अपनी लपेट में ले लिये। इस प्रकार अनायास अजगर के लिपट जाने से भीमसेन स्वयं को शक्तिहीन और असहाय अनुभव करने लगे। उन्होंने स्वयं को उसके पाश से छुड़ाने का बहुत प्रयत्न किया किन्तु सफल न

हो सके। अंत में भीमसेन ने कहा, "हे नागराज! मैं महाराज पाण्डु का द्वितीय पुत्र भीम हूँ। आप कौन हैं?" उनका प्रश्न सुनकर उन के दोनों हाथों को मुक्त करके शरीर को जकड़ते हुए अजगर ने कहा, "मैं बहुत दिनों से भूखा था। ईश्वर की कृपा से मेरी क्षुधा मिटाने के लिए आज तुम यहाँ अकस्मात् पहुँच गये हो। मेरा यह नियम है कि दिन के छठे भाग में हाथी, भैंसा आदि जो भी मिलता है, मैं केवल उसी का भक्षण करता हूँ।" यह सुनकर भीमसेन बड़े दुःखी हुए।

उधर जब बहुत देर तक भीमसेन लौटकर अपने डेरे पर नहीं पहुँचे तो युधिष्ठिर को बड़ी चिंता हुई। उनके मन में अमंगलसूचक भाव उठने लगे वे धौम्य ऋषि को साथ लेकर भीमसेन की खोज में निकल पड़े। उनके पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए वे उस कंदरा में पहुँचे जहाँ अजगर ने भीमसेन को जकड़ रखा था। उन्होंने अजगर से प्रार्थना की, "हे सर्पराज! तुम मेरे भाई को छोड़ दो। मैं तुम्हें दूसरा आहार दूंगा।" यह सुनकर अजगर बोला, "हे धर्मराज! मेरा यह नियम है कि मैं अपने क्षेत्र में आये हुए प्राणी को नहीं छोड़ता। इसलिए भीमसेन को मुक्त करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। तुम भी मेरे क्षेत्र में आने के कारण मेरा आहार बन जाओगे। अतएव तुम यहाँ से लौट जाओ, अन्यथा कल मैं तुम्हें भी खा जाऊँगा।" अजगर की बात सुनकर युधिष्ठिर बोले, "हे नाग-राज! यह तो मैं समझ गया हूँ कि तुम साधारण अजगर नहीं हो। सत्य बताओ तुम कौन हो?"

युधिष्ठिर का प्रश्न सुनकर अजगर कहने लगा, "हे

युधिष्ठिर ! मैं तुम्हारा पूर्वज नहुष हूँ । मैं सोमवंश की पाँचवीं पीढ़ी में उत्पन्न हुआ था । मेरे पिता का नाम आयु था । मैंने अपने अद्भुत पराक्रम से इन्द्र पद प्राप्त कर लिया था । इन्द्र पद प्राप्त करके मुझे इतना अभिमान हुआ कि मैं ब्राह्मणों के कंधों पर पालकी रखवाकर उसमें सवार हो चलने लगा । एक दिन मेरे मदभरे व्यवहार से क्रोधित होकर अगस्त्य मुनि ने मुझे शाप दे दिया जिससे मैं अजगर हो गया । मैं तुम्हारे भाई को एक शर्त पर छोड़ सकता हूँ कि तुम मेरे प्रश्नों का सही-सही उत्तर दे दो ।" युधिष्ठिर के जिज्ञासा करने पर नहुष ने पूछा, "तुम यह बताओ कि ब्राह्मण कौन है और उसे क्या जानना चाहिए ।" युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, "सत्य, दान, क्षमा, शील, तप, दया आदि गुणों से युक्त व्यक्ति ही ब्राह्मण है । जिसे जान लेने से मनुष्य शोकरहित हो जाय, वही सुख-दुःख रहित परब्रह्म जानने योग्य है ।" नहुष ने फिर प्रश्न किया "तुम्हारे बताये हुए गुण शूद्र में भी हो सकते हैं । फिर ब्राह्मण और शूद्र में क्या अन्तर है ? दूसरे, तुम सुख-दुःख रहित पदार्थ जानने की वस्तु बताते हो, किंतु सुख-दुःख रहित पदार्थ तो कोई दिखाई नहीं देता ।" इस पर युधिष्ठिर का उत्तर था, "उपरोक्त गुण जिस शूद्र में हैं, वह शूद्र शूद्र नहीं होता और इन गुणों से रहित ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं होता । सुख-दुःख से रहित वस्तु अवश्य होती है जिस प्रकार शीत से रहित उष्णता और ऊष्मा से रहित शीत होता है ।" इन उत्तरों से संतुष्ट होकर सर्परूपी नहुष ने भीमसेन को मुक्त कर दिया । युधिष्ठिर से ज्ञान प्राप्त करके नहुष की भी मुक्ति हो गई ।

तेरहवाँ अध्याय

दुर्योधन का द्वैत वन में आना और चित्रसेन से युद्ध

वैशंपायनजी बोले--हे जनमेजय! पाण्डव दल वहाँ से चलकर काम्यक वन में निवास करने लगा। एक दिन हस्तिनापुर के एक ब्राह्मण ने पाण्डवों को श्रीहीन दशा में तथा शरीर से दुर्बल देखा तो उसने उनकी इस दशा का वर्णन धृतराष्ट्र से किया। उस समय दुर्योधन, कर्ण आदि भी सभा में विद्यमान थे। पाण्डवों की दीन दशा का वर्णन सुनकर वे लोग मन ही मन अत्यंत प्रसन्न हुए और एकान्त पाकर कर्ण ने दुर्योधन से कहा, "हमें वन में जाकर पाण्डवों की दशा देखकर उसका आनन्द लेना चाहिए। शत्रु की दुर्दशा देखकर मन में अपरिमित आनन्द होता है।" वे इस सम्बंध में विचार कर ही रहे थे कि उन्हें ज्ञात हुआ कि पाण्डव लोग काम्यक वन से चलकर द्वैत वन में आगये हैं। द्वैत वन हस्तिनापुर से बहुत दूर भी नहीं था। इसलिये दुर्योधन आदि द्वैत वन में आखेट की अनुमति लेने के लिए धृतराष्ट्र के पास गये। धृतराष्ट्र ने कहा, "तुम लोग आखेट के लिये द्वैत वन के स्थान पर अन्यत्र चले जाओ क्योंकि आजकल वहाँ पाण्डव निवास कर रहे हैं। यदि उनसे तुम्हारा झगड़ा हो गया और उन्होंने तुम्हें मार डाला तो मुझे दुःख होगा। इसके विपरीत यदि वे तुम्हारे हाथों मारे गए तो इससे कुल को भारी अपयश लगेगा।" दुर्योधन ने उत्तर दिया कि हम लोग तो आखेट के लिए जा रहे हैं, हमें पाण्डवों से क्या लेना-देना? हम लोग तो उस ओर जायेंगे भी नहीं। तब धृतराष्ट्र ने उन्हें जाने की अनुमति दे दी।

धृतराष्ट्र से अनुमति मिल जाने पर दुर्योधन आठ हजार रथ, तीस हजार हाथी, नौ हजार घोड़े तथा सहस्रों पैदल सेना को सुसज्जित कर कर्ण, दुःशासन, शकुनि आदि एवं आखेट चतुर व्यक्तियों को लेकर द्वैत वन की ओर चल दिया। वहाँ पहुँचकर उसने द्वैत वन के सरोवर से लगभग दो कोस की दूरी पर अपना तम्बू तान दिया। वहीं गन्धर्वराज महाराज चित्रसेन भी अपने अनुचरों एवं अप्सराओं के साथ क्रीड़ा के लिए आए हुए थे। गन्धर्वों ने दुर्योधन के सैनिकों को वहाँ डेरा डालने से रोका तो दुर्योधन ने आज्ञा दी कि सब गन्धर्वों को मारकर भगा दो। जब गन्धर्व दुर्योधन के सैनिकों से युद्ध करने को तैयार हो गये तो दुःशासन आदि ने अपने सैनिकों के साथ उन पर आक्रमण कर दिया। भयानक युद्ध हुआ। दोनों पक्षों के सहस्रों वीर घायल हुए और मारे गये, कर्ण का रथ नष्ट हो जाने पर वह विकर्ण के रथ पर बैठकर भाग गया। दुर्योधन के भाइयों तथा बहुत से सैनिकों ने भी कर्ण का अनुसरण किया। केवल दुर्योधन कुछ सैनिकों के साथ युद्धभूमि में जुटा रहा। कुछही देर में वह घायल होकर गिर पड़ा और चित्रसेन ने उसे बन्दी बना लिया। बाद में दुःशासन आदि भी बंदी बना लिये गए। जब युधिष्ठिर ने दुर्योधन एवं उसके भाइयों की दुर्दशा का समाचार सुना तो उसने अपने चारों भाइयों को गन्धर्वों से लड़कर कौरवों को छुड़ाने का आदेश दिया। यह सुनकर भीम ने कहा, "हम उन्हें छुड़ाने क्यों जाएँ? उन्होंने हमारे साथ कौन सी भलाई की है। उन्हें अपने कर्मों का दण्ड भुगतना चाहिए।" भीमसेन के कटु वचन सुनकर युधिष्ठिर

ने उन्हें समझाते हुए कहा, "चाहे कुछ भी हो, दुर्योधन आदि हमारे भाई हैं। हम इस बात को कभी सहन नहीं कर सकते कि कोई हमारे वंश और कुटुम्ब का अपमान करे। हमें पारस्परिक वैर-भाव छोड़कर गन्धर्वों का प्रतिकार करना चाहिए। हम लोग आपस में पाँच और सौ हैं, किन्तु दूसरों के लिए एक सौ पाँच हैं। उठो, और कौरवों की सहायता के लिए तैयार हो जाओ।"

युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर चारों भाई शस्त्र धारण कर गन्धर्वों से युद्ध करने के लिए चल पड़े। गन्धर्व लोग दुन्दभि बजाते जा रहे थे कि पाण्डवों की ललकार सुनकर लौट पड़े। दोनों ओर से भयंकर युद्ध होने लगा। पाण्डवों की तीक्ष्ण मार से व्याकुल होकर जब गन्धर्व लोग कौरवों को लेकर आकाश मार्ग से उड़ चले तो अपने तीक्ष्ण बाणों से अर्जुन ने वहाँ भी उनका पीछा किया। अपने वीरों की दुर्दशा देखकर चित्रसेन ने अपनी दिव्य गदा से अर्जुन पर आक्रमण करना चाहा किन्तु उन्होंने चित्रसेन के हाथों में ही अपने बाणों से गदा के सात टुकड़े कर दिए। अन्त में अर्जुन के सम्मुख आकर चित्रसेन ने कहा, "हे अर्जुन! तुम मुझसे युद्ध क्यों कर रहे हो? मैं तो तुम्हारा मित्र चित्रसेन हूँ।"

अपने मित्र को पहचानकर अर्जुन ने युद्ध बन्द कर दिया और पूछा, "तुम कौरवों को पकड़कर क्यों ले जा रहे हो।" अर्जुन की बात सुनकर चित्रसेन ने बताया, "ये दुष्ट द्वैत वन में तुम्हारा अनिष्ट और द्रौपदी का उपहास करने के लिए आए थे। जब महाराज इन्द्र को यह बात ज्ञात हुई तो उन्होंने

मुझे तुम्हारी रक्षा करने और इन दुष्टों को पकड़ लाने के लिए भेजा। इसलिए मैं इन्हें पकड़कर देवराज के पास ले जा रहा हूँ।" चित्रसेन की बात सुनकर अर्जुन ने कहा, "हे मित्र! तुम कृपा करके इन दुष्टों को छोड़ दो। धर्मराज युधिष्ठिर की यही इच्छा है। इसलिए हम लोग यहाँ आए हैं।" चित्रसेन ने कहा, "अर्जुन! धर्मराज इन दुष्टों के कूट मन्तव्यों से परिचित नहीं हैं। चलो, मैं इन्हें उन्हीं के पास ले चलता हूँ। जैसा वे कहेंगे, वैसा ही करूँगा।" अतएव चित्रसेन सबको लेकर युधिष्ठिर के पास पहुँचे और उनसे सब वृत्तान्त कह सुनाया। सब सुनकर भी युधिष्ठिर ने कौरवों को मुक्त करा दिया और आदरपूर्वक उनका सत्कार करके उन्हें विदा किया। धर्मराज की महानता देखकर दुर्योधन अत्यन्त लज्जित हुआ।

भीष्म, द्रोणाचार्य आदि ने द्वैत वन का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर दुर्योधन को अनेक प्रकार से समझाया। दादा भीष्म ने कहा, "तुम अब भी पाण्डवों से मेल कर लो। उनकी मित्रता सदैव तुम्हारे लिये हितकर होगी।" किन्तु दुर्योधन को ये बातें तनिक भी अच्छी न लगीं और वह उन लोगों के पास से उठकर कर्ण आदि के पास चला आया।

चौदहवाँ अध्याय

कर्ण द्वारा अर्जुन को मारने की प्रतिज्ञा तथा दुर्वासा का पाण्डवों के यहाँ आतिथ्य

वैशंपायनजी बोले—हे नृपश्रेष्ठ! पाण्डवों से आगामी युद्ध की तैयारी करने और दुर्योधन को अधिकाधिक शक्ति सम्पन्न बनाने के विचार से कर्ण ने दुर्योधन के समक्ष दिग्विजय करने का प्रस्ताव रखा। यह प्रस्ताव दुर्योधन को बहुत पसन्द आया।

इसलिए सब प्रकार की आर्थिक एवं सैनिक सहायता देकर कर्ण को दिग्विजय के लिए भेज दिया। कौरवों की विशाल सेना लेकर कर्ण दिग्विजय पर निकल गया। कुछ ही महीनों में उसने राजा द्रुपद, उत्तर के भगदत्त, नैपाल के पर्वतीय नरेशों, पूर्व के अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, शुण्डिक, मिथिला, मगध, ककखण्ड, अक्शीर, योध्य, अहिक्षेत्र को तथा वत्सभूमि के केवला, मृत्तिकावती मोहन, पत्तव, त्रिपुरा, कौशल आदि के नरेशों को अपने आधीन कर लिया। इसके पश्चात् दक्षिण दिशा की ओर अभियान करके उसने रुक्मी, पाण्डय, केरल, नील तथा वेणुदारिसुत पर विजय प्राप्त की। पश्चिम की ओर कर्ण मद्र, रोहतक, आग्रेय, मालव शशक आदि से कर वसूल करके हस्तिनापुर लौट आया। फिर वह दुर्योधन से बोला, "हे कुरूकुलगौरव! अब संसार में कोई नरेश ऐसा नहीं है जो तुम्हारे विरुद्ध अस्त्र उठाने की बात भी सोच सके। अतएव अब तुम निष्कंटक होकर राज्य करो।"

राजा दुर्योधन ने राजसूय यज्ञ करने के विचार से राज-पुरोहित को बुलाया। उसने कहा, "हे कुरुश्रेष्ठ! जब तक तुम्हारे पिता और तुम्हारे कुल में राजसूय यज्ञ करने वाले युधिष्ठिर जीवित हैं तब तक शास्त्र तुम्हें राजसूय यज्ञ करने की अनुमति नहीं देता। राजसूय के समान एक श्रेष्ठ यज्ञ वैष्णव यज्ञ है, उसे तुम कर सकते हो। इस यज्ञ को सम्पन्न करने के लिए समस्त राजा लोग--जो तुम्हारे आधीन हैं--तुम्हें स्वर्ण भेंट करेंगे। उस स्वर्ण से हल बनाकर यज्ञभूमि जोती जायेगी। उस पर यह यज्ञ होगा। इस यज्ञ का भी उतना ही महत्व है, जितना राजसूय यज्ञ का।" यह बात दुर्योधन को

बहुत पसन्द आई। उसने यज्ञ का आयोजन किया। समस्त राजाओं, ब्राह्मणों, ऋषियों को आमंत्रित किया गया। एक दूत पाण्डवों को निमंत्रण देने के लिए भी गया। युधिष्ठिर ने कहा कि हम नियमानुसार तेरह वर्ष तक हस्तिनापुर में प्रवेश नहीं कर सकते, परन्तु भीमसेन बोले, "हे दूत! तुम दुर्योधन से कह देना कि धर्मराज युधिष्ठिर तेरह वर्ष की अवधि समाप्त होने पर वहाँ आयेंगे और युद्ध यज्ञ में आकर पूर्णाहुति देंगे।" दूत ने यह सारा वृत्तान्त दुर्योधन को जाकर सुना दिया। यज्ञ भली-भाँति सम्पन्न हो गया।

यज्ञ की समाप्ति पर दुर्योधन अपने साथियों के साथ बैठा था, तभी कर्ण ने कहा, "हे राजन्! आपका यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो गया। अब युद्ध में पाण्डवों को मारकर आप जब राजसूय यज्ञ करेंगे तब मैं फिर इसी प्रकार आपका अभिवादन करूँगा।" दुर्योधन ने कहा कि न जाने वह शुभ दिन कब आयेगा। तभी कर्ण ने प्रतिज्ञा की, "जब तक मैं युद्ध भूमि में अर्जुन का वध नहीं कर लूँगा तब तक सुरा एवं माँस का सेवन नहीं करूँगा और कभी किसी याचक को निराश नहीं लौटाऊँगा।" यह प्रतिज्ञा सुनकर दुर्योधन ने हर्ष-विभोर हो कर्ण को अपने हृदय से लगा लिया।

पाण्डवों के वन में रहने पर भी वे लोग दुर्योधन के मन में सदा काँटे की भाँति कसकते रहते थे। वह सदैव इसी उधेड़ बुन में रहता था कि पाण्डवों का किस प्रकार अनिष्ट किया जाय। वह इस चिन्ता में ही था, तभी एक दिन दुर्वासा ऋषि अपने दस हजार शिष्यों सहित दुर्योधन के पास आये। दुर्योधन

ने बड़े आदर के साथ उनका सत्कार किया और उन्हें तथा उनके शिष्यों को भोजन आदि से पूर्णतया सन्तुष्ट किया। वह जानता था कि दुर्वासा बड़े क्रोधी हैं। तनिक सी भूल हो जाने पर वे शाप दे देते हैं। इसलिए वह तन, मन, धन से उनकी सेवा में लगा रहा। उसकी सेवा से प्रसन्न होकर दुर्वासा ऋषि ने उससे धर्मानुकूल वर माँगने के लिए कहा। उचित अवसर जानकर दुर्योधन ने दोनों हाथ जोड़कर कहा, "भगवन्! हमारे कुल में युधिष्ठिर सबसे ज्येष्ठ हैं और श्रेष्ठ हैं। अतएव मैं चाहता हूँ कि आप समस्त शिष्यों के साथ द्वैतवन में उनके यहाँ जाकर उनका भी आतिथ्य स्वीकार करें, किन्तु ऐसे समय पर जायें जब द्रौपदी अपने पतियों को भोजन कराकर स्वयं भी भोजन से निवृत्त होकर, सुखपूर्वक बैठी हो।" दुर्वासाजी 'तथास्तु' कहकर वहाँ से चल दिये।

उनके जाने के पश्चात् कर्णने प्रसन्न होकर कहा, "मित्रवर! आपने यह अति उत्तम वरदान माँगा है। अब दुर्वासाजी एवं उनके शिष्यों को भोजन न करा सकने के कारण पाण्डवगण अवश्य उनकी क्रोधाग्नि में जलकर भस्म हो जायेंगे। इस प्रकार आपके मार्ग का यह भयंकर कांटा अनायास ही निकल जायेगा।"

उधर एक दिन जब पाण्डव लोग भोजनादि से निवृत्त होकर द्रौपदी के साथ बैठे हुए वार्तालाप कर रहे थे तभी दुर्वासा जी वहाँ पहुँच गये और बोले, "युधिष्ठिर! आज हम तुम्हारे यहाँ ही भोजन करेंगे, तुम भोजन की तैयारी कराओ। हम लोग स्नानादि करके अभी आते हैं।" यह कहकर वे स्नानादि करने चले गये। द्रौपदी बड़े असमंजस में पड़ गई।

इस समय अन्न की व्यवस्था कैसे होगी ? और एक साथ दस हजार व्यक्तियों का भोजन कैसे तैयार होगा। इस चिन्ता से व्यथित होकर वह श्रीकृष्ण का ध्यान करने लगी। उसी समय श्रीकृष्ण पाण्डवों से मिलने वहाँ आये। उन्हें अकस्मात् आया देखकर द्रौपदी ने प्रसन्न होकर उनका स्वागत किया और अपनी चिन्ता का कारण बताया। यह सुनकर श्रीकृष्ण बोले, "इस समय मैं बहुत भूखा हूँ, मुझे कुछ खाने को दो। तुम्हारी बातें फिर सुनूँगा।" यह सुनकर द्रौपदी बोली, "भैया! चिन्ता की बात तो यही है। जब तक मैं भोजन नहीं करती तब तक सूर्य भगवान का दिया हुआ पात्र सब प्रकार के भोजनों से परिपूर्ण रहता है, किन्तु मेरे भोजन कर लेने के पश्चात् ही वह खाली हो जाता है। दुर्भाग्य से मैं इस समय भोजन कर चुकी हूँ।" द्रौपदी के वचन सुनकर श्रीकृष्ण बोले, "मैं भूख से व्यथित हो रहा हूँ और तुम हँसी कर रही हो। वह पात्र यहाँ ले आओ, मैं स्वयं देखूँगा।" द्रौपदी उस पात्र को उठा लाई। पात्र के एक किनारे पर शाक का एक कण लगा हुआ था। उसे उठाकर खाते हुए श्रीकृष्ण बोले, "बस इतना पर्याप्त है।" फिर उन्होंने तृप्ति की गहरी साँस ली और सहदेव से कहा, "दुर्वासाजी से जाकर कहो। महाराज! शीघ्र चलिए। भोजन ठंडा हो जायेगा।"

उधर स्नान करते-करते दुर्वासा एवं उनके शिष्यों को अजीर्ण की डकार आई। इतने में सहदेव उन्हें बुलाने के लिए पहुँच गए। सहदेव को देखकर दुर्वासा ऋषि बोले, "सहदेवजी! इस समय हमारा पेट बहुत अधिक भरा हुआ है। हम भोजन

नहीं कर सकेंगे। हमारे कारण धर्मराज को जो असुविधा हुई है, उसके लिए तुम उनसे हमारी ओर से क्षमा प्रार्थना कर देना। उनसे कहना; हम बहुत लज्जित हैं जो उन्हें इतना कष्ट दिया।"

सहदेव ने श्रीकृष्ण और पाण्डवों को जाकर सब समाचार सुनाया। श्रीकृष्ण पाण्डवों की कुशलक्षेम पूछकर उनसे विदा लेकर द्वारिकापुरी को लौट गये।

पन्द्रहवाँ अध्याय

जयद्रथ द्वारा द्रौपदी हरण और जयद्रथ की पराजय

वैशंपायनजी बोले--हे राजन्! पाण्डव लोग इसी प्रकार द्वैत वन में अपना जीवन यापन कर रहे थे। एक दिन पाँचों पाण्डव वन में आखेट करने गए हुए थे और आश्रम में द्रौपदी अकेली थी। उसी समय सिन्धुनरेश जयद्रथ अनेक राजाओं के साथ उस मार्ग से होकर निकला। उसकी दृष्टि अनिन्द्य सुन्दरी द्रौपदी पर पड़ी तो वह मुग्ध भाव से उसे देखता रह गया। उसका मन चलायमान होने लगा। उसने द्रौपदी का परिचय जानने के लिये कोटिकास्य नाम के राजा को भेजा। कोटिकास्य ने द्रौपदी के पास जाकर उसका परिचय पूछा। द्रौपदी ने अपना परिचय देते हुए कहा, "आप यहाँ विश्राम करें। अभी थोड़ी देर में धर्मराज अपने भ्राताओं के साथ आते ही होंगे।" वह यह कहकर लौट आया कि मेरे साथ सिन्धु नरेश हैं। मैं उनके पास होकर अभी आता हूँ। उधर जयद्रथ दूर खड़ा द्रौपदी की रूपसुधा का पान करते हुए उस पर अत्यधिक आसक्त होता जाता था। कोटिकास्य के लौट आने पर वह

स्वयं द्रौपदी के पास जाकर उससे कुशल-क्षेम पूछने लगा। द्रौपदी ने उसे उपयुक्त आसन देकर कहा कि अभी महाराज युधिष्ठिर आते होंगे, तब तक आप विश्राम करें।

द्रौपदी की बात सुनकर जयद्रथ ने कहा, "मैं तुम्हें सिन्धु सौवीर देश की महारानी बनाना चाहता हूँ। इसलिए दीन-हीन पाण्डवों का विचार छोड़कर मेरे साथ रथ पर बैठकर चलो।" जयद्रथ के वचन सुनकर क्रोध से गरजते हुए द्रौपदी ने कहा, "मूर्ख! तुझे लज्जा नहीं आई! क्या तू पाण्डवों के बल-पराक्रम से परिचित नहीं है? अथवा तुझे अब जीवन का मोह नहीं रह गया है?" "यह प्रलाप छोड़ो और मेरे साथ चलो," कहते हुए जयद्रथ उसे पकड़ने के लिए दौड़ा। उसके स्पर्श से बचने के लिए द्रौपदी वहाँ खड़े रथ पर चढ़ गई। जयद्रथ ने तत्काल रथ पर चढ़कर उसे हाँक दिया। इतने में धौम्य ऋषि आगये। वे द्रौपदी की रक्षा के लिए रथ के पीछे दौड़े। जब जयद्रथ उनकी दृष्टि से ओझल हो गया तो वे निराश होकर आश्रम लौट आये। इसी समय पाण्डव भी आखेट से लौटे। धौम्य ऋषि से सम्पूर्ण समाचार सुन वे तत्काल जयद्रथ के पीछे दौड़े। थोड़ी ही देर में उन्होंने जयद्रथ के रथ को पकड़ लिया। दोनों ओर से भयानक युद्ध होने लगा। जब भीमसेन जयद्रथ को मारने के लिए दौड़े तो कोटिकास्य ने अपने रथों की सेना से उन्हें चारों ओर से घेर लिया। इस घेरेबन्दी से भीमसेन तनिक भी विचलित नहीं हुए और उन्होंने कोटिकास्य की सेना के अग्रभाग को नष्ट कर दिया। उधर अर्जुन ने पहाड़ी जाति के उन पाँच सौ योद्धाओं को मार गिराया जो जयद्रथ

को घेरकर उसकी रक्षा कर रहे थे। युधिष्ठिर नकुल तथा सहदेव ने भी भयंकर मारकाट मचाई। पाण्डव वीरों के द्वारा असंख्य सैनिकों के अतिरिक्त त्रिगर्तराज सुरथ, कोटिकास्य तथा सौवीर देश के बारह राजकुमार मारे गये। भीषण नरसंहार होता देख जयद्रथ भयभीत होकर द्रौपदी को रथ से उतार बीहड़ वन में भागकर छिप गया। जयद्रथ के भागते ही शेष सैनिक भी रणभूमि से पलायन कर गये।

भीमसेन तथा अर्जुन उसे वन में ढूँढने लगे और युधिष्ठिर आदि द्रौपदी को लेकर आश्रम को लौट आये। जब जयद्रथ वन में छिपा मिला तो भीमसेन ने उसे बुरी तरह पीटना आरंभ किया। तभी अर्जुन ने उन्हें रोकते हुए कहा, "भाई, इस नराधम को जान से न मारना। यह दुर्योधन की बहिन दुःशला का पति है। इस दृष्टि से हमारा भी मान्य सम्बन्धी है।" यह सुनकर भीमसेन ने एक अर्द्धचन्द्र बाण से उसे गंजा करके अनिच्छापूर्वक छोड़ दिया।

इस अपमान से दुःखी होकर जयद्रथ ने हरिद्वार में जाकर शिव की घोर तपस्या की ताकि उनसे वरदान पाकर पाण्डवों से प्रतिशोध ले सके। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ने वरदान माँगने को कहा, तो उसने कहा कि मैं सब पाण्डवों को युद्ध में हरा सकूँ। यह सुनकर शिवजी बोले, "पाँचों पाण्डवों को तो कोई नहीं हरा सकता। हाँ, एक दिन तुम अर्जुन को छोड़कर सब पाण्डवों को पराजित कर सकोगे।" यह कहकर शिव अन्तर्ध्यान हो गए। जयद्रथ भी अपनी राजधानी को लौट गया।

सोलहवाँ अध्याय

सावित्री सत्यवान की कथा

वैशंपायनजी बोले--हे नृपश्रेष्ठ ! द्वैत वन में पाण्डवों के पास अनेक ऋषियों का आगमन होता रहता था। एक बार मार्कण्डेयजी युधिष्ठिर के पास आये। कुछ दिन वहाँ रहकर उन्होंने युधिष्ठिरजी को अनेक धार्मिक कथाएँ और प्रवचन सुनाये। पहले तो उन्होंने युधिष्ठिर को महर्षि वाल्मीकिकृत रामायण की कथा सुनाई। कुछ दिन उपरान्त उन्होंने सावित्री सत्यवान की कथा सुनाते हुए कहा--मद्र देश में धर्मात्मा अश्वपति राज्य करते थे। उनके कोई सन्तान नहीं थी। इसलिए उन्होंने देवी सावित्री की आराधना की। सावित्री ने प्रसन्न होकर उन्हें वर दिया कि तुम्हारे एक तेजस्विनी कन्या होगी। यथासमय बड़ी रानी ने एक कन्या को जन्म दिया। राजा ने उसका नाम सावित्री रखा क्योंकि वह सावित्री के प्रसाद से उत्पन्न हुई थी। जब कन्या युवा हुई तो राजा को उसके विवाह की चिन्ता हुई। राजा ने सोच-समझकर एक दिन सावित्री से कहा, "पुत्री ! मैं चाहता हूँ कि तुम स्वयं देशाटन करके अपने योग्य पति का चुनाव करो।"

राजा की आज्ञा से वृद्ध अनुभवी मंत्रियों को साथ लेकर सावित्री स्वर्ण रथ में बैठकर योग्य पति की खोज में निकली। अनेक स्थानों का भ्रमण करके वह अपने पिता के पास मद्र देश लौट आई। जब वह अपने पिता के पास आई तो नारदजी उनके पास बैठे हुए धर्म-चर्चा कर रहे थे। उनके सम्मुख सावित्री ने अपने पिता को बताया, "शाल्व देश में द्युमत्सेन

नाम के एक राजा थे। दुर्भाग्य से वे दृष्टिहीन हो गये। शत्रुओं ने उन्हें अंधा और पुत्र को अवयस्क जानकर उनका राज्य छीन लिया। आजकल राजा-रानी वन में रहकर तपस्या कर रहे हैं। उनका पुत्र अब युवा और तेजस्वी हो गया है। उन्हीं को मैंने पति रूप में चुना है।" राजा ने महर्षि नारद से इस चुनाव के विषय में सम्मति माँगी। उन्होंने सोच विचार कर कहा, "राजन्! सत्यवान अत्यंत सुन्दर, पराक्रमी, दानवीर, धर्मात्मा एवं प्रजापालक राजा होगा, परन्तु उसमें केवल एक ही दोष हूँ। और वह यह कि वह अल्पायु है। आज से एक वर्ष पश्चात् उसका देहावसान हो जायेगा।" जब राजा ने सावित्री से कोई अन्य वर खोजने के लिए कहा तो सावित्री ने कहा, "पिताजी, किसी को जीवन में केवल एक बार पति माना जाता है। जब मैं उन्हें पति मानने का संकल्प कर चुकी हूँ तो किसी अन्य व्यक्ति को पति कैसे स्वीकार कर सकती हूँ।" सावित्री का अटल निश्चय देखकर राजा अश्वपति ने सत्यवान के साथ उस का विवाह करने का निश्चय कर लिया।

सावित्री का विवाह सत्यवान के साथ हो गया और वह वल्कल धारण करके वनवासी की भाँति आश्रम में सत्यवान के पास रहने लगी। वह ब्रह्ममुहूर्त्त में उठकर निष्ठापूर्वक सास, श्वसुर एवं पति की सेवा करने लगी। पति की मृत्यु का संभावित दिन ज्यों-ज्यों निकट आता जाता था, त्यों-त्यों सावित्री की चिन्ता बढ़ती जाती थी। जब मृत्यु के केवल चार दिन शेष रह गये तो उसने तीन दिन का निराहार व्रत किया। तीन दिन के निराहार से सावित्री अत्यन्त दुर्बल हो गई।

तीसरी रात्रि उसने बैठे-बैठे बड़े कष्ट के साथ व्यतीत की। चौथे दिन वह नित्य कर्म से निपट कर सास, श्वसुर एवं ब्राह्मणों के सम्मुख हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। सबने उसे 'अचल सौभाग्यवती' होने का आशीर्वाद दिया। उस आशीर्वाद को हृदय से ग्रहण कर वह सत्यवान के साथ वन में जाने को उन्मत हो गई जो कंधे पर कुल्हाड़ी रखकर लकड़ी काटने जा रहा था। जब उसे सत्यवान ने रोकना चाहा तो वह नहीं मानी और आग्रहपूर्वक उसकी अनुमति प्राप्त करके उसके साथ वन में चली गई।

लकड़ी काटते हुए अचानक सत्यवान के सिर में पीड़ा होने लगी तो उसने लेटने की इच्छा की। सावित्री ने उसका मस्तक अपनी गोद में रख लिया। कुछ देर पश्चात् सावित्री ने देखा एक विकट छाया सत्यवान के पास खड़ी है। उस पुरुष वेष-धारी छाया ने लाल वस्त्र पहन रखे थे। सिर पर किरीट तथा हाथ में पाश थे। सावित्री के पूछने पर उसने बताया, "मैं यम हूँ। तुम्हारे पति सत्यवान की आयु समाप्त हो गई है। इसलिए मैं उनकी आत्मा को ले जाने के लिए आया हूँ। वैसे यह कार्य मेरे दूत करते हैं, किन्तु सत्यवान धर्मात्मा हैं इसलिए दूत इन्हें नहीं ले जा सकते। अतएव इन्हें ले जाने के लिए मुझे स्वयं आना पड़ा है।" यह कहकर यमराज ने सत्यवान के शरीर में से अँगूठे के पौर के आकार के जीवात्मा को निकालकर अपने पाश में बाँध लिया। उसे लेकर वे दक्षिण दिशा की ओर चल दिए। सावित्री भी उनके पीछे-पीछे चलने लगी।

अपने पीछे सावित्री को आते देख यमराज ने कहा,

"सावित्री तुम लौट जाओ और घर जाकर अपने पति की अन्त्येष्टि क्रिया करो।" यह सुनकर सावित्री ने कहा, "यमराज! मैं पतिव्रता हूँ। आप मेरे पति को ले जाकर मेरे धर्मपालन में बाधक न बनें।" यह सुनकर यमराज बोले, "मैं तुम्हारी तर्क-संगत बात से प्रभावित हूँ। तुम अपने पति के प्राण के अति-रिक्त मुझसे कोई भी वरदान माँग लो। मैं तुम्हें प्रसन्नतापूर्वक वह वरदान दे दूँगा।" यमराज की बात सुनकर सावित्री ने कहा, "यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं तो मेरे सास-श्वसुर को खोई हुई नेत्र ज्योति प्रदान करें।" यमराज 'तथास्तु' कहकर आगे बढ़ गये। सावित्री फिर भी पीछे-पीछे चलती रही। सावित्री को पुनः पीछे आते देख यमराज ने कहा, "सावित्री! तुम अपना हठ छोड़कर एक और वरदान माँग लो और लौट जाओ। मैं सत्यवान के प्राणों को मुक्त करने के अतिरिक्त तुम्हारी कोई भी इच्छा पूरी कर सकता हूँ।" यमराज की बात सुन कर सावित्री ने वर माँगा कि मेरे श्वसुर का खोया हुआ राज्य उन्हें पुनः प्राप्त हो जाय। यमराज ने कहा, 'ऐसा ही होगा।' और आगे चल दिये।

सावित्री फिर भी यमराज के पीछे चलती रही तो वे बोले, "अब तुम मेरे पीछे क्यों आ रही हो?" यमराज का प्रश्न सुनकर सावित्री बोली, "धर्मात्मा एवं उदार व्यक्ति सदा दूसरों पर दया करते हैं। प्रत्येक प्राणी का कष्ट निवारण करते हैं। फिर आप तो सृष्टि के महान नियामक हैं। इसलिए आप मुझ पर भी कृपा कीजिए।" सावित्री के ये मधुर शब्द सुनकर यमराज ने कहा, "अच्छा, तुम एक वर और माँग लो, किन्तु

सत्यवान के प्राण मत माँगना ?" यह सुनकर सावित्री ने कहा, "प्रभो! मुझे यह वरदान दें कि मेरे पिता अश्वपति के सौ तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हों।" यमराज बोले, "ऐसा ही होगा। बस, अब तुम लौट जाओ, तुम बहुत दूर चली आई हो।" यमराज की बात सुनकर सावित्री ने कहा, "भगवन्! मैं अपने पति के साथ जा रही हूँ। इसलिए दूरी मुझे अखरती नहीं है। मैं चाहती हूँ आप मेरी एक बात ध्यानपूर्वक सुनें। आप धर्मराज इसलिए कहलाते हैं कि आप शत्रु मित्र का ध्यान न करके सम-दृष्टि से प्रजा का पालन करते हैं। अतएव मुझे विश्वास है कि आप पर मैं विश्वास करके जो आपका अनुसरण कर रही हूँ उससे अवश्य ही मेरा कल्याण होगा।" यमराज बोले, "तुम्हारी बातों से मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। इसलिए तुम सत्यवान के प्राण न माँगकर एक वर और माँग लो।" यह सुनकर सावित्री ने कहा, "प्रभो! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे यह वर दें कि सत्यवान से मेरे सौ तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हों।" यह सुनकर यमराज ने कहा, "एवमस्तु! परन्तु अब तुम लौट जाओ।" यम-राज की बात सुनकर सावित्री ने कहा, "आप मेरे पति को मुझे लौटा दें, अन्यथा आपका अन्तिम वरदान मिथ्या हो जायेगा।" सावित्री का तर्क सुनकर यमराज स्तब्ध रह गये और उन्होंने सत्यवान के प्राण लौटा दिये। इस प्रकार सत्यवान फिर जीवित हो गया।

सत्रहवाँ अध्याय

इन्द्र का कर्ण से कवच-कुण्डल लेना तथा युधिष्ठिर-यक्ष संवाद

वैशंपायनजी बोले—हे राजा जनमेजय! पाण्डवों के

वनवास की बारह वर्ष की अवधि जब समाप्त होने को आई तो उन्हें यह चिन्ता सताने लगी कि एक वर्ष का अज्ञातवास कहाँ और किस प्रकार किया जाय ताकि दुर्योधन आदि को उनके निवास स्थान का पता न लग सके और वे उन्हें न पहचान सके, अन्यथा फिर बारह वर्ष का वनवास तथा एक वर्ष का अज्ञातवास भुगतना होगा। अतएव सब भाई मिलकर इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगे।

उधर सूर्य को ज्ञात हुआ कि अपने पुत्र अर्जुन की रक्षा करने के लिए कभी भो कर्ण के पास जाकर उससे दैवी कुण्डल एवं कवच प्राप्त करने का यत्न कर सकते हैं। इसलिए एक रात्रि को उन्होंने कर्ण से स्वप्न में आकर कहा, "हे पुत्र! मुझे ऐसा ज्ञात हुआ है कि इन्द्र एक ब्राह्मण का वेष धारण करके तुमसे तुम्हारे दैवी कवच और कुण्डल माँगने के लिए आयेंगे। जब तक तुम्हारे पास में कवच और कुण्डल रहेंगे, तब तक तुम्हें कोई नहीं मार सकेगा। अतएव तुम दोनों वस्तुओं को उन्हें कदापि मत देना। मेरी बात को कभी विस्मृत मत करना। मैं तुम्हारा परम हितैषी सूर्य हूँ।" सूर्य की बात सुनकर कर्ण ने कहा, "हे भगवन्! आप मेरी इस प्रतिज्ञा को तो जानते ही होंगे कि मैं अपने द्वार से कभी किसी याचक को निराश नहीं लौटने दूँगा। इसलिये आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप मुझे ऐसा परामर्श मत दीजिये जिससे मेरी प्रतिज्ञा भंग हो चाहे मेरा जीवन रहे या न रहे। मुझे अपनी नीति अपने जीवन से भी अधिक प्रिय है।"

सूर्य देवता कर्ण की दृढ़ दानशीलता को देखकर बोले,

"अच्छा पुत्र ! यदि तुम देवराज इन्द्र को कवच एवं कुण्डल देना ही चाहते हो तो उससे अमोघ शक्ति अवश्य माँग लेना। तभी तुम अर्जुन को परास्त कर सकोगे। इस शक्ति की यह विशेषता है कि वह शत्रु को मारकर पुनः मारने वाले के हाथ में लौट आती है।" यह कहकर भगवान सूर्य अन्तर्ध्यान हो गये। यह बात सारे संसार में प्रसिद्ध हो चुकी थी कि मध्याह्न के समय स्नानादि से निवृत्त होकर कर्ण सूर्यदेव की आराधना करता है, उस समय जो भी याचक उसके पास पहुँचता है, वह कभी खाली हाथ नहीं लौटता। इन्द्रदेव भी इस बात से परिचित थे। अतएव वे भी उस समय ब्राह्मण का वेष धारण करके भिक्षा माँगने के लिए पहुँच गये। कर्ण ने उन्हें देखकर कहा, "कहिये विप्रवर ! आपको क्या चाहिए ?" कर्ण का प्रश्न सुनकर इन्द्र ने कहा, "मुझे वे कवच और कुण्डल चाहिए जिन्हें धारण करके तुम इस संसार में उत्पन्न हुए थे।"

कर्ण ने कहा, "ब्राह्मण देवता तुम मुझसे चाहे सारी पृथ्वी का राज्य माँग लो, परन्तु कवच कुण्डल मत माँगो। इन्हें दे देने से मेरे शत्रु मुझे मार डालेंगे।" जब ब्राह्मण ने उन्हें ही लेने का आग्रह किया तो कर्ण ने हँसकर कहा, "हे इन्द्रदेव ! मैंने आपको पहचान लिया है। जब आप स्वयं भिखारी बनकर मेरे द्वार पर आये हैं तो मैं इन्हें आपको अवश्य दूंगा, किन्तु इसके बदले में मैं भी आपसे कुछ चाहूँगा।" कर्ण के वचन सुन कर इन्द्र ने कहा, "मुझे मालूम है मेरे अभिप्राय की सूचना तुम्हें सूर्य पहले ही दे चुके हैं। तुम्हारी बात मुझे स्वीकार है। तुम वज्र के अतिरिक्त कुछ भी माँग लो, मैं दे दूंगा।" इन्द्र के

आश्वासन देने पर कर्ण ने कहा, "मुझे अपनी अमोघ शक्ति दे दीजिये जिसका वार शत्रु पर कभी खाली नहीं जाता।" इन्द्र बोले, "मैं तुम्हें वह शक्ति केवल इस शर्त पर दूँगा कि तुम उसका प्रयोग केवल एक बार ही करोगे। उसके पश्चात् वह शक्ति मेरे पास लौट आयेगी। इस बात को स्मरण रखना कि प्राणों पर संकट आए बिना उस शक्ति का प्रयोग कभी मत करना अन्यथा तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी।" इन्द्र की बात सुन कर कर्ण ने कहा, "एक बात और कीजिये प्रभो! इन कवच कुण्डलों को काटकर देने से मैं कुरूप एवं असुन्दर न हो जाऊँ।" इन्द्र ने कर्ण की यह बात भी स्वीकार कर ली। जब कर्ण ने तलवार से काटकर अपने कवच तथा कुण्डल दे दिये तो उसके शरीर में न तो कोई घाव हुआ और न उसमें कोई कुरूपता ही आई। इन्द्र ने भी कर्ण को अपनी अमोघ शक्ति दे दी और वहाँ से चल दिये। जब इस घटना का पता कौरवों को चला। तो वे अत्यन्त दुःखी हुए और पाण्डव लोगों की प्रसन्नता का अन्त न रहा।

उन्हीं दिनों जब पाण्डव द्वैत वन में निवास कर रहे थे तो एक ब्राह्मण ने आकर युधिष्ठिर को सूचित किया, "मेरी अरणी और मथानी वृक्ष में लटकी हुई थी। एक मृग आकर उस वृक्ष से अपने सींग खुजाने लगा तथा अरणी व मथानी वृक्ष से गिरकर मृग के सींग में फँस गई। वह मृग उन दोनों वस्तुओं के साथ वहाँ से भाग गया है। कृपया वे दोनों वस्तुएँ मुझे ला दीजिए।" ब्राह्मण का कथन सुनकर युधिष्ठिर ने अपने भाइयों सहित धनुष बाण लेकर उसके पदचिह्नों का अनुसरण

करते हुए मृग का पीछा किया। थोड़ी दूर जाने के बाद जब वह मृग दिखाई दिया तो वे लोग उसके पीछे दौड़े। मृग अनेक वन-वनान्तरों में उन्हें दौड़ाता रहा। फिर वह सहसा अदृश्य हो गया। अन्त में वे थककर भूख-प्यास से व्यथित हो एक वृक्ष के नीचे बैठ गये। जब प्यास बहुत बढ़ गई तो युधिष्ठिर नकुल से बोले, "भाई! वृक्ष के ऊपर चढ़कर देखो। पास में कोई सरोवर है क्या जिससे प्यास बुझाई जा सके।" वृक्ष पर चढ़कर नकुल ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर कहा, "महाराज! एक ओर कुछ सारस पक्षी दिखाई देते हैं। वहाँ अवश्य कोई न कोई सरोवर होगा।" नकुल से यह सूचना पाकर धर्मराज ने उन्हें आदेश दिया कि शीघ्र वहाँ से इन तरकसों में पीने के लिए जल भर लाओ।

युधिष्ठिर की आज्ञा मान वे उस सरोवर पर जाकर जल पीने लगे। उन्हें एक यक्ष की वाणी सुनाई दी, "हे भाई! तुम इस सरोवर का जल मत पीना यह मेरे अधिकार में है। पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो, तभी तुम जल पीने के अधिकारी हो सकोगे।" नकुल इतने प्यासे थे कि उन्होंने उसकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। अतएव पीने के लिए ज्योंही उन्होंने जल का स्पर्श किया त्योंही निष्प्राण होकर वहाँ गिर पड़े। नकुल को लौटने में बहुत विलम्ब हुआ जानकर युधिष्ठिर ने सहदेव को भेजा। सहदेव ने जब नकुल को मृत पाया तो उन्हें बहुत दुःख हुआ, परन्तु बहुत प्यासे होने के कारण उन्होंने पहले पानी पीने का निश्चय किया। वे सरोवर की ओर आगे बढ़े। उन्हें भी यक्ष की वही चेतावनी सुनाई दी। उसकी अवहेलना

करके जल पीने पर उनका भी शरीर निष्प्राण होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। कुछ देर प्रतीक्षा करने के पश्चात् युधिष्ठिर ने अर्जुन को भेजा। वहाँ का दृश्य देखकर अर्जुन को भी बहुत दुःख हुआ। जब वे पानी पीने के लिए बढ़े तो यक्ष ने उन्हें भी पानी पीने से मना किया। इस पर अर्जुन ने उसे ललकारते हुए अनेक बाण छोड़े। यक्ष ने कहा, "इस प्रकार बाणों की वर्षा करने से कोई लाभ नहीं होगा। यदि जल पीना है तो मेरे प्रश्नों का उत्तर दो।" यक्ष की बात पर ध्यान दिये बिना अर्जुन जल पीने के लिए झुके और वे भी निर्जीव होकर गिर पड़े। बाद में युधिष्ठिर ने भीमसेन को भेजा। जलाशय पर पहुँचकर उनकी भी वही दशा हुई जो शेष तीन भाइयों की हुई थी।

चारों में से किसी को न लौटते देख अन्त में स्वयं युधिष्ठिर उस सरोवर की ओर चले। अपने भाइयों को मृत पाकर वे विलाप करने लगे। फिर उन्होंने अपने भाइयों के शरीरों को ध्यान से देखा। उन पर किसी प्रकार के शस्त्र-अस्त्र अथवा आघात के चिह्न नहीं थे। किसी अन्य व्यक्ति या पशु के पदचिह्न भी वहाँ नहीं थे। उन्होंने समझा कि जल में ही कोई दोष है। वे जल की परीक्षा और थोड़ा पानी चखने की दृष्टि से सरोवर पर पहुँचे। उन्हें यक्ष की वाणी सुनाई दी, "हे राजन्! जल पीने से पूर्व तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर दो। यदि प्रश्नों का उत्तर दिये बिना तुम जल पीने का प्रयत्न करोगे तो तुम्हारी भी वही दशा होगी जो तुम्हारे चारों भाइयों की हुई है। मैं इस सरोवर का स्वामी यक्ष हूँ।" युधिष्ठिर के कहने पर यक्ष ने पूछा, "सूर्य को कौन ऊपर उठाता है? उसे कौन अस्त करता

है ? वह किस में स्थित है ? उसके चारों ओर कौन भ्रमण करते हैं ?"

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, "सूर्य को ब्रह्म उठाता है, उसे धर्म अस्त करता है। वह सत्य में स्थित है और देवता उसके चारों ओर भ्रमण करते हैं ?" यक्ष का अगला प्रश्न था, "मनुष्य किससे श्रोत्रिय होता है ? किससे महत् पदार्थ पाता है ? किसकी सहायता से बुद्धिमान् होता है ? ब्राह्मणों का देवत्व क्या है ? उनकी कौनसी बात सज्जनों जैसी और कौनसी दुर्जनों जैसी है ? उनका मनुष्य भाव क्या है ? क्षत्रियों का देव भाव, मनुष्य भाव, साधु भाव तथा असाधु भाव क्या है ?" इनके उत्तर में युधिष्ठिर ने बताया, "आचार्य के मुख से वेदार्थ निश्चय करने से श्रोत्रिय होता है। तप से महत् पदार्थ पाता है। धैर्य एवं वृद्धजनों की सेवा से बुद्धिमान होता है। स्वाध्याय ब्राह्मणों का देवत्व, तप सज्जनों की सी बात, निन्दा असाधुओं की बात है और मृत्यु मनुष्य भाव है। क्षत्रियों का देवभाव अस्त्र-शस्त्रों का व्यवहार, भय मनुष्य भाव, यज्ञ करना साधु भाव तथा दुखियों की रक्षा से विमुख होना असाधु भाव है।" यक्ष ने फिर प्रश्न किया, "यज्ञ का साम, यजुः क्या है ? वरण करने वाला क्या है ? यज्ञ किसका अतिक्रमण नहीं करता ? खेती करने वाले, बोने वाले, एक स्थान पर रहने वाले तथा उत्पादकों के लिए श्रेष्ठ क्या है ? कौन मनुष्य इन्द्रियों के विषय का अनुभव करने में समर्थ, बुद्धिमान, लोकपूजित तथा समस्त प्राणियों का सम्मत होकर श्वाँस लेता हुआ भी मृतक के समान है ?" इन प्रश्नों को सुन कर युधिष्ठिर बोले, "प्राण का साम और मन उसका यजुः है।

ऋचा यज्ञ का वरण करती है और यज्ञ उसका अतिक्रमण नहीं करता। खेती करने वाले के लिए वर्षा, बोने वाले के लिए बीज, एक स्थान पर रहने वाले के लिये गौ और उत्पादक के लिए पुत्र श्रेष्ठ है। जो मनुष्य इन सब बातों के होते हुए भी देवता, अतिथि, भृत्य, पितर एवं आत्मा की पूजा नहीं करता, उन्हें अन्न नहीं देता, वह जीवित भी मृत के समान है।

इसके पश्चात यक्ष ने पूछा, "पृथ्वी से भी अधिक गौरव-शाली कौन है? आकाश से भी ऊँचा कौन है? वायु से भी अधिक तीव्रगामी तथा तिनकों से भी असंख्य कौन है? प्रवासी, गृहवासी, रोगी एवं मृत्युशैया पर पड़े व्यक्ति का मित्र कौन है?" इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए युधिष्ठिर ने कहा, "माता का गौरव पृथ्वी से भी अधिक है। पिता आकाश से भी ऊँचा है, मन वायु से भी अधिक तीव्रगामी हैं और चिन्ता का विस्तार असंख्य है। प्रवासी का मित्र साथी, गृहवासी का मित्र भार्या, रोगी का मित्र वैद्य और मृत्युशैया पर पड़े व्यक्ति का मित्र दान है।" फिर यक्ष ने पूछा, "सब प्राणियों का अतिथि कौन है? सनातन धर्म, अमृत तथा यह संसार क्या है? कौन अकेले विच-रता है? बार-बार जन्म कौन लेता है? शीत की औषधि तथा बोने का प्रधान स्थान क्या है? धर्म का अन्तिम स्थान, यश की चरम सीमा एवं स्वर्ग तथा सुख का एकमात्र आश्रय क्या है?" युधिष्ठिर का उत्तर था, "अग्नि सब प्राणियों का अतिथि है। ज्ञान योग सनातन धर्म है। गौ का दुग्ध अमृत है एवं वायु सब संसार है। सूर्य अकेले विचरता है। चन्द्रमा बार-बार जन्म लेता है। अग्नि शीत की औषधि है और बोने का प्रधान स्थान

पृथ्वी है। सबके अनुकूल रहना तथा किसी की निन्दा न करना धर्म का अन्तिम स्थान है। दान यश की चरम सीमा, सत्य स्वर्ग का तथा चरित्र सुख का एकमात्र आश्रय है।"

यक्ष ने पूछा, "मनुष्य की आत्मा क्या है? दैवविहित सखा कौन है? आजीविका तथा प्रधान आश्रय क्या है? उत्तम धन, उत्तम लाभ तथा उत्तम सुख क्या है? कौन सा धर्म सदा-फलदायक होता है? युधिष्ठिर बोले, "पुत्र मनुष्य का आत्मा है। स्त्री दैव-विहित सखा है। मेघ आजीविका तथा दान प्रधान आश्रय है। शास्त्र का ज्ञान उत्तम धन, आरोग्य उत्तम लाभ तथा सन्तोष उत्तम सुख है। यज्ञ आदि वैदिक धर्म सदा फल-दायक होते हैं।"

यक्ष ने प्रश्न किया, "क्या त्याग देने से शोक दूर हो जाता है? क्या छोड़ देने से मनुष्य सुखी और सम्पन्न हो जाता है?" इसके उत्तर में युधिष्ठिर ने कहा, "क्रोध त्याग देने से शोक दूर हो जाता है। काम को त्याग करने से मनुष्य सम्पन्न और लोभ छोड़ देने से सुखी हो जाता है।" युधिष्ठिर का उत्तर सुनकर यक्ष ने पूछा, "मृत पुरुष, मृत राष्ट्र, मृत श्राद्ध और मृत यज्ञ कौन से हैं?" युधिष्ठिर ने कहा, "दरिद्र पुरुष मृत है। बिना राजा का राष्ट्र मृत है। श्रोत्रिय से हीन श्राद्ध और दक्षिणा से हीन यज्ञ मृत है। यक्ष ने पूछा, "मनुष्य का दुर्जय शत्रु कौन हैं? अनन्त व्याधि क्या है? युधिष्ठिर बोले, "क्रोध दुर्जय शत्रु है और लोभ अनन्त व्याधि है।"

यक्ष ने पुनः पूछा, "कुल, आचार, स्वाध्याय और शास्त्र का सुनना इनमें से किससे ब्राह्मणत्व प्राप्त होता है? युधिष्ठिर

ने उत्तर दिया, "हे यक्षराज! ब्राह्मण न तो कुल से होता है, न स्वाध्याय से और न शास्त्र सुनने से ही कोई ब्राह्मण होता है। ब्राह्मण तो केवल सदाचार से ही होता है। चारों वेद पढ़ा होने पर भी जो दुराचारी है वह तो शूद्र से भी नीच है। वास्तव में शास्त्रोक्त कर्त्तव्यों का पालन करने वाला ही असली ब्राह्मण है।" अन्त में यक्ष ने कहा, "सुखी कौन है, आश्चर्य क्या है और जीवन का मार्ग क्या है? मेरे इन प्रश्नों का उत्तर देकर तुम पानी पी सकते हो।" युधिष्ठिर बोले, "हे यक्ष! जिस पर कोई ऋण (कर्जा) नहीं है और जो परदेश में नहीं है, ऐसा व्यक्ति घर पर रुखी-सूखी नमक से खाकर भी सुखी है। इस संसार में प्रतिदिन प्राणी मर रहे हैं किन्तु जो बचे हुए हैं वे हमेशा जीने की इच्छा रखते हैं, इससे बढ़कर और आश्चर्य क्या होगा। इस संसार में धर्म का तत्व अत्यन्त गूढ़ है। अलग-अलग ऋषियों मनीषियों और पैगम्बरों ने अपने-अपने विचार से धर्म की व्याख्या की है। अतः उत्तम मार्ग वही है जिस पर महापुरुष जाते हैं।"

युधिष्ठिर के प्रश्नों से सन्तुष्ट होकर यक्ष ने कहा, "राजन्! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, तुम जल पी लो। इन भाइयों में से तुम जिसे चाहो मैं उसे जीवित कर दूंगा।" यह सुनकर युधिष्ठिर बोले "आप कृपा करके नकुल को जीवित कर दीजिए।" "यक्ष ने आश्चर्य से पूछा, "हे राजन्! तुमने भीम या अर्जुन का जीवन न माँगकर अपने सौतेले भाई नकुल का जीवन क्यों माँगा?" यक्ष का प्रश्न सुनकर युधिष्ठिर ने कहा, "कुन्ती और माद्री मेरी दो माताएँ हैं। मैं चाहता हूँ कि प्रत्येक माता का

एक-एक पुत्र जीवित रहे ।" युधिष्ठिर के उत्तर से प्रसन्न होकर यक्ष ने कहा, "युधिष्ठिर, तुम वास्तव में अत्यन्त उदार हो । तुमसे प्रसन्न होकर मैं तुम्हारे चारों भ्राताओं को जीवित करता हूँ ।" यह कहकर यक्ष ने चारों भाइयों को जीवित कर दिया । फिर बोला, "युधिष्ठिर ! मैं तुम्हारा पिता धर्म हूँ तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो, मैं तुम्हारी परीक्षा लेने आया था तुम मुझसे मनचाहा वरदान माँग लो ।"

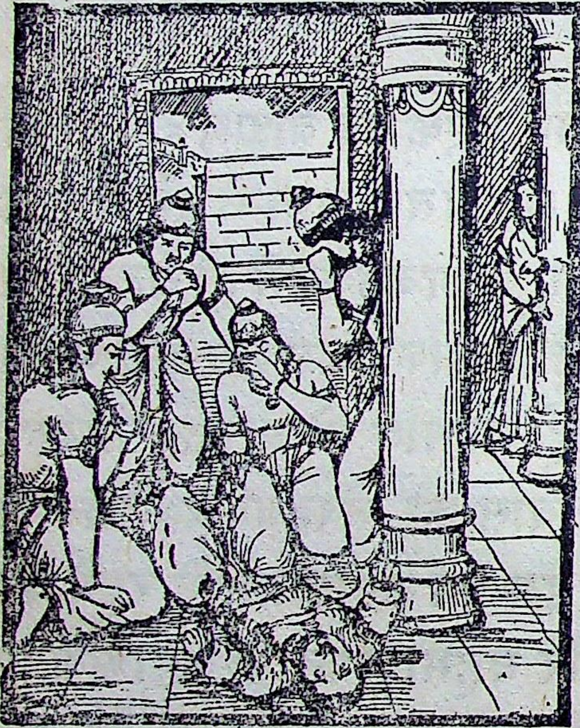
युधिष्ठिर ने कहा, "भगवन् ! एक मृग ब्राह्मण की अरणी और मथानी लेकर भाग गया है । अरणी तथा मथानी उसे वापिस मिल जानी चाहिए ।" यक्ष बोला, "मृग बनकर मैं ही वह अरणी और मथानी ले भागा था । उन्हें ले जाकर तुम उस ब्राह्मण को दे देना । यदि और कोई वर चाहो तो माँग लो ।" कुछ सोचकर युधिष्ठिर ने कहा, "हमारे वनवास को तेरहवाँ वर्ष प्रारम्भ होने वाला है हम चाहते हैं कि इस वर्ष अज्ञातवास में रहने पर न तो कोई हमें पहचान सके और न हमारा पता ही लगा सके ।" यक्ष बोले, "ऐसा ही होगा । मैं तुम्हें परामर्श देता हूँ कि तुम राजा विराट की नगरी में चले जाओ और वहाँ छद्म वेष में रहो । वहाँ तुम्हें कोई नहीं पहचान सकेगा ।" यह कहकर यक्ष अन्तर्ध्यान हो गया । युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ अपने आश्रम को लौट आये । फिर उन्होंने अज्ञातवास में जाने के लिये तपस्वियों से विदा ली । वहाँ से एक कोस चलकर उन्होंने डेरा डाला और अगले दिन से प्रारम्भ होने वाले एकान्तवास के सम्बन्ध में विचार करने लगे ।

॥ इति वन पर्व सम्पूर्ण ॥

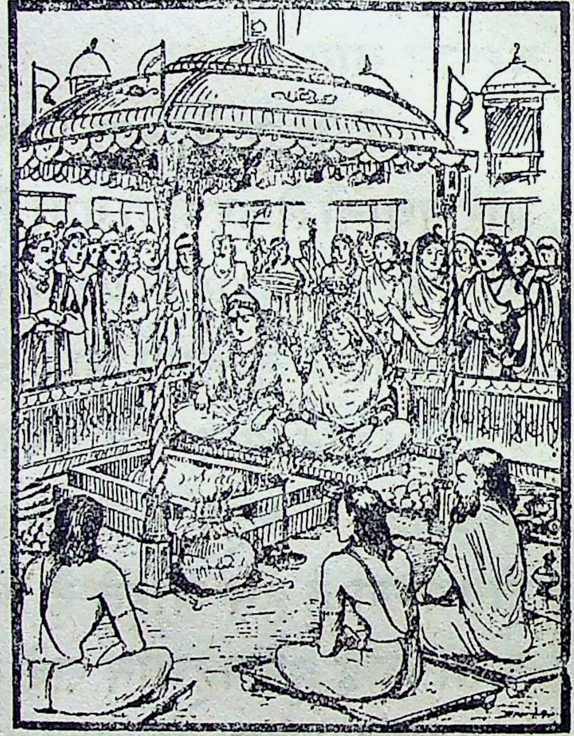
॥ ओ३म् ॥

महाभारत भाषा

४. विराट पर्व



कीचक की मृत्यु पर सम्बन्धियों का विलाप



उत्तरा अभिमन्यु-विवाह

पहला अध्याय

अज्ञातवास का उपक्रम

वैशंपायनजी बोले—हे राजा जनमेजय! एकान्त में बैठकर अब सब पाण्डव भ्राता तथा द्रौपदी अज्ञातवास के विषय में योजना बनाने लगे। महाराज युधिष्ठिर ने कहा, "यह तो निश्चित हो ही गया है कि हमें राजा विराट के यहाँ रहकर अज्ञातवास करना है। अब हममें से प्रत्येक को अपनी-अपनी रुचि का कार्य चुन लेना चाहिए। मेरा अपना विचार तो यह

है कि मैं मत्स्य नरेश विराट के पास जाकर उनकी सभा का सदस्य बन जाऊँ। मैं अपना नाम कङ्क तथा जाति ब्राह्मण बताऊँगा और कहूँगा कि मैं पाँसे के खेल में निपुण हूँ। साथ ही स्वयं को ज्योतिष, वेद-वेदाङ्ग, नीतिशास्त्र आदि का ज्ञाता भी बताऊँगा। यदि वे पूर्व परिचय जानना चाहेंगे तो कह दूँगा कि मैं महाराज युधिष्ठिर का अंतरंग सखा था। अब तुम बताओ भीमसेन, तुम्हारी योजना क्या है ?"

भीमसेन ने कहा, "मैं राजा विराट के पास जाकर कहूँगा कि मेरा नाम बल्लव है और मैं रसोई बनाने में निपुण हूँ। उन्हें सुस्वादिष्ट भोजन खिलाकर मैं सरलता से उनका मन जीत लूँगा। मुझे विश्वास है कि वे प्रसन्न होकर मुझे मुख्य रसोइया बना देंगे। मैं स्वयं को कुश्ती लड़ने में भी निपुण बताऊँगा। फिर बड़े-बड़े पहलवानों को पछाड़कर राजा का कृपापात्र बन जाऊँगा। पूर्व परिचय पूछने पर मैं भी कह दूँगा कि महाराज युधिष्ठिर के यहाँ काम करता था।"

जब अर्जुन से उनकी योजना के विषय में पूछा गया तो उन्होंने बताया, "मैं महाराज विराट के यहाँ जाकर स्वयं को नाचने गाने वाला होजड़ा बताऊँगा। हाथों में चूड़ियाँ और सिर पर चोटी धारण करके अपना नाम बृहन्नला बताऊँगा। समय-समय पर रनिवासों की रानियों को मनोरंजक कहानियाँ सुनाकर तथा नाच गाना सिखाकर उन्हें प्रसन्न करूँगा। अपना परिचय महारानी द्रौपदी की भूतपूर्व दासी कहकर दूँगा। सच तो यह है कि मैं उर्वशी के शाप से इस समय वास्तव में नपुंसक हो गया हूँ।"

जब नकुल से पूछा गया तो उन्होंने कहा, "मैं अश्व विज्ञान में निपुण हूँ। इसलिए महाराज विराट के यहाँ यही कार्य करूँगा। मैं अपना नाम ग्रन्थिक रखूंगा।"

युधिष्ठिर ने फिर सहदेव से पूछा, "भाई! तुम वहाँ क्या करोगे?" उन्होंने बताया, "मैं गौरक्षक का कार्य करूँगा। इसका मुझे ज्ञान भी है और अपना नाम रखूंगा तन्तिपाल। मैं अपने कार्य से राजा को सन्तुष्ट कर लूंगा, आप निश्चिन्त रहें।"

इसके पश्चात् द्रौपदी से पूछा गया, "तुम वहाँ क्या करोगी?" यह प्रश्न सुनकर द्रौपदी ने कहा, "आप मेरी चिन्ता न करें। मैं रनिवास में सैरन्ध्री के रूप में कार्य करूँगी और वहाँ की रानियों तथा राजकुमारियों का नाना प्रकार से शृंगार करके उन्हें प्रसन्न करूँगी। मैं यह कहकर महारानी सुदेष्णा के पास रहूँगी कि पहले मैं महारानी द्रौपदी की सेवा में थी। वे मेरे कार्य से अत्यन्त प्रसन्न थीं।"

इसके पश्चात् युधिष्ठिर ने सब ब्राह्मणों तथा अन्य व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न स्थानों पर उन्हें यह समझाकर भेज दिया कि कोई हमारे बारे में पूछे तो कह देना एक रात पाण्डव लोग हमें सोता हुआ छोड़कर द्वैत वन से न जाने कहाँ चले गये। जब हम अकेले रह गये तो यहाँ चले आये।

दूसरा अध्याय

पाण्डवों का राजा विराट की सभा में पहुँचना

वैशंपायनजी बोले—हे राजन्! पाण्डव लोग द्वैत वन से वेष बदलकर यमुना के दक्षिण तट को पार करते हुए दशार्ण देश के उत्तर, पांचाल के दक्षिण, शूरसेन के मध्य में होते हुए

मत्स्य देश पहुँचे। विराट की राजधानी के निकट पहुँचकर सब भाइयों ने अपने सभी अस्त्र-शस्त्र एक सुरक्षित स्थान में छिपा दिये। यह सुरक्षित स्थान एक शमी वृक्ष का खोखला था जो भयानक श्मशान के निकट था। अपने अस्त्र-शस्त्र वहाँ छिपाकर भीमसेन ने एक नकली मुर्दे को उस वृक्ष की डाल में बाँध दिया जिसके भय से कोई उधर जाने का साहस न कर सके। अब युधिष्ठिर ने आपत्ति के समय एक दूसरे को पुकारने के लिए क्रमशः जय, जयन्त, विजय, जयत्सेन तथा जयद्बल नाम रख दिये। तत्पश्चात् सबने भक्तिपूर्वक देवी दुर्गा का पाठ किया।

सबसे पहले युधिष्ठिर ब्राह्मण के वेश में राजा विराट के दरबार में पहुँचे। वे अपने साथ वैदूर्यमणि तथा स्वर्ण की बनी चौसर की गोटें एक वस्त्र में बाँधकर ले गये थे। राजा के पास पहुँचकर बोले, "राजन्! मैं ब्राह्मण हूँ। सर्वस्व नष्ट हो जाने से जीविका के लिए आपके पास आया हूँ।" यह सुन युधिष्ठिर से राजा ने पूछा, "हे ब्राह्मण देवता! तुम्हारा नाम क्या है? किस गोत्र के हो? कहाँ से आ रहे हो और क्या कार्य कर सकते हो?" युधिष्ठिर बोले, "महाराज! मेरा नाम कङ्क है, गोत्र वैयाघ्रपद है। मैं महाराज युधिष्ठिर का प्रिय सखा था। चौसर अच्छी खेल लेता हूँ।" राजा ने प्रसन्न होकर उन्हें अपनी सभा में रख लिया और कहा कि आज से तुम हमारे भी सखा हुए।

इसके पश्चात् भीम रसोइए के वेष में राजा के दरबार में पहुँचे। पूछने पर अपना पूर्व परिचय देते हुए उन्होंने कहा,

"महाराज! मैं महाराज युधिष्ठिर का विशेष रसोइया था। व्यायाम में मेरी रुचि देखकर उन्होंने मुझे भण्डार का अधिष्ठाता बनाने के साथ-साथ पहलवानों को व्यायाम कराने का कार्य भी मुझे सौंप दिया था। मेरा नाम बल्लव है। अब मैं आपकी सेवा करना चाहता हूँ।" भीमसेन का परिचय पाकर राजा विराट ने कहा, "ठीक है, आज से तुम मेरे भण्डार और रसोई के अध्यक्ष हुए।"

उधर मलिन वेष में साँवले रंग की लावण्यमयी द्रौपदी महारानी सुदेष्णा के पास पहुँचकर बोली, "महारानी! मेरा नाम सैरन्ध्री है। मेरा कार्य बाल सँवारना, जूड़ा बनाना तथा भद्र एवं कुलीन महिलाओं का बनाव-शृंगार करना है। पहले मैं यह कार्य महारानी द्रौपदी के पास रहकर करती थी। वे मेरे कार्य से अत्यन्त प्रसन्न थीं। महारानी द्रौपदी से पहले मैं द्वारिकापुरी की महारानी सत्यभामा की सेवा में थी।" द्रौपदी का परिचय पाकर रानी प्रसन्न हुई और बोली, "तुम्हें अपने पास रखने में मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी, किन्तु सबसे बड़ा भय यह है कि तुम्हें देखकर महाराज अथवा किसी अन्य राजपुरुष का मन चलायमान न हो जाय।" इस शंका को निर्मूल करते हुए सैरन्ध्री ने कहा, "महारानीजी, इस बात की आप चिन्ता न करें। पाँच गन्धर्व सदा मेरी रक्षा करते हैं। इसलिए मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।" इससे सन्तुष्ट होकर रानी सुदेष्णा ने द्रौपदी को अपने रनिवास में रख लिया।

अपराह्न के समय जब राजा विराट ने राजकीय गौशाला के निकट गोपाल के वेष में खड़े हुए सहदेव को देखा तो उन्हें

बुलाकर पूछा, "तुम कौन हो और किस अभिप्राय से यहाँ आये हो ?" सहदेव ने उन्हें प्रणाम करके कहा, "महाराज ! मैं गोपाल वैश्य हूँ । मुझे तन्तिपाल और अरिष्टनेमि भी कहते हैं । मैं महाराज युधिष्ठिर की गौशाला का मुख्य अधिकारी था । अब पाण्डवों का कहीं पता नहीं है । इसलिए जीविका की खोज में इधर-उधर भटक रहा हूँ ।" राजा विराट ने पूछा, "तुम गौओं के विषय में क्या-क्या जानते हो ?" इसके उत्तर में सहदेव ने कहा, "मैं गौओं के भूत, भविष्य एवं वर्तमान से सम्बन्धित सब बातें बता सकता हूँ । गौओं की वंशवृद्धि, उनके रोगों आदि का मुझे पूर्ण ज्ञान है । जिन बैलों के मूत्र को सूँघ कर वन्ध्या स्त्री पुत्र लाभ कर सकती है उनकी भी मुझे पहचान है ।" राजा ने प्रसन्न होकर सहदेव को तत्काल अपनी गौशाला एवं पशुशाला का अध्यक्ष बना लिया ।

इसके कुछ समय पश्चात् बृहन्नला के वेष में अर्जुन राजा विराट के दरबार में पहुँचे । उनकी विचित्र आकृति एवं मुखमुद्रा को देखकर विराट ने पूछा, "तुम कौन हो और क्या चाहते हो ?" हाथ नचाते हुए अर्जुन ने कहा, "महाराज ! मैं नपुंसक हूँ । बृहन्नला मेरा नाम है । नाचना, गाना तथा वाद्य बजाना मेरा कार्य है । यदि महाराज की आज्ञा हो तो मैं रनिवास में जाकर राजकुमारियों को गाना-बजाना सिखा दिया करूँ । वैसे मैंने यह कार्य महाराज युधिष्ठिर के यहाँ भी किया है किन्तु दुर्भाग्य से वे अपने भाइयों एवं मन्त्रियों के साथ कहीं चले गये और मुझे निराश्रय कर गये ।" जब राजा को पूर्ण विश्वास हो गया कि वास्तव में बृहन्नला नपुंसक है तो उसे

रनिवास में राजकुमारी को नाच-गाना सिखाने के लिए नियुक्त कर लिया।

अन्त में नकुल ने दरबार में पहुँचकर कहा, "महाराज! मेरा नाम ग्रन्थिक है। मैं घोड़ों को सिखाने, उनके लक्षणों को पहचानने तथा उनकी चिकित्सा में पारंगत हूँ।" विराट ने नकुल को भी एक गुणी व्यक्ति समझकर अपने दरबार में स्थान दे दिया। इस प्रकार पाँचों पाण्डवों तथा द्रौपदी को मत्स्य देश में आश्रय मिल गया और उन पर किसी ने सन्देह भी नहीं किया।

तीसरा अध्याय

भीमसेन द्वारा जीमूत का वध

वैशंपायनजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार पाण्डव लोग राजा विराट की नगरी में सुखपूर्वक अपने दिन बिताने लगे। एकान्त पाकर वे परस्पर मिलकर इस प्रकार विचार-विमर्श भी कर लेते थे जिससे किसी को उनके ऊपर तनिक भी संदेह न हो। तीन मास बीत गए। चौथे मास के प्रारम्भ में राजधानी में ब्रह्मा का विशाल मेला लगा। इस मेले में अनेक प्रकार के खेलों एवं व्यायाम-प्रदर्शन का भी आयोजन किया गया। अपना बल प्रदर्शन करने के लिए बड़े-बड़े पहलवान एकत्रित हुए। इन पहलवानों में जीमूत सबसे अधिक विख्यात था। उसने आते ही मत्स्य देश के समस्त पहलवानों को मल्लयुद्ध करने को ललकारा। उसके विशाल शरीर को देखकर किसी को उससे भिड़ने का साहस नहीं हुआ। तब राजा विराट ने भीमसेन को बुलाकर कहा, "बल्लव! तुम तो महाराज

युधिष्ठिर के यहाँ रहकर युवकों को मल्लयुद्ध सिखाया करते थे। क्या तुम जीमूत से युद्ध कर सकते हो ?" भीमसेन ने उत्तर दिया, "यदि महाराज की आज्ञा होगी तो अवश्य युद्ध करूँगा।" महाराज की आज्ञा मिलते ही भीमसेन लंगोट बाँधकर अखाड़े में कूद पड़े और जीमूत को ललकारा। फिर दोनों मस्त गज-राज की भाँति परस्पर भिड़ गये। कुछ देर तक भीमसेन उसे खिलाते रहे। फिर अवसर पाकर भीमसेन ने जीमूत को पकड़ कर ऊपर उठा लिया और चारों ओर घुमाकर पृथ्वी पर पटक दिया। पृथ्वी पर गिरते ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। यह देख कर दर्शकगण तथा महाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए। महाराज विराट ने उन्हें अनेक बहुमूल्य पारितोषिक देकर सम्मानित किया।

चौथा अध्याय

कीचक वध

इस प्रकार पाण्डवों को विराट की नगरी में रहते हुए दस मास बीत गये। एक दिन विराट का प्रधान सेनापति तथा रानी सुदेष्णा का भ्राता महाबली कीचक रनिवास में आया। वहाँ द्रौपदी को देखकर वह उस पर आसक्त हो गया। उसने महारानी सुदेष्णा से पूछा, "बहन! यह सुन्दरी कौन है? पहले तो मैंने इसे यहाँ कभी नहीं देखा। मैं इसे अपनी पत्नी बनाना चाहता हूँ ?" कीचक के वचन सुनकर सुदेष्णा ने कहा, "भाई! तुम अनुचित मार्ग का अनुसरण कर रहे हो। यह गन्धर्वों द्वारा रक्षित है। इसे तुम कदापि प्राप्त नहीं कर सकते। बहन की बात को अनसुना करके वह स्वयं द्रौपदी के पास

जाकर प्रणय-निवेदन करने लगा। द्रौपदी ने कहा, "आप महान सेनापति हैं और मैं चोटी गूँथने वाली एक साधारण दासी हूँ। आपको मुझसे इस प्रकार की बातें करना शोभा नहीं देता। फिर मैं एक विवाहिता स्त्री हूँ। मैं तो इस विषय में सोच भी नहीं सकती। इसके अतिरिक्त पाँच महाबली गंधर्व मेरे रक्षक हैं। यदि उन्हें यह बात मालूम होगी तो वे आपको मार डालेंगे।"

द्रौपदी से निराश होकर कीचक अपनी बहन के पास आकर बोला, "यदि तुम सैरन्ध्री को मेरे पास नहीं भेजोगी तो मैं आत्महत्या कर लूँगा।" जब वह किसी प्रकार से नहीं माना तो सुदेष्णा ने कहा, "अच्छा, मैं किसी बहाने से उसे तुम्हारे पास भेज दूँगी। तुम उसे समझा बुझाकर सहमत कर लेना।" बहन से यह आश्वासन पाकर कीचक प्रसन्नतापूर्वक अपने भवन में चला गया। कुछ देर पश्चात् रानी ने द्रौपदी को बुलाकर आदेश दिया, "सैरन्ध्री! तुम यह स्वर्णपात्र ले जाओ और कीचक के यहाँ से उत्तम मदिरा ले आओ।" यह आदेश सुनकर द्रौपदी ने प्रार्थना की, "आप मुझे वहाँ न भेजिये, वे मेरे साथ दुर्व्यवहार करेंगे। आप किसी अन्य दासी को भेज दीजिये।" परन्तु सुदेष्णा न मानी उसने द्रौपदी को वहाँ जाने के लिए विवश किया। भय से दुःखी होकर द्रौपदी ने मार्ग में भगवान से प्रार्थना की, "हे प्रभो! इस दुष्ट से मेरे सतीत्व की रक्षा करना।"

जब द्रौपदी कीचक के भवन में पहुँची तो पहले उसने मीठी-मीठी बातों से उसे वश में करने की चेष्टा की। फिर

विकल होकर उस पर बलात्कार करने के लिए उद्यत हुआ। कीचक को धक्का देकर द्रौपदी राजसभा की ओर दौड़ी। कीचक भी उसके पीछे भागा। राजसभा में पहुँचकर उसने विराट के सामने ही चोटी पकड़कर द्रौपदी को पृथ्वी पर गिरा दिया और उसके लात मारी। उस समय युधिष्ठिर और भीमसेन भी वहाँ बैठे थे। अपमान से क्रुद्ध होकर भीमसेन कसमसाने लगे, तो प्रगट हो जाने के भय से युधिष्ठिर ने उन्हें संकेत से रोक दिया, वे विवश होकर शान्त हो गये। द्रौपदी ने राजा विराट को इस विषय में उपालम्भ दिया, परन्तु वे कीचक से दबते थे इसलिए उचित न्याय न कर सके।

जब द्रौपदी मलिन मुख रनिवास में पहुँची और रानी को सम्पूर्ण वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो कहने लगी, "कीचक ने यह अनुचित कार्य किया है। यदि तुम कहो तो उसे बुलाकर तुम्हारे सम्मुख उससे क्षमा याचना कराऊँ।" रानी की बात सुनकर द्रौपदी ने कहा, "आप रहने दीजिए। कीचक ने मेरे रक्षक गन्धर्वों का अपमान किया है। मुझे विश्वास है, वे दो एक दिन में उसे मृत्यु दण्ड अवश्य देगें।" रात्रि को जब वह भीमसेन के कक्ष में पहुँची। उसने उन्हें खर्राटे लेते पाया। उन्हें जगाकर कहा, "हे नाथ! अभी कीचक जीवित है और तुम खर्राटे लेकर सो रहे हो।" द्रौपदी के उपालम्भ को सुनकर भीम बोले, "मैं तो राजसभा में ही कीचक को समाप्त कर देता किन्तु हमारा भेद खुल जाने के भय से धर्मराज ने संकेत से मुझे रोक दिया था। तुम धैर्य रखो, मैं कीचक को अवश्य मारूँगा। कल सन्ध्या को तुम कीचक से मिलकर कहना कि मैं तुमसे रात्रि को राजा

विराट की नाट्यशाला में मिलूँगी। मैं वहाँ जाकर स्त्री वेष में छिपकर बैठ जाऊँगा और उसके आते ही उसका वध कर तुम्हारे अपमान का बदला लूंगा।

द्रौपदी ने दूसरे दिन सन्ध्या को अपनी भावमुद्रा से मुग्ध करके कीचक को नाट्यशाला में मिलने के लिए सहमत कर लिया। जब निश्चित समय पर कीचक नाट्यशाला में पहुँचा तो भीमसेन वहाँ स्त्री वेष में बैठे थे। कीचक ने भीमसेन को द्रौपदी समझकर उनके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा, "प्रिय! आज मैं तुम्हारे लिए बहुत से मूल्यवान वस्त्र एवं आभूषण लाया हूँ। अब शीघ्र मेरे हृदय से लग जाओ।" यह सुनते ही भीमसेन उछलकर खड़े हो गये और उसके बाल पकड़कर बोले "पापी! तू यमलोक में जाकर यमदूतों के हृदय से लगना। आज मैं तुझे मारकर सैरन्ध्री को निष्कंटक करूँगा।" यह कहकर दोनों हाथों से कीचक की छाती पर प्रहार किया। सारी स्थिति समझकर कीचक भी उनसे भिड़ गया। क्रुद्ध गजराजों की भाँति उन्मत्त होकर दोनों एक दूसरे पर भयानक प्रहार करने लगे। अन्त में भीम ने उसे नीचे गिरा कर मार डाला। इस पर भी उनका क्रोध शान्त न हुआ। उन्होंने उसके हाथ, पैर और गर्दन तोड़कर उसके लोथ में घुसेड़ दिये।

प्रातःकाल समस्त नागरिकों को ज्ञात हो गया कि सैरन्ध्री के रक्षक गन्धर्वों ने कीचक को बुरी तरह से क्षत-विक्षत करके मार डाला है। उसके सगे सम्बन्धी कहने लगे कि सैरन्ध्री के कारण ही कीचक मारा गया है। इसलिए इसे भी मारकर कीचक के साथ चिता में जला देना चाहिए। कीचक के कुछ

सम्बन्धी राजा विराट के पास इस बात की अनुमति लेने के लिए पहुँचे। उनकी रोषभरी लाल-लाल आँखें देखकर राजा विराट ने भयभीत हो उन्हें ऐसा करने की अनुमति दे दी। जब वे द्रौपदी को पकड़कर ले जाने लगे तो वह आर्त्तनाद करती हुई जय, जयन्त, विजय, जयत्सेन तथा जयद्बल को पुकारने लगी। भीमसेन उसका आर्तनाद सुनकर वेष बदलकर पिछले द्वार से निकले और श्मशान की ओर दौड़े। मार्ग में एक सूखे विशाल वृक्ष को उखाड़कर उन लोगों पर झपटे जो द्रौपदी को पकड़कर ले जा रहे थे। उन्हें गन्धर्व समझ वे द्रौपदी को छोड़ नगर की ओर भागे किन्तु भीमसेन ने उन्हें फिर भी न छोड़ा। एक सौ पाँच व्यक्तियों को उस वृक्ष से मार डाला। इसके उपरान्त उन्होंने द्रौपदी के बन्धन खोलकर उसे निर्भय कर रनिवास को भेजा और स्वयं एक अन्य मार्ग से पाकशाला पहुँच गये।

नगर निवासियों को जब इस भयंकर मारकाट की सूचना मिली तो वे राजा के पास जाकर बोले, "महाराज! किसी प्रकार सैरन्ध्री को समझा बुझाकर यहाँ से विदा कर दीजिए, अन्यथा किसी दिन उसके रक्षक गन्धर्व राज्य को ही नष्ट कर देंगे।" प्रजाजनों की बात सुनकर विराट ने यही बात रानी सुदेष्णा से जाकर कही। विराट की बात सुनकर रानी ने यही बात द्रौपदी से कही तो वह बोली, "महारानी जी! आपने कृपा करके मुझे साढ़े ग्यारह महीने से अधिक समय तक रखा है। केवल तेरह दिन और रहने दीजिए। तब या तो मैं स्वयं चली जाऊँगी या मेरे रक्षक मुझे आकर ले जायेंगे। भगवान की कृपा से वे आपके राज्य का भी कल्याण करेंगे।"

द्रौपदी की बात सुनकर रानी ने उसे तेरह दिन और रहने की अनुमति दे दी।

पाँचवाँ अध्याय

कौरवों द्वारा गौओं का हरण तथा विराट से युद्ध

वैशम्पायन जी बोले— हे राजेन्द्र! जब पाण्डवों का अज्ञातवास लगभग समाप्त होने को आया और कौरवों को उनके निवास स्थान का पता न चल सका तो दुर्योधन और उसके साथी अत्यन्त चिन्तित हुए। गुप्तचरों की संख्या और बढ़ा दी गई। वे बहुत तेजी से उनको खोज में दौड़-धूप करने लगे। कुछ गुप्तचरों ने तो यह भी समाचार दिया कि संभवत: अब पाण्डव लोग इस संसार में ही नहीं हैं। इससे दुर्योधन आश्वस्त नहीं हुआ। उसने पाण्डवों का पता लगाने वाले को भारी पुरस्कार देने की घोषणा की। भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विदुर आदि को विश्वास था कि अवधि समाप्त होते ही पाण्डव अवश्य प्रगट होंगे। कर्ण का विचार था कि चाहे कुछ भी हो, हमें कुछ देशों पर विजय प्राप्त करके अपनी शक्ति और बढ़ानी चाहिए ताकि यदि हमें पाण्डवों के साथ युद्ध करना पड़े तो ये राजा लोग हमारा साथ दें और हम समरभूमि में पाण्डवों को पराजित कर सकें।

कर्ण के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए त्रिगर्त देश के राजा सुशर्मा ने कहा, "मत्स्य देश के राजा विराट ने अपने पराक्रमी सेनापति कीचक की सहायता से अनेक बार मुझे पराजित किया है। अब कीचक मर चुका है, अतएव उसके राज्य पर आक्रमण कर देना चाहिए। इस प्रकार मेरा प्रतिशोध भी पूरा हो

जायेगा और हमें विजय प्राप्त करने के पश्चात् भावी युद्धों में उसकी सेना का सहयोग भी मिल सकेगा।" यह बात सबको युक्तिसंगत प्रतीत हुई। दुर्योधन ने सुशर्मा से कहा, "आप अपनी सेना को लेकर विराट के राज्य में जायें और वहाँ लूट-पाट मचायें। अच्छी नस्ल की गौओं को छीनें। अवसर पाकर दूसरी ओर से हम भी उस पर आक्रमण कर देंगे।" तदनुसार सुशर्मा ने एक दिन राजा विराट के नगर पर आक्रमण करके उसकी बहुत सी गौएँ छीन लीं। तब तक पाण्डवों के अज्ञातवास की अवधि समाप्त हो चुकी थी।

त्रिगर्त नरेश द्वारा गौओं के छीने जाने का समाचार पाकर स्वयं राजा विराट अपने भ्राता शतानीक तथामदिराश्व एवं अपने ज्येष्ठ पुत्र शंख के साथ चतुरंगिणी सेना को लेकर रणभूमि में जा पहुँचे। चलते समय उन्होंने शतानीक से कहा, "कङ्क, बल्लव, ग्रंथिक एवं तन्तिपाल भी युद्ध कर सकते हैं। अतएव उन्हें भी द्रुतगामी रथ तथा अस्त्र-शस्त्र दे दो।" विराट की आज्ञानुसार शतानीक ने ऐसा ही किया। दोनों ओर की सेनाएँ रणभूमि में अपना पराक्रम दिखाने लगी। हताहत सैनिकों के पर्वताकार ढेर लगने लगे। शतानीक ने शत्रु पक्ष के सौ और मदिराश्व ने चार सौ सैनिकों को धराशायी कर दिया। स्वयं राजा विराट ने पाँच सौ रथी, पाँच महारथी और आठ सौ अश्वारोहियों को मृत्युलोक पहुँचाया। युद्ध करते-करते वे सुशर्मा के सम्मुख जा पहुँचे। उन्होंने अद्‌भुत रणकौशल का परिचय दिया, परन्तु सुशर्मा ने उन्हें बन्दी बना लिया। विराट के बन्दी होते ही मत्स्य देश की सेना ने पलायन कर दिया।

जब युधिष्ठिर को ज्ञात हुआ कि सुशर्मा विराट को बंदी बनाकर अपने नगर को ले जा रहा है तो उन्होंने भीमसेन को उन्हें तत्काल छुड़ा लाने की आज्ञा दी। यह सुनते ही भीमसेन बाणों की वर्षा करते हुए सुशर्मा के पास जाकर उसके साथ भयंकर युद्ध करने लगे। क्षणभर में ही अपनी भयानक मारकाट से भीमसेन ने शत्रु पक्ष में हाहाकार मचा दिया। उन्होंने सुशर्मा के रथ के घोड़ों, सारथि एवं रक्षकों को मार डाला। अवसर पाकर राजा विराट भी सुशर्मा की गदा लेकर रथ से कूद पड़े और उस पर आक्रमण करने के लिए झपटे। यह देख रणक्षेत्र से सुशर्मा भागने लगा, किन्तु भीमसेन ने उसके केश पकड़कर अपनी ओर खींच लिया और झटका देकर पृथ्वी पर गिरा दिया। फिर उसके मस्तक पर एक लात मारी जिससे वह मूर्च्छित हो गया। सुशर्मा को परास्त कर राजा विराट तथा गौओं को छुड़ाकर पाण्डवगण लौट आये। युधिष्ठिर के कहने से सुशर्मा को जीवित छोड़ दिया गया। सूर्योदय के समय नगर में महाराज विराट के विजय की घोषणा की गई।

जब राजा विराट सुशर्मा से युद्ध कर रहे थे, उसी समय दूसरी ओर से दुर्योधन, भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, शकुनि, दुःशासन, विकर्ण, चित्रसेन आदि कौरवों ने विराट की चारों ओर से घेरकर साठ हजार गौएँ छीन लीं। इस भयंकर और आकस्मिक आक्रमण की सूचना तुरन्त राजकुमार उत्तर को दी गई। वह कहने लगा, "एक मास पूर्व मेरा सारथि मर चुका है। यदि मुझे कोई चतुर सारथि मिल जाय तो मैं कौरवों को परास्त करके उनसे अपनी गौएँ

छुड़ाकर ला सकता हूँ।" यह सुन अर्जुन ने एकान्त में द्रौपदी से कहा, "तुम उत्तर से जाकर कहो कि बृहन्नला को अपना सारथि बना ले। वह बहुत कुशल सारथि है। एक बार उसने अर्जुन का भी रथ हाँका था।" द्रौपदी ने यह बात उत्तर से जाकर कह दी। राजकुमार बोला, "मैं स्वयं बृहन्नला से सारथि बनने को नहीं कह सकता।" उसने कहा "आप उत्तरा से कहलाइये। वे उनकी शिष्य हैं। वे उनकी बात नहीं टालेंगे।" उत्तर ने उत्तरा से कहा और उत्तरा का अनुरोध मानकर बृहन्नला रूप धारी अर्जुन ने राजकुमार उत्तर का सारथि बनना स्वीकार कर लिया।

राजधानी से निकलकर जब उत्तर कुमार और बृहन्नला श्मशान के पास वाले शमी वृक्ष के निकट पहुँचे तो कौरवों की असंख्य सेना को देखकर राजकुमार उत्तर का हृदय भय से काँपने लगा। वह बोला, "इतने बड़े-बड़े महारथियों से युक्त इस विशाल सेना से मैं अकेला कैसे युद्ध कर सकूँगा? तुम रथ को लौटा ले चलो।" अर्जुन उसे क्षत्रिय धर्म बताते हुए साहस बढ़ाने लगे तो वह निराश होकर रथ से कूद पड़ा और राजधानी की ओर पैदल ही भागने लगा। तब उसे पकड़कर अर्जुन ने कहा, "यदि तुम कौरवों से युद्ध नहीं कर सकते तो तुम मेरे सारथि बन जाओ। मैं कौरवों से युद्ध करके तुम्हारी गौएँ छुड़ाऊँगा।"

बहुत समझाने-बुझाने पर उत्तर ने लौटकर सारथि बनना स्वीकार किया। शमी वृक्ष के निकट पहुँचकर अर्जुन ने कहा, "तुम इस वृक्ष पर चढ़कर वहाँ रखा दिव्य धनुष तथा

बाण उतार लाओ। तुम्हारा धनुष इतना कमजोर है कि मेरे हाथ में आते ही टूट जायेगा।" पाण्डवों के दुर्लभ अस्त्र-शस्त्रों को देखकर उत्तर चकित रह गया और प्रत्येक शस्त्र के विषय में पूछताछ करने लगा। अर्जुन ने संक्षेप में सबका इतिहास बता दिया। जब उत्तर ने पूछा, "यदि ये दिव्य अस्त्र पाण्डवों के हैं तो वे स्वयं कहाँ हैं?" यह शब्द सुनकर बृहन्नला ने मुस्कराते हुए कहा, "मैं स्वयं कुन्तीपुत्र अर्जुन हूँ।" फिर शेष पाण्डवों के विषय में भी बता दिया कि वे किस प्रकार वेष बदलकर इस राजधानी में रह रहे हैं।"

अर्जुन का परिचय पाकर उत्तर ने उन्हें प्रणाम किया और प्रसन्नतापूर्वक उनकी आज्ञा का पालन करने लगा। अर्जुन ने चूड़ियाँ उतार कर वीर वेष धारण कर लिया और गाण्डीव पर प्रत्यंचा चढ़ाई। उससे एक भयंकर ध्वनि गूँजी जिसे सुन कर कौरवों ने समझ लिया कि यह अर्जुन के गाण्डीव का शब्द है। फिर अर्जुन ने अपना शंख बजाया। शंख की ध्वनि सुनते ही गुरु द्रोणाचार्य ने कहा, "कौरवो! यह ध्वनि अर्जुन के शंख के अतिरिक्त और किसी की नहीं हो सकती। आज कौरव सेना की पराजय निश्चित है। हमें गौओं को बीच में रखकर सावधानीपूर्वक व्यूह की रचना करनी चाहिये।"

दुर्योधन ने हर्ष से कहा, "पाण्डवों की अज्ञातवास की अवधि अभी समाप्त नहीं हुई है।" भीष्म ने विचारकर कहा, "ऐसा नहीं है, वास्तव में पाण्डवों के वनवास एवं अज्ञातवास की अवधि समाप्त हो चुकी है। इसी से अर्जुन तुम्हारे सामने खड़ा है। अब तुम चाहो तो उससे युद्ध करो और चाहो तो

सन्धि कर लो।" दुर्योधन द्वारा युद्ध करने का निश्चय प्रगट करने पर उन्होंने कहा, "सेना को चार भागों में विभक्त कर लो। एक भाग के साथ तुम राजधानी चले जाओ। दूसरा भाग सब गौओं को लेकर जाय। शेष सेना को लेकर हम अर्जुन के साथ युद्ध करेंगे।" इसी योजना के अनुसार कार्य किया गया।

अर्जुन के आदेशानुसार उत्तर रथ लेकर कौरव सेना के निकट पहुँचा। उन्होंने वहाँ सब महारथियों को तो पाया परन्तु दुर्योधन कहीं दिखाई नहीं दिया। वे समझ गए कि दुर्योधन गौओं को लेकर वहाँ से चला गया है। सम्भवतः वह दक्षिण मार्ग से गया है। अतः उन्होंने भी अपना रथ दक्षिण पथ पर ले चलने के लिए कहा। अर्जुन का रथ दक्षिण पथ पर मुड़ते ही कृपाचार्य समझ गए कि अर्जुन दुर्योधन का पीछा करने जा रहे हैं। अतएव उन्होंने अपनी सेना से दुर्योधन की रक्षा करने के लिए कहा।

अर्जुन ने दुर्योधन के पास पहुँचकर भयंकर शंखनाद किया जिससे भयभीत होकर गौएँ अपनी पूंछ उठाकर डरती हुई राजधानी की ओर भाग खड़ी हुईं। गोपाल भी अपनी गौओं के पीछे-पीछे चल पड़े। जब अर्जुन दुर्योधन की ओर बढ़े तो तो मार्ग में कर्ण ने आकर उनका मार्ग रोका। उसकी चिन्ता न करते हुए महावीर अर्जुन अपने बाणों की अग्नि से शत्रु सेना को भस्म करने लगे। कर्ण की सहायता करते हुए चित्रसेन आदि भी अर्जुन पर बाण वर्षा करने लगे, किन्तु अर्जुन के बाणों की मार को न सहकर विकर्ण, शत्रुनाभ आदि अनेक महारथी मूर्च्छित हो गये और उनके सारथि उनके प्राणों की रक्षा करने

के लिए उन्हें युद्धभूमि से भगा ले गये। अपनी सेना की दुर्दशा होते देख कर्ण ने क्रोधित होकर एक साथ बारह बाण छोड़े जिससे अर्जुन तथा उनके रथ के घोड़े घायल हो गये उत्तर के हाथ में भी घाव लगा। इससे कुपित हो अर्जुन ने मल्ल बाणों से कर्ण के ऊपर प्रहार किया जो कर्ण की भुजा, सिर, मस्तक, गर्दन आदि अंगों में घुस गए। इस आघात को न सह सकने के कारण वह समरक्षेत्र से भाग खड़ा हुआ।

अब दुर्योधन और उसके सैनिकों ने अर्जुन के रथ को चारों ओर से घेरकर भारी बाण-वर्षा की। अर्जुन ने भी दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करके भयंकर मारकाट मचाई। सैनिक हताहत होकर भारी संख्या में गिरने लगे। इससे भयभीत होकर दुर्योधन वहाँ से भाग गया। अब अर्जुन ने दूर खड़े कृपाचार्य के रथ की ओर अपना रथ ले चलने का उत्तर को आदेश दिया। अर्जुन ने कृपाचार्य के पास पहुँचकर एक बाण उनके चरणों में छोड़कर उन्हें प्रणाम किया और फिर अपना नाम बताकर बाणों की वर्षा करने लगा। कृपाचार्य ने भी बाणों की वर्षा करके उन्हें चारों ओर से आच्छादित कर दिया। इस पर अर्जुन ने बाणों का घेरा तोड़कर कृपाचार्य के रथ के घोड़ों को घायल कर दिया। घायल होकर घोड़े उछल पड़े और कृपाचार्य रथ से नीचे गिर पड़े, परन्तु अर्जुन ने उन पर प्रहार नहीं किया। कृपाचार्य ने शीघ्रता से दूसरे रथ पर सवार होकर अर्जुन को दस बाण मारे। अर्जुन ने तीक्ष्ण मल्ल बाण मारकर उनके धनुष और कवच काट डाले, किन्तु उनके शरीर पर कोई घाव न लगने दिया। अन्त में थककर कृपाचार्य मैदान से हट गये।

उनके हटते ही द्रोणाचार्य अपना रथ लेकर आगे आ गए। उन्हें प्रणाम करके अर्जुन ने कहा, "आचार्य प्रवर! पहले आप प्रहार कीजिये।" यह सुन उन्होंने अनेक बाण एक साथ छोड़े जिन्हें अर्जुन ने बीच में ही काट दिया। आचार्य ने दिव्य अस्त्र शस्त्रों का प्रयोग किया तो अर्जुन ने भी दिव्य अस्त्रों से उनका उत्तर दिया। साथ ही उन्होंने कौरव सेना पर असंख्य बाणों की वर्षा भी की। फिर अपने बाणों से उन्होंने द्रोणाचार्य के रथ को चारों ओर से ढक दिया। जब कौरव सेना को द्रोणाचार्य का रथ दिखलाई नहीं दिया तो वह हाहाकार करने लगी। उसी समय ध्वजा और कवच कट जाने के कारण द्रोणाचार्य युद्धभूमि से हट गये। फिर अश्वत्थामा उनसे आकर भिड़ गए, किन्तु वे भी अधिक समय तक अर्जुन के सम्मुख न टिक सके।

अश्वत्थामा के जाने के पश्चात् कर्ण फिर मैदान में युद्ध करने के लिए आ डटा। उसे देखकर अर्जुन ने कहा, "हे सूत पुत्र! तुम अभी तो रणभूमि से प्राण बचाकर भागे थे। अब पुनः लड़ने आ गए।" कुछ देर तक दोनों में वाक्‌युद्ध होता रहा। फिर दोनों ओर से भयानक बाणों की वर्षा होने लगी, कर्ण के बाणों से अर्जुन के अंगुलित्राण कट गए और अर्जुन के बाणों से कर्ण का तरकस कट गया। जब कर्ण के एक बाण ने अर्जुन को घायल कर दिया तो अर्जुन ने क्रोध करके उसकी छाती को लक्ष्य करके अग्निबाण छोड़ा जो कर्ण के कवच को चीरकर उसकी छाती में लगा। वह मूर्च्छित हो गया। उसका सारथि उसे रणक्षेत्र से निकाल ले गया। कर्ण को भागते देख

वीर अर्जुन ने कहा, "राजकुमार ! अब तुम मुझे भीष्म पितामह के पास ले चलो जिनका रथ इसी ओर मुँह किये खड़ा है।"

भीष्म के पास पहुँचकर अर्जुन ने पहले उन्हें प्रणाम किया फिर एक बाण से उनकी ध्वजा का दण्ड काट डाला। इसी बीच दुःशासन, विकर्ण, दुःसह तथा विविंशति ने आकर एक साथ अर्जुन पर आक्रमण कर दिया। दुःशासन के एक बाण से अर्जुन घायल हो गये। अर्जुन ने भी एक साथ पाँच बाण मारकर उसे घायल कर दिया। घायल होते ही वह वहाँ से भाग गया। फिर उन्होंने एक बाण विकर्ण के मस्तक पर मारा जिससे वह अचेत होकर गिर पड़ा। उसके रक्षक उसे दूसरे रथ पर बिठाकर वहाँ से ले गये। उन वीरों के भागते ही भीष्मपितामह ने अनेक बाण मारकर अर्जुन को घायल कर दिया। अर्जुन ने दिव्य अस्त्रों का सहारा लिया। उसके उत्तर में भीष्म ने भी दिव्य अस्त्र छोड़े। दोनों ओर से दिव्य अस्त्र छूटकर इस प्रकार की ज्योतिर्मय चकाचौंध उत्पन्न कर रहे थे कि कोई भी योद्धा उनकी ओर दृष्टि उठाकर नहीं देख सकता था। ऐसा प्रतीत होता था कि दोनों ओर तड़कती हुई बिजलियाँ चमक रही हैं। दोनों ही दुर्द्धर्ष वीर थे। दोनों का ही पराक्रम अद्वितीय था। एक बार तो अर्जुन भीष्म की मार से व्याकुल हो गये। तब उन्होंने साहस करके एक अति तीक्ष्ण बाण से पितामह के धनुष की प्रत्यंचा काट डाली और दस तीक्ष्ण बाण एक साथ उनकी छाती में मारे जिससे व्यथित होकर उन्होंने सँभलने के लिए रथ का डण्डा पकड़ लिया और वहीं मूर्च्छित हो गए। उनकी ऐसी दशा देखकर उनका सारथि उन्हें

रणभूमि से बाहर ले गया। फिर अर्जुन ने एक सम्मोहन बाण छोड़कर समस्त कौरव वीरों को मूर्च्छित कर दिया और सेना के घेरे से अपने रथ को निकाल दूर जाकर खड़े हो गए।

जब कौरव सेना को चेत हुआ तो उन्होंने देखा कि अर्जुन युद्ध को समाप्त कर अपना रथ लिये दूर खड़े हैं। अर्जुन को देखकर क्रोध से दुर्योधन ने अपनी सेना से कहा, "आप खड़े-खड़े क्या देख रहे हैं। घेरकर उसे मार डालो।" दुर्योधन का कथन सुनकर भीष्म बोले, "दुर्योधन! इतनी देर तक उसके साथ युद्ध हुआ। तब तुम्हारा बल और बुद्धि कहाँ चले गए थे। यह उसकी महानता है कि तुम्हारे अचेत होने पर भी उसने तुम्हारी हत्या नहीं की, अन्यथा एक भी कौरव जीवित दिखाई नहीं देता। अतएव यही उचित होगा कि सब लोग चुपचाप हस्तिनापुर को लौट चलो।" अन्य वीरों ने भी भीष्मजी की बात का समर्थन किया और वे लौटने को तैयार हो गए।

कौरवों को इस प्रकार लौटते देख अर्जुन ने गुरुजनों के चरणों में एक-एक बाण छोड़कर सबको प्रणाम किया और एक बाण से दुर्योधन का मुकुट काट डाला। इसके उपरान्त शंखनाद करते हुए अर्जुन राजा विराट की राजधानी को लौट पड़े। मार्ग में शमी वृक्ष के निकट जाकर अर्जुन ने कहा, "राजकुमार! यह तो तुम जान ही गये हो कि पाण्डव तुम्हारे यहाँ रह रहे हैं, किन्तु अभी तुम यह भेद अपने पिता पर प्रगट मत करना। उससे कहना कि मैंने कौरवों को हराकर उनसे गौएँ छीनी हैं।" इसके पश्चात् अर्जुन ने अपने समस्त अस्त्र-

शस्त्र उसी वृक्ष पर रख दिये और पुनः बृहन्नला बनकर रथ हाँकने लगे।

छठा अध्याय

पाण्डवों का वास्तविक रूप में आना और अभिमन्यु-उत्तरा का विवाह

वैशम्पायनजो बोले—हे नरेश! जब राजा विराट सुशर्मा को परास्त करके अपनी राजधानी लौटे और उन्हें यह ज्ञात हुआ कि पीछे से कौरव सेना ने उनके राज्य पर आक्रमण कर दिया था तथा गौओं को छीनकर ले गये थे और उनसे युद्ध करने के लिए राजकुमार उत्तर बृहन्नला को सारथि बनाकर गये हैं तो यह समाचार सुनकर उन्हें अत्यन्त चिन्ता हुई। वे इससे और भी चिन्तित हुए कि साथ में नपुंसक सारथि होने के कारण राजकुमार के प्राणों पर न आ बने। बृहन्नला तो युद्ध का घोष सुनकर अचेत हो जायेगा। वह उत्तर के रथ को भली भाँति कैसे चला सकेगा? विराट की चिन्ता को देखकर उन्हें धैर्य बंधाते हुए युधिष्ठिर ने कहा, "महाराज! यदि बृहन्नला राजकुमार के साथ है तो चिन्ता की कोई बात नहीं हैं। कौरव उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते।"

इसी समय दूतों ने राजसभा में जाकर सूचना दी कि राजकुमार विजय प्राप्त करके लौट आये। विराट ने प्रसन्न होकर दूतों को बहुत सा पुरस्कार दिया। मंत्रियों से कहा, "राजकुमार की बड़े सम्मान के साथ अगवानी की जाय।" यह सुनकर मंत्री आज्ञापालन के लिए चले गये। राजा विराट कङ्क के साथ पाँसे खेलने लगे। खेलते हुए वे बोले, "कङ्क! यह कितने गौरव की बात है कि मेरे पुत्र ने महापराक्रमी कौरवों को

इतनी सरलता से पराजित कर दिया।" यह सुनकर युधिष्ठिर बोले, "महाराज! जिसका सारथि बृहन्नला हो, उसकी तो विजय निश्चित ही है।"

कङ्क के मुख से बार-बार बृहन्नला की प्रशंसा सुनकर विराट को क्रोध आ गया। उन्होंने अपने हाथ के पाँसे युधिष्ठिर के मुख पर मारते हुए कहा, "अधम ब्राह्मण! तू मेरे वीर पुत्र की तुलना एक नपुंसक के साथ कर रहा है।" पाँसे लगने से युधिष्ठिर की नाक से रक्त बहने लगा। उन्होंने उसे हाथ से रोक लिया, पृथ्वी पर नहीं गिरने दिया। उस समय द्रौपदी वहाँ किसी कार्य से आई थी। वह शीघ्र ही जल ले आई और युधिष्ठिर ने उस रक्त को धो डाला। उसी समय द्वारपाल ने बृहन्नला सहित राजकुमार के आने की सूचना दी। राजा ने दोनों को सम्मान सहित दरबार में ले आने की आज्ञा दी। तभी युधिष्ठिर ने द्वारपाल के कान में कहा, "बृहन्नला को यहाँ मत लाना। यदि वह मेरा रक्त बहता देखेगा तो तत्काल राजा विराट को मार डालेगा।"

राजकुमार ने दरबार में प्रवेश करके अपने पिता और कङ्क को प्रणाम किया। फिर कङ्क की नाक से रक्त बहता देख उसने विराट से इसका कारण पूछा। विराट ने कहा, "हे पुत्र, तुमने वीर कौरवों को परास्त किया है, इसलिए मैं तुम्हारी प्रशंसा कर रहा था। ये इस बात पर ध्यान न देकर बार-बार नपुंसक बृहन्नला की प्रशंसा किये जा रहे थे। इससे अप्रसन्न होकर मैंने इन्हें मारा है।" पिता के वचन सुनकर उत्तर ने कहा, "पिताजी! आपने बड़ा अनुचित कार्य किया है। आप

तुरन्त क्षमा माँगकर उन्हें प्रसन्न कीजिये अन्यथा ब्रह्म-तेज से आप समूल भस्म हो जायेंगे।" पुत्र का परामर्श मानकर राजा ने युधिष्ठिर से क्षमा याचना की। युधिष्ठिर बोले, "राजन्! मैं तो आपको पहले ही क्षमा कर चुका हूँ। यदि मेरा रक्त पृथ्वी पर बह जाता तो आज यह राज्य और राजवंश नष्ट हो जाता।"

राजा विराट पुत्र की प्रशंसा करके पूछने लगे, "तुमने वीर कर्ण, भीष्म, द्रोणाचार्य, दुर्योधन जैसे महारथियों को कैसे परास्त किया?" उत्तर ने कहा, "पिताजी! न तो मैंने उन्हें परास्त किया और न उनसे गौएँ ही छुड़ाईं। मैं तो भयभीत होकर युद्धभूमि से भाग रहा था, किन्तु एक देवपुत्र ने आकर मुझे रोका और स्वयं रथ पर बैठकर अकेले ही शत्रुओं को मार भगाया। उन्होंने ही सब गौओं को छुड़ाया है।" राजा ने उस देवदूत को देखने की इच्छा प्रगट की तो राजकुमार ने कहा, "अभी तो वे चले गये हैं। संभवतः कल अथवा परसों पधारेंगे।"

इसके पश्चात् अर्जुन ने एकान्त में राजकुमार से परामर्श करके युधिष्ठिर के साथ विचार विमर्श किया और तीसरे दिन पाँचों पाण्डव सुन्दर वस्त्राभूषण धारण करके राजा विराट के दरबार में आए। उस समय तक दरबार में कोई नहीं आया था। महाराज युधिष्ठिर राजाविराट के सिंहासन पर आकर बैठ गये। शेष चारों भाई भी यथायोग्य आसनों को सुशोभित करने लगे। जब विराट ने कङ्क को अपने सिंहासन पर बैठा देखा तो क्रुद्ध होकर बोले, "कङ्क! मैंने तुम्हें चौसर खेलने

के लिए सभासद और सखा बनाया है। इसका अभिप्राय: यह तो नहीं है कि तुम धृष्टतापूर्वक मेरे सिंहासन पर बैठ जाओ।" अर्जुन ने खड़े होकर कहा, "महाराज! आप क्रोधित न हों। ये इन्द्र के भी आधे सिंहासन पर बैठने की योग्यता रखने वाले धर्मस्वरूप, तपस्वी, महातेजस्वी, कुरुकुलतिलक महाराज युधिष्ठिर हैं।" अर्जुन की बात सुनकर राजा विराट ने कहा, "यदि ये युधिष्ठिर हैं तो इनके और भ्राता तथा द्रौपदी कहाँ हैं।" राजा का प्रश्न सुनकर अर्जुन ने कहा, "आपके यहाँ बल्लव के नाम से रसोइये का कार्य करने वाले महावीर भीमसेन हैं। इन्होंने ही गन्धर्व बनकर दुराचारी कीचक का वध किया था। आपके घोड़ों के अश्वपाल ग्रंथिक ही वीर नकुल हैं और गोपालक तन्तिपाल सहदेव हैं। जिनके कारण कीचक का वध हुआ वह सैरन्ध्री ही महान् पतिव्रता द्रौपदी है। मैं भीमसेन का छोटा भाई अर्जुन हूँ जिसे आप बृहन्नला के नाम से ही जानते हैं। हम लोग एक वर्ष से आपके यहाँ अज्ञातवास कर रहे थे।" उसी समय राजकुमार ने अर्जुन की ओर संकेत करते हुए कहा, "पिताजी! ये ही वे देवपुत्र हैं जिन्होंने कौरवों को परास्त करके छीनी हुई गौएँ वापिस दिलाई हैं।"

पाण्डवों का परिचय पाकर मत्स्य-नरेश विराट अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने उत्तर से कहा, "राजकुमार! मेरी समझ में नहीं आ रहा कि इन महान पुरुषों को मैं किस प्रकार सम्मानित करके सन्तुष्ट करूँ। यदि तुम्हारी सम्मति हो तो मैं राजकुमारी उत्तरा का विवाह परमवीर अर्जुन के साथ कर दूँ।" पिता का प्रस्ताव सुनकर उत्तर बोले, "पिताजी! आपका

विचार सर्वथा युक्तियुक्त तथा समीचीन है। वैसे भी पाण्डव लोग हमारे पूज्य एवं माननीय हैं। मेरा अनुमान है कि इस सम्बन्ध से माताजी एवं बहिन उत्तरा को आपत्ति नहीं होगी। इस बात को सम्भवतः युधिष्ठिरजी भी स्वीकार कर लेंगे।"

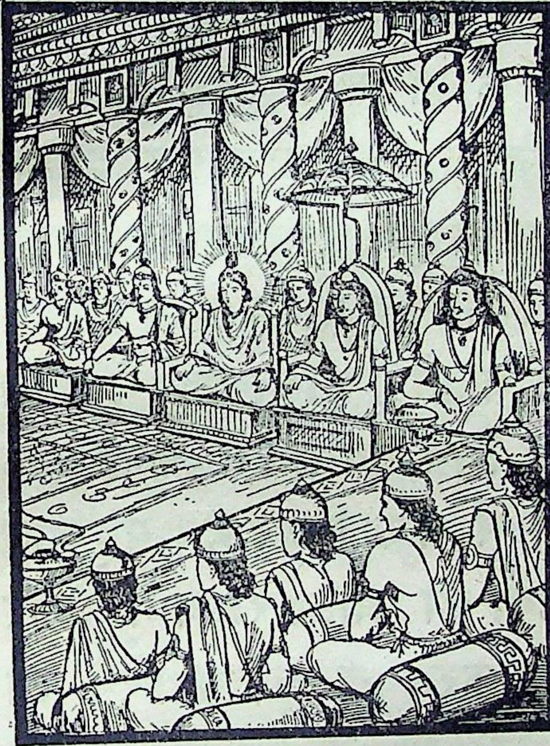
महाराज विराट ने जब युधिष्ठिर के सम्मुख यह प्रस्ताव रखा तो उन्होंने अर्जुन की ओर देखा। वे बोले, "राजन्! आपका प्रस्ताव अत्यन्त श्रेष्ठ है। इससे दो महान् कुल घनिष्ठ सम्बन्ध में बँध जायेंगे। उत्तरा सब प्रकार से योग्य और सुसंस्कृत है, किन्तु मेरी शिष्या होने के कारण मेरी पुत्री के सदृश है। अतएव मैं चाहता हूँ कि उसका विवाह आप मेरे पुत्र अभिमन्यु के साथ कर दें। पुत्रवधू के रूप में उसे स्वीकार करके मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होगी।" जब युधिष्ठिर ने भी इस सम्बन्ध का अनुमोदन कर दिया तो शुभ मुहुर्त्त में महाराज विराट ने अभिमन्यु और उत्तरा का विवाह कर दिया। इस विवाह में सम्मिलित होने के लिए श्रीकृष्ण, बलराम, धृष्टद्युम्न, काशीराज महाराज शैव्य सहित अनेक देशों के राजा महाराजा पधारे। विवाह में राजा विराट ने अभिमन्यु को वायु के सदृश शीघ्रगामी सात हजार घोड़े, दो सौ उत्तम हाथी एवं रत्नाभूषण सहित अपार धन भेंट किया। आगत अतिथियों का मत्स्य नरेश ने अभूतपूर्व स्वागत करके उन्हें सब प्रकार से सन्तुष्ट किया। ब्राह्मणों एवं याचकों को भी दान दक्षिणा के रूप में अपार धन, वस्त्र एवं अलंकार प्राप्त हुए। पाण्डव अब राजा विराट के उपप्लव्य नामक नगर में रहने लगे।

॥ इति विराट पर्व सम्पूर्ण ॥

॥ ओ३म् ॥

महाभारत भाषा

५. उद्योग पर्व



पाण्डवों की युद्ध मंत्रणा



श्रीकृष्ण द्वारा विदुर का आतिथ्य ग्रहण करना

पहला अध्याय

अर्जुन और दुर्योधन का श्रीकृष्ण से सहायता लेना

वैशंपायनजी बोले—हे राजेन्द्र! अभिमन्यु का विवाह आनन्दपूर्वक सम्पन्न होने के दूसरे दिन सब देशों से आये राजा महाराज विराट के सभाभवन में एकत्रित हुए। वहाँ पाण्डव तथा श्रीकृष्ण भी उपस्थित थे। अवसर पाकर श्रीकृष्ण ने समस्त नरेशों को सम्बोधित करते हुए कहा, "आदरणीय

नरेशो ! यह तो आपको विदित ही है कि गान्धार नरेश शकुनि ने दुर्योधन के साथ षड्यंत्र करके किस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिर को जुए में कपटपूर्वक हराकर बारह वर्ष के लिए वनवास तथा एक वर्ष तक अज्ञातवास में विचरण करने के लिए विवश किया था। उनकी तेरह वर्ष की यह अवधि किस प्रकार कष्टों में व्यतीत हुई है, इससे आप सभी अवगत हैं। सम्पूर्ण विश्व पर विजय प्राप्त करने की क्षमता रखने वाले पाण्डव वीरों ने केवल अपनी सत्यनिष्ठा के कारण ये कष्ट सहे। अब आप लोग ऐसी युक्ति सोचिये जिससे कौरव तथा पाण्डवों का यश बना रहे और इन्हें न्याय प्राप्त हो। धर्मात्मा युधिष्ठिर यह नहीं चाहते कि उन्हें उनके पिता का राज्य मिल जाय। यह तो केवल वह राज्य वापिस चाहते हैं जो पाण्डवों ने अपने बाहुबल से अर्जित किया है और जिसे दुर्योधन ने कपटपूर्वक जुआ खिलाकर अपने अधिकार में कर लिया है। यह बात स्पष्ट है कि यदि दुर्योधन पाण्डवों को आधा राज्य न देकर उनके साथ छल अथवा अन्याय करने का प्रयत्न करेंगे तो निश्चित ही युद्ध छिड़ जायेगा और असंख्य निर्दोष व्यक्ति मारे जायेंगे। इसलिए हमें चाहिए कि हम किसी योग्य व्यक्ति को दूत बनाकर कौरवों के पास भेजें जो उन्हें समझा बुझाकर पाण्डवों को आधा राज्य दिला दे।

बलरामजी ने भी श्रीकृष्ण की बात का समर्थन किया। द्रुपद ने बीच में हस्तक्षेप करते हुए कहा, "दुर्योधन समझाने से कभी पाण्डवों का राज्य नहीं लौटायेगा। महाराज धृतराष्ट्र को समझाने से भी कोई लाभ नहीं होगा। वे सदा दुर्योधन की

हाँ में हाँ मिलाते हैं। यह बात ठीक है कि न्यायशील पुरुष को सामनीति का प्रयोग करना चाहिए, परन्तु दुर्योधन के साथ सामनीति कदापि सफल नहीं होगी। उसके साथ कठोरता का ही व्यवहार करना पड़ेगा। इसलिए हमें सन्धि की बात छोड़कर युद्ध की तैयारी करनी चाहिए। हमें तत्काल अपने मित्र नरेशों के पास भावी युद्ध में भाग लेने के लिए निमन्त्रण भेज देने चाहिए। शीघ्रता करने की आवश्यकता इसलिए है कि क्षत्रियधर्म के अनुसार न्यायशील मित्र राजा उसी की सहायता करते हैं जिसका निमन्त्रण उसके पास पहले पहुँच जाता है।" श्रीकृष्ण बोले, "महाराज द्रुपद ने जो कुछ कहा है, वह सर्वथा उचित है। हमें सर्वप्रथम राजाओं के पास दूत भेजने चाहिएँ। किन्तु इस समय हम अभिमन्यु के विवाह में आये हैं। अतएव हम लोगों को पहले अपने-अपने राज्यों को लौट जाना चाहिये और इस बीच में पाण्डवों को उचित कार्यवाही करनी चाहिए।"

इसके पश्चात् सब राजा विदा हो गये। युधिष्ठिर ने अपने भाइयों एवं विराट के साथ बैठकर आगामी कार्यक्रम के विषय में विचार-विमर्श किया। कुछ दिन तक परस्पर परामर्श करने के पश्चात् पाण्डवों ने अपने दूतों को सब राजाओं के पास सहायता प्राप्त करने के लिये भेजा। अर्जुन स्वयं श्रीकृष्ण के पास द्वारिकापुरी गये।

जब श्रीकृष्ण मत्स्य देश से द्वारिकापुरी के लिए रवाना हुए तभी दुर्योधन को अपने गुप्तचरों द्वारा पाण्डवों का मंतव्य ज्ञात हो गया था। द्वारिका का यादव राज्य उस समय भारत

के एक शक्तिशाली राज्यों में से था। दुर्योधन भी भावी युद्ध में उनकी सहायता प्राप्त करना चाहता था। इसलिए जब उसने सुना कि अर्जुन श्रीकृष्ण से सहायता प्राप्त करने के लिये द्वारिकापुरी गए हैं तो वह भी तत्काल उनकी सहायता प्राप्त करने के लिए द्वारिकापुरी के लिए चल दिया। वहाँ राजभवन में जाकर उसने देखा कि श्रीकृष्ण पलंग पर सो रहे हैं। अतएव वह उनके सिरहाने रखे हुए आसन पर बैठ गया। उसके थोड़ी देर उपरान्त अर्जुन भी वहाँ पहुँच गये। वे चुपचाप श्रीकृष्ण के चरणों के निकट बैठ गए।

श्रीकृष्ण सोकर उठे तो सबसे पहले उनकी दृष्टि अर्जुन पर पड़ी। वे उसका कुशलक्षेम पूछने लगे तभी सिरहाने बैठे दुर्योधन ने कहा, "माधव! मैं यहाँ पहले से बैठा आपके जागने की प्रतीक्षा कर रहा था।" श्रीकृष्ण ने उसका भी स्वागत किया और आने का कारण पूछा। दुर्योधन ने उत्तर दिया, "कृष्ण! ऐसा प्रतीत होता है कि निकट भविष्य में हम भाइयों के बीच युद्ध छिड़ेगा। उस युद्ध में मैं आपकी सहायता माँगने आया हूँ। वैसे तो मैं और अर्जुन आपके लिए समान हैं, किन्तु आपके पास पहले मैं आया हूँ। इसलिये धर्मानुसार आपकी सहायता मुझे मिलनी चाहिए।"

श्रीकृष्ण बोले, "यह सत्य है कि तुम पहले आये हो परन्तु मैंने पहले अर्जुन को देखा है। फिर भी मैं दोनों की सहायता करूँगा। मेरे पास असंख्य सैनिक हैं। एक ओर मेरी यह विशाल सेना रहेगी और दूसरी ओर मैं अकेला निहत्था रहूँगा और युद्ध भी नहीं करूँगा। इन दोनों में से तुम लोग

चुनाव कर लो। चुनाव का अवसर पहले मैं अर्जुन को दूँगा, क्योंकि मैंने पहले उन्हें देखा है।" यह सुनकर अर्जुन ने श्रीकृष्ण का चुनाव किया और अत्यन्त प्रसन्न होकर दुर्योधन ने सेना को लेना स्वीकार कर लिया। इसके पश्चात् दुर्योधन बलरामजी के पास गया, किन्तु उन्होंने कहा, "मैं किसी भी ओर से युद्ध में भाग नहीं लूंगा।" दुर्योधन के चले जाने पर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से पूछा, "हे पार्थ! तुमने मुझे निहत्थे को क्यों चुना।" उसने उत्तर दिया, "प्रभो! आपकी शक्ति और नीति निपुणता से मैं परिचित हूँ। मैं आपसे केवल इतनी ही प्रार्थना करना चाहता हूँ कि इस युद्ध में आप मेरे सारथि बनें।" श्रीकृष्ण ने अर्जुन की प्रार्थना को मुस्कराते हुए स्वीकार कर लिया।

पाण्डवों के निमन्त्रण पर अनेक राजा अपनी सेना लेकर आ पहुँचे। उधर दुर्योधन के निमंत्रण पर भी बहुत से राजा अपनी-अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ एकत्रित होने लगे।

दूसरा अध्याय

दुर्योधन का शल्य को अपनी ओर मिलाना

वैशंपायनजी बोले—हे राजन् ! जब महापराक्रमी मद्रराज शल्य को पाण्डवों की ओर से युद्ध का निमन्त्रण मिला तो वे अपने शूरवीर पुत्रों के साथ एक अक्षौहिणी सेना लेकर पाण्डवों की सहायतार्थ चल पड़े। जब दुर्योधन को ज्ञात हुआ कि शल्य पाण्डवों की सहायता के लिए आ रहे हैं तो उसने मार्ग में स्थान-स्थान पर उनके ठहरने के लिए समुचित व्यवस्था करवा दी। उनकी सेना के लिए भोजनादि का भी प्रबन्ध करा दिया। इस प्रकार अनेक स्थानों पर पड़ाव डालते हुए वे ऐसे

स्थान पर पहुँचे जहाँ का निवास स्थान बड़ी सुरुचि के साथ सजाया गया था। यह सब आकर्षक प्रबन्ध देखकर शल्य अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे समझ रहे थे कि यह सारी व्यवस्था युधिष्ठिर की तरफ से की गई है। प्रसन्न होकर उन्होंने व्यवस्था करने वाले कर्मचारियों को पुरस्कार देने के लिए बुलाया उन्होंने इस बात की सूचना राजा दुर्योधन को दी। दुर्योधन ने आकर महाराज शल्य का स्वागत किया और पूछा, "मेरे इस नगण्य प्रबन्ध से आपको मार्ग में कष्ट तो नहीं हुआ ?" यह जानकर कि सुख-सुविधा का यह प्रबन्ध दुर्योधन ने किया था शल्य को विशेष आश्चर्य एवं हर्ष हुआ। वे बोले, "दुर्योधन! तुम्हारी कोई इच्छा हो तो कहो। मैं उसे पूर्ण करने को तैयार हूँ।"

दुर्योधन ने तत्काल उत्तर दिया, "मामाजी! मेरी हार्दिक इच्छा है कि इस युद्ध में आप मेरी सेना का संचालन करते हुए लड़ें।" शल्य बोले, "ठीक है, ऐसा ही होगा। मैं पाण्डवों से मिलकर शीघ्र ही तुम्हारे पास आ जाऊँगा।"

शल्य ने युधिष्ठिर के पास पहुँचकर दुर्योधन द्वारा की गई सेवा-व्यवस्था तथा उसकी ओर से युद्ध करने के लिए दिये गए वचन का वृत्तान्त कह सुनाया। युधिष्ठिर बोले, "ठीक है मामाजी! आप दुर्योधन को जो वचन दे चुके हैं उसका पालन कीजिये, किन्तु एक छोटी सी प्रार्थना मेरी भी है।" शल्य के पूछने पर उन्होंने कहा, "आप युद्ध-विशारद तो हैं ही, साथ ही रथ हाँकने में श्रीकृष्ण से कम नहीं हैं। इसलिए मैं जानता हूँ कि जब अर्जुन और कर्ण का युद्ध होगा तो आपको

अवश्य कर्ण का सारथि बनाया जायेगा। उस समय मैं चाहता हूँ कि आप कर्ण को युद्ध में अधिक से अधिक निरुत्साहित करें और अर्जुन की वीरता का बखान करके उसके मन पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालें। इससे उसका मनोबल गिरेगा और अर्जुन के लिए उस पर विजय प्राप्त करना सरल हो जायेगा।" युधिष्ठिर के इस अनुरोध को शल्य ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया। वे बोले, "तुमने जो कष्ट भोगे हैं उनसे मैं अपरिचित नहीं हूँ। अब भगवान ने चाहा तो तुम्हारे सम्पूर्ण कष्ट शीघ्र समाप्त हो जायेंगे। दुःख-सुख सबके जीवन में आते हैं।" इस प्रकार आश्वासन देकर शल्य दुर्योधन के पास चले गये।

तीसरा अध्याय

कौरव सभा में द्रुपद के दूत का संधि प्रस्ताव लेकर आना, संजय का पाण्डवों से मिलना, केशिनी की कथा

वैशंपायनजी बोले—हे राजा जनमेजय! पांचाल नरेशों ने युद्ध से पूर्व एक बार फिर कौरव पाण्डवों में सन्धि करने का विचार किया और अपने पुरोहित को पाण्डवों का दूत बना कर महाराज धृतराष्ट्र की सभा में भेजा। राजसभा में दूत के पहुँचने पर भीष्म, धृतराष्ट्र, विदुर आदि ने उसका उचित सत्कार करके उसके आगमन का कारण पूछा। बुद्धिमान पुरोहित ने कहा, "महात्मन्! आप सभी धर्म और राजनीति के ज्ञाता हैं। आप यह भी जानते हैं कि धृतराष्ट्र और पाण्डु के पिता एक ही थे। पिता की सम्पत्ति में दोनों पुत्रों का समान अधिकार था। धृतराष्ट्र के पुत्रों ने पिता की सम्पत्ति पाई है किन्तु पाण्डवों को उनके पिता की सम्पत्ति अभी तक

नहीं मिलो है। जब पाण्डव वन में गये थे तो महाराज धृतराष्ट्र ने उनके पैतृक राज्य पर अधिकार कर लिया। इसके उपरांत पाण्डवों को जो कुछ मिला, उसे उन्होंने स्वीकार कर लिया और अपने बाहुबल से उसमें वृद्धि की। उसे भी छल से छीन कर उन्हें तेरह वर्षों के लिए अपने राज्य से निर्वासित कर दिया गया। वे इन सब बातों को भूलकर पुनः आपके साथ सन्धि करना चाहते हैं। अतएव यह उचित होगा कि न्यायानुसार उन्हें आधा राज्य दे दिया जाय। इससे व्यर्थ का जनसंहार रुक जायेगा।"

भीष्म बोले, "पुरोहितजी! आपने जो कुछ कहा, वह यथार्थ एवं न्यायसंगत है किन्तु आपके कहने का ढंग अत्यन्त कटु है।" तभी भीष्म की बात काटते हुए कर्ण ने कहा, "हे विप्र! आप जो कुछ कह रहे हैं, यह बात अनेक बार कही जा चुकी है। युधिष्ठिर वनवास की प्रतिज्ञा पूरी किए बिना विराट और द्रुपद जैसे दुर्बल राजाओं के बल पर राज्य लेना चाहते हैं। याचना करने पर दुर्योधन सारी पृथ्वी का राज्य भी दान कर सकते हैं, परन्तु किसी के धमकाने या भय दिखाने पर आधा तो क्या; वे चौथाई भाग भी भूमि देने को तैयार नहीं हैं। यदि युधिष्ठिर अपने पिता का राज्य प्राप्त करना चाहते हैं तो प्रतिज्ञा के अनुसार वे पुनः बारह वर्ष तक वन में रहकर एक वर्ष का अज्ञातवास करें। क्योंकि अवधि समाप्त होने से पूर्व ही हमने विराट की राजधानी में उन्हें देख लिया था।"

कर्ण की बात सुनकर भीष्म ने कहा, "कर्ण! तुम्हारा कहना उचित नहीं। वास्तव में पाण्डवों की अज्ञातवास की

अवधि पूरी हो चुकी थी। पाण्डवों से युद्ध करना मूर्खता होगी।" धृतराष्ट्र ने भी कर्ण को झिड़कते हुए कहा, "कर्ण! तुम्हारी बात ठीक नहीं है। पितामह ने जो कुछ कहा है, वह यथार्थ है और हम लोगों के हित में है। मैं आज ही संजय को युधिष्ठिर के पास इस विषय में वार्तालाप करने के लिए भेजूँगा।" फिर पुरोहित का उचित सत्कार कर उसे विदा किया। इसके पश्चात् धृतराष्ट्र ने संजय को पाण्डवों के पास भेजा कि हम लोग तुमसे सन्धि करने के इच्छुक हैं। युधिष्ठिर स्वयं समझदार हैं। उन्हें सब प्रकार से समझा बुझाकर अपने अनुकूल करने का प्रयास करना। धृतराष्ट्र की आज्ञा पाकर संजय उसी दिन युधिष्ठिर के पास उपप्लव्य नगर जा पहुँचे। युधिष्ठिर ने उनका यथोचित स्वागत सत्कार किया। विश्राम के पश्चात् अपराह्न में जब युधिष्ठिर श्रीकृष्ण, सात्यकि, विराट तथा अन्य नरेशों एवं भाइयों के साथ बैठे थे तो अवसर पाकर संजय ने कहा, "धर्मराज! महाराज धृतराष्ट्र आपसे सन्धि करना चाहते हैं। इसलिए उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है। उन्होंने कहा है कि युद्ध से जाति का क्षय होता है। भाइयों के युद्ध में तो विजय तथा पराजय दोनों ही दुखदायी होती हैं। आप पाँचों पाण्डव भ्राता अद्वितीय वीर हैं। फिर श्रीकृष्ण, सात्यकि, विराट, द्रुपद जैसे पराक्रमी नरेश आपके सहायक हैं। अतः आपको पराजित करना किसी के लिए भी सरल नहीं है। इसी प्रकार दुर्योधन के साथ भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, शल्य, अश्वत्थामा जैसे विश्वविख्यात शूरवीर हैं। उन्हें भी संग्राम में सरलता पूर्वक परास्त नहीं किया जा सकता। तात्पर्य यह है कि दोनों

हो ओर अपने युद्धकौशल से पृथ्वी को कम्पायमान कर देने की क्षमता रखने वाले अद्भुत शौर्यशाली महारथी विद्यमान हैं। इसलिए मानवता की रक्षा के नाम पर मैं आपसे विनय-पूर्वक अनुरोध करता हूँ कि आप भावी संग्राम को टालकर कौरवों से सन्धि कर लें।"

युधिष्ठिर बोले, "संजय! आपने मेरे मुख से ऐसी कौनसी बात सुनी है जिससे आपको यह आशंका हो रही है कि हम युद्ध करने के लिए व्यग्र हैं। हम तो केवल यह चाहते हैं कि राज्य का हमारा भाग न्यायपूर्वक हमें दे दिया जाय। क्यों द्वारिकाधीश! इस विषय में आपका क्या मत है?" श्रीकृष्ण बोले, "संजय! मैं पाण्डवों और कौरवों दोनों का समान रूप से हित चाहता हूँ। इसलिए मैं भी सन्धि के पक्ष में हूँ, परन्तु यह संधि तभी हो सकती है जब कौरव अन्यायभावना छोड़कर इनका राज्य इन्हें लौटा दें। जब पाण्डव लोग वनवास पर गये थे, तब दुर्योधन ने यह वचन दिया था कि तेरह वर्ष की अवधि समाप्त हो जाने पर इनका राज्य इन्हें लौटा दिया जायेगा। फिर वे अपना वचन पूरा क्यों नहीं करते? जब राजसभा में द्रौपदी का अपमान हुआ था तब किसी ने उसे धैर्य नहीं बँधाया। किसी ने धर्म के मार्ग का अनुसरण नहीं किया। राजसभा में तो आप भी थे, परन्तु उस समय आपने धर्म का वह उपदेश नहीं दिया जो आज युधिष्ठिर को दे रहे हैं। आप महाराज धृतराष्ट्र से जाकर कह दीजिए कि यदि पाण्डवों को आधा राज्य देकर सन्धि नहीं की गई तो यह युद्ध नहीं टल सकेगा।"

लगभग सब उपस्थितजनों को श्रीकृष्ण के मन्तव्य का समर्थन करते देखकर संजय युधिष्ठिर से विदा होकर हस्तिनापुर के लिए रवाना हुए। धृतराष्ट्र के पास जाकर संजय ने पाण्डवों का कुशल समाचार सुनाकर श्रीकृष्ण द्वारा व्यक्त किये गये विचारों से उन्हें अवगत कराया और कहा, "राजन्! वे अपना वही राज्य वापिस चाहते हैं जो वन जाते समय आपके पास थाती के रूप में छोड़ गये थे। यदि उनका राज्य उन्हें नहीं लौटाया गया तो युद्ध होना अवश्यंभावी है।"

संजय के जाने के पश्चात् धृतराष्ट्र ने चिन्तित होकर विदुर को बुलाया और उनसे परामर्श करने लगे। सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर विदुरजी ने कहा, "हे राजन्! यदि मैं आपसे यह कहूँ तो मुझे क्षमा करना कि आपने अपने अयोग्य पुत्रों के मोह में पड़कर युधिष्ठिर को वनवास देकर भयंकर भूल की है। आपके पुत्र निरन्तर पाण्डवों से वैर-भाव बढ़ाते रहे हैं। या तो आपको इन बातों का पता नहीं है अथवा आप जान-बूझकर भी अनजान बने रहे हैं। मैं चाहता हूँ कि आप पाण्डवों को उनका राज्य लौटा दें। धर्म का मार्ग सदैव सुखदायक होता है। इसके सम्बन्ध में मैं आपको एक प्राचीन कथा सुनाता हूँ—

प्राचीनकाल में केशिनी नाम की एक अत्यन्त रूपवती कन्या थी। जब वह अपने योग्य पति की खोज करने के लिए निकली तो विरोचन नामक एक दैत्य ने उसके सम्मुख आकर प्रस्ताव रखा—हे रूपसि! मैं चाहता हूँ कि तुम मुझे पति के रूप में स्वीकार कर लो। मैं शूरवीर और पराक्रमी हूँ।

उसका प्रस्ताव सुनकर केशिनी ने कहा--हे वीर ! यदि तुम यह प्रस्ताव लेकर मेरे पास पहले आये होते तो सम्भवतः मैं तुम्हारे प्रस्ताव पर विचार करने को तैयार हो जाती, परन्तु तुमसे पूर्व ब्राह्मण सुधन्वा मेरे सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रख चुके हैं। यद्यपि मैंने इस विषय में अभी तक कोई निर्णय नहीं किया है। मैंने उन्हें कल प्रातःकाल बुलाया है। उस समय तुम भी आ जाना। दोनों को एक साथ देखकर मैं जिस निष्कर्ष पर पहुँचूंगी, उससे तुम दोनों को अवगत करा दूंगी। दूसरे दिन विरोचन सुधन्वा से पहले पहुँच गया। केशिनी ने उसे बैठने के लिये स्वर्ण का आसन दिया। कुछ समय पश्चात् जब सुधन्वा पहुँचा तो उसका स्वागत करते हुए केशिनी ने उसे विरोचन के निकट उसी आसन पर बैठने के लिए कहा। सुधन्वा ने उसी आसन पर बैठना अस्वीकार कर दिया। विरोचन बोला--ठीक है इन्हें लकड़ी या कुश का आसन दो। ये मेरे साथ नहीं बैठ सकते।

विरोचन की बात सुनकर सुधन्वा ने कहा--विरोचन ! समान स्थिति, समान आयु अथवा एक ही जाति के दो पुरुष एक आसन पर बैठ सकते हैं। तुम्हारे पिता प्रह्लाद मुझसे नीचे आसन पर बैठते हैं। अतः तुम मेरे बराबर नहीं बैठ सकते। यह सुन विरोचन बोला--हे सुधन्वा ! ब्राह्मणों से दैत्य श्रेष्ठ हैं क्योंकि उनका जन्म प्रजापति से हुआ है। यदि तुम चाहो तो किसी विद्वान् से चलकर निर्णय ले लो। इस बात पर मैं अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति दाँव पर लगाताहूँ। विरोचन का गर्व भरा कथन सुनकर सुधन्वा ने कहा--मुझे तुम्हारी सम्पत्ति

नहीं चाहिए। मैं सम्पत्ति का जुआ नहीं खेलता। यदि दाँव पर लगाना है तो आओ, अपने-अपने प्राण दाँव पर लगायें।" यह सुनकर विरोचन ने कहा--मुझे स्वीकार है। परन्तु निर्णय किससे कराओगे ? मुझे देवताओं या मनुष्यों पर विश्वास नहीं है। सुधन्वा बोले--यदि तुम्हें देवताओं और मनुष्यों पर भी विश्वास नहीं है तो कोई बात नहीं, अपने पिता प्रह्लाद पर तो तुम्हें विश्वास है? चलो, उन्हीं के पास चलकर निर्णय करा लेते हैं। मुझे उनकी सत्य-निष्ठा और न्याय-बुद्धि पर पूर्ण विश्वास है।

दोनों को साथ देख प्रह्लाद ने उनके आने का कारण पूछा। विरोचन ने कहा--पिताजी! हम दोनों अपने प्राणों को दाँव पर लगाकर आपसे एक निर्णय कराने आये हैं? आप यह बताइये कि ब्राह्मणों और दैत्यों में कौन श्रेष्ठ है? यह प्रश्न सुनकर प्रह्लाद पहले तो कुछ असमंजस में पड़ गया, फिर बोला--हे ब्रह्मन्! विरोचन मेरा एकमात्र पुत्र है और आप स्वयं साक्षात् मेरे सम्मुख खड़े हैं। ऐसी स्थिति में मेरे लिए क्या आपके प्रश्न का उत्तर देना सरल होगा? पहले आप यह बताइये कि मिथ्या बोलने वाले को कौन सा दुःख मिलता है। सुधन्वा ने उत्तर दिया—मिथ्यावादी को वही दुःख मिलता है जो जुए में हारे हुए और बोझ से दबे हुए व्यक्ति को मिलता है। पशु के लिए असत्य बोलने वाले की पाँच पीढ़ियाँ और मनुष्य के लिए मिथ्या भाषण करने वाले की हजार पीढ़ियाँ स्वर्ग से भ्रष्ट हो जाती हैं। भूमि के लिए असत्य बोलने वाले का सर्वनाश हो जाता है। सुधन्वा की बात सुनकर प्रह्लाद ने

अपना निर्णय देते हुए कहा--हे विरोचन! सुधन्वा के पिता अंगिरा मुझसे, सुधन्वा की माता तुम्हारी माता से और सुधन्वा तुमसे श्रेष्ठ हैं। इसलिये तुम पराजित हुए और तुम्हारे प्राण अब सुधन्वा के हाथ में हैं। फिर सुधन्वा से बोला--हे विप्र श्रेष्ठ! मैं चाहता हूँ कि आप विरोचन को प्राण दान दें। उसकी प्रार्थना को स्वीकार करते हुए सुधन्वा ने कहा--हे दैत्यराज! आपने अपने पुत्र का पक्ष न लेकर न्यायपूर्ण निर्णय दिया है। इससे प्रसन्न होकर मैं विरोचन को प्राण दान देता हूँ। साथ ही केशिनी से भी विवाह न करने का वचन देता हूँ। अब केशिनी विरोचन से विवाह कर सकती है।"

यह कथा सुनाकर विदुरजी बोले, "इसलिये महाराज! आप भूमि के लिये असत्य का सहारा लेकर सर्वनाश को आमंत्रित न करें। दुर्योधन द्वारा पाण्डवों के साथ किये गये अन्याय को अपने न्यायपूर्ण निर्णय से धो डालिए। धृतराष्ट्र विदुरजी की बात पर मनन करने लगे।

दूसरे दिन राजा धृतराष्ट्र ने राजसभा में समस्त गुरुजनों, विद्वानों, सभासदों एवं दुर्योधनादि को बुलाकर इस विषय पर विचार-विमर्श किया। भीष्म ने दुर्योधन को सम्बोधित करते हुए कहा, "दुर्योधन! मेरे विचार से पाण्डवों से संधि कर लेना ही हमारे हित में है। एक तो पाण्डव वैसे ही पराक्रमी हैं, दूसरे उनके साथ श्रीकृष्ण हैं। जिस ओर श्रीकृष्ण हों, उस ओर विजय निश्चित है। जब तुम अर्जुन और श्रीकृष्ण को एक ही रथ पर बैठे विजय-दुन्दभि बजाते देखोगे तो उस समय मेरी बात को स्मरण करोगे। इसलिये मैं तुमसे बार-

बार कहता हूँ कि तुम पाण्डवों से सन्धि कर लो और कुल को सर्वनाश से बचा लो। सूतपुत्र कर्ण और पापबुद्धि दुःशासन के परामर्श से तुम्हारा कल्याण नहीं होगा।"

भीष्मपितामह की बात से चिढ़कर कर्ण ने कहा, "हे पितामह! भविष्य में कभी ऐसी बात न कहियेगा। मैंने कभी दुर्योधन का अनिष्ट नहीं विचारा। मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं अर्जुन आदि पाण्डवों को मारकर दुर्योधन का मार्ग निष्कंटक करूँगा। पाण्डवों से किसी भी दशा में सन्धि नहीं हो सकती।" भीष्म ने धृतराष्ट्र से कहा, "कर्ण अपनी लुभावनी बातों से एक दिन दुर्योधन और कौरवों का विनाश कराएगा। जब घोष यात्रा में गन्धर्व तुम्हारे पुत्रों को पकड़ ले गया था, तब कर्ण कहाँ चला गया था? उस समय पाण्डवों ने दुर्योधन को छुड़ाया था। जब विराट नगर में अर्जुन ने अकेले पूरे कौरव दल का सामना किया था तब यही कर्ण केवल दो बार पीठ दिखाकर भागा था।"

भीष्म की बात सुनकर द्रोणाचार्य ने भी धृतराष्ट्र को पाण्डवों से संधि कर लेने का परामर्श दिया। अन्य गुरुजनों की बात सुनकर धृतराष्ट्र बोले, "मैं युधिष्ठिर के क्रोध, अर्जुन के पराक्रम, भीमसेन तथा नकुल-सहदेव के युद्ध कौशल से भयभीत हूँ। पाण्डवों के पास जो अलौकिक अस्त्र-शस्त्र हैं, उनका सामना करने की शक्ति हमारे सैनिकों में नहीं हैं। इसीलिए मैं चाहता हूँ कि पाण्डवों के साथ सन्धि कर ली जाय।" धृतराष्ट्र का प्रस्ताव सुनकर दुर्योधन ने कहा, "पिताजी! आप व्यर्थ ही भयभीत होते हैं। हममें से प्रत्येक योद्धा इतना

शक्तिशाली और पराक्रमी है कि वह अकेले ही पाण्डवों तथा उनके सहायक राजाओं को संग्राम में परास्त कर सकता है। अपने पिता शान्तनु की मृत्यु के पश्चात् अकेले भीष्मपितामह ही समस्त राजाओं का मानमर्दन कर चुके हैं। इनके पराक्रम के सम्मुख देवता भी नहीं ठहर सकते। इन्हें कोई नहीं मार सकता। इन्हें तो अपनी इच्छा से ही मरने का वर प्राप्त है। फिर महात्मा द्रोणाचार्य, वीरवर कृपाचार्य, अद्भुत धनुर्धारी कर्ण, महारथी अश्वत्थामा जैसे अद्वितीय महावीर हमारे साथ हैं तो हमें पाण्डवों का क्या भय हो सकता है? जब इन्द्र से प्राप्त अमोघ शक्ति का प्रयोग कर्ण अर्जुन पर करेंगे तो वह कैसे बच सकता है? इनके अतिरिक्त असंख्य आमंत्रित राजा लोग युद्ध कला में एक दूसरे से बढ़-चढ़कर हैं और वे सभी मेरे कल्याण के लिए अपने प्राणों की आहुति देने को तैयार हैं। सेना भी मेरे पास कम नहीं है। पूरी ग्यारह अक्षौहिणी है। फिर मैंने स्वयं बलरामजी से गदा युद्ध की शिक्षा ली है। उनके विचार से गदायुद्धा में कोई मेरी समता नहीं कर सकता। आप व्यर्थ ही भयभीत होकर सन्धि की बात कर रहे हैं। शत्रु के पास केवल सात अक्षौहिणी अर्द्ध शिक्षित सेना है।"

धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को अनेक प्रकार से समझाया और पाण्डवों से संधि करने को कहा, परन्तु वह अपने पिता की बात से सहमत नहीं हुआ।

चौथा अध्याय

कौरव सभा में श्रीकृष्ण का सन्धि दूत बनकर जाना

वैशंपायनजी बोले—हे राजेन्द्र! संजय के प्रस्थान कर

जाने के पश्चात् युधिष्ठिर श्रीकृष्ण से बोले, मित्रवर ! संजय की बातचीत से ऐसा ज्ञात होता है कि कौरव हमें हमारा राज्य लौटाने को तैयार नहीं हैं। गुप्तचरों से प्राप्त सूचनाओं से ज्ञात होता है कि आधा राज्य तो दूर, वे हमें पाँच गाँव भी देने को प्रस्तुत नहीं हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि हमें अपना राज्य अथवा निर्वाह योग्य भूमि प्राप्त करने के लिए भी कौरवों के साथ युद्ध करना पड़ेगा। मैं जानता हूँ, उन्हें मारकर राज्य प्राप्त करना क्रूरता होगी, किन्तु राज्य त्यागकर शान्ति की स्थापना करना भी एक प्रकार की मृत्यु ही है।" युधिष्ठिर की युक्तिसंगत बात सुनकर श्रीकृष्ण बोले, "राजन् ! आपके कथन में सार है। सन्धि के लिए दुर्योधन को समझाने का यत्न करना आवश्यक है। अतएव मैं दोनों पक्षों के कल्याण के लिए स्वयं कौरव सभा में जाकर उससे बात करूँगा !" श्रीकृष्ण के प्रस्ताव से चिन्तित होकर युधिष्ठिर ने कहा, "माधव ! आप वहाँ न जाइए। वे दुष्ट आपको अपमानित करेंगे। आपका अनिष्ट भी कर सकते हैं। आपका अनिष्ट हम किसी भी दशा में सहन नहीं कर सकेंगे।"

श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया, "महाराज ! आप मेरे विषय में चिन्ता न कीजिये। मेरा कोई अनिष्ट नहीं कर सकता। संधि प्रयास करने के फलस्वरूप कोई हमें कुल के नाश का दोषी नहीं ठहरा सकेगा। यदि वह हमारा सन्धि प्रस्ताव ठुकरा देगा तो सब लोगों को ज्ञात हो जायेगा कि दुर्योधन कितना लोभी और अत्याचारी है।"

भीमसेन ने असाधारण नम्रता दिखाते हुए कहा, "हे

देवकीनन्दन ! जिस प्रकार कुरुवंश में शान्ति स्थापित हो सके, कृपया वही उपाय कीजिएगा। दुर्योधन अत्यन्त असहिष्णु और छोटी-छोटी बातों पर चिढ़ जाता है, अतएव उससे कोई कठोर बात मत कहना। वह चाहेगा तो हम उसकी आधीनता भी स्वीकार कर लेंगे। किन्तु यह हम नहीं चाहेंगे कि कुरुवंश का नाश हो।" भीमसेन के वचन सुनकर श्रीकृष्ण ने मुस्कराते हुए कहा, "भीमसेन ! आज तुममें यह कैसा परिवर्तन दिखाई दे रहा है ? तुम तो सदा धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारने की इच्छा प्रगट किया करते थे। तुम तो दुर्योधन और दुःशासन को मारने की प्रतिज्ञा कर चुके हो। आज तुम ऐसी कायरों के समान बातें कैसे कर रहे हो ? ये बातें तो तुम्हारे योग्य नहीं हैं।" श्रीकृष्ण के शब्दों से चिढ़कर भीमसेन बोले, "हे मधुसूदन ! मेरा तात्पर्य यह नहीं है जो आप समझ रहे हैं। मैं कायर भी नहीं हूँ। मैं पाण्डवों के शत्रुओं को उसी प्रकार कुचल सकता हूँ जिस प्रकार मस्त हाथी छोटे वृक्षों को। मैं केवल कुल के प्रेम के कारण ही यह चाहता हूँ कि हमारे प्रतापी वंश का नाश न हो।" भीमसेन के क्रुद्ध शब्दों को सुनकर श्रीकृष्ण बोले, "भीमसेन मैं सब जानता हूँ। मैं तुम्हारे ऊपर कोई आरोप नहीं कर रहा था केवल कुछ उत्तेजित कर रहा था।"

अर्जुन, नकुल तथा सहदेव ने भी श्रीकृष्ण के शान्ति प्रस्ताव का समर्थन किया। जब श्रीकृष्ण वहाँ से हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान करने वाले थे तभी द्रौपदी ने उनके सम्मुख आकर कहा, "भैया ! शत्रु से सन्धि करते समय दुःशासन द्वारा खींचे गए मेरे इन केशों को मत भूल जाना। यदि भीमसेन

और अर्जुन कौरवों से संधि करने को तैयार हो जायेंगे तो मेरे अपमान का बदला लेने के लिए मेरे वृद्ध पिता, पराक्रमी भाई और अभिमन्यु सहित पाँचों पुत्र क्रूर कौरवों से युद्ध करेंगे।" ऐसा कहते-कहते द्रौपदी बिलख-बिलखकर रो पड़ी। उसे धैर्य देते हुए केशव ने कहा, "बहिन! तुम चिन्ता मत करो। जिस प्रकार आज तुम विलाप कर रही हो, उसी प्रकार एक दिन तुम कौरवों की स्त्रियोंको विलापकरते देखोगी। मैं युधिष्ठिर की आज्ञा से पाण्डवों द्वारा कौरवों का नाश कराऊँगा। विश्वास करो, मेरा यह वचन कभी असत्य नहीं होगा।" इसके पश्चात् श्रीकृष्ण सात्यकि के साथ रथ में बैठकर हस्तिनापुर के लिए रवाना हुए। उनके साथ दस महारथी, एक हजार पैदल सैनिक और एक हजार अश्वारोही थे।

जब धृतराष्ट्र ने श्रीकृष्ण के आगमन का समाचार सुना तो उन्होंने दुर्योधन को बुलाकर कहा, "हे पुत्र! श्रीकृष्ण पाण्डवों की ओर से हमारे पास आ रहे हैं। यदि हम आदर सत्कार तथा सेवाभाव से उन्हें सन्तुष्ट कर सकें तो हम उनकी सहायता से अपने मनोरथ पूरे कर सकेंगे। जिस प्रकार तुमने शल्य को अपनी ओर करने के लिए मार्ग में उनके लिए विश्राम स्थलों तथा स्वागत की व्यवस्था की थी, वैसी ही इनके लिए भी करो।" पिता का परामर्श मानकर दुर्योधन ने वैसा ही किया। परन्तु आते समय श्रीकृष्ण ने उनकी ओर आँख उठा कर भी नहीं देखा। इससे खिन्न होकर दुर्योधन ने धृतराष्ट्र के पास जाकर कहा, "पिताजी! श्रीकृष्ण ने मार्ग में किये गए हमारे स्वागत सत्कार की उपेक्षा कर दी है। इससे पूर्णतया

सिद्ध हो गया है कि वे पाण्डवों के कट्टर पक्षपाती हैं। हमारे हित की बात कदापि नहीं कहेंगे। मेरा विचार है कि उनके यहाँ आते ही मैं उन्हें बन्दीगृह में डाल दूं।"

दुर्योधन के प्रस्ताव का विरोध करते हुए धृतराष्ट्र ने कहा, "तुम्हारा विचार सर्वथा अनुचित है। मैं श्रीकृष्ण को बन्दी बनाने की अनुमति कदापि नहीं दे सकता। प्रथम तो वे इस समय पाण्डवों के दूत बनकर आ रहे हैं दूसरे, वे हमारे निकट सम्बन्धी हैं। तीसरे उन्होंने आज तक कभी कौरवों का अनिष्ट नहीं किया।" धृतराष्ट्र की बात का समर्थन करते हुए भीष्म-पितामह कहने लगे, "धृतराष्ट्र, तुम्हारा यह पुत्र अत्यन्त मूर्ख है। यह सदैव अनिष्ट की बात ही सोचा करता है। इसकी ऐसी पापपूर्ण बातें मैं सुनना भी नहीं चाहता।" यह कहकर भीष्म सभाकक्ष से उठकर चले गये।

जब श्रीकृष्ण कौरवों की सभा में पहुँचे तो धृतराष्ट्र के आदेशानुसार उनका समुचित आदर सत्कार करके एक उच्च स्थान पर उन्हें बिठाया गया। इसके पश्चात् कुछ समय तक वे कौरवों के साथ हास-परिहास करते रहे। फिर धृतराष्ट्र से विदा होकर विदुरजी के साथ उनके निवास स्थान पर चले गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने विदुरजी को पाण्डवों का अभिप्राय: विस्तारपूर्वक बताया। फिर वे कुन्ती के पास आ गये और उन्हें उनके पुत्रों की कुशलक्षेम सुनाई। वहाँ से निवृत्त होकर वे दुर्योधन से मिलने के लिए उसके राजभवन में पहुँचे। श्रीकृष्ण को आता देख दुर्योधन ने अपने भाइयों एवं मित्रों सहित खड़े होकर उनका सत्कार किया। फिर उन्हें भोजन के

लिए आमंत्रित किया, किन्तु उन्होंने नम्रतापूर्वक यह निमंत्रण अस्वीकार कर दिया। इस अस्वीकृति का कारण जानने के लिए दुर्योधन ने पूछा, "हे श्रीकृष्ण! आप दोनों पक्षों के सहायक हैं। हमारे पिता महाराज धृतराष्ट्र के आप निकट सम्बन्धी हैं। इसके अतिरिक्त वे आपसे स्नेह भी बहुत करते हैं। फिर आपने हमारे भोजन का निमंत्रण क्यों अस्वीकार कर दिया?"

दुर्योधन की बात सुनकर श्रीकृष्ण बोले, "हे दुर्योधन! तुम्हारा तर्क पूर्णतया यथार्थ है, किन्तु तुम यह भी जानते होगे कि कार्य पूरा हो जाने पर ही दूत भोजन करते हैं। जब मैं अपने उद्देश्य में सफल हो जाऊँगा तब तुम मुझे और मेरे साथियों को भोजन कराना। उस समय हम लोग बड़ी प्रसन्नता से भोजन करेंगे। इस समय तो मैं विदुरजी के यहाँ भोजन करूँगा।" इसके पश्चात् कुछ समय बातें करके श्रीकृष्ण वहाँ से विदा हुए।

पाँचवाँ अध्याय

कृष्ण का विदुर के घर साग खाना

वैशंपायनजी बोले—हे राजन्! दुर्योधन के राजभवन में भोजन का निमंत्रण ठुकराकर जब श्रीकृष्ण महात्मा विदुर की कुटिया में पहुँचे तब विदुरजी घर पर न थे। वहाँ जाकर उन्होंने देखा, विदुरजी की कुटिया एक साधारण निर्धन व्यक्ति की कुटिया के सदृश थी। उसमें सम्पन्नता का कोई चिह्न नहीं था। उनकी सत्य एवं स्पष्टवादिता, न्यायशीलता, निर्भीकता आदि गुणों से चिढ़कर दुर्योधन ने उन्हें सब प्रकार की सुविधाओं

से वंचित कर दिया था। यही कारण है कि वे एक निर्धन व्यक्ति का जीवन बिता रहे थे। फिर भी उन्होंने दुर्योधन के अत्याचारों की शिकायत कभी धृतराष्ट्र से नहीं की थी। उनका स्वाभिमान उन्हें ऐसा करने की अनुमति भी नहीं देता था।

जिस समय द्वारिकाधीश कृष्ण उनके घर पहुँचे, विदुर पत्नी पृथा अपने हाथ से भोजन बना रही थी। कृष्ण उन्हें बुआ कहते थे। वे मुस्कराते हुए उनके पास जाकर बैठ गये और बोले, "बुआ! बहुत भूख लग रही है, शीघ्रता से कुछ खाने को दो।" कृष्ण की बात सुनकर पृथा के नेत्र भर आये और वे भारी असमंजस में पड़ गई। उस समय घर में साग के अतिरिक्त कुछ और नहीं था। वे सोचने लगीं, इतने बड़े नरेश मेरे घर आकर मुझसे भोजन माँग रहे हैं और मेरे घर में साग के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। षट्रस भोजन करने वाले सम्राट् के आगे मैं सूखा बिना घी का साग कैसे रखूं? ये मेरा रूखा-सूखा साग कैसे खा सकेंगे? घर में एक मुट्ठी आटा भी तो नहीं है जिसकी रोटियाँ बनाकर साग के साथ इनके सम्मुख परोस दूँ। हे भगवान्! तूने मुझे किस संकट में डाल दिया? मैं क्या करूँ? श्रीकृष्ण को क्या खिलाऊँ? यह सोचते-सोचते उनका हृदय भर आया। फिर भी साहस करके बोली, "पुत्र! थोड़ी देर ठहर जाओ। अभी तुम्हारे फूफा आयेंगे। उनके आते ही हम सब लोग मिलकर भोजन करेंगे। अभी पतीली में साग चढ़ाया है। उसके पश्चात् कुछ मिष्ठान आदि भी तो बाजार से मंगाना है। केवल पूड़ी कचौरी तुम्हारे सामने थोड़े ही रख

दूंगी ? बस, अधिक से अधिक दो चार पल की देर होगी। उन्हें आ जाने दो।"

श्रीकृष्ण विदुरजी की दशा से भली भाँति परिचित थे, बोले, "बुआ! इतने समय में तो भूख से मेरे प्राण ही निकल जायेंगे। तुम तो मुझे साग ही परोस दो। देखो, साग बन गया है। कैसी सौंधी-सौंधी सुगन्धि आ रही है।" पृथा किंकर्त्तव्य-विमूढ़ सी विचारमग्न हो गई। श्रीकृष्ण बोले, "बुआ! तुम भी किस आडम्बर में पड़ गई। लाओ, मुझे दो साग। अच्छा लो मैं स्वयं ही ले लेता हूँ।" यह कहकर उन्होंने निःसंकोच पतीली उठाकर एक पात्र में थोड़ा सा साग लिया और भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए खाने लगे। खाकर बोले, "बस बुआ! तृप्ति हो गई। इतना बढ़िया स्वादिष्ट भोजन या तो यशोदा मैया खिलाती थी या आज तुमने खिलाया है।

छठा अध्याय

कौरव सभा में श्रीकृष्ण का उपदेश, गुणकेशी के विवाह की कथा

अगले दिन श्रीकृष्ण विदुरजी के साथ कौरवों की राज-सभा में पहुँचे। धृतराष्ट्र सहित समस्त सभासदों ने खड़े होकर उनका स्वागत किया। सभा में अनेक ऋषि-मुनि, परशुराम, कण्व, नारद आदि भी उपस्थित थे जो श्रीकृष्ण का आगमन सुनकर आये थे। उनका उचित सत्कार कर उन्हें उचित आसन पर बैठाया गया। सबके आसन ग्रहण कर लेने के पश्चात् श्रीकृष्ण बोले, "राजन्! मैं कौरवों और पाण्डवों के बीच सन्धि का प्रस्ताव लेकर आया हूँ। आपके पुत्र दुर्योधनादि लोभ के वशीभूत होकर प्राचीन मर्यादा का उल्लंघन कर रहे हैं। वे

पाण्डवों के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार कर रहे हैं। यदि आप इस स्थिति को नहीं सँभालेंगे तो देश में भयानक युद्ध छिड़ जायेगा और इस महायुद्ध में असंख्य लोगों का सर्वनाश होगा। इसलिए उचित यह होगा कि आप अपने पुत्रों को युद्ध करने से रोकें और मैं पाण्डवों को रोकूँगा। शान्ति बनी रहने में ही दोनों पक्षों का कल्याण है। यदि पाण्डव आपके सहायक हो जायें तो आप लोग भूमण्डल का साम्राज्य निष्कण्टक होकर भोग सकेंगे। इन्द्र भी आपको पराजित नहीं कर सकेंगे। पाण्डवों ने आपको प्रणाम कहलाकर कहा है कि हमने आपकी आज्ञा से तेरह वर्ष तक वन में रहकर क्लेश भोगे हैं। हम अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुके हैं। अब आप अपनी प्रतिज्ञानुसार हमें हमारा राज्य लौटा दीजिए। पिता की भाँति इस विपत्ति से हमारा उद्धार करें। पाण्डव सन्धि और युद्ध दोनों के लिए तैयार हैं। उन्हें इन दोनों में से क्या करना चाहिए इसका निर्णय अब आपके ऊपर है।"

कुछ देर तक जब राजा धृतराष्ट्र और कोई सभासद कुछ नहीं बोला तो महर्षि परशुराम ने कहा, "धृतराष्ट्र! इस प्रसंग में मैं आपको एक कथा सुनाता हूँ--प्राचीनकाल में दम्भोद्भव नामक एक चक्रवर्ती सम्राट् थे। वह नित्य प्रातःकाल सब प्रजाजनों को बुलाकर पृछा करता था। क्या पृथ्वी पर मुझसे श्रेष्ठ मेरे समान वीर कोई और है?" कुछ विद्वानों ने निर्भय होकर उससे कहा--नित्य-प्रति इस प्रकार की गर्वोक्ति कहना उचित नहीं है। फिर भी उसने यह प्रश्न करना नहीं छोड़ा। एक दिन एक ब्राह्मण ने क्रोधित होकर उससे कहा--

गन्धमादन पर्वत पर देवलोक निवासी दो पुरुष नर और नारायण तपस्या कर रहे हैं। आप उनकी समता नहीं कर सकते। ब्राह्मण की बात से क्रोधित होकर राजा चतुरंगिणी सेना लेकर गन्धमादन पर्वत पर उन तपस्वियों के पास जाकर बोला--हे तपस्वियो! मैं अपने बाहुबल से समस्त लोकों को जीत चुका हूँ। अब तुमसे युद्ध करना चाहता हूँ। राजा की बात सुनकर नारायण ने कहा--राजन्! यह तपस्वी का आश्रम है। यहाँ अस्त्र-शस्त्र अथवा युद्ध की बात करना ही अनुचित है। पृथ्वी पर अब भी बहुत से क्षत्रिय हैं उनसे जाकर तुम युद्ध कर सकते हो। परन्तु दम्भोद्भव नहीं माना। तब नर ने मुट्ठी भर सेंटे उखाड़कर उसकी ओर फेंक दिये। इससे क्रुद्ध होकर राजा और उसके सैनिक नर पर बाणों की वर्षा करने लगे, किन्तु उन सेंठों ने बाणों को निष्फल ही नहीं कर दिया, वे शत्रु के आँख-नाक-कान तथा अन्य अङ्गों में घुसकर सबको हताहत करने लगे। जब राजा की नर से पार न चली तो वह उसके पैरों पर गिरकर क्षमा याचना करने लगा। शरणागत रक्षक नर ने कहा--जाओ, संसार में जाकर अभिमान छोड़कर सबका कल्याण करो। इसके पश्चात् अपने नगर में लौटकर राजा धर्मानुसार कार्य करने लगा। हे धृतराष्ट्र! अर्जुन साक्षात नर के अवतार है। इसलिए युद्ध की इच्छा छोड़कर उनके साथ सन्धि कर लो। इसी में तुम्हारे वंश का कल्याण है।"

इसके पश्चात् महर्षि कण्व बोले, "हे धृतराष्ट्र! मैं भी तुम्हें एक प्राचीन कथा सुनाता हूँ। इन्द्र के सारथि मातलि के गुणकेशी नाम की एक सुन्दर एवं गुणवती कन्या थी। जब

उसके योग्य कोई वर नहीं मिला तो मातलि अपनी पत्नी सुधर्मा की सम्मति से उसके लिए वर खोजने नागलोक को चले। मार्ग में उन्हें नारदजी मिले। मातलि ने अपनी यात्रा का वृत्तान्त सुनाया तो वे भी उनके साथ गुणकेशी के लिए वर खोजने को चल पड़े। अनेक स्थानों पर अनेक युवकों को देखने परखने के उपरान्त मातलि को एक युवक पसन्द आया जिसका नाम सुमुख था और जाति से नाग था। पूछताछ करने पर ज्ञात हुआ कि सुमुख का जन्म ऐरावत कुल में हुआ था। उसके पिता का नाम चिकुर, पितामह का नाम आर्यक तथा नाना का नाम वामन था। कुछ समय पूर्व विनता के पुत्र गरुड़ उसके पिता को खा चुके थे। मातलि के आग्रह पर नारदजी ने आर्यक के पास जाकर सुमुख के साथ गुणकेशी के विवाह का प्रस्ताव रखा। आर्यक ने बताया कि प्रस्ताव तो आपका अत्यन्त उत्तम है, परन्तु इस विवाह में एक बाधा है। गरुड़ सुमुख के पिता को खा चुके हैं। अब एक मास पश्चात् वे सुमुख को भी खा जाने के लिए कह गये हैं। यह सुनकर मातलि ने कहा—मेरे लिए यह कोई बाधा नहीं है। मैं इन्द्र के पास जाकर सुमुख को दीर्घायु करा लूंगा और गरुड़ के वध का प्रयत्न करूँगा। आर्यक ने उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। वे दोनों सुमुख को लेकर इन्द्र के पास गये। जिस समय सुमुख सहित मातलि और नारदजी देवराज इन्द्र के पास पहुँचे तो दैवयोग से भगवान विष्णु भी वहाँ विद्यमान थे। उन्होंने इन्द्र से कहा—तुम सुमुख को अमृत पिलाकर अमर कर दो। परन्तु इन्द्र गरुड़ से भय खाते थे। इसलिए उन्होंने सुमुख को अमृत तो नहीं

पिलाया, किन्तु दीर्घजीवी कर दिया। सुमुख का विवाह गुणकेशी के साथ सम्पन्न हो गया।

जब गरुड़ को यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो वे क्रोधित हो इन्द्र से जाकर बोले--जब ब्रह्माजी ने नागों को मेरा आहार बनाया है तो तुम उसमें बाधक क्यों बनते हो? मैंने प्रत्येक मास में एक नाग को अपना आहार बनाने का नियम बना रखा है। उसी नियम के अनुसार अगले मास मुझे सुमुख को अपना आहार बनाना है। मैं विष्णु के रथ की ध्वजा पर रहकर उसकी रक्षा करता हूँ और उन्हें अपने ऊपर चढ़ाकर सर्वत्र ले जाता हूँ। मैं विष्णु को अपने पंख के केवल एक भाग पर बिठाकर ले जाता हूँ। इससे तुम समझ सकते हो कि मुझसे अधिक बलवान और कौन हो सकता है? जब भगवान विष्णु ने यह सुना तो बोले--गरुड़, तुम अत्यन्त दुर्बल होकर भी स्वयं को बहुत बलवान समझते हो। यदि तुम केवल मेरे दाहिने हाथ का बोझ ही सँभाल सको तो मैं तुम्हें बलवान मान लूँगा। यह कहकर विष्णु ने अपना दाहिना हाथ गरुड़ के ऊपर रख दिया जिससे वे व्याकुल होकर अचेत हो गये। जब उन्हें चेत हुआ तो वे विष्णु के चरणों में गिरकर क्षमा-याचना करने लगे। उन्हें क्षमा करते हुए वे बोले, हे गरुड़! अब कभी अभिमान मत करना।" कण्व ऋषि बोले, "हे दुर्योधन! तुम्हें भी अभिमान का त्याग कर देना चाहिये। तुम श्रीकृष्ण का प्रस्ताव स्वीकार करके पाण्डवों से सन्धि कर लो। महाराज धृतराष्ट्र! मैं आपसे बार-बार अनुरोध करता हूँ कि आप सन्धि प्रस्ताव को स्वीकार करके कुरुवंश की रक्षा करें।"

सातवाँ अध्याय

दुर्योधन का सन्धि प्रस्ताव ठुकराना तथा श्रीकृष्ण की वापसी

वैशंपायनजी बोले—हे जनमेजय ! जब अनेक विद्वानों तथा महात्माओं ने धृतराष्ट्र से सन्धि कर लेने के लिए कहा तो वे बोले, "विज्ञजनो ! आपका कहना तर्कसंगत है। मेरी भी यही इच्छा है किन्तु मैं अपने पुत्रों की हठधर्मी के कारण कुछ भी कर सकने में असमर्थ हूँ। दुर्योधन मेरी बात बिल्कुल नहीं मानता। हे कृष्ण ! तुम स्वयं इसे समझाओ।" श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र का अनुग्रह मानकर दुर्योधन को अनेक प्रकार से समझाने का प्रयत्न किया। भीष्म और द्रोणाचार्य ने भी उसे समझाया। सबकी बातें सुनकर दुर्योधन कहने लगा, "तुम सब लोग पाण्डवों का पक्ष लेकर मेरी निन्दा करते हो। उनके शौर्य गीत गाकर मुझे भयभीत करना चाहते हो। तुम समझ लो, मैं इससे कदापि भयभीत नहीं हो सकता। इस पृथ्वी पर कोई वीर ऐसा उत्पन्न नहीं हुआ जो हमें डराने की सामर्थ्य रखता हो। मैं युद्ध किये बिना सुई की नोक के बराबर भी पृथ्वी पाण्डवों को देने के लिए तैयार नहीं हूँ।" दुर्योधन का निश्चय सुनकर श्रीकृष्ण बोले, "ऐसा प्रतीत होता है कि कौरव वंश का अन्त निकट आ गया है। अब इस युद्ध को कोई नहीं टाल सकता। दुर्योधन की बुद्धि भ्रष्ट हो गई है।" श्रीकृष्ण के ये वचन सुनकर दुर्योधन अपने साथियों के साथ क्रोध से तमतमाता हुआ सभा से उठकर चला गया।

दुर्योधन के इस प्रकार चले जाने पर श्रीकृष्ण ने भीष्म, द्रोण आदि को सम्बोधित करते हुए कहा, "हे महात्माओ !

क्या आप लोग कौरव वंश की रक्षा के लिए दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन आदि को अनुशासित नहीं कर सकते ? कुल और मानव जाति की रक्षा के लिए ऐसे लोगों को बन्दी बनाकर कारागार में डाल देना चाहिए।" श्रीकृष्ण की मर्मभरी वाणी सुनकर धृतराष्ट्र ने गांधारी को बुलाकर कहा, "तुम अपने पुत्रों को समझाओ कि वे पाण्डवों के साथ संधि कर लें। इसी में तुम सब का कल्याण है।" धृतराष्ट्र की बात सुनकर गांधारी बोली, "महाराज! इसमें सारा दोष आपका है। आप उसके दोषों को जानकर भी सदा उसका साथ देते रहे हैं। आपने कुमार्ग पर जाने से उसे कभी नहीं रोका। ऐसा दुरात्मा और लोभी व्यक्ति राज्य का अधिकारी नहीं हो सकता।"

तत्पश्चात दुर्योधन को बुलाकर गांधारी ने पाण्डवों के साथ सन्धि कर लेने के लिए अनेक प्रकार से समझाया परन्तु वह उसका भी निरादर और अपमान करके वहाँ से चला गया। वह सीधा कर्ण, दुःशासन आदि के पास गया और बल पूर्वक श्रीकृष्ण को बन्दी बनाकर कारागार में डालने का निश्चय किया। जब इस गुप्त निर्णय की सूचना सात्यकि को मिली तो उन्होंने सभाभवन में जाकर श्रीकृष्ण को इसकी सूचना दे दी। धृतराष्ट्र ने इस षड़यन्त्र की सूचना पाकर दुर्योधन आदि को पुनः राजसभा में बुलाकर उन्हें बुरी तरह धिक्कारा। इस प्रकार पिता की फटकार सुनकर दुर्योधन सिर झुकाये वहाँ से चला गया। श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र से विदा ले अपने साथियों सहित रथ में बैठकर कुन्ती के पास आये। कुन्ती को धैर्य बंधा और पाण्डवों के लिए आवश्यक संदेश लेकर उन्होंने

वहाँ से प्रस्थान किया और सात्यकि को साथ लेकर कर्ण से मिले। कर्ण को एकान्त में लेजाकर उन्होंने कहा, "कर्ण! तुमने अत्यन्त सूक्ष्म एवं जटिल धर्मशास्त्र का अध्ययन किया है। तुम यह भी जानते हो कि कुन्ती ने तुम्हें कुमारावस्था में जन्म दिया था और महाराज पाण्डु धर्मानुसार तुम्हारे पिता हैं। इसलिए पाण्डवो को मिलने वाले राज्य के वास्तविक स्वामी तुम ही होंगे। पाण्डव तुम्हारे पितृ कुल के हैं और यादव मातृ कुल के हैं। इसलिए ये दोनों वंश शासन कार्य में तुम्हारी सहायता करेंगे। पाण्डव भी तुम्हें कुन्ती का बड़ा पुत्र और युधिष्ठिर का बड़ा भाई मानकर तुम्हारा सम्मान करेंगे और तुम्हारी सेवा करना अपना परमधर्म समझेंगे। आओ, मेरे साथ पाण्डवों के पास चलो।"

कर्ण ने कहा, "श्रीकृष्ण! आपका कहना यथार्थ है कि मैं महाराज पाण्डु का पुत्र हूँ, परन्तु मेरे उत्पन्न होते ही माता कुन्ती ने मुझे जल में प्रवाहित कर दिया था, ये उनका मातृ धर्म नहीं कहा जा सकता। अधिरथ सूत की पत्नी राधा ने मेरा पालन पुत्र के समान किया है। उनके प्रति मैं कैसे कृतघ्न हो सकता हूँ? इसके अतिरिक्त दुर्योधन के आश्रित रहकर मैंने अनेक वर्षों तक निष्कंटक राज्य भोगा है। उनकी कृपाओं को मैं कैसे विस्मृत कर सकता हूँ? इस युद्ध के समय मैं उनके साथ कैसे विश्वासघात कर सकता हूँ? जब युधिष्ठिर को ज्ञात होगा कि मैं उनका बड़ा भाई हूँ तो वे राज्य मुझे दे देंगे। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार मुझे यह राज्य दुर्योधन को सौंप देना पड़ेगा। ऐसा मैं नहीं करना चाहता। इसलिए आपसे अनुरोध है कि

मेरे और आपके बीच में हुए इस वार्तालाप का आभास पाण्डवों को न मिले। मैं चाहता हूँ कि धर्मात्मा युधिष्ठिर इस साम्राज्य के स्वामी बनें। मेरी कुछ मर्यादाएँ हैं जिनके कारण मैं उनकी सहायता नहीं कर सकता। केवल शुभकामनाएँ दे सकता हूँ।" श्रीकृष्ण कर्ण की बातें सुनकर मुस्कराये और उन्हें हृदय से लगाकर विदा हुए।

कुन्ती को जब निश्चय हो गया कि युद्ध अवश्य होगा तो वह कर्ण को मनाने के लिए उसके पास गई। कुन्ती को अपने पास आता देखकर कर्ण ने प्रणाम करते हुए कहा, "हे देवि! मैं राधा का पुत्र कर्ण आपको प्रणाम करता हूँ।" कर्ण की बात सुनकर व्याकुल हो कुन्ती ने कहा, "पुत्र! ऐसा मत कहो। तुम राधा के नहीं, मेरे पुत्र हो। तुम अपने भाइयों को नहीं जानते, इसलिए दुर्योधन की सेवा कर रहे हो। तुम अपने छोटे भाइयों को स्नेह दो और अपने पिता के ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते राजा बनकर सुख भोगो। कर्ण ने उत्तर दिया, "देवि! माता पुत्र का सम्बन्ध तो आप स्वयं अपने हाथों से बहुत पहले ही तोड़ चुकी हैं। अब उसे जोड़ने की चेष्टा व्यर्थ है। इसके अतिरिक्त यदि इस समय मैं दुर्योधन का साथ छोड़ दूं तो सारा संसार स्वार्थी और कायर कहकर मेरी निन्दा करेगा। कोई नहीं जानता कि मैं पाण्डवों का भ्राता हूँ। इसलिए मैं दुर्योधन की ओर से पाण्डवों से अवश्य युद्ध करूँगा। आप मेरे पास आई हैं, अतएव मैं आपको वचन देता हूँ कि मैं अर्जुन के अतिरिक्त और किसी को नहीं मारूँगा। यदि मैंने अर्जुन को या अर्जुन ने मुझे मारा तो भी आपके पाँच पुत्र तो बने ही रहेंगे।" कर्ण के

दृढ़ निश्चय से अवगत हो कुन्ती निराश होकर अपने निवास स्थान को लौट गई।

उधर उपप्लव्य नगर में जाकर श्रीकृष्ण ने पाण्डवों को सम्पूर्ण समाचार कह सुनाया। फिर बोले, "अब यह युद्ध अवश्य होगा। दुर्योधन ने तो भीष्मपितामह को सभापति बना कर अपनी सेना को कुरुक्षेत्र की ओर कूच करने का आदेश भी दे दिया है। ऐसा मैंने लौटते हुए मार्ग में सुना है। ऐसी स्थिति में जो तुम उचित समझो, करो।"

आठवां अध्याय

दोनों ओर की सेनाओं का प्रस्थान

श्रीकृष्ण से हस्तिनापुर का सम्पूर्ण समाचार ज्ञात कर युधिष्ठिर ने अपने सभी भ्राताओं तथा वहाँ उपस्थित नरेशों को मन्त्रणा के लिए एकत्रित किया। निश्चय हुआ कि राजा द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, चेकितान, सात्यकि, शिखण्डी तथा भीमसेन सात अक्षौहिणी सेना के भिन्न भिन्न सात भागों के सेनापति नियुक्त किये जायें। श्रीकृष्ण के परामर्श से महाबाहु धृष्टद्युम्न को प्रधान सेनापति चुना गया, क्योंकि उनका जन्म ही द्रोणाचार्य को मारने के लिए हुआ था। यह निश्चय होते ही चारों ओर युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। चालीस हजार रथ, साठ हजार हाथी, दो लाख घोड़े और चार लाख पैदल सैनिकों से युक्त यह विशाल युद्धवाहिनी वीर पाण्डवों की जय जयकार करती हुई कुरुक्षेत्र की ओर चल पड़ी। कुरुक्षेत्र में पहुँचकर समस्त सेनापतियों ने अपने अपने शंख बजाकर पृथ्वी को गुंजा डाला।

श्मशान, देवस्थान, ऋषियों-मुनियों के आश्रम आदि को बचाकर हिरण्यवती नदी के तट पर समतल भूमि पर शिविर लगाये गये। शिविरों के चारों ओर गहरी खाइयाँ खुदवाई गई ताकि शत्रु पक्ष के लोग अवसर पाकर शिविरों पर आक्रमण न कर सकें। प्रत्येक सेना के पृथक-पृथक शिविर लगाये गये। शिल्पियों, वैद्यों तथा इसी प्रकार के अन्य असैनिक सहायकों के लिए पृथक-पृथक शिविर लगाये गये। अल्प काल में ही वह क्षेत्र रंग-बिरंगी पताकाओं से सुशोभित होकर एक अद्भुत सैनिक नगर बन गया। जहाँ एक ओर असंख्य अस्त्र-शस्त्रों के भण्डार बने हुए थे, वहाँ दूसरी ओर अपरिमित खाद्य तथा अन्य आवश्यक सामग्री एकत्रित की गई थी। इस प्रकार सारा प्रबन्ध करके पाण्डव सेना आतुरता से युद्ध प्रारम्भ होने की प्रतीक्षा करने लगी।

उधर जब दुर्योधन को अपने गुप्तचरों से पाण्डव सेना की शक्ति, सज्जा और व्यवस्था का समाचार मिला तो उसने कर्ण, शकुनी, दुःशासन आदि को बुलाकर कहा, "पाण्डवों ने कुरुक्षेत्र में अपनी सेना के शिविर गाड़ दिये हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि हम भी यथाशीघ्र सर्वोत्तम स्थान चुनकर कुरुक्षेत्र के निकट ऐसे स्थान पर सैन्यागार बनायें जहाँ शत्रु हम पर किसी भी दशा में आक्रमण न कर सकें। मैं चाहता हूँ कि इस क्षेत्र में कम से कम एक लाख शिविर लगाये जायें ताकि शिविरों की विशाल संख्या को देखकर ही शत्रु भयभीत हो जाय। अपनी ग्यारह अक्षौहिणी सेना को ग्यारह भागों में विभाजन किया जाय। सर्वत्र यह घोषणा करा दी जाय कि

युद्ध कल प्रारम्भ होगा। प्रत्येक नरेश अपनी अपनी सेना को लेकर कौरव दल को जय जयकार करते हुए कुरुक्षेत्र की ओर कूच का डंका बजा दे। कल प्रातः सूर्योदय से पहले ही हमारी सेना कुरुक्षेत्र में पहुँच जानी चाहिए।

दूसरे दिन जब कौरव सेना कुरुक्षेत्र में पहुँच गई तो सम्पूर्ण सेना के शिविर उचित स्थानों पर लगाकर कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, शल्य, जयद्रथ, काम्भोजराज, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, कर्ण, भूरिश्रवा, शकुनी तथा महावीर वाह्लीक इन ग्यारह महारथियों को ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओं का सेनापति बनाकर उन्हें अपना अपना दायित्व सौंप दिया गया। फिर दुर्योधन सभी राजाओं को लेकर भीष्मपितामह के पास गया और हाथ जोड़कर बोला, "दादा! मेरी तथा इन समस्त राजाओं की प्रार्थना है कि आप इस विशाल कौरव सेना के प्रधान सेनापति के पद का भार सँभालें। चाहे सेना कितनी ही बड़ी और पराक्रमी हो, योग्य सेनापति के अभाव में वह सफल नहीं हो सकती। इसलिए हम सब आपको अपना सेनापति बनाना चाहते हैं क्योंकि आपसे अधिक योग्य एवं कुशल महारथी आज संसार में दूसरा नहीं है। यही कारण है कि बड़े से बड़े योद्धा भी आपके सामने नहीं ठहर सकता। आप शुक्राचार्य के समान नीतिवान तथा अनुभवी हैं।"

दुर्योधन का प्रस्ताव सुनकर भीष्मपितामह बोले, "मुझे प्रधान सेनापति का पद सँभालने में कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु एक बात मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। जिस प्रकार तुम मुझे प्रिय हो, उसी प्रकार पाण्डव भी मुझे प्रिय हैं। इसलिए मैं

पाण्डु के किसी पुत्र का संहार नहीं करूँगा। हाँ, तुम्हें इस युद्ध में विजय प्राप्त हो सके, अतएव मैं प्रतिदिन दस हजार वीरों को मारकर अपने शिविर में लौटा करूँगा। जब तक मैं युद्ध भूमि में मारा नहीं जाऊँगा, तेरे कल्याण के लिए अपनी इस प्रतिज्ञा का पालन करूँगा। मेरी दूसरी शर्त यह होगी कि जब तक मैं युद्ध करूँगा तब तक कर्ण युद्ध नहीं करेगा। यदि कर्ण युद्ध करेगा तो मैं युद्धभूमि से हट जाऊँगा।" तब कर्ण ने कहा "हे पितामह! आपकी दूसरी शर्त का सम्बन्ध मुझसे है। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक आपमें युद्ध करने की क्षमता रहेगी और आप समर भूमि में युद्ध करेंगे तब तक मैं अस्त्र-शस्त्र को हाथ नहीं लगाऊँगा। आपके अशक्त हो जाने पर मैं युद्ध करूँगा और उस युद्ध में अर्जुन को मारूँगा।" यह निश्चित हो जाने पर दुर्योधन ने बड़े समारोह के साथ भीष्मपितामह के प्रधान सेनापति बनने की घोषणा की।

इधर युद्ध को अवश्यम्भावी जानकर बलरामजी पाण्डवों के शिविर में पधारे। युधिष्ठिर व कृष्ण सहित सभी राजाओं ने खड़े होकर उनका स्वागत किया। तदनन्तर बलरामजी ने श्रीकृष्ण की ओर देखकर कहा, "ऐसा लगता है यह महाविनाश कारी युद्ध अब टाला नहीं जा सकता। मेरे लिए कौरव-पाण्डव दोनों एक समान हैं। किसी का भी अपकर्ष मुझसे सहन नहीं होगा। अतः मैं तीर्थ यात्रा पर जाऊँगा।" ऐसा कहकर बलरामजी तीर्थ यात्रा पर चले गये। इसी समय इन्द्र के मित्र दाक्षिणात्य नरेश भोजवंशी भीष्मक के पुत्र रुक्मी ने पाण्डवों के पास आकर कहा, "मैं एक अक्षौहिणी सेना लेकर इस युद्ध में आपकी

सहायता करने के लिए आया हूँ। सेना के जिस भाग को नष्ट करने का आप मुझे निर्देश दोगे, उसका मैं अवश्य विनाश कर दूँगा। यदि आप चाहें तो मैं अकेला हो सारी कौरव सेना को मारकर आपको इस भूमण्डल का राजा बना दूँगा।" अर्जुन बोले, "मित्रवर! हम लोग भिक्षा के रूप में राज्य प्राप्त करना नहीं चाहते। हम इसे अपने भुजबल से ही अर्जित करना चाहते हैं।" यह कहकर उन्होंने उसकी सहायता लेना अस्वीकार कर दिया। तब वे अपनी विशाल सेना लेकर दुर्योधन के पास गये और उससे भी इसी प्रकार की गर्वभरी बातें करने लगे। जिन्हें सुनकर दुर्योधन ने भी उनकी सहायता लेना अस्वीकार कर दिया। इस पर रुक्मी युद्ध से विरक्त होकर तीर्थ यात्रा पर चल दिये।

नवाँ अध्याय

दुर्योधन का युद्ध सन्देश लेकर उलूक का पाण्डवों के पास जाना

वैशम्पायनजी बोले—हे राजन्! महाराजा धृतराष्ट्र को युद्ध का विवरण जानने की अत्यधिक उत्कण्ठा थी। इसलिए उन्होंने संजय को बुलाकर कहा, "संजय! जब पाण्डवों तथा दुर्योधन की सेनाएँ कुरुक्षेत्र में एकत्रित हो गई तो उसके पश्चात् क्या हुआ?" संजय बोले, "राजन्! कुरुक्षेत्र में दोनों पक्षों की सेनाओं ने अपने-अपने शिविर लगा दिये और सेनापतियों तथा प्रधान सेनापतियों का चुनाव हो गया तो दुर्योधन ने कर्ण शकुनि तथा दुःशासन से परामर्श करके उलूक को अपने पास बुलाया और कहा--हे उलूक! तुम पाण्डवों के पास जाकर श्रीकृष्ण के सामने युधिष्ठिर से कहना कि श्रीकृष्ण ने कौरव

सभा में जो तुम्हारी प्रशंसा की थी, अब उस प्रशंसा के अनुकूल कार्य करने का समय आ गया है। क्षत्रिय बनकर अब तुम अपनी-अपनी प्रतिज्ञाएँ पूरी करो। पाखण्डी युधिष्ठिर से कहना, आपने कृष्ण के द्वारा कहलाया था कि मैं शान्ति और युद्ध दोनों के लिए तैयार हूँ। अब युद्ध का समय आगया है। हम आपका स्वागत करने के लिए आतुर हैं। हे उलूक! कृष्ण से कहना, मैं संजय के मुख से सुन चुका हूँ कि आप कौरवों का नाश कराके पाण्डवों को राज्य दिलायेंगे। इसलिये हे कृष्ण! आप पाण्डवों की ओर से मुझसे जो खोलकर युद्ध करो। अर्जुन से कहना, तुम या तो हमें पराजित करके निष्कंटक राज्य करो अथवा हमारे हाथ से मृत्यु का वरण करो। तुम लोगों की हम जैसे ऐश्वर्यवान राजपुत्रों से क्या तुलना? तुमने विराट के यहाँ जाकर नौकरी करके अपने पेट का पालन किया है और अर्जुन ने तो हिजड़े के वेष में उत्तरा को नाच गाना सिखाया। हमें तो इसी बात का संकोच है कि हमें ऐसे हिजड़े के साथ युद्ध करना होगा।"

इस प्रकार का सन्देश लेकर उलूक पाण्डवों के शिविर में गया और वहाँ उसने युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण, पाण्डव भ्राताओं तथा अन्य राजाओं की उपस्थिति में दुर्योधन का सन्देश अक्षरशः कह सुनाया। यह सन्देश सुनकर क्रोध से पाण्डवों के मुख मण्डल तमतमा उठे और भुजाएँ फड़कने लगीं। भीमसेन तो यह सन्देश सुनकर क्रोध से अभिभूत हो शकुनि-पुत्र उलूक को इस प्रकार देखने लगे मानो उसे कच्चा ही चबा जायेंगे। पाण्डवों को इतना क्रोधित होता देख श्रीकृष्ण ने उलूक से कहा,

"उलूक ! तुम शीघ्र जाकर दुर्योधन से कहो, हम तुम्हारा अभिप्राय समझ गए हैं और उनकी इच्छा के अनुसार ही समर भूमि में कार्य करेंगे।" भीमसेन बोले, "हे शकुनि पुत्र ! मेरी बात भी तुम दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन, अपने पिता शकुनि तथा कौरवों के अन्य सहायक राजाओं के सम्मुख कह देना कि तुम्हारे मस्तक पर काल नाच रहा है। इसी से तुम लोगों की बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। उनसे यह भी कहना कि मैंने जो तुम लोगों को मारने की प्रतिज्ञा की है, वह अवश्य पूरी होगी। तुम्हें स्वयं ब्रह्मा भी मेरे हाथों से नहीं बचा सकेंगे। तुम पापी और कुलघाती हो। कुल का नाश करने के लिए ही तुमने धृतराष्ट्र के घर जन्म लिया है। शकुनि से कहना कि तुम्हें तो मैं बाद में मारूँगा। तुमसे पहले मैं तुम्हारे इस सन्देशवाहक उलूक को तुम्हारे सामने ही यमलोक का मार्ग दिखाऊँगा।" लगभग सभी पाण्डवों ने दुर्योधन के सन्देश के कटु उत्तर दिये जिन्हें सुनकर उलूक युधिष्ठिर से अनुमति लेकर दुर्योधन के शिविर में लौट गया। उलूक के लौटने पर दुर्योधन ने क्रोधपूर्वक पाण्डवों के उत्तर सुने और अपने साथियों को बुलाकर दूसरे दिन सूर्योदय से पूर्व ही पूरी शक्ति से पाण्डव सेना पर आक्रमण करने का आदेश दिया।

धृतराष्ट्र के पूछने पर संजय ने बताया—भीष्म ने सेनापति पद स्वीकार कर दुर्योधन को आश्वासन दिया कि मैं अपने व्यूहों की सहायता से पाण्डवों को भ्रमित करूँगा और तुम्हारी सेना की यथाशक्ति रक्षा करूँगा। इसके पश्चात् पितामह ने शत्रुपक्ष के और अपने पक्ष के सभी रथी तथा महारथी योद्धाओं

की विस्तृत सूची से दुर्योधन को अवगत कराया। उन्होंने कहा, "तुम्हारी सेना में हजारों लाखों रथी और बहुत से अतिरथी हैं। मद्र नरेश शल्य श्रीकृष्ण के सदृश पराक्रमी हैं जो अपनी बहिन के पुत्रों का साथ छोड़कर तुम्हारी ओर से लड़ रहे हैं। सिन्धुराज जयद्रथ किसी भी रथी से दुगुनी शक्ति रखते हैं। उन्होंने शिव की तपस्या करके उनसे दुर्लभ वरदान प्राप्त किया है। माहिष्मती पुरी के राजा नील को सहदेव से पुरानी शत्रुता है, अतएव वे अपनी पूरी शक्ति से युद्ध में तुम्हारा साथ देंगे। तुम्हारे मामा शकुनि भी कुशल रथी हैं। द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा महारथी हैं। वे चाहें तो अकेले ही अपने शौर्य से सम्पूर्ण भूमंडल को कँपा सकते हैं। वे ऋषियों की भाँति क्रोधी, तेजस्वी एवं तपस्वी हैं। उन्हें समस्त दिव्य अस्त्र प्राप्त हैं। उनकी समता करने वाला योद्धा दोनों पक्षों में कोई नहीं है। उनमें केवल एक ही दोष है कि वे युद्ध से यथासंभव बचना चाहते हैं। इसीलिए उन्हें रथी या अतिरथी नहीं कहा जा सकता। यदि तुम उन्हें सच्चे हृदय से युद्ध करने को मना सको तो तुम्हारी विजय निश्चित है। द्रोणाचार्य सब महारथियों में श्रेष्ठ हैं, किन्तु वे अर्जुन से अपने पुत्र की भाँति स्नेह करते हैं इसलिए वे उसे युद्ध में कभी नहीं मारेंगे।" इस प्रकार उन्होंने अनेक वीरों के नाम गिनाये।

दुर्योधन ने कहा, "हे पितामह! आप अद्भुत योद्धा, महावीर कर्ण का नाम तो भूल ही गये।" भीष्मजी ने कहा, "हे दुर्योधन! स्वयं अपने मुख से अपनी प्रशंसा करने वाले, परनिन्दक, अभिमानी, नीच प्रकृति कर्ण को मैं पूरा रथी या

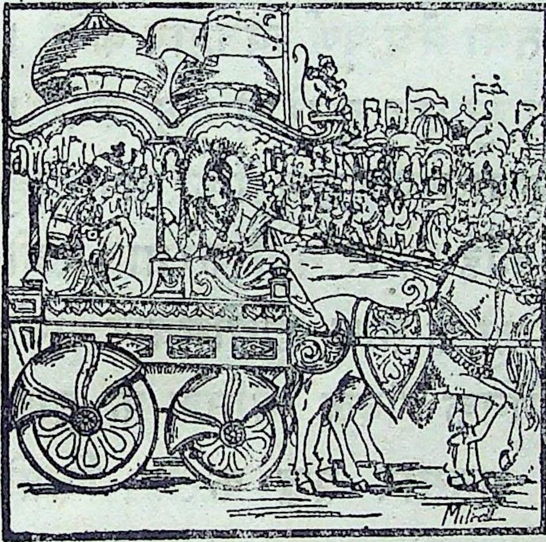
अतिरथी कुछ नहीं मानता। स्वाभाविक कवच-कुण्डल के अभाव में और परशुराम से दानपूर्वक शस्त्र-विद्या प्राप्त करने तथा उनसे अभिशप्त होने के कारण मैं उसे अर्धरथी मानता हूँ। वह अर्जुन के हाथों अवश्य मारा जायेगा।" जब द्रोणाचार्य ने भी भीष्म की बात का समर्थन किया तो कर्ण ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहा, "पितामह! आप मुझसे अकारण द्वेष रखते हैं। और सदा मेरी निन्दा किया करते हैं। यदि आप मुझे अर्धरथी कहेंगे तो सब लोग आपकी बात को सत्य मानकर मेरा अपमान करने लगेंगे। मैं जानता हूँ कि आप मन ही मन कौरवों के अनिष्ट की कामना करते रहते हैं। हे दुर्योधन! आप कौरवों से द्वेष रखने वाले इन पितामह को सेनापति पद से पृथक कर दें। मैं अकेला ही सम्पूर्ण पाण्डव सेना का नाश करने में समर्थ हूँ। जब तक ये आपके साथ रहेंगे, कौरवों का कल्याण कदापि नहीं होगा।" कर्ण की कटु बातें सुनकर भीष्म बोले, "मैं इस युद्ध के समय आपस में फूट डालना नहीं चाहता। इसीलिए सूतपुत्र! मैं तुम्हें जीवित छोड़ रहा हूँ।" भीष्म का क्रोध बढ़ते देख दुर्योधन उन्हें शान्त करके अन्यत्र ले गया। कर्ण भी क्रोध से फुङ्कारता हुआ वहाँ से चला गया।

॥ इति उद्योग पर्व सम्पूर्ण ॥

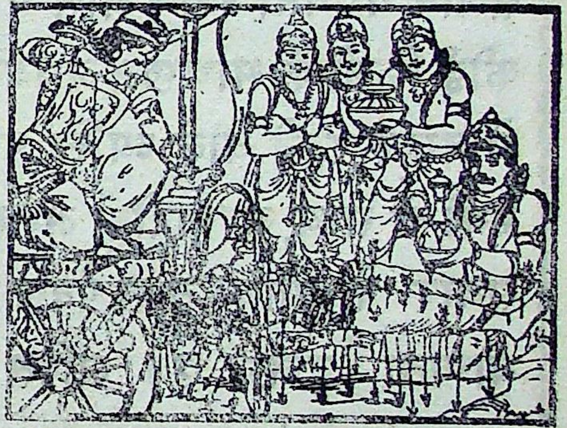
॥ ओ३म् ॥

महाभारत भाषा

६. भीष्म पर्व



श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को गीता का उपदेश



भीष्मपितामह शर-शैय्या पर

पहला अध्याय

दोनों पक्षों में युद्ध के नियमों का निश्चय, संजय को दिव्य दृष्टि की प्राप्ति

वैशंपायनजी बोले—हे नृपश्रेष्ठ जनमेजय! दूसरे दिन सूर्योदय होते ही कौरव पाण्डवों की सेना कुरुक्षेत्र के मैदान में परस्पर युद्ध करने के लिए एक दूसरे के सम्मुख आकर खड़ी हो गई। युधिष्ठिर ने अपने सेनानियों एवं सैनिकों को ऐसे चिह्न दिये जिनसे यह ज्ञात हो सके कि वे पाण्डवों की ओर से युद्ध कर रहे हैं। अर्जुन की सेना के अग्रभाग को देखकर दुर्योधन ने भी उसी के अनुसार अपनी सेना की व्यूह रचना की। फिर

समस्त कौरव सेनानियों ने अपने शंख बजाये। इसके उत्तर में जब श्रीकृष्ण तथा अर्जुन ने भयंकर घोष करने वाले शंख फूंके तो कौरव सैनिकों के हृदय दहल गये। इसके पश्चात् पाण्डवों तथा कौरवों के प्रधान सेनापतियों एवं उनके सहायकों ने परस्पर मिलकर युद्ध के नियम निश्चित किये। मुख्य-मुख्य नियम इस प्रकार थे।

प्रतिदिन युद्ध की समाप्ति पर दोनों पक्षों के लोग परस्पर सौहार्दपूर्वक मिलेंगे। तथा मैत्रीपूर्ण व्यवहार करेंगे। समान योग्यता रखने वाले योद्धा ही एक दूसरे से युद्ध करेंगे। कोई किसी के साथ छल अथवा अन्यायपूर्ण युद्ध नहीं करेगा। व्यूह से बाहर रहने वाले व्यक्ति पर कोई प्रहार नहीं करेगा। रथी रथी के साथ, अश्वारोही अश्वारोही के साथ, हाथीसवार हाथी सवार के साथ तथा पैदल सैनिक पैदल सैनिक के साथ योग्यता, इच्छा एवं शक्ति के अनुसार युद्ध करेंगे। किसी असावधान, व्याकुल अथवा घायल योद्धा पर कोई आक्रमण नहीं करेगा। जो व्यक्ति युद्ध न कर रहा हो अथवा रसद आदि पहुँचाने का कार्य करता हो, उस पर कोई वार नहीं करेगा।

एक दिन जब वेदव्यास धृतराष्ट्र के पास पहुँचे तो धृतराष्ट्र ने कहा, "मेरे पुत्रों तथा पाण्डवों के बीच जो भयंकर युद्ध हो रहा है, उसने मेरी व्यथा को बहुत बढ़ा दिया है। मैं चाहता हूँ कि प्रत्येक क्षण होने वाली घटना का मुझे पूर्ण विवरण मिलता रहे।" वेदव्यासजो बोले, "हे धृतराष्ट्र! यदि तुम इस युद्ध को स्वयं अपने नेत्रों से देखना चाहो तो मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि प्रदान कर सकता हूँ। जिससे यहाँ बैठे तुम सम्पूर्ण

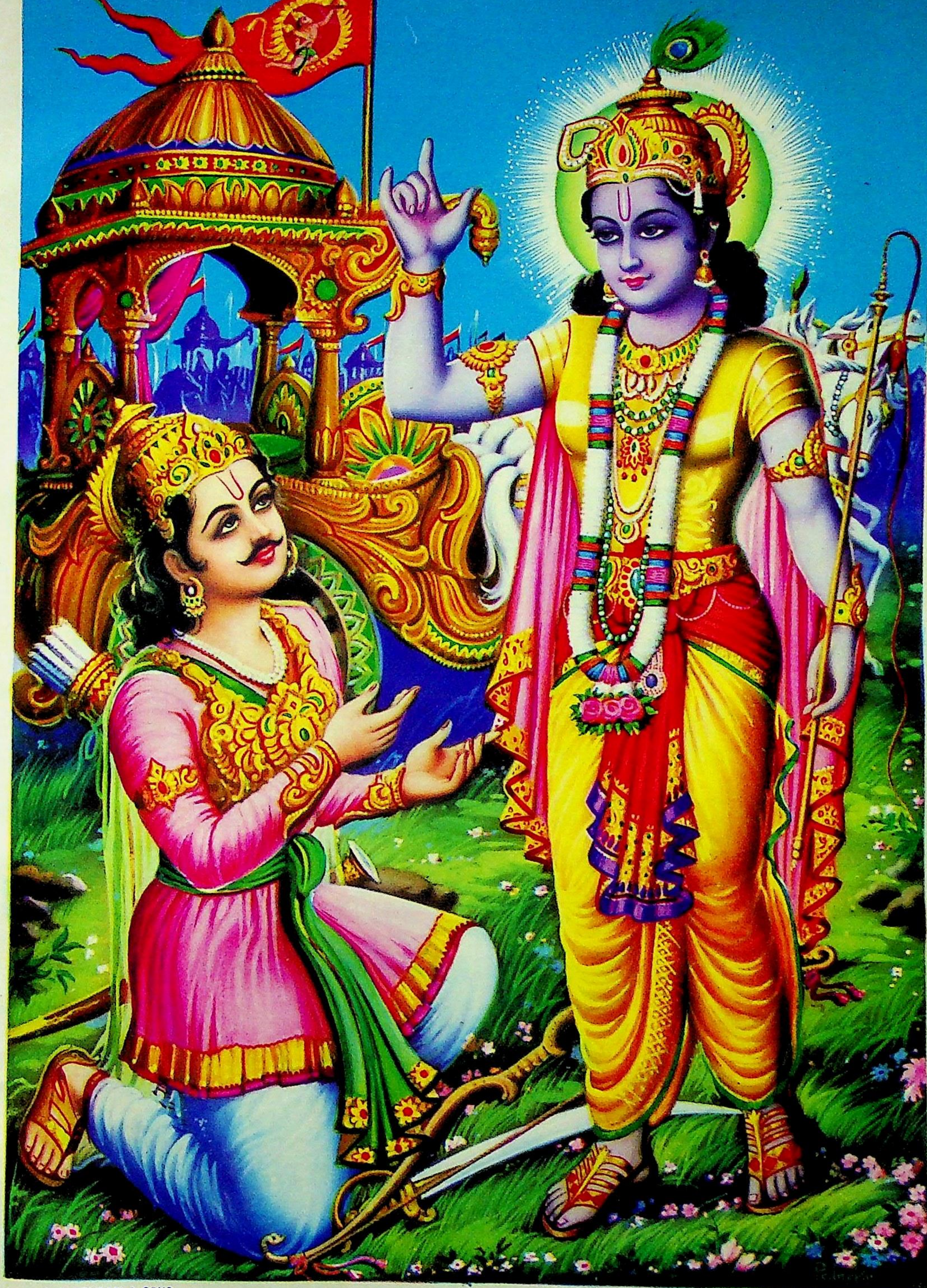
युद्ध की घटनाओं को देख सको।" वेदव्यास के वचन सुनकर धृतराष्ट्र बोले, "ब्रह्मर्षि! मैं अपने नेत्रों से अपने कुल का नाश होते नहीं देखना चाहता मुझे अपने पुत्रों तथा भतीजों के कुशल क्षेम की निरन्तर चिन्ता बनी रहती है। इसलिए आप कृपा करके ऐसी व्यवस्था कर दें कि मैं इस युद्ध का सम्पूर्ण विवरण जान सकूँ।" वेदव्यासजी बोले, "हे धृतराष्ट्र! तुम्हारी इच्छा पूरी करने के लिए मैं संजय को वह विधि बताता हूँ जिससे ये युद्ध का विवरण स्वयं देखकर तुम्हें सुना सकें।" इस प्रकार उन्होंने संजय को युद्ध संवाद ज्ञात करने की विधि बताते हुए कहा, "संजय! अब इस युद्ध की प्रत्येक प्रकट और गुप्त बात तुम्हारी दृष्टि से छिपी नहीं रहेगी। तुम सब कुछ देख सकोगे और इसका सांगोपांग वर्णन महाराज धृतराष्ट्र को सुना सकोगे। तुम्हें सम्पूर्ण विवरण सुनाना है, इसलिए युद्ध के पश्चात् भी तुम जीवित बच सकोगे। यदि तुम समरभूमि में योद्धाओं के मध्य में चले जाओगे तो भी कोई अस्त्र तुम्हारा स्पर्श नहीं करेगा।" धृतराष्ट्र ने पूछा, "महर्षे! क्या आप इस युद्ध के भविष्य के विषय में मुझे कुछ बताने की कृपा करेंगे?" वेदव्यास ने उत्तर में कहा, "हे राजन्! अब तक पृथ्वी पर हुए युद्धों में यह युद्ध सबसे भयंकर होगा। आकाश से रक्त और माँस की वर्षा होगी। माँसाहारी पशु-पक्षी इतना अधिक भोजन प्राप्त करेंगे कि वे उसका पूर्णतया उपयोग नहीं कर सकेंगे। रक्त की नदियाँ प्रवाहित होंगी जिनमें रुण्ड-मुण्ड तैरते दिखाई देंगे। इस महायुद्ध के फलस्वरूप होने वाली क्षति से देश शताब्दियों तक नहीं उबर पायेगा।"

वेदव्यास से युद्ध का यह लोमहर्षक परिणाम सुनकर धृतराष्ट्र का हृदय काँपने लगा। वे कम्पित स्वर में बोले, "व्यासजी! क्या यह महादुर्घटना किसी प्रकार से टल नहीं सकती?" वेदव्यासजी ने कहा, "राजन्! इस महायुद्ध को केवल एक व्यक्ति टाल सकता है और वह तुम हो। यह दुर्भाग्य की बात है कि काल से प्रेरित होकर तुम राज्य के लोभी एवं अन्यायी पुत्रों को इस युद्ध से विमुख करने की क्षमता खो बैठे हो। तनिक सोचो, ऐसे राज्य को लेकर तुम क्या करोगे जिसमें अपयश और पाप का भागी होना पड़े। यह जानते हुए भी ममता के जाल में पड़कर तुम अपने कुल का नाश कर रहे हो। राजन्! इसमें तुम्हारा भी दोष नहीं है, होनी प्रबल है।" यह कहकर वेदव्यासजी विदा हुए।

दूसरा अध्याय

अर्जुन का मोह तथा श्रीकृष्ण का गीता उपदेश

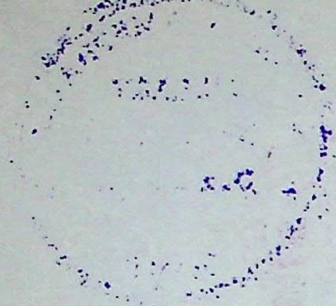
धृतराष्ट्र बोले—हे संजय! जब दोनों पक्षों के सेनापतियों ने युद्ध के नियम निश्चित कर लिये तो उसके पश्चात् क्या हुआ? संजय बोले--युद्ध के नियम निश्चित हो जाने पर भीष्मपितामह ने एक लाख हाथियों का व्यूह बनाया। प्रत्येक हाथी के साथ सौ रथ और प्रत्येक रथ के साथ सौ अश्वारोही रखे गये। उनके साथ एक-एक हजार पराक्रमी योद्धा भी थे। इस व्यूह को देखकर अर्जुन ने वज्र नामक व्यूह की रचना की। व्यूह के बीच में शिखण्डी को रखकर स्वयं अर्जुन ने उसकी रक्षा का भार सँभाला। सेना के अग्रभाग में धृष्टद्युम्न तथा भीमसेन थे। युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व विजय की कामना से



S. S. BRIJBASI & SONS
59, MIRJA STREET.
BOMBAY-3

1 Geeta Updesh

S. S. BRIJBASI & SONS
32/1. FATEHPURI.
DELHI-6



अर्जुन ने दुर्गास्तोत्र का विधिपूर्वक पाठ किया। उनके पश्चात् अर्जुन के कहने से श्रीकृष्ण उनका रथ दोनों सेनाओं के मध्य में उस स्थान पर ले गये जहाँ से दोनों ओर के योद्धाओं को भलीभाँति देखा जा सकता था। जब अर्जुन ने देखा कि दोनों ओर से युद्ध करने वाले उनके निकट सम्बन्धी हैं, विशेषत: उनके विरुद्ध तथा कौरवों की ओर से जो पराक्रमी योद्धा युद्ध करने के लिए आये हैं उनमें भी निकट सम्बन्धी हैं तो उन्होंने यह कहकर युद्ध करना अस्वीकार कर दिया कि मैं अपने इन सम्बन्धियों को मारकर पृथ्वी का तो क्या स्वर्ग का भी राज्य प्राप्त करना नहीं चाहता। इन लोगों को मारने से हम पाप के भागी होंगे। इन्हें मारने की अपेक्षा मैं स्वयं इनके हाथों से मारा जाना श्रेयस्कर समझता हूँ। इसलिये मैं युद्ध कदापि नहीं करूँगा। अर्जुन का यह निश्चय सुनकर धृतराष्ट्र कहने लगे, "संजय ! श्रीकृष्ण और अर्जुन के मध्य जो वार्तालाप हुआ उसे मैं विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ। इनके वार्तालाप में यदि कोई बात युद्ध से सम्बन्धित न हो तो भी वह मुझे सुनाओ।" धृतराष्ट्र की आज्ञा पाकर संजय उनके वार्तालाप का विवरण सुनाने लगे।

अर्जुन की यह दशा देखकर श्रीकृष्ण ने कहा--हे अर्जुन ! इस असमय में तुम्हें यह कैसा मोह हो गया है ? यह मोह न तो स्वर्ग देने वाला है और न यश। अतएव मोह छोड़कर युद्ध करो। तुम शोक न करने योग्य मनुष्यों के लिये शोक कर रहे हो। पण्डित लोग न मृत व्यक्ति के लिये शोक करते हैं और न जीवित व्यक्ति के लिये। जो आज हैं वे पहले भी थे

और भविष्य में भी रहेंगे। असत् की सत्ता नहीं होती और सत् का अभाव नहीं होता। केवल ईश्वर अविनाशी है, वही सम्पूर्ण संसार में व्याप्त है। जीवात्मा अमर है, किन्तु शरीर नाशवान है। आत्मा न किसी को मारता है और न किसी के द्वारा मारा जाता है। वह न जन्म लेता है, न मरता है। जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर नये वस्त्र धारण कर लेता है, उसी प्रकार जीवात्मा एक शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर धारण कर लेता है। उसे न शस्त्र काट सकता है, न वायु सुखा सकती है, न अग्नि जला सकती है और न पानी डुबा सकता है। यदि तुम यह मानते हो कि आत्मा जन्म लेता है और मरता है तो भी तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये क्योंकि जो जन्म लेता है, उसकी मृत्यु अनिवार्य है। इसलिये इस युद्ध के करने से तुम कभी पाप के भागी नहीं बन सकते। यदि तुम इस युद्ध को कर्त्तव्य समझकर करोगे तो तुम्हारे लिये शोक का कोई कारण नहीं होगा। निष्काम कर्म करने से फल का दोष नहीं लगता। जन्म तथा मृत्यु का भी भय नहीं होता। निष्काम कर्म में एक ही बुद्धि होती है, जबकि सकाम कर्म में बुद्धि अनेक भेदों वाली हो जाती है। तुम्हारा केवल कर्म करने का अधिकार है, उसके फल पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं है कि कर्म न करने में आसक्ति हो। ऐसा भी नहीं होना चाहिये। अतः समत्व बुद्धि रखकर कर्त्तव्य करना चाहिए। सकाम कर्म अत्यन्त निम्न श्रेणी का है। जब बुद्धि मोह से मुक्त हो जाती है तो भोगों से वैराग्य हो जाता है और जब बुद्धि ईश्वर में अचल हो जाती है तो समत्व योग

प्राप्त होता है। उसे शुभ वस्तु की प्राप्ति पर सुख और अशुभ की प्राप्ति पर दुःख नहीं होता। विषयों का चिन्तन करने से विषयों में आसक्ति होती है। आसक्ति होने पर कामना पैदा होती है। कामना में विघ्न पड़ने पर क्रोध उत्पन्न होता है। अतएव कामना, ममता तथा अहंकाररहित व्यक्ति सुखी होता है।

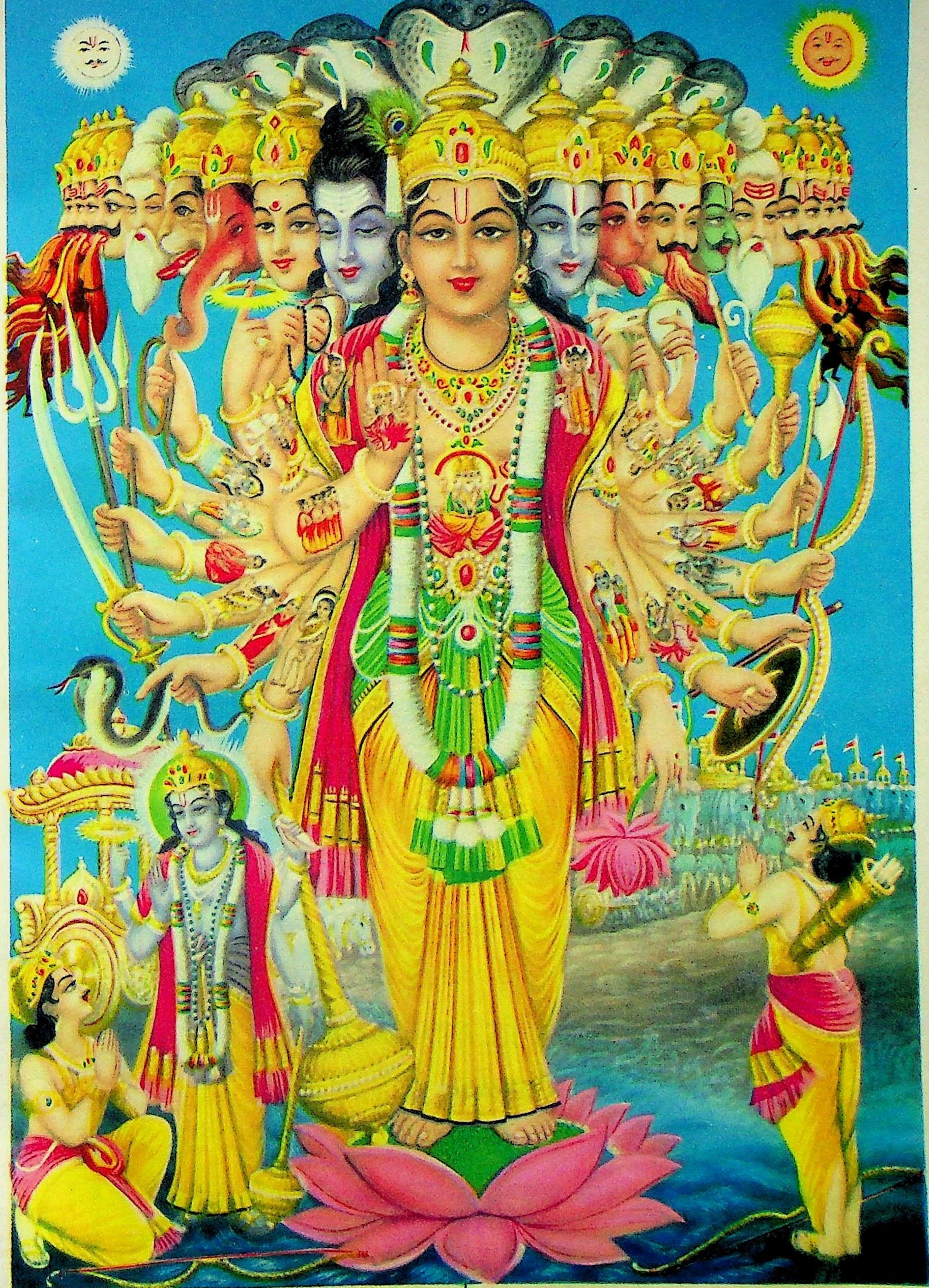
अर्जुन ने पूछा--कर्म श्रेष्ठ है या ज्ञान? यदि ज्ञान श्रेष्ठ है तो आप मुझे कर्म करने को क्यों कहते हैं? श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया--अर्जुन! निष्ठाएँ दो प्रकार की होती हैं, ज्ञान योग तथा कर्म योग, कर्मों का आरम्भ किये बिना योगनिष्ठा नहीं मिलती और न कर्मों का त्यागमात्र करने से भगवद् प्राप्ति होती है। कोई भी प्राणी एक क्षण भी कर्म किए बिना नहीं रह सकता। इसलिए इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त भाव से कर्म करना चाहिए। शास्त्रानुसार कर्म न करने वाला व्यक्ति पृथ्वी पर भार है। कर्म न करने वाला व्यक्ति नष्ट हो जाता है। इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति को कर्म करना चाहिए किन्तु वह कर्म निष्काम भाव से होना चाहिये। सब प्रकार के कर्म प्रकृति के गुणों के कारण होते हैं, परन्तु अज्ञानी लोग स्वयं को उनका कर्त्ता समझते हैं। आत्मनिष्ठ चित्त से सारे कर्म मुझे अर्पित करके करने से मनुष्य कर्मबन्धनों से छूट जाते हैं। जब अर्जुन ने पूछा कि इच्छा न होने पर भी मनुष्य पाप क्यों करता है तो केशव बोले--रजोगुण से उत्पन्न कामना ही क्रोध है। कामना ज्ञान को ढक लेती है। इन्द्रियों, मन और बुद्धि में काम रहता है। इन्हीं के द्वारा वह बुद्धि को भ्रमित करता है। इसलिए

इन्द्रियों को वश में करके काम को मारना चाहिए। इस काम को बुद्धि के द्वारा वश में किया जा सकता है।

अर्जुन ने प्रश्न किया--कर्म और अकर्म में क्या अन्तर है? श्रीकृष्ण बोले--हे अर्जुन! कर्म और अकर्म का प्रश्न इतना उलझा हुआ है कि अच्छे-अच्छे बुद्धिमान भी इसमें उलझ जाते हैं। सत्य तो यह है कि मर्म के ज्ञाता कर्म में अकर्म को और अकर्म में कर्म को देखते हैं। शास्त्र सम्मत संकल्परहित कार्य करना ही कर्म है। इस प्रकार अनासक्त भाव से किया हुआ कर्म मनुष्य को किसी बन्धन में नहीं बाँधता, इसलिए वह अकर्म है। अर्पण तथा हवि दोनों ही ब्रह्म हैं। ब्रह्मरूपी यजमान, ब्रह्मरूप अग्नि में ब्रह्मरूप हवन करता है। अतः प्राप्य भाव भी ब्रह्म है।

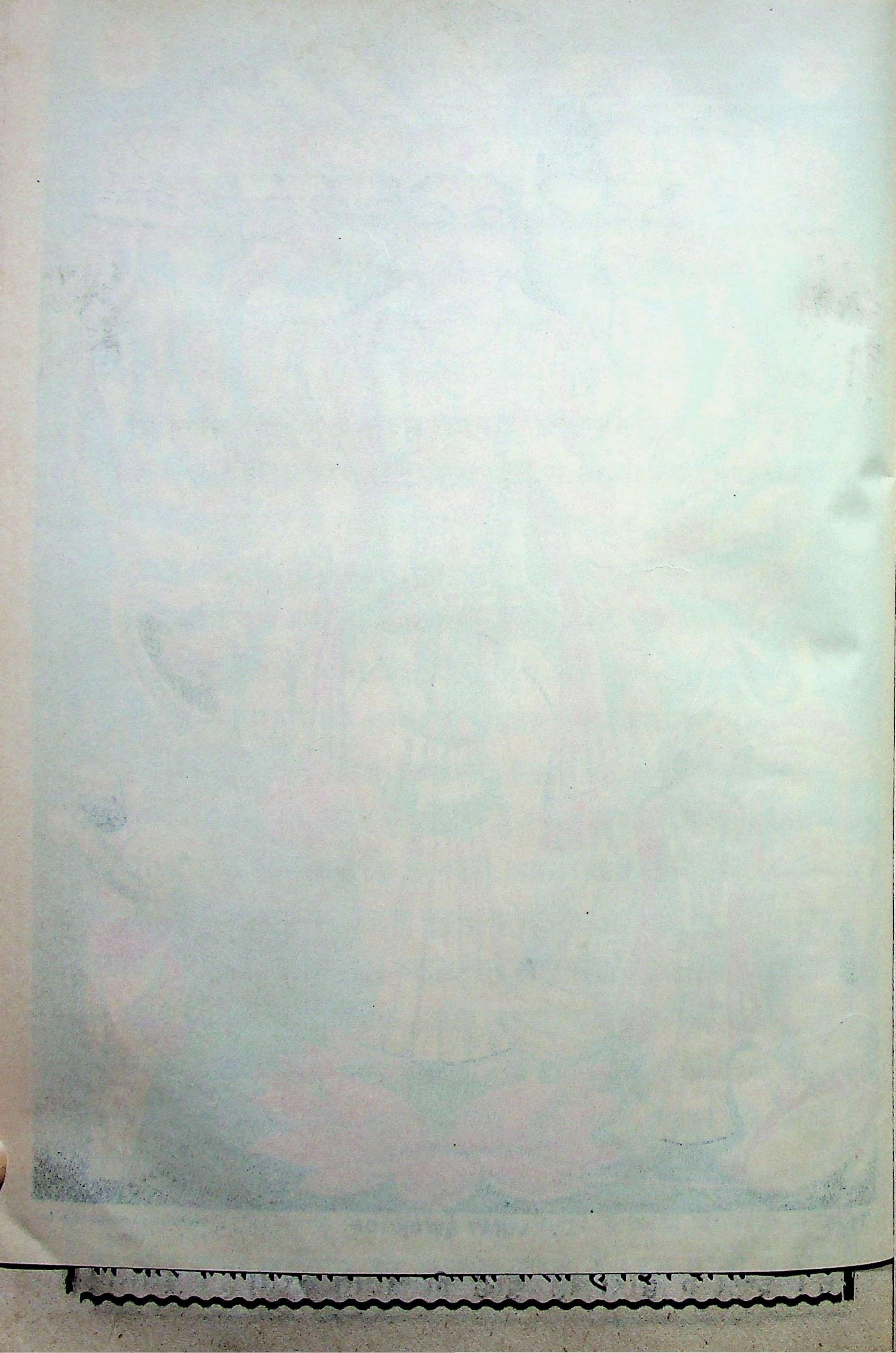
द्रव्य यज्ञ से ज्ञान यज्ञ श्रेष्ठ है। सब कर्म ज्ञान में समाप्त होते हैं। महापापी भी ज्ञान की नौका से भवसागर पार कर लेते हैं क्योंकि ज्ञान सभी कर्मों को भस्म कर देता है। ज्ञान के समान पावन कर्त्ता और कुछ नहीं हैं। यह ज्ञान शुद्ध अन्तःकरण वाला व्यक्ति समत्व बुद्धि से स्वयं अपनी आत्मा में प्राप्त कर लेता है। श्रद्धालु जितेन्द्रिय पुरुष को ज्ञान प्राप्ति के उपरान्त भगवद् प्राप्ति होती है। श्रद्धाहीन संशययुक्त मनुष्य परमार्थ से भ्रष्ट होकर इस लोक और परलोक दोनों के सुखों से वंचित हो जाता है। योग के द्वारा कर्मों से प्राप्त संन्यास तथा ज्ञान से नष्ट सन्देह आत्म-ज्ञानी को कर्म-बन्धन में नहीं बाँधता।

अर्जुन बोले--हे परन्तप! आप कभी कर्मोंसे संन्यास लेने की और कभी कर्मयोग की प्रशंसा करते हैं। इन दोनों में मेरे



1126 VIRAT SWAROOP

HEM CHANDER BHARGAVA & Co.
DELHI-6.



लिए कौनसा श्रेष्ठ है ? केशव बोले--वैसे तो कर्म-संन्यास एवं कर्मयोग दोनों ही कल्याणकारी हैं, किन्तु साधन में सुगम होने से कर्मयोग संन्यास से श्रेष्ठ है। द्वेष एवं कामना से रहित कर्मयोगी को ही संन्यासी समझना चाहिए। कर्मयोग तथा संन्यास पृथक-पृथक फल देने वाले नहीं हैं। कर्मयोगी तथा संन्यासी दोनों ही परमधाम को प्राप्त करते हैं। कर्मयोग के बिना संन्यास नहीं मिलता। भगवद्भक्त कर्मयोगी सहज ही परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। कर्मयोगी ममता-रहित होकर केवल मन, इन्द्रिय, बुद्धि शरीर द्वारा आसक्ति त्यागकर मन की शुद्धि के लिए कर्म करता है। सकाम पुरुष कामना की प्रेरणा से फल में आसक्त होकर कर्म के बन्धन में बँधता है। ईश्वर मनुष्य के कर्त्तापन, कर्मों तथा कर्मफल के संयोग की रचना नहीं करता। यह कार्य प्रकृति परमात्मा के सान्निध्य से करती है। ईश्वर किसी के पाप या पुण्यकर्मों को ग्रहण नहीं करता। जब आत्मज्ञान से अज्ञान नष्ट हो जाता है तो यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है। सुख-दुःख में समान रहने वाला, स्थिर बुद्धि एवं संशयरहित ब्रह्मवेत्ता ईश्वर में एकीभाव से स्थिर रहता है। इन्द्रियों एवं विषयों से प्राप्त होने वाले सुख दुःख के हेतु होते हैं। अतः नाशवान हैं। विवेकशील पुरुष इनमें नहीं रमते। जो व्यक्ति बाहरी विषय-भोगों का चिन्तन न करके नेत्रों की दृष्टि को भृकुटि के मध्य में स्थित कर प्राण एवं अपानवायु को सम करके तथा इन्द्रिय, मन एवं बुद्धि पर विजय प्राप्त करता है, वह इच्छा, भय तथा क्रोध से मुक्त होकर मोक्ष पाता है।

संकल्प का त्याग करने वाला पुरुष योगी नहीं होता। निष्काम कर्म करने से योगी होता है। हे अर्जुन! मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र तथा शत्रु होता है। जो आत्मा अपनेपन तथा इन्द्रियों सहित शरीर पर विजय प्राप्त कर लेता है, वह अपना मित्र होता है और जो इनके वश में हो जाता है वह अपना शत्रु होता है। सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख, मान-अपमान में जिसके अन्तःकरण की वृत्तियाँ शान्त रहती हैं, ऐसे स्वाधीन आत्मा वाला पुरुष ईश्वर में स्थित होता है। ऐसा निष्काम एवं संग्रह की भावनारहित योगी ही आत्मा को ब्रह्म में लगा सकता है। ऐसे व्यक्ति को बड़े से बड़ा सुख और भयंकर से भयंकर दुःख भी उसके मार्ग से विचलित नहीं कर सकता। यह सच है कि मन चंचल है और सरलता से वश में नहीं होता, किन्तु अभ्यास से इसे वश में करना असम्भव नहीं है। यदि कोई व्यक्ति योग से भ्रष्ट हो जाय तो भी वह दुर्गति को प्राप्त नहीं होता और न उसका इस लोक या परलोक में नाश ही होता है। ऐसा पुरुष पुण्यवानों के लोकों को प्राप्त होकर, उनमें बहुत वर्षों तक निवास करके, फिर शुद्ध आचरण वाले या ज्ञानी योगी पुरुषों के घर जन्म लेता है और पूर्व जन्म के शुद्ध संस्कारों को प्राप्त करके परमात्मा की प्राप्ति के लिए पहले से भी अधिक प्रयत्न करता है और अन्त में परमगति को पाता है।

अर्जुन के जिज्ञासा करने पर मधुसूदन बोले--मेरी प्रकृति के आठ भेद हैं? पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहंकार। ये अपरा अर्थात् जड़ प्रकृति है। इससे पृथक

जो इस सम्पूर्ण जगत को धारण करती है, मेरी जीवरूपा परा-चेतन प्रकृति है। सम्पूर्ण संसार इन दोनों प्रकृतियों से उत्पन्न होता है और अन्त में मुझमें लीन हो जाता है। मैं जल में रस, सूर्य और चन्द्र में प्रकाश, समस्त वेदों में ओंकार, आकाश में शब्द और पुरुषों में पुरुषत्व हूँ। पृथ्वी में पवित्रगन्ध, अग्नि में तेज, समस्त भूतों में उनका जीवन, तपस्वियों में तप, प्राणि वर्ग का सनातन बीज, बुद्धिमानों की बुद्धि, तेजस्वियों का तेज हूँ। सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण से होने वाले भाव भी मुझी से उत्पन्न होते हैं। वास्तव में उनमें मैं और मुझमें वे नहीं हैं। इन तीनों गुणों से मोहित होने के कारण संसारी लोग मुझ अविनाशी को नहीं जानते। जो लोग श्रद्धापूर्वक मेरा चिन्तन करते हैं, वे इन तीनों गुणों से युक्त माया को पार कर जाते हैं।

अर्जुन ने पूछा--हे प्रभो! आपके भक्त कितने प्रकार के हैं? उनके विषय में मुझे कुछ बताइए। श्रीकृष्ण बोले--हे अर्जुन! मेरे भक्त चार प्रकार के हैं–अर्थार्थी, आर्त्त, जिज्ञासु तथा ज्ञानी। इनमें ज्ञानी सर्वश्रेष्ठ हैं क्योंकि वे वास्तव में मेरा ही स्वरूप होते हैं। कुछ भक्त कामनाओं को लेकर विभिन्न देवताओं को श्रद्धापूर्वक भजते हैं, मैं उनकी श्रद्धा को उस देवता में स्थिर रखते हुए उनकी कामनाओं को पूरा करता हूँ, किन्तु वे फल नाशवान होते हैं। अधिभूत, अधिदैव तथा अधियज्ञ सहित मुझे जानने वाले भक्त मुझे ही प्राप्त होते हैं।

अर्जुन ने पूछा—भगवन्! अधिभूत, अधिदैव, अधियज्ञ, ब्रह्म, अध्यात्म तथा कर्म कौन हैं और वे इस शरीर में किस प्रकार हैं? श्रीकृष्ण ने बताया–परम अक्षर 'ब्रह्म' है, जीवात्मा

'अध्यात्म' और भूतों के भाव की उत्पत्ति एवं वृद्धि करने वाला यज्ञ तथा दानरूप त्याग 'कर्म' कहलाता है। उत्पत्ति, विनाश, धर्म वाले पदार्थ 'अधिभूत' विस्मयभाव पुरुष 'अधिदैव' और शरीर में विद्यमान अविनाशी मैं 'अधियज्ञ' के नाम से जाने जाते हैं। अन्तिम समय में मनुष्य जिस-जिस भाव को स्मरण करता हुआ शरीर त्याग करता है, वह उसी को प्राप्त होता है। अन्त में जो मुझे स्मरण करता है, यह मुझे प्राप्त होता है। उस समय सब इन्द्रियों के द्वारों को रोककर मन को स्थिर तथा प्राण को मस्तिष्क में स्थापित कर जो पुरुष 'ओ३म्' का उच्चारण करते हुए शरीर त्यागता है, वह परमगति को प्राप्त होता है। परमगति को पाने वाले योगी जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।

संसार की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा-- सारा संसार ब्रह्मा के सूक्ष्म शरीर से उत्पन्न होता है और उसी में लीन हो जाता है। यह भूत समुदाय कर्मवश उत्पन्न होकर प्रकृति के वश में हुआ ब्रह्मा की रात्रि के प्रवेश काल में लीन हो जाता है और उसके दिन के उदय होने पर फिर उत्पन्न होता है। उस अव्यक्त से भी अति परे जो परमदिव्य पुरुष है वह सब भूतों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता। उस अव्यक्त को अक्षर कहते हैं। वही परमगति है जो मेरा सर्वोत्कृष्ट रूप है। उसकी प्राप्ति अनन्य भक्ति से ही सम्भव है।

ज्ञान विज्ञान की अधिक स्पष्ट व्याख्या करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा--मुझ निराकार परमात्मा से सारा संसार परिपूर्ण है, किन्तु न मैं उनमें स्थित हूँ और न वे मुझमें स्थित हैं। फिर

भी मैं उनका भरण-पोषण करता हूँ, उन्हें जन्म देता हूँ। मेरे संकल्प से उत्पन्न होने के कारण समस्त भूत मुझमें स्थित माने जाते है। इस समस्त भूत समुदाय की रचना बार-बार उनके कर्मों के अनुसार होती है। श्रेष्ठ ज्ञानयोगी मुझे निर्गुण, निराकार और अक्षर मानकर ज्ञान के द्वारा अभिन्न भाव से मेरी उपासना करते हैं। मध्यम अधिकारी मुझे भेद रूप से और निकृष्ट अधिकारी अनेक देवी-देवताओं के रूप में मेरी पूजा करते हैं। सकाम कर्म करने वाले भक्त मेरा पूजन करके अपने पुण्यों के बल से स्वर्ग प्राप्त करके हैं, किन्तु पुण्यों का फल क्षीण होने पर उन्हें फिर जन्म लेकर आवागमन का बन्धन भोगना पड़ता है। जो जिस रूप का पूजन करता है, अन्त में वह उसी रूप को प्राप्त होता है अर्थात् भूत-प्रेतों को पूजने वाला भूत प्रेतों को तथा मुझे पूजने वाला मुझे प्राप्त होता है। सगुण भाव से जो मुझे पूजते हैं, उन्हें मैं सगुण भाव से स्वीकार करता हूँ। न कोई मुझे प्रिय है, न कोई अप्रिय, किन्तु मुझे प्रेम भाव से भजने वाला भक्त मुझमें स्थित हो जाता है। मेरा सच्चा भक्त कभी नष्ट नहीं होता। स्त्री, वैश्य, शूद्र, चाण्डाल--कोई भी हो मेरा शरणागत होकर उसी प्रकार परमगति पाता है, जिस प्रकार ब्राह्मण और राजर्षि पाते हैं।

अर्जुन बोले--हे कृपासिन्धु! आपके इस लीलामय स्वरूप को न देवता जानते हैं और न दानव। इसलिए आप मुझे यह बताइये कि मैं किस प्रकार आपका चिन्तन करता हुआ आपको जान सकता हूँ? अर्जुन की प्रार्थना सुनकर श्रीकृष्ण बोले--हे कौन्तेय! मैं तुम्हें अपनी प्रमुख दिव्य शक्तियों का परिचय

देता हूँ। मैं अदिति के बारह पुत्रों में विष्णु, ज्योतियों में सूर्य, वायु का तेज तथा नक्षत्रों का स्वामी चन्द्रमा हूँ। वेदों में साम-वेद, देवों में इन्द्र, इन्द्रियों में मन, प्राणियों में जीवन शक्ति, ग्यारह रुद्रों में शंकर, यक्षों-राक्षसों में कुबेर, आठ वसुओं में अग्नि, पर्वतों में सुमेरु, पुरोहितों में वृहस्पति, सेनापतियों में स्कन्द, जलाशयों में समुद्र, महर्षियों में भृगु, शब्दों में ओंकार यज्ञों में जप यज्ञ, अचलों में हिमालय, गौओं में कामधेनु तथा काल में महाकाल हूँ। तात्पर्य यह है कि मेरी दिव्य विभूतियाँ अनन्त हैं। सभी विभूतियाँ मेरे तेज के अंश की अभिव्यक्तियाँ हैं। मैं सारे संसार में एक अंशमात्र से प्रविष्ट होकर स्थिर हूँ।

जब अर्जुन ने भगवान से उनके ऐश्वर्ययुक्त दिव्य रूप को प्रत्यक्ष देखने की इच्छा प्रगट की तो भगवान ने अपना नाना वर्ण तथा नाना आकृति वाला अलौकिक रूप दिखाने के लिए अर्जुन को दिव्य नेत्र प्रदान किये। अर्जुन ने देखा भगवान के अनेक मुख तथा दिव्य आभूषणों एवं शस्त्रों से युक्त हाथ थे। सम्पूर्ण शरीर पर अद्भुत गंध का लेप हो रहा था। उनका रूप हजारों सूर्य के समवेत तेज से भी अधिक तेजस्वी था। श्रीकृष्ण के शरीर में अनेक संसार पृथक-पृथक दिखाई दे रहे थे। उनमें सम्पूर्ण देवों एवं भूतों के समुदाय थे। कमल पर आसीन ब्रह्मा तथा महादेव, समस्त ऋषि तथा देवता थे। सूर्य चन्द्र से ज्योतिर्मय नेत्रों से मुखमण्डल आलोकित हो रहा था। इस विश्वरूप का कहीं आदि, मध्य और अन्त नहीं था। उनका अप्रमेय स्वरूप ज्योतिःपुञ्ज जैसा था। उस स्वरूप में सम्पूर्ण आकाश तथा दिशाएँ व्याप्त थीं।

इसके पश्चात् अर्जुन ने भगवान का भयंकर रूप देखा जिसमें भयभीत होकर सुर-असुर प्रवेश कर रहे थे। उसी में महात्मा, सिद्ध आदि भगवान की स्तुति कर रहे थे। ग्यारह रुद्र बारह आदित्य, आठ वसु, मरुद्गण, गंधर्व, यक्ष आदि विस्मय से उस रूप को देख रहे थे। अर्जुन इस रौद्र रूप को देखकर भयभीत हो गये। उन्होंने देखा उनके मुख में कौरव, भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि प्रविष्ट होकर नष्ट हो रहे हैं। अर्जुन ने देखा भगवान कृष्ण के रूप में स्वयं महाकाल खड़े हैं। वे बोले--अर्जुन ये सब लोग मेरे द्वारा पहले ही मारे जा चुके हैं अब तुम इन्हें मारने के लिए निमित्त बनकर यश के भागी बनो। अन्त में अर्जुन की प्रार्थना पर श्रीकृष्ण ने पुनः अपना पूर्व रूप धारण कर लिया।

भगवान को अपने मानव रूप में आया देख अर्जुन ने कहा--हे भगवन्! कुछ लोग आपको सगुण साकार मानकर पूजते हैं और कुछ निर्गुण निराकार। इन दोनों में श्रेष्ठ कौन सा है? श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाया--निराकार ब्रह्म की उपासना करने वाले लोगों को साधना में विशेष परिश्रम करना पड़ता है क्योंकि अव्यक्त विषयक गति कठिनता से प्राप्त होती है। इसके विपरीत समस्त कर्मों को मुझे अर्पित करके मेरे सगुण रूप को अनन्य ध्यान योग से भजने वाले भक्त मृत्यु के पश्चात् मुझे प्राप्त करते हैं। अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यान से भी निष्काम कर्म श्रेष्ठ है। फल के त्याग की भावना से तत्काल शान्ति मिलती है।

अर्जुन ने पूछा-प्रभो! क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ की चर्चा बहुधा

सुनी जाती है इनका क्या तात्पर्य है? श्रीकृष्णजी बोले--यह शरीर क्षेत्रज्ञ है और इसको जानने वाला क्षेत्र है। इन दोनों के तत्व को जानना ही ज्ञान है। क्षेत्रज्ञ अर्थात जीवात्मा भी मैं ही हूँ। पाँच महाभूत, अहंकार, बुद्धि, मूल प्रकृति, दस इन्द्रियाँ तथा मन और पाँचों इन्द्रियों के विषय(शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) तथा इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, स्थूल देह का पिण्ड, चेतना एवं घृति सहित यह शरीर क्षेत्र है। श्रेष्ठता और दंभाचरण का अभाव, अहिंसा, क्षमा-भाव, मन-वाणी आदि की सरलता, श्रद्धाभक्ति सहित गुरुजनों की सेवा, बाहर-भीतर की शुद्धि, अन्तःकरण की स्थिरता, मन-इन्द्रियों सहित शरीर का निग्रह, लोक-परलोक के भोगों में अनासक्ति, ममता का अभाव, प्रिय-अप्रिय की प्राप्ति में चित्त का सम रहना, ईश्वर में अटूट भक्ति, विषयी व्यक्तियों से विरक्ति तथा अध्यात्मक ज्ञान में स्थिति ही ज्ञान है तथा इसके विपरीत सब कुछ अज्ञान है। अनादि परब्रह्म न सत् है न असत्। किसी शब्द से उसे अभिव्यक्त भी नहीं किया जा सकता। वह सर्वप्रेरक, सर्वव्याप्त, समस्त इन्द्रियों के विषय का ज्ञाता, निरासक्त रहते हुए सबका भरण-पोषण करने वाला है। निर्गुण होते हुए भी गुणों का भोग करता है। चर-अचर भी वही है। सूक्ष्म होने के कारण अविज्ञेय है। समस्त प्राणियों में विभक्त न होते हुए भी वह विभक्त-सा प्रतीत होता है। वही समस्त भूतों का जन्मदाता, पालन कर्ता तथा संहारक है।

प्रकृति तथा पुरुष दोनों ही अनादि हैं। राग-द्वेषादि विकार तथा समस्त त्रिगुणात्मक पदार्थ प्रकृति से उत्पन्न हुए हैं। कार्य और करण से उत्पन्न करने में प्रकृति हेतु है और सुख-

दुःख के भोक्तापन में जीवात्मा हेतु है। प्रकृति में स्थित पुरुष प्रकृति से उत्पन्न त्रिगुणात्मक पदार्थों को भोगता है। इन गुणों की संगति के प्रभाव से ही जीवात्मा अच्छी बुरी योनियों में जन्म लेता है। समस्त स्थावर, जंगम, प्राणी क्षेत्र क्षेत्रज्ञ के संयोग से उत्पन्न होते हैं। नाशवान चराचर भूतों में परमात्मा को अनश्वर रूप में देखना ही वास्तविक देखना है। समस्त कर्म प्रकृति के द्वारा होता है। आत्मा कोई कर्म नहीं करता। अनादि, निर्गुण तथा अविनाशी होने के कारण ईश्वर शरीर में स्थित होने पर भी न तो कुछ करता है और न उसमें लिप्त होता है। अकेला आत्मा सम्पूर्ण क्षेत्र को प्रकाशित करता है। प्रकृति समस्त प्राणियों को गर्भ धारण करने वाली माता है और ईश्वर उसमें बीज स्थापित करने वाला पिता है।

प्रकृति से उत्पन्न तीनों प्रकार के गुण--सत, रज और तम--निर्विकार अविनाशी जीव को शरीर में बाँधते हैं। इन गुणों में सत्व गुण निर्मल, प्रकाशमान तथा विकार रहित है। वह सुख एवं ज्ञान के सम्बन्ध से बाँधता है। राग-रूप रजोगुण का जन्म कामना तथा आसक्ति से होता है। वह जीवात्मा को कर्मों एवं उनके फल के सम्बन्ध से बाँधता है। देहाभिमानियों को मोहित करने वाला तमोगुण अज्ञान से उत्पन्न होता है। वह जीवात्मा को आलस्य, प्रमाद और निद्रा से बाँधता है। सत्वगुण सुख में, रजोगुण कर्म में और तमोगुण प्रमाद में प्रवृत्त करता है। शरीर, अन्तःकरण एवं इन्द्रियों में चेतनता तथा विवेक जागृत होने पर सतोगुण की वृद्धि होती है। रजोगुण के बढ़ने पर लोभ, स्वार्थ बुद्धि, सकाम भाव, अशान्ति एवं

विषय भोगों की लालसा उत्पन्न होती है। तमोगुण की वृद्धि होने पर अन्तःकरण एवं इन्द्रियों में अन्धकार, कर्त्तव्य कर्मों से विरक्ति, प्रमाद, निद्रादि की अधिकता होती है। सतोगुण की वृद्धि में मृत्यु होने पर जीवात्मा स्वर्ग को, रजोगुण की वृद्धि में मृत्यु होने पर कर्मों में आसक्त मनुष्य के रूप को तथा तमोगुण के वृद्धि काल में मृत्यु होने पर कीट, पशु आदि निम्न योनि पाता है।

श्रेष्ठ कर्मों का फल सुख, ज्ञान, वैराग्य आदि होता है, राजस कर्मों का फल दुःख और तामस कर्मों का फल अज्ञान होता है। सतोगुणी पुरुष स्वर्ग को, रजोगुणी लोक को तथा तमोगुणी अधोगति को प्राप्त होता है। जो इन तीनों गुणों को लाँघ जाता है, वह मुक्त हो जाता है। ऐसा ही पुरुष गुणातीत कहलाता है। इस संसार रूपी वृक्ष का मूल परमेश्वर, मुख्य शाखा ब्रह्मा और पत्ते वेद हैं। तीनों गुणों से बढ़ी हुई विषय-भोग रूपी कोपलों वाली विविध योनियाँ शाखाओं के रूप में सर्वत्र फैली हुई हैं। इस वृक्ष का न आदि है और न अन्त। अहं, ममता और वासना से सुदृढ़ बना हुआ यह वृक्ष वैराग्य से ही काटा जा सकता है।

शरीर में स्थित जीवात्मा ईश्वर का ही सनातन अंश है। यह जीवात्मा शरीर का त्याग करते समय उसमें से मन सहित इन्द्रियों का ग्रहण करके उस शरीर में ले जाता है जिसे वह प्राप्त करता है। संसार में दो प्रकार के पुरुष हैं--नाशवान और अविनाशी। भूत समुदाय नाशवान और जीव अविनाशी हैं। ईश्वर इन दोनों से पृथक अविनाशी तथा सबका नियन्ता

है। वह नाशवान से अतीत और अविनाशी जीवात्मा से उत्तम है। इसलिए उसे पुरुषोत्तम कहा गया है।

दैवी सम्पद् को लेकर उत्पन्न हुए पुरुष में निर्मलता, ज्ञान तथा योग में निष्ठा, दान, दम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, दया, अलोलुपता, मृदुता, लज्जा, स्थिरता, क्षमा, तेज, धैर्य, निर्वैरता, शौच दम्भहीनता आदि धर्म होते हैं। आसुरी सम्पदा वाले व्यक्ति दम्भी, कठोर, क्रूर तथा अज्ञानी होते हैं। पहली सम्पदा मुक्ति और दूसरी बन्धन वाली होती है। आसुरी सम्पदा वाले व्यक्ति नास्तिक होते हैं। वे संसार की सृष्टि केवल स्त्री-पुरुष के संयोग से मानते हैं। वे अज्ञान से मिथ्या सिद्धान्तों को ग्रहण करके भ्रष्ट आचरण करते हैं। काम, क्रोध के वशीभूत होकर सब प्रकार से अन्याय एवं अनैतिक कार्य करते हैं। ईश्वर से द्वेष करने वाले ऐसे पापाचारी बार-बार आसुरी योनियों में जन्म लेते हैं। काम, क्रोध, लोभ मनुष्य को अधोगतियों में ले जाते हैं। इस लिए इनका त्याग करना चाहिए।

श्रीकृष्ण ने बताया--सात्विक पुरुष देवों की, राजस यक्षों तथा राक्षसों की और तामस पुरुष भूत प्रेतों की पूजा करते हैं। तीनों प्रकृति वालों के भोजन भी अलग अलग होते हैं। ऐसे पुरुष यज्ञ भी विभिन्न प्रकार से करते हैं। सात्विक पुरुष शास्त्र विधि सम्मत कामना रहित यज्ञ करते हैं। राजस पुरुष फल की कामना से यज्ञ करते हैं और तामस पुरुष शास्त्र विधि रहित बिना श्रद्धा के यज्ञ करते हैं। तप की परिभाषा करते हुए भगवान कृष्ण ने कहा--देवता, ब्राह्मण, गुरु एवं ज्ञानियों का

पूजन, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य तथा अहिंसा शरीरसम्बन्धी तप कहलाता है। उद्वेग रहित, प्रिय, हितकारक, यथार्थ भाषण एवं वेद शास्त्रों का अध्ययन वाणी सम्बन्धी तप है और मन को प्रसन्न करने वाला, शान्त, भगवद् चिन्तन का स्वभाव, मन का निग्रह, आन्तरिक पवित्रता मन सम्बन्धी तप है। ये तीनों तप सात्विक हैं। सत्कार, मान, स्वार्थ पूर्ति के लिए पाखण्ड पूर्वक किया गया तप राजस है। यह अनिश्चित अथवा क्षणिक फल देता है। जो तप दूसरों को हानि पहुँचाने के लिए अपने शरीर को कष्ट देकर किया जाय वह तामस होता है। देश काल और पात्र के अनुरूप कर्त्तव्य समझकर दिया गया दान सात्विक होता है। क्लेशपूर्वक प्रत्युपकार के लिए अथवा फल की कामना से दिया गया दान राजस होता है। तिरस्कार पूर्वक तथा देश काल और पात्र का ध्यान न रख कर दिया गया दान तामसिक कहलाता है।

भगवान ने आगे कहा—ओ३म्, तत्, सत् परब्रह्म के नाम हैं। इसलिए यज्ञ दान आदि का प्रारम्भ ओ३म् शब्द के उच्चारण के साथ करना चाहिए। परमात्मा के तत् नाम को ध्यान में रखकर निष्काम भाव से यज्ञ, तप, दान आदि करने चाहिए और सत् नाम को ध्यान में रखकर उत्तम कर्म करने चाहिए। श्रद्धा रहित किये गये यज्ञ, तप, दान आदि असत् होते हैं।

जब अर्जुन ने संन्यास और त्याग के तत्वों को जानने की इच्छा प्रगट की तो श्रीकृष्ण ने कहा--कुछ लोग काम्य कर्मों के त्यागको संन्यास कहते हैं और कुछ कर्मों के फल के त्याग को। वास्तव में त्यागी तीन प्रकार के होते हैं--सात्विक, राजस और

तामस। यज्ञ, दान एवं तप त्याज्य नहीं, किन्तु कर्त्तव्य हैं क्योंकि इन्हें निष्काम भाव से करके मनुष्य पवित्र होता है। इसका त्याग तामस त्याग है। सब कर्मों को दुःख रूप मानकर उन्हें त्याग देना राजस त्याग है। इससे त्याग का फल नहीं मिलता। अकुशल कर्म से द्वेष न करके कुशल कर्म में आसक्ति न होना सच्चा त्याग है। वास्तव में कोई भी मनुष्य समस्त कर्मों का त्याग नहीं कर सकता। इसलिए कर्मों के फल का त्याग करने वाला ही त्यागी है। सम्पूर्ण कर्मों की सिद्धि के पाँच हेतु हैं जिनसे कर्मों का अन्त होता है। वे पाँच हेतु हैं— १. अधिष्ठान, २. कार्य, ३. विविध प्रकार के करण, ४. नाना प्रकार की चेष्टाएँ और ५. ईश्वर का अनुग्रह। जो आत्मा को कर्मों का कर्ता समझते हैं, वे भूल करते हैं। वास्तव में कर्म की प्रेरणा ज्ञाता, ज्ञान तथा ज्ञेय से होती है। कर्ता करण एवं क्रिया कर्म के आश्रय हैं। शास्त्रों में ज्ञान, कर्म और कर्ता के तीन तीन गुण कहे गये हैं। जिस ज्ञान से पृथक-पृथक भूतों में अविनाशी ईश्वर को समभाव से देखा जाता है वह वास्तविक ज्ञान है। सम्पूर्ण भूतों में विभिन्न आत्माओं को देखना राजस ज्ञान है और एक कार्य रूप शरीर में सम्पूर्ण के सदृश आसक्ति मुक्ति रहित एवं तुच्छ तामस ज्ञान कहलाता है।

शास्त्र-विहित, कर्त्तापन के अभिमान से रहित होकर निष्काम भाव से किया गया कर्म सात्विक है। भोगों की आकांक्षा से परिश्रमपूर्वक किया गया कर्म राजस है और परिणाम, हिंसा एवं क्षमता का विचार किये बिना अज्ञानपूर्वक किया गया कर्म तामस है। निरभिमानी, धीर, उत्साही एवं कार्य सिद्ध होने

अथवा न होने पर समभाव से रहने वाला कर्त्ता सात्विक है। आसक्तियुक्त, कर्मफल की कामना से करने वाला लोभी कर्त्ता राजस होता है और दम्भी, धूर्त्त, आलसी, द्वेषी कर्त्ता तामस होता है। बुद्धि और धृति के भी गुणों के अनुसार तीन भेद होते हैं। कर्म एवं संन्यास, कर्त्तव्य एवं अकर्त्तव्य को समझने वाली बुद्धि सात्विक होती है। धर्म-अधर्म, कर्त्तव्य अकर्त्तव्य को न समझने वाली बुद्धि राजसी होती है और अधर्म को धर्म तथा अकर्त्तव्य को कर्त्तव्य समझने वाली बुद्धि तामसी होती है। इसी प्रकार निश्चल धारण शक्ति से मन, प्राण एवं इन्द्रियों की क्रियाओं का विरोध करने वाली धृति सात्विकी होती है। अत्यन्त आसक्ति से धर्म, अर्थ, कर्मों को धारण करने वाली धृति राजसी और निद्रा, भय, चिन्ता, उन्माद को न त्यागने वाली धृति तामसी होती है।

जिस ज्ञान निष्ठा से ब्रह्म की प्राप्ति होती है, उसका वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा—ब्रह्म की प्राप्ति के लिए शुद्ध बुद्धि युक्त नियमित आहार विहार, विषयों का त्याग, अन्तःकरण एवं इन्द्रियों का संयम, मन, वाणी तथा शरीर को वश में रखना, राग-द्वेष से रहित होकर वैराग्य का आश्रय, काम-क्रोध-मद-लोभ-परिग्रह का त्याग, ध्यान योग में परायणता एवं ममता-रहित संन्यास भावना आवश्यक है। ऐसे समभाव वाला योगी ईश्वर की पराभक्ति प्राप्त करता है। ऐसा निष्काम कर्मयोगी सम्पूर्ण कर्मों को करते हुए भी अविनाशी परमपद को प्राप्त करता है।

शरीर रूप यन्त्र में आरूढ़ समस्त प्राणियों को ईश्वर

अपनी माया से उनके कर्मों के अनुसार भ्रमण कराता हुआ सबके हृदय में स्थित रहता है। जो पुरुष समस्त धर्मों अर्थात् कर्त्तव्य कर्मों को मुझे समर्पित कर मेरी शरण में आ जाता है, वह पापों से मुक्त हो जाता है।

अन्त में संजय बोले—हे राजन्! अब मुझे विश्वास हो गया है कि जहाँ गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन है, वहाँ कृष्ण हैं! और जहाँ वे दोनों हैं वहीं विजय है।

तीसरा अध्याय

युद्ध आरम्भ

वैशंपायनजी बोले—हे राजन्! जब अर्जुन का मोह भंग हो गया और उन्होंने युद्ध करने के लिए धनुष बाण हाथ में सँभाले तो पाण्डव पक्ष के योद्धाओं ने उत्साहपूर्वक सिंहनाद किया। दोनों ओर की सेना को युद्ध के लिए तत्पर देख युधिष्ठिर ने अपने शस्त्र रखकर कवच उतार दिया और पैदल ही शत्रु सेना की ओर चल दिये। इस प्रकार युधिष्ठिर को निहत्था जाता देख उनके चारों भ्राता और श्रीकृष्ण भी उनके पीछे पैदल चले। श्रीकृष्ण समझ गए कि धर्मराज गुरुजनों से आज्ञा लेने शत्रु पक्ष की ओर जा रहे हैं, किन्तु कौरवों ने समझा कि युधिष्ठिर भयभीत होकर शरण में आ रहे हैं। वे लोग अभी अनुमान ही लगा रहे थे कि युधिष्ठिर ने भीष्मपितामह के पास जा उनके चरण-स्पर्श कर कहा, "पितामह! हम लोग आपके साथ युद्ध करने जा रहे हैं। कृपा करके हमें अनुमति और आशीर्वाद दें।" भीष्म ने आशीर्वाद देते हुए कहा, "तुम्हारी जय हो, यह मेरा आशीर्वाद है। जाओ, युद्ध करो।" इसके

पश्चात् वे गुरु द्रोणाचार्य के पास इसी प्रकार आशीर्वाद तथा अनुमति लेने गये। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक आशीर्वाद देते हुए कहा, "वत्स ! मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। जो चाहो वर माँग लो।" युधिष्ठिर बोले, "गुरुदेव ! आप अजेय योद्धा हैं। आपके रहते हम विजयी कैसे हो सकते हैं ? आप पर विजय कैसे प्राप्त की जा सकती है ?" द्रोणाचार्य ने उत्तर दिया, "वत्स ! जब मैं कोई अप्रिय समाचार सुनकर युद्धभूमि में अस्त्र रख दूँ, तभी मैं मारा जा सकता हूँ।" इसके उपरान्त युधिष्ठिर ने कृपाचार्य से आशीर्वाद प्राप्त करके उन्हें जीतने का उपाय पूछा तो उन्होंने कहा, "मैं अवध्य हूँ मुझे कोई नहीं मार सकता।" फिर उन्होंने अपने मामा शल्य से भी आशीर्वाद पाया। इस प्रकार गुरुजनों से आशीर्वाद पाकर युधिष्ठिर लौट आये और दोनों सेनाओं के मध्य में खड़े होकर बोले, "यदि कोई वीर हमारी ओर आकर युद्ध करना चाहे तो हम उसका स्वागत करेंगे।" युधिष्ठिर का आमन्त्रण पाकर धृतराष्ट्र का पुत्र युयुत्सु पाण्डव सेना के साथ आकर मिल गया।

इसके पश्चात् घनघोर युद्ध प्रारम्भ हो गया। हाथी से हाथी, रथी से रथी, अश्वारोही से अश्वारोही और पैदल सैनिक से पैदल सैनिक युद्ध करने लगे। भीमसेन घोर गर्जना करके शत्रु सेना पर आक्रमण करने लगे। दुर्योधन, दुर्मुख, कृतवर्मा आदि उन्हें घेरने लगे, वे सबको करारा उत्तर दे रहे थे। भीष्मपितामह धनुष लेकर अर्जुन की ओर बढ़े। दोनों में घोर युद्ध होने लगा। अभिमन्यु ने राजा बृहद्बल पर आक्रमण किया तो उन्होंने अभिमन्यु के रथ को ध्वजा काट

डाली और उसके सारथि को मार डाला। अभिमन्यु ने क्रोधित होकर उन्हें घायल कर दिया। दूसरी ओर भीमसेन तथा दुर्योधन में, दुःशासन एवं नकुल में, दुर्मुख और सहदेव में युद्ध होने लगा। स्वयं युधिष्ठिर अपने मामा शल्य से भिड़ गये। शल्य ने उनके धनुष के दो टुकड़े कर दिये तुरन्त युधिष्ठिर ने दूसरा धनुष लेकर बाण वर्षा से शल्य को ढक दिया। द्रोणाचार्य ने धृष्टद्युम्न को बाणों से घायल कर दिया। इस प्रकार प्रत्येक महारथी दूसरे महारथी से भिड़कर अपने युद्ध कौशल का परिचय दे रहा था। कोई भी वीर अपने प्रतिद्वंद्वी से पराजित होने को तैयार न था। वीर योद्धा स्वयं को एक दूसरे से बढ़-चढ़कर सिद्ध कर रहे थे। चारों ओर से भयंकर मारकाट का स्वर सुनाई दे रहा था। हजारों योद्धा मर मरकर पृथ्वी पर गिर रहे थे। असंख्य वीर घायल होकर कराह रहे थे। चारों ओर रक्त की सरिताएँ बह रही थीं जिसमें रुण्ड-मुण्ड इस प्रकार बह रहे थे मानो नदी में मगर, घड़ियाल और कछुए तैर कर जा रहे हों।

चौथा अध्याय

राजकुमार उत्तर तथा श्वेत का अन्त

महावीर दुर्मुख, कृतवर्मा, कृपाचार्य, शल्य तथा विविंशति से रक्षित होकर भीष्म भयंकर मारकाट मचाते हुए पाण्डव सेना में घुस गए। उनके तीक्ष्ण बाणों से असंख्य योद्धा सारथि, रथों की पताकाएँ एवं घोड़े कटकर धराशायी होने लगे। यह देखकर महावीर अभिमन्यु ने भीष्म के पाँचों रक्षक महारथियों को घायल कर दिया और एक बाण से भीष्म के रथ

की ध्वजा काट दी। फिर अन्य बाणों से दुर्मुख के सारथि को मारकर कृपाचार्य का धनुष काट डाला। अभिमन्यु के अद्‌भुत पराक्रम को देखकर भीष्म ने उस पर कई प्रकार के बाण छोड़े किन्तु उसने सबको काटकर व्यर्थ कर दिया। तब भीष्म ने दिव्य बाण अभिमन्यु पर छोड़ा। उसी समय उसकी सहायता के लिए विराट, भीमसेन, धृष्टद्युम्न, सात्यकि आदि आ गये। इन्हें आता देख भीष्म ने प्रत्येक पर एक साथ नौ-नौ बाण छोड़े। तब क्रोधित होकर भीम ने तीन बाणों से भीष्म को, एक बाण से कृपाचार्य को और आठ बाणों से कृतवर्मा को घायल कर दिया। उसी समय हाथी पर सवार राजकुमार उत्तर ने आकर शल्य पर आक्रमण कर दिया। हाथी ने शल्य के रथ पर एक पैर रखकर दूसरे पैर से उनके रथ के चारों घोड़ों को मार डाला। इससे क्रोधित हो शल्य ने उत्तर पर भयानक लोहे की शक्ति चलाई जिससे उत्तर का कवच टूट गया, शस्त्र हाथों से गिर गए और स्वयं घायल होकर धराशायी हो गये जिससे उनके प्राण पखेरू उड़ गये। इस प्रकार उत्तर को मरते देख उनके भाई श्वेत ने क्रोधपूर्वक शल्य पर आक्रमण किया। शल्य को मृत्यु के मुख में जाते देख उनकी रक्षा के लिए बृहद्‌बल, जयत्सेन, विन्द, अनुविन्द, जयद्रथ आदि सात वीर दौड़े और उन्होंने श्वेत पर भयंकर बाण वर्षा की। श्वेत ने सात बाणों से उन सातों के धनुष काट डाले। तब सातों ने एक साथ सात शक्तियाँ श्वेत पर फेंकी, किन्तु श्वेत ने अपने बाणों से सबको असफल कर दिया। फिर उन्होंने सातों वीरों को घायल कर रणभूमि से पलायन करने को विवश कर दिया और शल्य के

सामने पहुँचे। उसी समय शल्य की रक्षा के लिए भीष्मपितामह और दुर्योधन पहुँच गये। फिर भयंकर संग्राम होने लगा। श्वेत अपना अद्‌भुत पराक्रम दिखाकर सबको चकित कर रहे थे। अब तक वे हजारों राजाओं एवं वीरों को मृत्यु के घाट उतार चुके थे। श्वेत के महाविकराल रूप को देखकर बहुत से कौरव योद्धा अपने अपने वाहनों को छोड़कर भाग गये। यह देख भीष्म श्वेत के सम्मुख आये, किन्तु श्वेत की मार से वे भी विचलित हो उठे। इसका प्रतिशोध लेने के लिए दुर्योधन अन्य महारथियों को लेकर पाण्डव सेना पर टूट पड़े। उन्हें भयानक संहार करते देख श्वेत भीष्म को छोड़ दुर्योधनादि पर झपटे।

अपने भयानक शौर्य से उन्हें भगाकर श्वेत फिर भीष्म-पितामह के सम्मुख आ डटे। भीष्म पर किये गये भीषण आक्रमण को देखकर कौरवों ने समझ लिया कि श्वेत के हाथों पितामह का बचना असम्भव है। यह समझकर अनेक कौरव योद्धाओं ने एक साथ मिलकर उनके सारथि तथा घोड़ों को मार डाला। तब श्वेत गदा लेकर भीष्म की ओर पैदल ही दौड़े और उनके रथ को चकनाचूर कर दिया। यह देख भीष्म ने कालरूप बाण को निकाला और उसे अभिमंत्रित कर श्वेत पर छोड़ दिया। जिसने श्वेत का कवच तोड़ उनके हृदय को चीर डाला। श्वेत के मरते ही कौरवों में हर्ष की लहर दौड़ गई। सूर्यास्त होने पर युद्ध रोक दिया गया।

पाँचवाँ अध्याय

श्रुतायु, शक्रदेव तथा केतुमान का वध

संजय बोले--हे भरतश्रेष्ठ! प्रथम दिन के युद्ध में अपनी

पराजय देखकर युधिष्ठिर को भारी अवसाद हुआ श्रीकृष्ण के समझाने पर उनका शोक दूर हुआ। दूसरे दिन धृष्टद्युम्न ने क्रौंचव्यूह की रचना की। यह देखकर भीष्म ने महानव्यूह की रचना करके युद्ध आरम्भ कर दिया। भीष्मपितामह अभिमन्यु भीमसेन, अर्जुन आदि पर भीषण बाणों की वर्षा करने लगे। पाण्डव वीर भी उसी उत्साह से उनके बाणों का उत्तर देने लगे। फिर भी पाण्डवों का व्यूह नष्ट हो गया और बहुत से पाण्डव सैनिक मारे गये। जब अर्जुन का रथ भीष्म के सम्मुख पहुँचा दोनों ने अपने-अपने पराक्रम का परिचय दिया। भीष्म ने तीन बाण श्रीकृष्ण की छाती में मारे जिससे उनके शरीर से रक्त प्रवाहित होने लगा। इस पर अर्जुन ने क्रुद्ध होकर भीष्म के सारथि को घायल कर दिया। इस पर दोनों में भयंकर युद्ध होने लगा।

उधर कलिंग नरेश श्रुतायु ने केतुमान के साथ अपनी सेना लेकर भीमसेन को घेर लिया। भीमसेन भी चेदि, मत्स्य तथा करुद देश के वीरों के साथ आगे बढ़े। दोनों ओर से भीषण युद्ध हुआ। कलिंग नरेश और उनके पुत्र शक्रदेव ने भीमसेन के रथ के घोड़ों को मार डाला। तब भीमसेन ने एक गदा खींचकर शक्रदेव की ओर फेंकी। जिससे रथ तथा घोड़ों सहित शक्रदेव का शरीर चूर चूर हो गया। पुत्र की मृत्यु से क्रोधित होकर श्रुतायु ने भीमसेन पर असंख्य बाण छोड़े। उन्होंने उन बाणों को रास्ते में ही काट डाला। तब भानुमान उन्हें मारने को दौड़ा उसके हाथी के दाँतों पर चढ़कर उन्होंने भानुमान का सिर काट डाला। फिर हाथी को मारकर नीचे कूद पड़े। इसके

पश्चात् अग्निचक्र की भाँति चारों ओर घूम घूमकर शत्रु सेना का संहार करने लगे। कुछ उनके रौद्र रूप को देखकर ही भय से मर गए। जब श्रुतायु ने भीमसेन के एक साथ नौ बाण मारे तो वे और भी उत्तेजित हो गये। उन्होंने सात लौह बाणों से श्रुतायु को और तीन नाराच बाणों से केतुमान को मारकर सात सौ वीरों को मार डाला। कलिंग की सेना उनके हाथों से सूखी घास की भांति नष्ट हो गई। उधर जब अर्जुन की दुर्दयनीय मार से कौरव सेना हाहाकार करने लगी तो भीष्म ने द्रोणाचार्य से कहा, "हे आचार्य! वासुदेव सहित अर्जुन यम के समान हमारी सेना का संहार कर रहे हैं। इस समय उन्हें युद्ध में परास्त नहीं किया जा सकता। सूर्यदेव भी अस्त होने जा रहे हैं। इसलिए युद्ध बन्द कर देना चाहिए।" यह कहकर भीष्म ने युद्ध रोक दिया और दोनों पक्षों के योद्धा रणभूमि से चले गये।

छठा अध्याय

अर्जुन का अदभुत पराक्रम

संजय बोले—हे राजन्! तीसरे दिन भीष्मपितामह ने गरुड़-व्यूह की रचना की। यह देखकर धृष्टद्युम्न ने अर्द्ध चन्द्र व्यूह बनाया। जब भयानक युद्ध प्रारम्भ हुआ तो इतनी धूल उड़ी कि सारे क्षेत्र में अन्धकार छा गया। सैनिक पहचाने भी नहीं जाते थे केवल अनुमान से ही एक-दूसरे पर आक्रमण कर रहे थे। पाण्डवों के व्यूह की रक्षा भीम कर रहे थे और कौरवों के व्यूह की रक्षा द्रोणाचार्य। कोई भी किसी के व्यूह को नहीं तोड़ पा रहा था। इस भयानक रण में इतना रक्त गिरा कि धूल बैठ गई और दिशाएँ निर्मल हो गईं। दोनों ओर के

महारथी फिर परस्पर भिड़ गए। भीमसेन और उनके पुत्र घटोत्कच दोनों ही युद्ध में एक दूसरे से बढ़कर पराक्रम दिखा रहे थे। जब भीमसेन से युद्ध करने के लिए दुर्योधन आये तो क्रोध में भरकर भीमसेन ने उनके ऐसा बाण मारा कि वे व्याकुल होकर मूच्छित हो गये। उनका सारथि तत्काल उन्हें युद्धभूमि से बाहर ले गया। दुर्योधन को बाहर जाते देखकर कौरव सेना भी साहस छोड़ मैदान से भागने लगी। तभी चैतन्य होकर दुर्योधन युद्धभूमि में लौट आये और भीष्म से बोले, "पितामह! पाण्डव लोग हमारी सेना को गाजर मूली की भाँति काट रहे हैं और आप चुपचाप देख रहे हैं। यदि आप पहले ही कह देते कि मैं मन लगाकर युद्ध नहीं करूँगा तो मैं युद्ध छेड़कर सेना का विनाश क्यों कराता ?" यह सुनकर भीष्म बोले, "तुम मुझ पर व्यर्थ ही आक्षेप लगा रहे हो। मैं अपनी ओर से कोई कमी नहीं कर रहा हूँ। आज ही तुम मेरा पराक्रम देखकर अपने कथन की निरर्थकता को समझ जाओगे।" यह कहकर भीष्म दूनी शक्ति से युद्ध करने लगे। उनके रौद्र रूप को देखकर पाण्डवों की सेना कृष्ण और अर्जुन के साहस बँधाने पर भी भागने लगी।

पाण्डव सेना की यह दशा देखकर श्रीकृष्ण ने कहा, "हे अर्जुन! भीष्म पर आक्रमण करने का यही समय है। देखो, तुम्हारी सेना भागी जा रही है।" अर्जुन ने अपना रथ भीष्म के सम्मुख ले चलने को कहा। अर्जुन ने भीष्म पर बाणों की वर्षा कर डाली, किन्तु उन्होंने अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों को घायल कर दिया। भीष्मपितामह का वृद्धावस्था में यह रण-कौशल

देखकर अर्जुन चकित हो गये और किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर स्तब्ध रह गये। अर्जुन को इस प्रकार शिथिल होते देखकर श्रीकृष्ण बोले, "तुम्हें अब क्या हो रहा है अर्जुन ! इस प्रकार युद्ध से क्यों विमुख हो रहे हो ? जाओ, तुम भी शेष पाण्डव सेना की भाँति युद्धभूमि से भाग जाओ। मैं अकेला ही कौरव सेना का विनाश करूँगा।" यह कहकर वे रथ हाँकना छोड़ हाथ में रथ का पहिया लेकर कौरव सेना व भीष्म को मारने के लिए दौड़े। श्रीकृष्ण को अपनी ओर इस प्रकार झपटते देख भीष्म उन्हें प्रणाम करके बोले, "भगवन् ! आप मुझे अवश्य मार गिराइये। इससे मेरा इस लोक और परलोक में कल्याण होगा।" इसका उत्तर न देते हुए श्रीकृष्ण ने कहा, "भीष्म ! तुम ही इस विनाश के मूल कारण हो। तुमने पाण्डव दल में भयंकर हाहाकार मचा दिया है। आज मैं किसी को नहीं छोड़ूंगा।" तभी अर्जुन ने श्रीकृष्ण के चरण पकड़ लिए और बोले, "केशव ! आप शान्त हों। मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि अब मैं पूरी निष्ठा से युद्ध करूँगा।" जब उनका क्रोध शान्त हो गया तो वे पुनः सारथि के रूप में अर्जुन के रथ पर जा बैठे। इसके पश्चात् अर्जुन ने अपना अद्भुत पराक्रम दिखा कर शोणित की सरिता बहा दी। उस दिन उन्होंने दस हजार रथियों, सात सौ हाथियों तथा असंख्य सैनिकों का संहार किया। सायंकाल दोनों पक्ष अपने-अपने शिविरों में लौट आये।

सातवाँ अध्याय

भीमसेन व घटोत्कच द्वारा भयंकर युद्ध

संजय बोले—हे महाराज ! चौथे दिन पाण्डवों ने अपने

व्यूह की रक्षा के लिए दोनों ओर चार हजार गज सेना रखी। उसके मुख्य द्वार पर अर्जुन नियुक्त थे। अर्जुन को घेरने के लिए भीष्म के साथ द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, शल्य, विविंशति, दुर्योधन आदि वीर आगे बढ़े। भीष्म को अपने सम्मुख देख अर्जुन ने बाणों की वर्षा करके उनके समस्त अस्त्र-शस्त्र नष्ट कर दिये। जब उन्होंने भल्ल बाण छोड़े तो भीष्म ने अपने दिव्य अस्त्रों से उन्हें नष्ट कर दिया। इधर जब भीष्म अर्जुन से भिड़ रहे थे, तब दूसरी ओर अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, शल्य, चित्रसेन आदि मिलकर वीर अभिमन्यु पर आक्रमण कर रहे थे। शल्य के चारों घोड़ों को मारकर अभिमन्यु ने उन सब आक्रमणकारियों से ऐसा भयंकर युद्ध किया कि वे सब विवश होकर उसके सामने से हट गये। तब दुर्योधन की आज्ञा से पच्चीस हजार सैनिकों ने अभिमन्यु और अर्जुन दोनों को घेर लिया तभी सेनापति धृष्टद्युम्न ने अपनी सेना सहित आकर कृपाचार्य एवं शल्य को घायल कर दिया और पौरथ के पुत्र दमन को मार डाला। जब शल के पुत्र ने धृटष्द्युम्न को घायल कर दिया तो उन्होंने क्रुद्ध होकर अपनी गदा से उसका मस्तक चूर्ण कर दिया। इससे क्रोध में भरकर शल ने अपने बाणों की वर्षा से धृष्टद्युम्न को चारों ओर से ढक लिया और उसे घायल करने लगे, तभी अभिमन्यु ने आकर अपने तीन विलक्षण बाणों से उसे घायल कर दिया।

भीमसेन ने दुर्योधन को अपने सम्मुख देखा तो वे हाथ में गदा लेकर उन्हें मारने के लिए दौड़े। क्रोधित भीमसेन को आते देख मगधराज ने अपनी गज सेना लेकर उन्हें अपनी

सुरक्षा में ले लिया और भीमसेन पर चारों ओर से आक्रमण करने लगे, किन्तु भीमसेन महाकाल की भाँति मगध-सेना का संहार कर रहे थे। इसी बीच मगधराज की दृष्टि रथ पर अकेले लड़ रहे अभिमन्यु पर पड़ी तो वे उस ओर बढ़े। अभिमन्यु ने उन्हें अपनी ओर बढ़ते देखा तो तत्काल एक भल्ल बाण से उनका शीश काट डाला। मगधराज के मरते ही उनकी सेना पीछे दौड़ने लगी वहाँ भीमसेन की मार से व्याकुल होकर मगध के हाथी लौटकर अपनी ही सेना को कुचलने लगे। इस समय भीमसेन भयानक संहार करते हुए प्रलयंकर शङ्कर जैसे प्रतीत हो रहे थे, हाथ में गदा लिए वे जिस ओर बढ़ जाते थे, उसी ओर मृत एवं घायल सैनिकों एवं वाहनों के पर्वताकार ढेर लग जाते थे। उन्होंने सेनापति, जलसन्ध, सुषेण, उग्र, वीरबाहु, भीम, भीमरथ, सुलोचन नामक दुर्योधन के आठ भाइयों को मारकर यमलोक भेज दिया। शेष सब कौरव जान बचाकर भाग निकले। कुरु सेना की यह दुर्गति देखकर प्राग्योतिषेश्वर भगदत्त ने एक भयंकर बाण भीमसेन की छाती में मारकर उन्हें मूर्च्छित कर दिया। भीमसेन को मूर्च्छित होते देख अत्यन्त क्रोधित हो घटोत्कच ने मायाबल से तीन भयंकर हाथियों का निर्माण किया जिन पर भयंकर दानव महावीर सवार थे। घटोत्कच ने आगे बढ़कर भगदत्त के हाथी को अत्यधिक घायल कर दिया। भगदत्त की सहायता के लिए भीष्म, द्रोण आदि दौड़े। उन्हें भी उसने परास्त कर दिया तब भीष्म ने द्रोणाचार्य से कहा, "आज हम इसे परास्त नहीं कर सकते। अब सन्ध्या हो रही है, युद्ध समाप्ति का शंख बजाइये।" युद्ध

समाप्त होने पर पाण्डव सेना भीमसेन और घटोत्कच के अद्भुत शौर्य की प्रशंसा करते हुए अपने शिविर को लौट पड़ी।

आठवाँ अध्याय

पाँचवां दिन, सात्यकि के दस पुत्रों का वध

भीमसेन के शौर्य का वर्णन सुन दुःखी हो धृतराष्ट्र ने कहा--संजय ! ऐसा प्रतीत होता है कि अकेला भीम ही मेरे सब पुत्रों को मार डालेगा। अस्तु, अब पाँचवें दिन का वृत्तान्त सुनाओ। संजय ने कहा—पाँचवें दिन आपकी ओर से मकर व्यूह की रचना की गई। स्वयं भीष्म इसकी रक्षा करने लगे। इसके उत्तर में पाण्डवों ने श्येन व्यूह की रचना की। मकर व्यूह अधिक शक्तिशाली नहीं हुआ। भीमसेन ने उसमें प्रवेश करके भीष्म पर बाणों की वर्षा कर दी। भीष्म ने भी अपने बाणों से पाण्डव सेना के छक्के छुड़ा दिये। पाण्डवों की सेना को हताश होते देख अर्जुन ने अपने गाण्डीव से तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करके कौरव सेना की शक्ति को विफल कर दिया। दूसरी ओर द्रोणाचार्य अपने बाणों से सात्यकि को दारुण व्यथा पहुँचा रहे थे। सात्यकि को इस प्रकार घिरा देख भीमसेन उधर दौड़े और उन्होंने द्रोणाचार्य, भीष्म एवं शल्य को अपने बाणों से पीड़ित कर दिया। इसके उत्तर में उन तीनों महावीरों ने भीम पर भयंकर बाण छोड़े। यह देखकर उनकी सहायता के लिए अभिमन्यु तथा द्रौपदी के पाँचों पुत्र आ पहुँचे। शिखंडी को भीष्म से युद्ध करने के लिए आता देख दुर्योधन ने द्रोणाचार्य को भीष्म के आगे कर दिया क्योंकि भीष्म शिखण्डी से इसलिए युद्ध करना नहीं चाहते थे कि वह पिछले जन्म में स्त्री था।

भीष्म को शिखण्डी से युद्ध न करते देख अर्जुन भीष्म से आकर युद्ध करने लगे। भीष्म के सामने से हटते ही उन्होंने कौरव सेना का संहार करना आरम्भ कर दिया। बहुत से हताहत हुए। शेष अपने प्राण लेकर भाग खड़े हुए। दुर्योधन के उत्साहित करने पर प्रमुख सेनानी आगे बढ़े। अवन्तिराज काशीराज से, जयद्रथ भीमसेन से, शल्य युधिष्ठिर से, विकर्ण सहदेव से, चित्रसेन शिखण्डी से और द्रुपद, चेकितान तथा सात्यकि मिल कर द्रोणाचार्य से युद्ध करने लगे। इन महारथियों को परस्पर भिड़ते देख शेष सैनिक भी प्राणपण से युद्ध करने लगे। शीघ्र ही सम्पूर्ण रणक्षेत्र वीरों के शवों, आहतों एवं नष्ट-भ्रष्ट वाहनों से पट गया।

भूरिश्रवा के आक्रमण से जब सात्यकि घायल हो गये तो उनके दस वीर पुत्रों ने आकर भूरिश्रवा से कहा, "हे कौरव! आओ, हम में से एक के साथ या दसों के साथ युद्ध करो। या तो हमको मारकर तुम यश प्राप्त करो या हम तुम्हें परास्त करके अपने पिता को प्रसन्न करेंगे।" भूरिश्रवा ने प्रसन्न होकर कहा, "तुम सब मिलकर मुझसे युद्ध करो।" फिर तो दोनों ओर से भयंकर युद्ध हुआ। सात्यकि के दसों पुत्र युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। अपने पुत्रों को मरते देख सात्यकि पुनः भूरिश्रवा से युद्ध करने लगे। जब दोनों के रथ नष्ट हो गए तो भीम ने सात्यकि को और दुर्योधन ने भूरिश्रवा को अपने-अपने रथों पर चढ़ा लिया। उधर अर्जुन ने पच्चीस हजार रथियों का संहार कर दिया था। दिन छिपने पर युद्ध समाप्त कर दिया गया और सेनाएँ शिविरों को लौट गईं।

नवाँ अध्याय

छठा दिन, धृतराष्ट्र पुत्र दुष्कर्ण का वध

छठे दिन पाण्डव सेना ने मकरव्यूह की और कौरव सेना ने क्रौंच व्यूह की रचना की। युद्ध शुरू होते ही भीमसेन द्रोणाचार्य से भिड़ गये। दोनों ही एक दूसरे की सेना का संहार करने लगे। फिर भीमसेन कौरवों के क्रौंच व्यूह को तोड़कर उसमें घुस गये। जब धृष्टद्युम्न को यह ज्ञात हुआ कि भीमसेन अकेले ही हाथ में गदा लेकर शत्रु सेना में पैदल घुस गए हैं तो वे उनकी सहायतार्थ वहाँ जा पहुँचे और उन्होंने भीमसेन को अपने रथ पर बिठा लिया। दुर्योधन आदि भीमसेन को अकेला पाकर उसे मार डालने की योजना बना रहे थे। धृष्टद्युम्न को आया देख उन्हें बहुत क्रोध आया। अतएव उन्होंने दोनों पर भयंकर बाणों की वर्षा कर दी। इस बाण वर्षा से बचने के लिये धृष्टद्युम्न ने सम्मोहन बाण चलाकर सब कौरवों को अचेत कर दिया। जब द्रोणाचार्य को यह ज्ञात हुआ तो उन्होंने प्रज्ञास्त्र चलाकर इस सम्मोहन को समाप्त कर उन्हें फिर चैतन्य किया। पुनः दोनों ओर से भयंकर युद्ध होने लगा। युधिष्ठिर ने उन दोनों को न देखकर अभिमन्यु आदि को उन्हें खोजने तथा उनकी सहायता करने के लिए भेजा। इस सहायता को पाकर वे दोनों दूने उत्साह से कौरव सेना का संहार करने लगे। जब भीमसेन की दृष्टि दुर्योधन पर पड़ी तो वे उसकी ओर लपके और बोले, "हे दुर्योधन! यदि तुम आज रणक्षेत्र से भाग नहीं जाओगे तो तुम्हें मारकर मैं द्रौपदी के मन की व्यथा को शान्त करूँगा।" यह कहकर

उन्होंने एक साथ छब्बीस बाण छोड़कर दुर्योधन के सारथि, रथ के घोड़ों तथा ध्वजा को नष्ट कर दिया। उसी समय जयद्रथ और कृपाचार्य दुर्योधन की सहायता के लिए आ पहुँचे। दुर्योधन के आहत होते ही कृपाचार्य उन्हें अपने रथ पर बिठाकर अन्यत्र ले गये। आपका पुत्र दुष्कर्ण भीमसेन के हाथों मारा गया।

उधर अभिमन्यु तथा आपके पुत्र विकर्ण युद्ध कर रहे थे। अभिमन्यु ने विकर्ण के सारथि और घोड़ों को मार डाला। इससे अधीर होकर भीष्म ने कैकेय और पांचाल सेना को नष्ट कर दिया। सन्ध्या होने के कारण युद्ध बन्द हो गया।

दसवाँ अध्याय

सातवें दिन का भयंकर युद्ध

संजय बोले—हे राजन्! अगले दिन प्रातः दुर्योधन ने भीष्मपितामह के पास जाकर कहा कि भीम निरन्तर हमारी सेना को दुर्गति किये जा रहा है। आप ऐसा उपाय करें जिससे हम पाण्डव सेना को परास्त कर सकें। भीष्म ने कहा, "दुर्योधन! पाण्डवों को पराजित करना सरल नहीं है। फिर भी मैं आज अपनी सारी शक्ति लगाकर युद्ध करूँगा।" दुर्योधन के सन्तोष के लिये उन्होंने मण्डल-व्यूह की रचना की। जो हाथियों और घोड़ों से दुर्गम तथा असंख्य पैदल सैनिकों से युक्त था। उस व्यूह की रक्षा के लिये भीष्म के साथ दस हजार रथ, दस हजार हाथी और दस हजार घोड़े लड़ रहे थे। इसके उत्तर में युधिष्ठिर ने वज्र-व्यूह की रचना की। फिर दोनों ओर के पराक्रमी योद्धा एक दूसरे से पूरी शक्ति के साथ भिड़ गये। द्रोणाचार्य मत्स्यराज से, अश्वत्थामा शिखण्डी से, दुर्योधन

द्रुपद से, नकुल और सहदेव शल्य से, विन्द तथा अनुविन्द इरावान से, भीमसेन कृतवर्मा से, भूरिश्रवा धृष्टकेतु से, युधिष्ठिर श्रुतायुष से, चेकितान कृपाचार्य से और अर्जुन एक साथ सैकड़ों राजाओं से युद्ध करने लगे। अर्जुन के बाणों से व्याकुल होकर जब कौरव सेना भीष्मपितामह की शरण में पहुँची तो भीष्म ने अर्जुन पर बाणों की वर्षा कर दी। राजा विराट ने द्रोणाचार्य को घायल कर दिया। अवसर पाकर द्रोणाचार्य ने विराट के पुत्र शंख के हृदय में एक तीक्ष्ण बाण मारकर उसे धराशायी कर दिया। अपने पुत्र की मृत्यु से व्यथित होकर राजा विराट द्रोण के सामने से हट गये। अश्वत्थामा को अपने प्रहारों से आहत करके शिखण्डी ने सात्यकि पर धावा बोल दिया। इसी समय धृष्टद्युम्न ने दुर्योधन के रथ के घोड़े मारकर उसके धनुष को काट डाला। दुर्योधन खड्ग लेकर पैदल ही अपने आक्रमणकारी को मारने के लिये दौड़े तो शकुनि ने उन्हें अपने रथ पर बिठा लिया। उधर कौरव पक्ष के वीरों में हलचल मचाते हुए धृष्टद्युम्न और भीमसेन भयंकर युद्ध कर रहे थे। इरावान ने अपने बाणों से विन्द और अनुविन्द दोनों को घायल कर दिया तो वे तत्काल रण-भूमि से हट गये। भगदत्त के भीषण आक्रमण से एक बार तो वीर घटोत्कच भी दहल गया और वह उनसे पाण्डव-सेना की रक्षा न कर सका। जब शल्य भी पाण्डव सेना का विनाश करने के लिये आगे आये तो सहदेव ने क्रोधित होकर एक बाण शल्य की छाती में मारा जिससे वे मूर्च्छित हो गए। उनका सारथि उन्हें रणभूमि से बाहर ले गया।

युधिष्ठिर श्रुतायुष से भयंकर युद्ध कर रहे थे। उन्होंने श्रुतायुष के नौ बाण मारे। उसने उन बाणों को निरस्त करके एक साथ सात बाणों से युधिष्ठिर का कवच तोड़ दिया। तब धर्मराज ने श्रुतायुष के सारथी और घोड़ों को मार डाला तथा उनका धनुष काट दिया। इस प्रकार निहत्थे हो जाने पर श्रुतायुष रणभूमि से भाग खड़े हुए। चेकितान और कृपाचार्य ने पहले धनुष बाण से फिर गदा से एक दूसरे पर भीषण चोटें कीं। अन्त में दोनों ही घायल और मूच्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। भीमसेन चेकितान को और शकुनि कृपाचार्य को को अपने अपने रथों पर बिठाकर ले गए। तब युधिष्ठिर की आज्ञा से बहुत से वीरों ने भीष्म को चारों ओर से घेर लिया। इस पर भीष्म ने अपने भीषण प्रहारों से पाण्डवों की व्यूह रचना को नष्ट करके पाण्डव सेना का सफाया करना आरम्भ कर दिया। जब शिखण्डी भीष्म की ओर दौड़ा तो उसके स्त्री भाव का स्मरण करके वे पैंतरा बदल दूसरी ओर के योद्धाओं से युद्ध करने लगे। एक ओर भीष्म पाण्डव सेना का विनाश कर रहे थे तो दूसरी ओर धृष्टद्युम्न तथा सात्यकि कौरव सेना का। दोनों ही पक्षों में इस भयंकर युद्ध से हाहाकार का शब्द गूंज रहा था। इस प्रकार लड़ते-लड़ते सन्ध्या हो गई और युद्ध समाप्त हो गया।

ग्यारहवाँ अध्याय

भीमसेन द्वारा धृतराष्ट्र के सत्रह पुत्रों का वध तथा अर्जुन के पुत्र इरावान की मृत्यु

संजय बोले--आठवें दिन जब भीष्मपितामह ने महाव्यूह बनाया तो इसे तोड़ने के लिए पाण्डवों के सेनापति धृष्टद्युम्न

ने शृंगाटक व्यूह की रचना की। फिर दोनों ओर के पराक्रमी योद्धा सिंहनाद करते हुए परस्पर भिड़ गये। भयंकर रौद्ररूप धारण कर भीष्म सोमक, सृञ्जय तथा पांचाल वीरों का संहार करने लगे। इससे क्रोधित हो भीमसेन ने उन पर बाणों की वर्षा कर उनके सारथि को मार डाला। उसी क्षण भीष्म की रक्षा के लिये अपने भाइयों सहित दुर्योधन आ पहुँचे। भीमसेन ने एक क्षुरप्र बाण से सुनाभ का सिर काट डाला। अपने भाई को मरता देख आदित्यकेतु, बह्वाशी, कुण्डधार, महोदर, अपराजित, पण्डितक और विशालाक्ष ये सातों कौरव भीमसेन पर टूट पड़े। क्रोध से अधीर हो भीमसेन ने एक बाण से अपराजित का शीश काट डाला और दूसरे से कुण्डधार का। तीसरे बाण से उन्होंने पण्डितक को मार डाला। इसके उपराँत विशालाक्ष, महोदर, आदित्यकेतु तथा बह्वाशी भी उनके द्वारा मारे गये। अपने भाइयों की मृत्यु से क्षुब्ध होकर दुर्योधन ने सब राजाओं को एक साथ मिलकर भीमसेन को मार डालने की आज्ञा दी। इसके फलस्वरूप दोनों ओर से अभूतपूर्व मार-काट होने लगी। इस समय समरभूमि ने अत्यन्त भयानक रूप धारण कर लिया। इस युद्ध में अर्जुन ने देखा कि उनका पुत्र इरावान् जो नागराज ऐरावत की कन्या से उत्पन्न हुआ था, उनकी ओर से युद्ध करने के लिए पाताल से आया है। उसे देखकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। उसने आते ही कौरव सेना के छक्के छुड़ा दिये। शकुनि ने अपने छः भाइयों के साथ उसे घेर लिया, किन्तु इरावान् तनिक भी विचलित नहीं हुआ। घायल होने पर भी वह शकुनि के भाइयों पर रौद्र रूप से

टूट पड़ा और उसने वृषभ को छोड़कर शेष पाँचों को मार डाला। यह देखकर दुर्योधन ने अलम्बुष राक्षस इरावान को मारने के लिए कहा। अलम्बुष बल राक्षस का मित्र था जिसे भीमसेन ने मारा था। इसी वैर के कारण वह पाण्डवों के विरुद्ध कौरवों की ओर से लड़ रहा था। अलम्बुष ने अपनी माया से अनेक बलवान पराक्रमी राक्षस पैदा किए जिन्होंने इरावान को घेर लिया। जब उन राक्षसों का वीर इरावान पर वश नहीं चला तो अलम्बुष ने गरुड़ का रूप धारण कर नागों को खा डाला। मातृवंश को नष्ट होता देख जब इरावान् शोक करने लगा तभी अलम्बुष ने तलवार से उसका सिर काट दिया।

इरावान की मृत्यु के समाचार से क्रुद्ध हो घटोत्कच ने बहुत से भयानक राक्षस उत्पन्न किये जो हाथों में त्रिशूल लेकर कौरवों का विनाश करने लगे। दुर्योधन ने पच्चीस नाराच बाण मारकर घटोत्कच को घायल कर दिया। तब घटोत्कच ने प्रज्वलित महाशक्ति दुर्योधन पर फेंकी। बंग देश के राजा ने अपना हाथी आगे बढ़ाकर दुर्योधन को ओट में कर लिया जिससे हाथी उसी क्षण पृथ्वी पर गिरकर मर गया। दुर्योधन पर इस आक्रमण का समाचार सुनकर भीष्म ने सभी महारथियों को उनकी रक्षा के लिए भेजा, किन्तु घटोत्कच की भीषण मार के आगे कोई न ठहर सका। फिर वह दुर्योधन से जाकर भिड़ गया। यह देख कौरव पक्ष के सब महारथी एक साथ घटोत्कच पर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। उनसे पीड़ित हो वह आकाश में उड़ गया और वहाँ उसने भीषण गर्जना

को। उसकी गर्जना सुनकर युधिष्ठिर ने भीमसेन को यह कह कर भेजा कि घटोत्कच संकट में है तुम जाकर उसकी सहायता करो। सुनते ही भीमसेन वायुवेग से उधर दौड़े। उनके साथ अनेक महावीर योद्धा भी कोलाहल करते हुए चल पड़े। कोलाहल सुनकर कौरव सेना घटोत्कच को छोड़कर लौट पड़ी। भीमसेन की छाती में द्रोणाचार्य ने तीक्ष्ण बाण मारा तो उन्होंने उससे भी तीक्ष्ण बाण मारकर आचार्य को मूर्च्छित कर दिया। फिर घटोत्कच ने ऐसी माया प्रगट की कि भयभीत होकर कौरव महारथी भागने लगे। उन्हें भागते देख पाण्डव सेना सिंहनाद करने लगी।

इसी समय भीमसेन को इरावान् की मृत्यु का समाचार ज्ञात हुआ, वे क्रोध में भरकर कौरव राजकुमारों को छाँट-छाँट कर उन पर तीव्र प्रहार करने लगे। उन्होंने एक के पश्चात् एक करके अपने भयानक बाणों से व्यूढोरस्क, कुण्डली, अनाधृष्टि, कुण्डभेदी, वैराट, दीर्घलोचन, दीर्घबाहु, सुबाहु और कनकध्वज को मार डाला। इसके उत्तर में भीष्म, द्रोणाचार्य आदि ने भयानक आक्रमण किया। दोनों ओर की सेना भारी चीत्कार करने लगी। तभी दिन समाप्त हो जाने के कारण युद्ध बन्द हो गया।

बारहवाँ अध्याय

भीष्म द्वारा पाण्डव सेना का संहार तथा पाण्डवों द्वारा भीष्म से उनकी मृत्यु का उपाय पूछना

संजय ने कहा--हे महाराज! नवें दिन भीष्मपितामह ने सर्वतोभद्र नाम के व्यूह की रचना की। इस पर पाण्डवों ने

दारुण महाव्यूह की रचना करके कौरवों पर आक्रमण कर दिया। दोनों ओर से घोर घमासान युद्ध होने लगा। महापराक्रमी अभिमन्यु ने ऐसा भीषण युद्ध किया कि कौरव सेना भाग खड़ी हुई। द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, जयद्रथ, कृपाचार्य, तथा बृहद्बल मूर्च्छित हो गये। अभिमन्यु का अद्भुत पराक्रम देख भीष्म ने तीक्ष्ण बाण बरसाकर उसका मार्ग रोकने की चेष्टा की। इसी समय अर्जुन भी वहाँ पहुँच गये। अर्जुन को आते देख द्रोणाचार्य ने उन पर तीव्र आक्रमण किया। इसका उत्तर अर्जुन ने भी उसी तीव्रता से दिया। उनके इस पराक्रम से अपनी सेना को व्यथित होते देख दुर्योधन, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, शल्य, सुदक्षिण, विन्द, अनुविन्द आदि ने असंख्य रथों के द्वारा अर्जुन को चारों ओर से घेर लिया। उन्होंने अपने अद्वितीय हस्त-लाघव से उनके मिले जुले आक्रमण को भी व्यर्थ कर दिया। उधर भीमसेन, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, विराट तथा द्रुपद विकट मारकाट मचा रहे थे और स्वयं भीष्म पर तीरों की वर्षा कर रहे थे। भीष्म शिखण्डी को बचाकर शेष सबको अपने बाणों से घायल कर रहे थे। इस समय वे साक्षात् महाकाल प्रतीत हो रहे थे। उनके आगे कोई पाण्डव वीर नहीं टिक पा रहा था। अर्जुन और श्रीकृष्ण भी उनके बाणों की मार से घायल हुए बिना न रह सके।

श्रीकृष्ण ने देखा कि अर्जुन मन लगाकर युद्ध नहीं कर रहे हैं और भीष्म पाण्डव सेना में प्रलय मचा रहे हैं तो वे क्रोधित होकर रथ के घोड़ों की रास छोड़ हाथ में कोड़ा लेकर भीष्म को मारने के लिए दौड़े। कृष्ण को अपनी ओर

इस प्रकार आते देख भीष्म ने धनुष पर बाण चढ़ाते हुए कहा, "श्रीकृष्ण! आपको मेरा प्रणाम है। आइए मुझे मारकर वीर-गति प्रदान कीजिए।" तभी अर्जुन ने रथ से कूदकर उन्हें रोका, "वासुदेव! यह क्या कर रहे हैं? युद्ध न करने की अपनी प्रतिज्ञा मत तोड़िये।" यह सुनकर श्रीकृष्ण लौटकर रथ पर आ बैठे। भीष्म फिर पाण्डव सेना में भूचाल उत्पन्न करने लगे। तभी सूर्य भगवान अस्ताचल की ओर चले और युद्ध समाप्त हो गया।

रात्रि को परामर्श करके पाण्डव लोग श्रीकृष्ण के साथ भीष्म के शिविर में पहुँचे। भीष्म ने आदरपूर्वक सबका सत्कार किया। कुछ क्षण पश्चात् युधिष्ठिर ने कहा, "पितामह! पिछले नौ दिन में आपने पाण्डव सेना का भयंकर संहार किया है। आपको युद्ध में कोई परास्त नहीं कर सकता। हम इस युद्ध में विजय प्राप्त करना चाहते हैं। कृपा करके यह बताइए कि आप पर कैसे विजय प्राप्त की जा सकती है?" भीष्म बोले, "धर्मपुत्र! कुछ लोग ऐसे हैं जिनके विरुद्ध में कभी युद्ध नहीं करता। वे हैं शस्त्रहीन, कवचरहित, घिरा हुआ, ध्वजा-हीन, भागता हुआ, भयभीत, शरणागत, स्त्री, हिजड़ों के नाम वाले, विकलाङ्ग, पिता की अकेली सन्तान, सन्तानहीन तथा नपुंसक। सम्भवतः तुम्हें स्मरण होगा मैं पुरुषभाव को प्राप्त स्त्री जाति से कभी युद्ध नहीं करूँगा। यदि अर्जुन शिखण्डी को आगे करके तीक्ष्ण बाणों से प्रहार करे तो मेरी मृत्यु हो सकती है। मुझे श्रीकृष्ण या अर्जुन के अतिरिक्त और कोई नहीं मार सकता। कौरवों को जीतने का एकमात्र यही उपाय

हो सकता है।" भीष्म के ये वचन सुनकर सबने उन्हें प्रणाम किया और प्रसन्नतापूर्वक अपने शिविर को लौट आए।

तेरहवाँ अध्याय

भीष्म अर्जुन युद्ध और भीष्म का शरशैया पर गिरना

संजय बोले--हे राजन्! दसवें दिन प्रात:काल पाण्डवों ने सर्वशत्रुनिबर्हण व्यूह तथा कौरवों ने महाव्यूह की रचना की। फिर युद्ध प्रारम्भ हुआ। भीष्म के परामर्श के अनुसार अर्जुन शिखण्डी को आगे करके भीष्मपितामह से युद्ध करने के लिए चले। जब पाण्डवों की मार से कौरव सेना भागने लगी तो भीष्मपितामह ने अपना भीषण रूप दिखाना आरम्भ किया। शिखण्डी को सामने देखकर भीष्म बोले, "हे शिखण्डी, मैं तुमसे युद्ध नहीं करूँगा क्योंकि तुम नपुंसक हो?" शिखण्डी ने क्रोध से अधीर होकर कहा, "मैं तुम्हें भलीभाँति जानता हूँ। यदि तुम मुझ पर वार नहीं करोगे तो भी मैं तुम्हें अवश्य मारूँगा। इसलिए इस पर भलीभाँति विचार कर लो। आज तुम मेरे हाथों से बचकर नहीं जाओगे।" यह कहकर शिखंडी ने भीष्म पर एक साथ पाँच बाण छोड़े। शिखंडी के मौखिक और बाणों की चोटों की चिन्ता न करते हुए वे क्रुद्ध हुए गजराज की भाँति पाण्डव सेना का संहार करने में जुट गये। उन्होंने दस हजार अश्वारोहियों, दस हजार हाथी पर सवार योद्धाओं तथा दो लाख सैनिकों को यमलोक भेजकर पाण्डव वीरों में भयंकर तहलका मचा दिया। दु:शासन, राक्षस अलम्बुष, भगदत्त, दुर्योधन आदि ने अर्जुन, भीमसेन तथा सात्यकि को भीष्म के निकट भी नहीं पहुँचने दिया। जब अभिमन्यु और

द्रुपद ने दूसरी ओर से भीष्म के निकट पहुँचने का प्रयत्न किया तो कम्बोज नरेश सुदक्षिण, अश्वत्थामा आदि ने उनका मार्ग अवरुद्ध कर दिया। वे फिर भी कौरव सेना को छिन्न-भिन्न करने से नहीं चूके।

दूसरी ओर जब गुरु द्रोणाचार्य पाण्डव सेना का विनाश कर रहे थे तभी उनकी दृष्टि आहत अश्वत्थामा पर पड़ी। वे उनके निकट जाकर बोले, "पुत्र! आज भयानक अपशकुन हो रहे हैं। कौरव सेना की कुशल दिखाई नहीं देती। सम्भव है कौरव सेनापति भीष्म पर भयानक संकट आये। हमें उनकी हर प्रकार से रक्षा करनी चाहिए। तुम धृष्टद्युम्न को देखो। मैं युधिष्ठिर को उधर जाने से रोकता हूँ।" जब भीमसेन पितामह की ओर बढ़ रहे थे तो दस महारथियों ने उन्हें घेर लिया और उन पर बाणों, तोमर, शतघ्नी तथा अन्य भयंकर शक्तियाँ चलाने लगे, किन्तु भीमसेन भी उतनी ही तत्परता से इस आक्रमण का निराकरण करने लगे। उन्होंने कृपाचार्य का धनुष काट डाला, जयद्रथ के घोड़ों सहित रथ व सारथि को समाप्त कर दिया तथा अन्य महारथियों को भी अपने बाणों से व्याकुल कर दिया। तभी द्रोणाचार्य ने पैंसठ बाण भीमसेन के मारे। भीम ने उन बाणों को रास्ते में ही निरस्त कर दिया। अपने सेनानियों के युद्ध कौशल से उत्साहित होकर दोनों ओर के सैनिक भी अपनी-अपनी वीरता का परिचय दे रहे थे और शत्रु का विनाश कर रहे थे।

अवसर मिलते ही अर्जुन शिखंडी को आगे कर भीष्म के सम्मुख जा पहुँचे। अर्जुन भीष्म के रक्षक कौरव सेनानियों

को धराशायी करने लगे और शिखण्डी भीष्म पर बाण बरसाने लगा। वे शिखण्डी के बाणों की ओर ध्यान न देकर अर्जुन को अपने बाणों के लक्ष्य बना रहे थे। अर्जुन एक ओर भीष्म के बाणों का उत्तर दे रहे थे, दूसरी ओर अन्य कौरव महारथियों पर दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करके उन्हें युद्ध क्षेत्र से भागने अथवा प्राण देने को विवश कर रहे थे। अब तक दोनों सेनाओं के व्यूह नष्ट हो चुके थे। जब भीष्म चारों ओर से घिर गये तो वे परशुरामजी से प्राप्त दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करने लगे। एक बाण से उन्होंने राजा विराट के भाई शतानीक को मार डाला। शतानीक के एक हजार साथी भी उनके हाथों से मारे गये। भीष्म को इस प्रकार यमराज की भाँति संहार करते देख श्रीकृष्ण अर्जुन से बोले, "अर्जुन! अब युद्ध का विषम क्षण आ पहुँचा है। भीष्म को पाण्डव सेना का संहार करने से रोको। उन पर आक्रमण करने का यही समय है।" केशव का निर्देश पाकर अर्जुन ने एक साथ असंख्य बाण छोड़कर बाणों से भीष्म को उनके रथ एवं सारथि सहित ढक दिया। जब भीष्म उन बाणों को काटने लगे तो शिखण्डी ने अपने प्रहार और भी तेज कर दिये और उनके मर्मस्थलों को पीड़ा पहुँचाने लगा। उनका कवच छिन्न-भिन्न हो गया था फिर भी वे पाण्डव सेना का निर्ममता से संहार किये जा रहे थे। इससे कुपित होकर अर्जुन ने शिखण्डी की आड़ लेकर उनका धनुष काट डाला। यह देखकर कृतवर्मा, कृपाचार्य, जयद्रथ, भूरिश्रवा, शल, शल्य तथा भगदत्त तीक्ष्ण बाण बरसाते हुए अर्जुन की ओर दौड़े। उन्हें रोकने के लिए विराट, द्रुपद, घटोत्कच, सात्यकि, भीमसेन,

धृष्टद्युम्न तथा अभिमन्यु उनके और अर्जुन के मध्य आकर उनसे युद्ध करने लगे। भीष्म का धनुष कट जाने पर शिखण्डी ने दस बाण उनके सारथि के मारे। जब भीष्म ने दूसरा धनुष उठाया तो अर्जुन ने उसे भी काट डाला। इस प्रकार भीष्म ने जितने धनुष उठाये उन सबको अर्जुन ने काट दिया तो भीष्म ने क्रुद्ध होकर एक प्रज्वलित शक्ति अर्जुन के रथ पर फेंकी। अर्जुन ने अपने बाणों से उसके टुकड़े-टुकड़े करके उसे पृथ्वी पर गिरा दिया। फिर उन्होंने भीष्म को अपना लक्ष्य बनाया।

अब भीष्म विचार करने लगे, शिखंडी नपुंसक है, इसलिए मैं उसे मारूँगा नहीं। पाण्डव वासुदेव से रक्षित होने के कारण जीते नहीं जा सकते। फिर भी पिता से वरदान के कारण मुझे कोई जीत नहीं सकता और मेरी मृत्यु मेरी इच्छा के आधीन है। अब तक मैं असंख्य योद्धाओं का संहार करके दुर्योधन को दिये हुए वचन को पूरा कर चुका हूँ। अतएव अब मुझे रणभूमि से सदा के लिए विदा ले लेनी चाहिए। मेरी मृत्यु का यही उपयुक्त समय है। यह सोचकर पितामह ने अर्जुन पर प्रहार करना बन्द कर दिया। किन्तु अर्जुन और शिखंडी उन पर निरन्तर प्रहार किये जा रहे थे। जब भीष्मजी 'मृत्यु अथवा विजय' कहकर ढाल तलवार ले रथ से उतरने लगे तो अर्जुन ने शीघ्र ही अपने बाणों से ढाल और तलवार के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। उस समय भीष्म के शरीर में ऐसा कोई स्थान नहीं था जहाँ अर्जुन और शिखंडी के बाणों ने प्रवेश न किया हो। तभी एक बाण लगने पर भीष्मपितामह पूर्व की ओर सिर करके पृथ्वी पर गिर पड़े। उनके शरीर में

इतने बाण चुभे हुए थे कि रथ से नीचे गिर जाने पर भी उनका शरीर पृथ्वी को न छू सका। गिरते समय जब भीष्म ने देखा कि सूर्य दक्षिणायण में है तो वे उसके उत्तरायण होने की प्रतिक्षा करने लगे और उन्होंने अपने प्राण नहीं त्यागे। कौरव सेना में हाहाकार मच गया। उसमें और युद्ध करने का साहस नहीं रह गया। भीष्म के गिरने का समाचार सुनते ही द्रोणाचार्य मूर्च्छित हो गए। सचेत होने पर उन्होंने अपनी सेना को युद्ध बन्द करने का आदेश दिया। कौरवों को युद्ध बन्द करते देख पाण्डवों ने भी अपने सेनापति की आज्ञा से युद्ध बन्द कर दिया।

चौदहवाँ अध्याय

अर्जुन द्वारा भीष्म के लिए शर-तकिया व जल देना तथा भीष्म और कर्ण का वार्तालाप

संजय बोले--हे राजन्! युद्ध समाप्त होने पर कौरव और पाण्डव दोनों ही अपनी-अपनी रणसज्जा उतारकर भीष्म-पितामह के पास आये और उन्हें प्रणाम कर नतमस्तक हो खड़े हो गये। भीष्म ने उनका स्वागत करते हुए कहा, "हे वीरो! मेरा सिर नीचे लटक रहा है। इससे मुझे असुविधा हो रही है। मुझे कोई तकिया दो।" यह सुनते ही दुर्योधन, दुःशासन आदि तत्काल दौड़कर एक कोमल मखमल का तकिया ले आये। उसे देखकर भीष्म बोले, "यह तकिया शर-शैया के अनुकूल नहीं है। अर्जुन! तुम मुझे वीर शैया के अनुकूल तकिया दो।" यह सुनकर अर्जुन ने नेत्रों में आँसू भरकर अपने गांडीव पर तीन बाण चढ़ाये और पितामह को प्रणाम करके उनके मस्तक में मारे। उन बाणों का तकिया पाकर

भीष्मजी का सिर उन पर ठहर गया। अर्जुन की सराहना करते हुए उन्होंने कहा, "अब मैं अपने प्राण त्यागने के लिए सूर्य के उत्तरायण होने की प्रतीक्षा करूँगा। मेरी शर-शैया के चारों ओर खाई खोद दी जाय। मैं इसी शरशैया पर लेटा हुआ भगवान सूर्य की उपासना करूँगा।" जब वैद्य उनकी चिकित्सा करने आये तो उन्होंने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल दोनों ओर के महावीर फिर पितामह को प्रणाम करने के लिए आये। भीष्मजी ने पीने के लिए जल माँगा। राजा लोग तुरन्त दौड़कर उनके लिये शीतल जल ले आये तो वे बोले, "यह ठीक है कि मैं इस समय इस लोक हूँ, परन्तु इस लोक की सामग्री से मैंने अपना सम्बन्ध तोड़ लिया है। मैं यहाँ का जल, भोजन आदि कुछ नहीं लेना चाहता।" तत्पश्चात् उन्होंने अ ुन को अपने समीप बुलाकर कहा, "वत्स ! तुम्हारे बाणों के कारण मेरा शरीर जल रहा है। थोड़ा जल पिलाकर मेरी जलन शान्त करो। केवल तुम ही मुझे मनोवाँछित जल पिला सकते हो।" अर्जुन ने पीछे हटकर तत्काल गांडीव पर बाण चढ़ाया और उसे पर्जन्य अस्त्र से अभिमन्त्रित करके भीष्मजी के दक्षिण की ओर पृथ्वी पर मारा। सहसा पृथ्वी फट और उसमें से निर्मल जलधारा निकलकर धीरे-धीरे भीष्मजी के मुख में गिरने लगी। उसे पीकर वे तृप्त हो गए। फिर दुर्योधन से बोले, "दुर्योधन ! तुमने अर्जुन का कार्य देखा वह शस्त्र विद्या का अद्भुत ज्ञाता है। उसे कोई रण में परास्त नहीं कर सकता। फिर श्रीकृष्ण उसके रक्षक हैं। इसलिए तुम पाण्डवों से सन्धि कर लो। इसी

में तुम्हारा कल्याण है, अन्यथा कौरव वंश का सर्वनाश हो जायेगा।" यह कहकर वे मौन हो गये और दुर्योधन मुँह फेरकर वहाँ से चले गए।

भीष्म के घायल होकर गिरने का समाचार सुनकर कर्ण उनके पास आया और नेत्रों में आँसू भरकर बोला, "हे पितामह! राधा का पुत्र कर्ण आपको प्रणाम करता है।" कर्ण का स्वर सुनकर भीष्म बोले, "आओ कर्ण! बैठो। मैं तुमसे एकान्त में वार्त्तालाप करना चाहता हूँ।" जब सब लोग वहाँ से हट गये तो वे कहने लगे, "तुम मेरे प्रतियोगी हो। राधा के नहीं, कुन्ती के पुत्र हो। तुम्हारे पिता अधिरथ नहीं स्वयं सूर्यदेव हैं। तुम्हारे प्रति मैंने कभी द्वेष-भाव नहीं रखा। केवल तुम्हारा तेज घटाने के लिये तुम्हारे प्रति कठोर शब्दों का प्रयोग करता रहा हूँ। तुम ब्रह्मनिष्ठ, वीर और महान दानी हो। मैं चाहताहूँ, तुम पाण्डवों से मिल जाओ।" कर्ण ने कहा, महात्मन्! आप ठीक कहते हैं। मैं भी जानता हूँ कि मैं कुन्ती का पुत्र हूँ, किन्तु उन्होंने मुझे त्याग दिया था। अब दुर्योधन की कृपा से ऐश्वर्य भोग रहा हूँ। ऐसी दशा में मैं उनके साथ विश्वासघात कैसे कर सकता हूँ। यह युद्ध रुक नहीं सकता। मैं जानता हूँ पाण्डव अजेय हैं। फिर भी क्षत्रिय के नाते युद्ध तो करना ही है। अतः आप मुझे अर्जुन से युद्ध करने की आज्ञा दें।" "जैसी तुम्हारी इच्छा!" कहकर भीष्म ने नेत्र बन्द कर लिए। कर्ण भी उन्हें प्रणाम कर चला गया।

॥ इति भीष्म पर्व सम्पूर्ण ॥

॥ ओ३म् ॥

महाभारत भाषा

७. द्रोण पर्व



छः कौरव महारथियों द्वारा अभिमन्यु वध



धृष्टद्युम्न द्वारा आचार्य द्रोण का वध

पहला अध्याय

द्रोणाचार्य द्वारा युधिष्ठिर को पकड़ने का प्रयत्न

वैशंपायनजी बोले—हे राजा जनमेजय ! जब धृतराष्ट्र ने संजय से भीष्मपितामह के शरशैया पर शयन करने का समाचार सुना तो उन्हें बहुत दुःख हुआ। उन्होंने दुःखी मन से उन्हें आगे का वृत्तान्त सुनाने के लिए कहा। राजा की आज्ञा पाकर संजय बोले—जब कर्ण ने दुर्योधन के पास आकर उन्हें सान्त्वना दी और आगे युद्ध करने के लिए उत्साहित किया तो दुर्योधन ने पूछा, "अब सेनापति किसे बनाना चाहिए।" यह सुनकर

कर्ण ने कहा, "भीष्मपितामह के पश्चात् सबसे योग्य व्यक्ति आचार्य द्रोण ही हैं। वे सबके गुरु, महान् पराक्रमी योद्धा, वृद्ध एवं सर्वश्रेष्ठ शस्त्रधारी हैं। इसलिए उन्हें ही कौरव सेना का सेनापति बनाना चाहिये।" इस प्रस्ताव से सहमत होकर दुर्योधन ने द्रोणाचार्य के पास जाकर प्रधान सेनापति के पद का भार सँभालने का अनुग्रह किया।

दुर्योधन का प्रस्ताव सुनकर द्रोणाचार्य बोले, "हे दुर्योधन! मैं तुम्हारा अनुग्रह मानकर यह भार अवश्य सँभाल लूँगा, और प्राणपण से युद्ध भी करूँगा, किन्तु राजा द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न को मैं किसी भी प्रकार से परास्त नहीं कर सकूँगा। क्योंकि उसका जन्म ही मुझे मारने के लिए हुआ है।" इसके पश्चात् उनका विधिपूर्वक प्रधान सेनापति पद पर अभिषेक किया गया। सेनापति बनकर द्रोणाचार्य ने दुर्योधन से पूछा, "वत्स! इस समय तुम्हारी मुख्य अभिलाषा क्या है?" उसने कहा, "मैं चाहता हूँ कि युधिष्ठिर को जीवित बन्दी बनाकर मेरे सम्मुख लाया जाय तो मैं फिर उनके साथ जुआ खेलकर उन्हें हराऊँ इससे युद्ध समाप्त हो जायेगा और सब पाण्डवों को एकबार फिर वन को भेजकर मैं चिरकाल तक निष्कंटक राज्य करूँगा। यदि युद्ध में युधिष्ठिर मारे गए तो पाण्डव लोग किसी कुरुवंशी को कभी जीवित नहीं छोड़ेंगे। अतः आप मेरी यह इच्छा पूरी करें।"

दुर्योधन की बात सुनकर द्रोणाचार्य बोले, "राजन्! जब तक अर्जुन युधिष्ठिर की रक्षा में तत्पर है, तब तक युधिष्ठिर को नहीं पकड़ा जा सकता। यदि तुम अर्जुन को युद्ध

में उलझाकर अन्यत्र ले जा सको तो मैं अवश्य ही युधिष्ठिर को युद्ध में जीवित पकड़ सकूंगा।" आचार्य का कथन सुनकर दुर्योधन हर्ष से गद्गद् हो गए। पाण्डवों के गुप्तचरों ने जब यह समाचार युधिष्ठिर को सुनाया और उन्होंने अर्जुन को बताया तो वे बोले, "इस संसार में मेरे जीवित रहते आचार्य आपको कभी बन्दी नहीं बना सकेंगे।" तत्पश्चात् कौरवों की योजना को विफल करने के लिए सेनापति धृष्टद्युम्न ने क्रौंच व्यूह की रचना की और इस व्यूह के मुख-द्वार पर कृष्ण सहित अर्जुन रहे। साथ में उनके बहुत से महारथी थे।

उधर द्रोणाचार्य ने कौरव सेना में शकट-व्यूह की रचना की। शंखनाद की ध्वनि के साथ दोनों ओर की सेना युद्ध करने के लिये एक दूसरे से भिड़ गई। लोमहर्षक संग्राम होने लगा। पाण्डव सेना शकट-व्यूह को और कौरव सेना क्रौंच व्यूह को नष्ट करने का प्रयास करने लगी। द्रोणाचार्य भीषण मारकाट करते हुए पाण्डव सेना में घुस गए। कोई भी पाण्डव वीर उनका सामना करने की ताव न ला सका। रक्त की सरिताएँ बहने लगीं जिनमें हताहत सैनिक, मृत हाथी-घोड़े आदि बहने लगे। स्थान-स्थान पर हाथियों, घोड़ों तथा मृत सैनिकों के पर्वताकार ढेर लग गए। सब ओर हाहाकार मच गया। पाण्डव सेना का यह विनाश होते देख पाण्डव पक्ष के योद्धा चारों ओर से द्रोणाचार्य पर आक्रमण करने लगे। अन्य महावीर भी परस्पर युद्ध करके अपना महापराक्रम प्रदर्शित कर रहे थे। घटोत्कच और राक्षस अलम्बुष आसुरी माया से परस्पर युद्ध करने लगे। भीमसेन और शल्य एक-दूसरे के साथ

गदा युद्ध में अपनी धाक जमाने का प्रयत्न कर रहे थे। दोनों ही अद्भुत योद्धा थे। एक बार दोनों ने एक दूसरे पर ऐसा भयानक वार किया कि दोनों ही मूर्च्छित होकर गिर पड़े। कृतवर्मा शल्य को अपने रथ पर चढ़ाकर ले गये और भीमसेन थोड़ी ही देर में चैतन्य हो गये। जब वे कौरव सेना पर झपटे तो कौरव सेना भयभीत होकर भागने लगी।

कौरव सेना को भागते देखकर कर्ण का पराक्रमी पुत्र वृषसेन अपने रणकौशल से उसकी रक्षा करने तथा उत्साह बढ़ाने लगा। वृषसेन के तीक्ष्ण बाणों की मार से असंख्य पाण्डव योद्धा मारे गये। इसी समय नकुल के पुत्र शतनीक ने आकर वृषसेन पर भीषण आक्रमण किया। दोनों वीर अपना अपना पराक्रम दिखाकर अपने सैनिकों में नया उत्साह बढ़ा रहे थे। दुर्योधन से की गई प्रतिज्ञा के अनुसार द्रोणाचार्य युधिष्ठिर को पकड़ने के प्रयास से उनकेसाथ युद्ध कर रहे थे। द्रोणाचार्य के तीक्ष्ण बाणों का उत्तर युधिष्ठिर भी उतनी ही कुशलता से दे रहे थे। जब आचार्य उनका धनुष काटकर उनकी ओर झपटे तो उनके एक चक्र रक्षक पांचालकुमार ने अनेक बाण छोड़कर उन्हें आगे बढ़ने से रोकदिया। पांचाल कुमार की सहायता के लिए जब युगन्धर आये तो आचार्य ने अपने बाणों से उन्हें रथ से गिरा दिया युगन्धर के गिरने पर व्याघ्रदत्त और सिंहसेन ने द्रोणाचार्य पर तीरों की बौछार कर दी। इससे क्रोधित होकर उन्होंने भल्लबाण से दोनों के सिर काट डाले और धर्मराज के रथ के निकट पहुँच गए। द्रोणाचार्य युधिष्ठिर को बन्दी बनाने वाले ही थे कि अर्जुन आ

पहुँचे। उस समय अर्जुन ने अद्भुत रणकौशल का परिचय दिया। उनकी रणचपलता ने आचार्य को भी चकित कर दिया। यह पता नहीं चलता था कि कब बाण तरकस से निकला, कब धनुष पर चढ़ा और कब छूट गया। जब वह शत्रु के पास पहुँचकर उसे आहत करता था, तभी कुछ ज्ञात होता था। अर्जुन के इस पराक्रम के आगे द्रोणाचार्य की एक न चली और संध्या होने पर युद्ध समाप्त कर देना पड़ा।

दूसरा अध्याय

द्रोणाचार्य को मारने की तैयारी, भगदत्त का वध

संजय बोले—हे महाराज! उस दिन के युद्ध की समाप्ति पर जब दुर्योधन ने द्रोणाचार्य को अपनी प्रतिज्ञा पूरी न करने पर उपालम्भ किया तो उन्होंने लज्जित होकर कहा कि अर्जुन के अप्रतिम रणकौशल के कारण मैं युधिष्ठिर को बन्दी नहीं बना सका। कल यदि कोई अर्जुन को अन्यत्र लेजाकर युद्ध में उलझा ले तो मैं युधिष्ठिर को अवश्य बन्दी बना लूंगा। द्रोणाचार्य की बात सुनकर त्रिगर्त नरेश सुशर्मा ने कहा, "यह कार्य कल मैं करूँगा। मुझे उससे अपने अपमान का बदला लेना है। इसलिए मैं ललकार कर अर्जुन को युद्ध करने के लिए अन्यत्र ले जाऊँगा और अपने पराक्रम से उसका वध कर डालूँगा। इधर आप धर्मराज को बन्दी बना लेना। मेरे भाई सत्यवर्मा, सत्यरथ, सत्यव्रत, सत्येषु तथा सत्यकर्मा इस अभियान में मेरे सहायक होंगे।" सुशर्मा का समर्थन करते हुए मावेल्लक, ललित्थ, मद्रकगण, मालव, तुण्डिकेरगण आदि जनपदों के दस हजार रथियों ने भी सुशर्मा को अपना सहयोग

देने का आश्वासन दिया। जब अर्जुन ने सुशर्मा की प्रतिज्ञा का समाचार सुना तो उन्होंने युधिष्ठिर से कहा, "महाराज! युद्ध के लिए ललकारे जाने पर मैं अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार सुशर्मा और उसके सहयोगियों के साथ अवश्य युद्ध करूँगा किन्तु फिर भी द्रोणाचार्य आपको बन्दी बनाने की अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं कर सकेंगे। मैं आपकी रक्षा का भार सत्यजित को सौंपकर जाऊँगा। उनकी वीरता और युद्ध कौशल को देखते हुए कोई आपकी ओर आँख उठाकर देखने का साहस भी न कर सकेगा।" यह कहकर और युधिष्ठिर का आशीर्वाद प्राप्त कर अगले दिन प्रातः अर्जुन सुशर्मा से युद्ध करने के लिए जा पहुँचे।

दोनों ओर से भयानक युद्ध होने लगा। सुशर्मा और उसके साथियों ने श्रीकृष्ण और अर्जुन को अपने बाणों से पाट दिया। अर्जुन ने इन बाणों का निवारण कर एक बाण से सुधन्वा का सिर काट डाला और सुशर्मा को घायल कर दिया। यह दशा देख त्रिगर्त सेना भागने लगी। सुशर्मा ने अपने ओजस्वी शब्दों से योद्धाओं को फिर लड़ने के लिए प्रेरित किया। जब उसकी सेना ने अर्जुन के रथ को चारों ओर से घेरकर तीक्ष्ण बाण बरसाने आरम्भ किए तो अर्जुन ने त्वाष्ट्र अस्त्र छोड़ा जिससे शत्रुओं को वहाँ सहस्रों अर्जुन दिखाई देने लगे। उन्हें अपने पक्ष के योद्धा भी अर्जुन दिखाई देते थे। इसलिए वे अपने साथियों को ही अर्जुन समझकर संहार करने लगे।

इधर द्रोणाचार्य गरुण व्यूह की रचना कर युधिष्ठिर द्वारा निर्मित अर्ध चक्राकार व्यूह को तोड़ने के लिए बढ़े, किन्तु व्यूह के प्रमुख रक्षक धृष्टद्युम्न ने उन्हें अपने तीव्र बाणों

को वर्षा से विमुख कर दिया। अवसर पाकर द्रोण ने सम्मोहन बाण छोड़कर पाण्डव सेना को सम्मोहित कर दिया और युधिष्ठिर के सम्मुख जा पहुँचे। उसी समय सत्यजित ने आचार्य के सम्मुख आकर उन्हें घायल कर दिया और उनके सारथि को मूर्च्छित कर दिया। फिर उनके घोड़ों को घायल कर रथ की ध्वजा काट डाली। आचार्य ने रुष्ट होकर सत्यजित का धनुष काट डाला। धनुष कटते ही सत्यजित ने दूसरा धनुष उठाकर उस पर तीन तीक्ष्ण बाण चढ़ाकर द्रोण को वेध दिया। उसी समय पांचाल वृक ने द्रोण पर बाणों की वर्षा कर दी, किन्तु द्रोण के एक तीर ने वृक का मस्तक काट दिया। वृक के मरने से उत्साहित हो सत्यजित पर निरन्तर बाणों की वर्षा कर द्रोण ने उनके रथ के घोड़ों और सारथि को ही नहीं मार डाला अपितु सत्यजित का भी मस्तक काट डाला। यह देख धर्मराज भयभीत हो द्रोण के सामने से अपना रथ भगाकर ले गये। सत्यजित् के मरने पर पांचाल, मत्स्य, कैकेय, चेदि, करुष और कौशल देश के पराक्रमी योद्धा एकत्रित होकर युधिष्ठिर और द्रोण के रथों के बीच में आकर द्रोण से युद्ध करने लगे। कौरव सेना भी आचार्य की रक्षा के लिये एकत्रित हो गई। पाण्डव वीरों द्वारा उपस्थित किये गये व्याघात से क्रोधित होकर द्रोणाचार्य ने दृढ़सेन, पांचाल्य वसुदान, क्षत्रदेव तथा राजा क्षेम को मौत के घाट उतार दिया। द्रोण के भयानक युद्ध को देखकर पाण्डव सेना के लगभग सभी अद्भुत पराक्रमी महारथियों ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया और उन्हें मार डालने का प्रयत्न करने लगे किन्तु उनके अभूतपूर्व रणकौशल के आगे किसी की

एक न चली। जब अंगराज द्रोण की रक्षा के लिए आगे बढ़े तो भीमसेन ने एक बाण से उनके हाथी को धराशायी कर दिया और दूसरे से अंगराज का सिर काट डाला। यह देख कौरव सेना भाग खड़ी हुई और भागते हुए हाथी-घोड़े अपने ही सैनिकों को कुचलने लगे। सैनिकों को इस प्रकार पलायन करते देख भगदत्त भीमसेन से युद्ध करने के लिए आगे बढ़े। उनके हाथी ने भीमसेन के रथ को घोड़ों सहित नष्ट कर दिया। भीमसेन अंजलिका वेध विद्या के ज्ञाता थे। इसलिए रथहीन हो जाने पर वे उस हाथी के पेट के नीचे छिप गए और उसे अपने मुक्कों से पीड़ित करने लगे। हाथी उन्हें पकड़ने के लिए चक्कर काटने लगा। भीम के हाथी के नीचे छिप जाने से पाण्डव सेना उन्हें मरा हुआ जान कोलाहल मचाने लगी। इससे दुःखी हो युधिष्ठिर धृष्टद्युम्न को लेकर भगदत्त के सम्मुख पहुँचे और उन्होंने भगदत्त पर भीषण बाणों की वर्षा की। उसी समय एक अन्य रथ पर बैठ भीमसेन भी उनके सामने पहुँच गये। किन्तु भगदत्त ने अपने अद्‌भुत पराक्रम से पाण्डव सेना में हलचल मचा दी।

जब अर्जुन को पाण्डव सेना के भागने का समान्वार मिला तो वे तत्काल सुशर्मा आदि को सम्मोहित और मूर्च्छित कर प्राग्ज्योतिषपुर नरेश भगदत्त के सम्मुख चले। अभी वे वहाँ तक पहुँचे भी नहीं थे कि सुशर्मा ने चैतन्य होकर अर्जुन को फिर ललकारा। श्रीकृष्ण ने तत्काल अर्जुन का रथ सुशर्मा की ओर मोड़ दिया। अर्जुन ने क्रोधित हो सुशर्मा को घायल करके उसके धनुष को काट डाला और उसके घोड़ों, सारथि तथा

भाई को मार डाला। फिर उसे बाणों की मार से मूर्च्छित कर वे भगदत्त के पास जा पहुँचे। अर्जुन को आता देख उन्होंने एक साथ अर्जुन पर अनेक तीक्ष्ण बाण छोड़े। जब अर्जुन ने उन सबको नष्ट कर दिया तो भगदत्त ने क्रुद्ध होकर अर्जुन के हृदय को लक्ष्य बना अमोघ वैष्णव अस्त्र छोड़ा। उस अस्त्र से अर्जुन की मृत्यु निश्चित जान श्रीकृष्ण ने आगे बढ़कर अमोघ अस्त्र को अपनी छाती पर रोक लिया जो वैजयन्ती माला के रूप में उनके वक्षस्थल पर सदा के लिए स्थित हो गया। फिर अर्जुन ने भगदत्त के हाथी को मार गिराया। भगदत्त तब भी भीषण युद्ध कर रहे थे। यह देख श्रीकृष्ण बोले, "अर्जुन! वृद्धावस्था के कारण भगदत्त की पलकें नीचे लटक गई हैं जिन्हें उन्होंने पट्टी से बाँध रखा है। तुम एक बाण मारकर उनकी पट्टी फाड़ डालो जिससे उनकी पलकें नीचे झुक जायेंगी फिर उन्हें कुछ दिखाई नहीं देगा। तब वे पाण्डव सेना का संहार नहीं कर सकेंगे।" अर्जुन ने तत्काल एक बाण मारकर उनकी पट्टी फाड़ डाली। जब भगदत्त को दीखना बन्द हो गया तो उन्होंने अर्द्ध-चन्द्र बाण से उनका वक्षस्थल फाड़ डाला जिससे वे निष्प्राण होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उनके गिरते ही कौरव सेना में भगदड़ मच गई। अब शकुनि के भाई वृषक और अचल एक ही रथ पर सवार होकर अर्जुन पर वार करने लगे, परन्तु उन्होंने एक ही बाण से दोनों के प्राण हर लिये। शकुनि घायल होकर रणभूमि से भाग गया। फिर पाण्डव सेना ने 'द्रोण को मारो' 'द्रोण को मारो' कहते हुए द्रोणाचार्य को घेर लिया और 'द्रोणाचार्य की रक्षा करो', 'द्रोणाचार्य को

रक्षा करो' कहते हुए कौरव सेना ने उन्हें अपनी पंक्ति में ले लिया। इस युद्ध की भयानकता को देखकर गुरुजनों को देवासुर संग्राम का स्मरण हो आया। अश्वत्थामा ने महापराक्रमी नील का सिर काट डाला। इस दिन के युद्ध में दोनों ओर के असंख्य सेनानायक मारे गये। संध्या होते ही युद्ध समाप्त हो गया।

तीसरा अध्याय

अभिमन्यु द्वारा चक्रव्यूह भेदन तथा उसका वध

संजय बोले—हे राजेन्द्र! जब द्रोणाचार्य को प्रधान सेनापति बने दो दिन हो गये और वे अपनी प्रतिज्ञानुसार युधिष्ठिर को बन्दी न बना सके तो तीसरे दिन प्रातःकाल दुर्योधन ने क्षुब्ध होकर कहा, "आचार्य! आप प्रतिज्ञा करके भी युधिष्ठिर को बन्दी नहीं बना रहे हैं। इससे स्पष्ट है कि आपको अपनी प्रतिज्ञा से भी अधिक पाण्डवों से प्रेम है, अन्यथा यह कदापि सम्भव नहीं है कि आप युधिष्ठिर को पकड़ना चाहकर भी पकड़ न सकें। आप केवल दिखावे के लिये हमारी ओर से लड़ रहे हैं। आपका मन पाण्डवों के साथ है।" दुर्योधन के इस आक्षेप से रुष्ट होकर द्रोणाचार्य ने कहा, "तुम मेरे ऊपर मिथ्या लांछन लगा रहे हो। मैंने पहले ही कहा था कि अर्जुन के रहते युधिष्ठिर को नहीं पकड़ा जा सकता। आज मैं तुम्हारे सन्तोष के लिए भीषण प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज के युद्ध में कोई न कोई श्रेष्ठ पाण्डव अवश्य मारा जायेगा। मेरी यह प्रतिज्ञा अटल है। केवल तुम अर्जुन को अन्यत्र ले जाने का प्रबन्ध करो। आज मैं चक्रव्यूह की रचना करूँगा जिसका भेदन केवल अर्जुन कर सकता है और कोई नहीं।"

द्रोणाचार्य ने अपने कथनानुसार चक्रव्यूह की रचना की। संशप्तकगण दुर्योधन के निर्देशानुसार अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारते हुए युद्धभूमि के दक्षिण भाग की ओर ले गये। आचार्य ने चक्रव्यूह के अन्दर दुर्योधन, कर्ण, कृपाचार्य तथा दुःशासन को रखकर स्वयं जयद्रथ के साथ उसके मुखद्वार पर आकर पाण्डव सेना के साथ युद्ध करने लगे। जयद्रथ के दाहिनी ओर अश्वत्थामा के नेतृत्व में आपके तीस पुत्र नियुक्त हुए और बाईं ओर शकुनि, शल्य एवं भूरिश्रवा रहे। जब पाण्डव वीर भीमसेन के साथ द्रोणाचार्य से युद्ध करने के लिए बढ़े तो आचार्य ने भयंकर बाणों की वर्षा करके उन सबके पैर उखाड़ दिये। अपने वीरों को व्याकुल होते देख धर्मराज ने अपने भाइयों एवं श्रेष्ठ महारथियों से परामर्श किया कि "इस व्यूह का कैसे भेदन किया जाय। केवल अर्जुन इसे तोड़ सकते थे। वे अन्यत्र युद्ध कर रहे हैं। यदि यह व्यूह नहीं तोड़ा गया तो आज सम्पूर्ण पाण्डव सेना द्रोणाचार्य एवं कौरवों के हाथों मारी जायेगी।" यह सुनकर अभिमन्यु ने कहा, "यह चक्रव्यूह पूर्णतया दुर्भेद्य नहीं है। पिताजी ने मुझे इसके प्रवेश करने का उपाय बता दिया है, किन्तु बाहर निकलने का उपाय वे नहीं बता पाये हैं। यदि चक्रव्यूह में मैं किसी अप्रत्याशित संकट में फँस गया तो बाहर नहीं निकल सकूँगा, फिर भी मैं इसका भेदन करने को तैयार हूँ। मैं जाऊँगा और शत्रु सेना को अवश्य नष्ट करूँगा।" युधिष्ठिर बोले, "यदि तुम इसमें प्रवेश कर सकते हो तो हम लोग भी शत्रु सेना का संहार करते हुए तुम्हारे पीछे-पीछे अन्दर पहुँच जाएँगे और तुम्हें वहाँ

अकेला नहीं रहने देंगे।" यह सुनकर अभिमन्यु अपना रथ ले द्रोणाचार्य के सम्मुख पहुँच गया। सभी श्रेष्ठ पाण्डव योद्धा उसके पीछे थे। अभिमन्यु के सामने द्रोणाचार्य के अतिरिक्त दस हजार कौरव वीर युद्ध को तैयार थे। उसने इतनी भयंकर बाण वर्षा की कि एक बार तो द्रोण, कर्ण, कृपाचार्य तथाअन्य महारथी दहल गये। द्रोणाचार्य कृपाचार्य से बोले, "इस बालक के महापराक्रम को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि यह अकेला ही आज सम्पूर्ण कौरव सेना को नष्ट कर देगा।" आचार्य के वचनों से चिढ़कर दुर्योधन ने अन्य योद्धाओं से कहा, "आचार्य इस बालक के मोह में फँस गये हैं। इसलिए इसे नहीं मार रहे हैं। तुम सब मिलकर इसे मार डालो।" यह सुनते ही सब राजा एक साथ अभिमन्यु को मारने के लिए दौड़े। सबसे पहले दुःशासन ने उसके एक साथ छब्बीस बाण मारे। उनको नष्ट करके अभिमन्यु ने उसके वक्षस्थल पर ऐसा तीक्ष्ण बाण मारा कि वह मूर्च्छित होकर रथ पर गिर पड़ा। सारथि उसे तत्काल युद्धभूमि से बाहर ले गया। कर्ण ने अनेक तीक्ष्ण बाण मारकर अभिमन्यु को घायल कर दिया, परन्तु इसकी चिन्ता न कर वह निरन्तर बाण वर्षा से शत्रु के साहस को छिन्न-भिन्न करता रहा। कर्ण के छत्र तथा ध्वजा काटकर उसके रथ के सारथि और घोड़ों को मार गिराया तथा उसके धनुष को काट दिया। कर्ण की दुर्दशा देखकर पाण्डव सेना और अधिक उत्साह से लड़ने लगी। जब कर्ण के भाई ने अभिमन्यु के सारथि को घायल कर दिया तो उसने क्रोधित हो एक बाण से उसका सिर काट डाला। शेष कौरव सेना के भी पैर उखड़ गये।

चक्रव्यूह के एक भाग को पूर्णतया नष्ट करके अभिमन्यु अन्दर घुस गया। परन्तु जयद्रथ ने बड़ी तत्परता से उस नष्ट भाग को फिर यथावत् कर दिया और पाण्डव सेना को अपनी तीक्ष्ण बाण वर्षा से आगे नहीं बढ़ने दिया। इस प्रकार कोई पाण्डव योद्धा अभिमन्यु के साथ चक्रव्यूह में प्रवेश न पा सका। अतएव अभिमन्यु अकेला ही चक्रव्यूह के अन्दर कौरव सेना का विनाश करने लगा। इससे क्षुब्ध होकर बहुत से कौरव योद्धाओं ने उसे चारों ओर से घेर लिया, किन्तु अभिमन्यु फिर भी प्रलयंकार शंकर की भाँति विनाशकारी ताण्डव दिखाता रहा। ऐसा कोई कौरव वीर नहीं था जो उसके सम्मुख आकर घायल न हुआ हो। यह देख बहुत से कौरव योद्धा भय से काँपने लगे। उन्हें भयभीत देख दुर्योधन स्वयं अभिमन्यु से युद्ध करने के लिए बढ़े किन्तु उसके तीव्र बाणों से पीड़ित हो वे भी समरक्षेत्र से हट गये। दुर्योधन को परास्त होते देख उनका पुत्र लक्ष्मण अभिमन्यु को मारने के लिए झपटा, किन्तु उसने एक ही भल्ल बाण से लक्ष्मण का सिर धड़ से अलग कर दिया। इससे क्षुब्ध हो दुर्योधन ने जैसे भी हो, अभिमन्यु को मारने की आज्ञा दी। उनके निर्देशानुसार द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, वृहद्बल और कृतवर्मा—इन छः महारथियों ने उस अकेले बालक को चारों ओर से घेर लिया। अभिमन्यु की मार के आगे उनकी भी एक न चली। वृहद्बल स्वयं भी मारा गया। कर्ण का शरीर रक्त का फव्वारा बन गया। अभिमन्यु के भी शरीर के विभिन्न अंगों से रक्त की धाराएँ प्रवाहित हो रही थीं। घायल होते हुए भी अभिमन्यु ने मगधराज के पुत्र

अश्वकेतु, मार्तिकावतक भोज, दुःशासन के पुत्र, शत्रुंजय, चन्द्रकेतु, मेघवेग, सुवर्चस, सूर्यभास आदि को सीधा यमलोक भेज दिया। तब सब कौरव महारथियों ने अभिमन्यु पर आक्रमण करने के स्थान पर उसके धनुष, रथ, सारथि और घोड़ों को अपने बाणों का लक्ष्य बनाया। इस प्रकार साधन-विहीन हो जाने पर अभिमन्यु हाथ में तलवार और ढाल लेकर कौरव सेना को काटने लगा। द्रोणाचार्य ने अपने बाण से उसकी तलवार और कर्ण ने उसकी ढाल काट डाली। तब अभिमन्यु रथ का पहिया लेकर द्रोणाचार्य को मारने के लिए दौड़ा। जब राजाओं ने पहिये के टुकड़े कर दिए तो वह गदा लेकर अश्वत्थामा की ओर दौड़ा। अश्वत्थामा ने रथ से कूद कर अपने प्राण बचाये। उसी गदा से उसने सतहत्तर वीरों को मार डाला। फिर वसातीय तथा कैकेय देश के सतरह रथियों को मार गिराया। फिर दुःशासन के पुत्र के रथ व घोड़ों को उस सोलह वर्षीय बालक ने नष्ट कर दिया। रोष में भरकर दुःशासन का पुत्र गदा लेकर अभिमन्यु पर झपटा। दोनों में भयंकर युद्ध होने लगा। लड़ते-लड़ते दोनों अचेत हो गए। अभिमन्यु अभी पूर्णरूप से चैतन्य भी नहीं हुआ था कि छओं कौरव महारथी उस पर बाण वर्षा करने लगे। इसी बीच दुःशासन का पुत्र भी सचेत हो चुका था। उसने फिर मूर्च्छा से उठते हुए अभिमन्यु को देखा तो तत्काल उसके सिर पर गदा दे मारी जिसके फलस्वरूप उसका शरीर प्राणहीन होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। इस प्रकार अभिमन्यु छः महारथियों द्वारा अधर्मपूर्वक मारा गया। इस अधर्म को देखकर भगवान

सूर्य भी अस्ताचल की ओर जाकर छिप गए और उस दिन का युद्ध समाप्त हो गया।

चौथा अध्याय

अर्जुन द्वारा जयद्रथ वध की प्रतिज्ञा

संजय बोले—हे राजन् ! अपने शिविर में पहुँचकर युधिष्ठिर अभिमन्यु की मृत्यु पर शोकाकुल हो अश्रु बहाने लगे। अन्य पाण्डव भी दुःखी होकर उनके निकट बैठे थे। उसी समय वेदव्यासजी ने वहाँ पहुँचकर उन्हें धैर्य बँधाया। वे बोले, "धर्मराज ! मृत्यु तो शरीर का अवश्यंभावी अन्त है। सत्ययुग में राजा अकम्पन के अद्भुत वीर्यवान पुत्र हरि को भी अन्त में मृत्यु से परास्त होना पड़ा था। राजा सुंजय के परमपराक्रमी पुत्र सुवर्णष्ठीवी--जिनका मल-मूत्र भी नारदजी के वरदान से स्वर्णमय होता था--मृत्यु को प्राप्त हुए थे। अत्यन्त दुर्द्धर्ष महाप्रतापी राजा सुहोत्र--भी जिनको ओर देवता भी दृष्टि उठाकर नहीं देख सकते थे--सदा जीवित नहीं रहे। दशरथ के पुत्र महात्मा रामचन्द्रजी को भी एक दिन यह संसार छोड़ना पड़ा था। ऐसी स्थिति में तुम्हें अद्भुत पराक्रमी, अद्वितीय वीर अभिमन्यु की मृत्यु पर शोक करना उचित नहीं है।" इस प्रकार भाँति-भाँति से युधिष्ठिर को सान्त्वना देकर वेदव्यासजी ने वहाँ से प्रस्थान किया।

जब संशप्तक सेना का संहार करके अर्जुन श्रीकृष्ण सहित अपने शिविर में लौटे और वहाँ चारों ओर उदासी का वातावरण देखा तो उनका माथा ठनका। अत्यन्त दुःखी होकर और विलाप करते हुए धर्मराज ने उन्हें बताया कि अभिमन्यु ने

किस प्रकार चक्रव्यूह में प्रवेश करके भीषण शत्रु संहार किया था, शंकर के वरदान के कारण किसी भी पाण्डव योद्धा को जयद्रथ ने अभिमन्यु के साथ नहीं जाने दिया था और किस प्रकार छः महारथियों ने मिलकर अकेले अभिमन्यु की हत्या की थी। अपने वीर पुत्र की मृत्यु का वृत्तान्त सुनकर अर्जुन थोड़ी देर तक शोकविह्वल रहे, फिर क्रोध से दाँत पीसते हुए बोले, "तुम लोग जयद्रथ के कारण चक्रव्यूह में प्रवेश नहीं कर सके जिसके फलस्वरूप अभिमन्यु मारा गया। इसलिए मैं तुम्हारे सम्मुख प्रतिज्ञा करता हूँ कि कल सूर्यास्त होने से पहले मैं अवश्य जयद्रथ का वध करूँगा और यदि उसे न मार सका तो मैं जीवित ही अग्नि में प्रवेश करके मर जाऊँगा।"

जयद्रथ अर्जुन की प्रतिज्ञा सुनकर अत्यन्त भयभीत हुआ राजा दुर्योधन के पास पहुँचा और कहने लगा, "राजाओ आप सब लोग मिलकर मेरे प्राणों की रक्षा का वचन दें या मुझे अपने देश को लौट जाने दें।" दुर्योधन ने उसे समझा बुझाकर शांत किया और द्रोणाचार्य के पास ले जाकर कहा, कि आपको इनके प्राणों की रक्षा करनी है। उसे धैर्य बँधाते हुए द्रोणाचार्य ने कहा, "जयद्रथ! तुम निर्भय रहो। मेरे द्वारा रक्षित व्यक्ति का देवता भी बाल बाँका नहीं कर सकते। कल मैं ऐसे व्यूह की रचना करूँगा जिसे अर्जुन भी नहीं भेद सकते।" द्रोण के इस आश्वासन से जयद्रथ का भय जाता रहा।

उधर श्रीकृष्ण अर्जुन से बोले, "अर्जुन! तुमने मेरी सम्मति लिए बिना ही यह प्रतिज्ञा करके उचित नहीं किया। मुझे ज्ञात हुआ है कि आचार्य एक ऐसे व्यूह की रचना करने

वाले हैं जिसे भेदकर तुम कदापि जयद्रथ तक नहीं पहुँच सकोगे। इस व्यूह के दो भाग होंगे। यह आगे शकटाकार होगा और पीछे पद्माकार। पद्म के मध्य में सूची मुख नामक व्यूह होगा। उसी के पिछले भाग में जयद्रथ रहेगा। छः महारथी उस व्यूह के अग्रभाग की रक्षा करेंगे। सम्मिलित रूप से युद्ध करते समय ये महारथी परास्त नहीं किये जा सकते।" अर्जुन बोले, "हे मधुसूदन! कर्ण, भूरिश्रवा, अश्वत्थामा, वृषसेन, कृपाचार्य तथा शल्य मिलकर भी कल मुझसे जीत नहीं सकेंगे। हे माधव! जब दिव्य गांडीव और तुम स्वयं मेरे सहायक हो तब मुझसे अजेय कौन है? अब आप मेरी और जयद्रथ की चिन्ता छोड़कर सुभद्रा और उत्तरा को धैर्य बँधाने का प्रयत्न करें।" वहाँ से चलकर श्रीकृष्ण ने सुभद्रा और उत्तरा के पास जाकर अभिमन्यु के चमत्कारपूर्ण युद्ध का वर्णन करते हुए उन्हें नाना प्रकार से सान्त्वना देकर धीरज धारण करने के लिए कहा।

श्रीकृष्ण के चले जाने के पश्चात् अर्जुन ने एकाग्रचित्त होकर महादेव शंकर की आराधना की। फिर वे जयद्रथ वध की योजना पर विचार करते करते सो गए। उन्होंने स्वप्न में देखा कि श्रीकृष्ण उनसे कह रहे हैं, "हे अर्जुन! जयद्रथ को मारने के लिए शंकर द्वारा दिये गये पाशुपत अस्त्र का उपयोग करना। जयद्रथ उसी से मारा जायेगा।" दूसरे दिन प्रातःकाल श्रीकृष्ण ने द्रोणाचार्य द्वारा बनाए गए विचित्र व्यूह का पूरा वर्णन करते हुए अर्जुन से कहा, "वीरवर! यह शकटपद्म नामक महा व्यूह चौबीस कोस लम्बा और पीछे दस कोस चौड़ा है।

पद्मव्यूह के अन्दर स्थित गुप्त एवं दुर्भेद्य सूचीमुख व्यूह में छः महारथियों सहित एक लाख घोड़े, साठ हजार रथ, चौदह हजार हाथी और इक्कीस हजार सुसज्जित पैदल सैनिक जयद्रथ की रक्षा के लिए सन्नद्ध हैं। स्वयं जयद्रथ के साथ तीन हजार योद्धा तथा सात हजार पराक्रमी अश्वारोही हैं। सूचीमुख के द्वार पर काम्बोज, कृतवर्मा, जलसंध, दुर्योधन और कर्ण हैं। इस महाव्यूह के मुख द्वार पर एक लाख सैनिकों के साथ स्वयं द्रोण विद्यमान हैं। जयद्रथ के छिपने का स्थान आचार्य से छः कोस दूर है। द्रोणाचार्य से आगे लगभग एक कोस की दूरी पर दुर्योधन का पुत्र दुर्मर्षण तुम्हारा मार्ग रोकने के लिए दल बल सहित खड़ा है। तुम्हें सबसे पहले उसका और उसके एक सहस्र रथ, एकसौ हाथियों, तीन सहस्र अश्वारोहियों और दस सहस्र पैदल सैनिकों का सामना करना पड़ेगा।"

अर्जुन के कहने पर श्रीकृष्ण उनका रथ दुर्मर्षण के सामने ले गए और दोनों ओर से घमासान युद्ध आरम्भ हो गया। अर्जुन के बाणों ने कौरव सेना के इस भाग को शीघ्र ही छिन्न भिन्न कर दिया। अपनी सेना की दुर्दशा देखकर दुःशासन ने अपने सैनिकों के साथ उन्हें चारों ओर से घेर लिया। परन्तु उन्होंने प्रलयंकारी शिव की भाँति दुःशासन की सेना का संहार कर डाला। बचे हुए सैनिकों के साथ दुःशासन ने व्यूह के अन्दर भागकर शरण ली। अब अर्जुन के सामने आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त हो गया और वे द्रोणाचार्य के सम्मुख हाथ जोड़कर बोले, "आचार्य! आप मेरे पिता के तुल्य हैं। आप मुझे आशीर्वाद दें कि मैं इस व्यूह में प्रवेश करके जयद्रथ को मार

कर अभिमन्यु की हत्या का प्रतिशोध ले सकूँ।" यह सुनकर द्रोणाचार्य ने मुस्कराते हुए कहा, "अर्जुन! तुम मुझे परास्त किए बिना जयद्रथ को नहीं मार सकते।" ऐसा कहकर उन्होंने उसके रथ को बाणों से ढक दिया। उसने भी पहले नौ बाण द्रोण के चरणों में मारकर उन्हें प्रणाम किया, फिर वे अपने बाणों से उन्हें पीड़ित करने लगे। दोनों भयानक संग्राम करने लगे। आचार्य ने एक नाराच बाण अर्जुन की छाती में मारा जिससे व्यथित हो उन्होंने एक साथ कई बाण मारकर द्रोणाचार्य को घायल कर दिया। फिर एक ही साथ असंख्य बाण छोड़कर उन्होंने कौरव सेना के असंख्य योद्धा, हाथी एवं घोड़े मार डाले। इससे रुष्ट हो गुरु द्रोण ने श्रीकृष्ण और अर्जुन को घायल करके उनके रथ की ध्वजा काट डाली। यह देखकर श्रीकृष्ण बोले, "अर्जुन! तुम आचार्य को परास्त नहीं कर सकोगे। इसलिए उनके साथ युद्ध करके समय नष्ट मत करो।" यह कहकर उन्होंने रथ को आचार्य के दाहिनी ओर घुमाकर आगे बढ़ा दिया। अर्जुन को इस प्रकार बढ़ते देख द्रोण बोले, "अर्जुन! तुम तो कभी शत्रु को जीते बिना उसके सामने से हटते नहीं हो। आज क्या बात है?" अर्जुन बोले, "आपका कहना यथार्थ है आचार्य! परन्तु आप तो मेरे गुरुदेव हैं, शत्रु कहाँ हैं।" ऐसा कहते हुए अर्जुन आगे बढ़ गये। शत्रु सेना का निर्ममता से विनाश करते हुए वे कृतवर्मा के सम्मुख पहुँचे। भीषण युद्ध के पश्चात् उन्हें मूर्च्छित कर श्रुतायुध से जा भिड़े। श्रुतायुध को युद्ध में अजेय होने का वरुण से वर प्राप्त था। उन्होंने श्रुतायुध को एक दिव्य गदा देते हुए कहा था, इस गदा

की मार से कोई नहीं बच सकेगा, किन्तु यदि तुमने इसका प्रहार ऐसे व्यक्ति पर किया जो युद्ध नहीं कर रहा होगा तो वह उलट कर तुम्हारे ही ऊपर आ गिरेगा। जिस समय अर्जुन ने श्रुतायुध के सारथि को मार डाला तो उसने क्रोध में भरकर उस गदा का प्रहार श्रीकृष्ण पर किया। श्रीकृष्ण ने उस प्रहार को अपने कन्धे पर सह लिया, किन्तु उस गदा ने पलटकर श्रुतायुध को चूर-चूर कर दिया। श्रुतायुध की मृत्यु से कौरव सेना में हाहाकार मच गया। तभी कम्बोज नरेश सुदक्षिण भी अर्जुन के हाथों मारे गये। फिर श्रुतायु, अच्युतायु, नियतायु, दीर्घायु भी यमलोक सिधार गये।

अर्जुन द्वारा यह भीषण नरसंहार देख दुर्योधन ने द्रोणाचार्य के पास जाकर कहा, "आचार्य! यदि अर्जुन को मारने का तत्काल उपाय नहीं किया गया तो जयद्रथ के प्राणों की रक्षा नहीं हो सकेगी।" द्रोणाचार्य बोले, "दुर्योधन! अब मैं वृद्ध हो चुका हूँ। मुझमें अब पहले जैसी स्फूर्ति नहीं रह गई गई है। अर्जुन व्यूह में घुस चुका है। इस समय युधिष्ठिर अकेला मेरे सामने है। मैं उसे जीवित पकड़ने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। इसलिए मैं पहले वह प्रतिज्ञा पूरी करना चाहता हूँ। हाँ, मैं तुम्हारी रक्षा के लिये तुम्हें इन्द्र का यह कवच पहनाता हूँ। इसे कोई अस्त्र नहीं काट सकता। इसे पहनकर तुम निर्भय होकर युद्ध करो।" दुर्योधन को विदा कर द्रोण युधिष्ठिर की ओर बढ़े। उनका मार्ग धृष्टद्युम्न ने रोका। और फिर दोनों में घमासान युद्ध होने लगा। द्रोण जिस ओर बढ़कर पाण्डव सेना का विनाश करना चाहते थे उसी ओर धृष्टद्युम्न आगे

बढ़कर उनका मार्ग रोक देते। एक बार तो उन्होंने द्रोणाचार्य की सेना को अपने आक्रमणों से तीन भागों में विभक्त कर दिया। एक भाग कृतवर्मा के पास रह गया तो दूसरा जलसंध के और तीसरा द्रोणाचार्य के साथ रह गया। उन्होंने तीनों भागों को एकत्रित करने का बहुत प्रयत्न किया किन्तु धृष्टद्युम्न के रणकौशल के आगे उनकी एक न चली। उन्होंने द्रोणाचार्य को मारने के लिए अपना रथ द्रोणाचार्य के रथ से भिड़ा दिया और ढाल-तलवार लेकर आचार्य के रथ पर चढ़ गए। आचार्य अपने बचाव में इतने व्यस्त हो गये कि वे उन पर आक्रमण न कर सके। अन्त में अपने उद्देश्य में सफल न होकर धृष्टद्युम्न पुनः अपने रथ पर लौट आये। इसी बीच सात्यकि आकर द्रोणाचार्य से भिड़ गये। दोनों ही अपना अनुपम रणकौशल प्रदर्शित करने लगे। सहसा सात्यकि ने द्रोण का धनुष काट डाला। जब उन्होंने दूसरा धनुष लिया तो उसे भी सात्यकि ने काट डाला। इस प्रकार उनके सौ धनुष काट डाले गये। इससे रुष्ट होकर वे दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करने लगे। सात्यकि ने तत्काल अपने दिव्य अस्त्रों से उनका भी निवारण कर दिया। तब क्रोधित होकर उन्होंने आग्नेय अस्त्र का प्रयोग किया। सात्यकि ने वरुणास्त्र से उसे भी व्यर्थ कर दिया।

उधर जयद्रथ के निकट पहुँचने के लिए अर्जुन निरन्तर कौरव सेना का संहार करते हुए आगे बढ़ रहे थे। उनका मार्ग रोकने के लिये जब अवन्ति देश के विन्द और अनुविन्द आगे आये तो उन्होंने विन्द का सिर काट डाला और अनुविन्द के सारथि तथा घोड़ों को मार कर उसे भी घायल कर दिया।

जब अनुविन्द ने गदा फेंककर श्रीकृष्ण के मारी तो अर्जुन ने उसे भी मौत के घाट उतार दिया। उस समय कौरव सेना का साहस भंग हो गया। तब अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा, "हे माधव! मेरे घोड़े इस समय बाणों से पीड़ित तथा थके हुए प्रतीत हो रहे हैं। अभी जयद्रथ बहुत दूर है अतः आप इन्हें खोलकर राहत पहुँचाएँ।" श्रीकृष्ण बोले--"पार्थ! तुम्हारी बात समयोचित है किन्तु यहाँ घोड़ों को पीने के लिए जल उपलब्ध नहीं है।" 'यह रहा उत्तम जल'--ऐसा कहते हुए अर्जुन रथ से उतर पड़े और उत्तम बाणों को पृथ्वी पर मारकर एक अद्भुत जलाशय निर्मित कर दिया। साथ ही चहुँ ओर से बाण वर्षा करके शत्रु सेना को निकट नहीं आने दिया। तब श्रीकृष्ण ने घोड़ों को रथ से खोलकर उनके बाण निकाल चिकित्सा की और टहलाकर नहलाया, दाना खिलाया तथा पानी पिलाया।

इस प्रकार तैयार होकर नए उत्साह से अर्जुन और श्रीकृष्ण रथ पर चढ़ बड़े वेग से आगे बढ़े। तभी आचार्य द्वारा दिया हुआ कवच पहनकर दुर्योधन अर्जुन से लड़ने के लिए आ पहुँचे। उन्होंने अर्जुन और श्रीकृष्ण पर भयानक बाणों की वर्षा कर दी। अर्जुन ने उन बाणों को नष्ट कर दिया किन्तु अमोघ कवच के कारण वे दुर्योधन का कुछ न बिगाड़ सके। फिर भी उन्होंने उनके रथ, घोड़ों और सारथि को अपने बाणों से नष्ट कर दिया। फिर वे दुर्योधन के हाथ और अँगुलियों को घायल करने लगे। इससे व्यथित होकर दुर्योधन रणभूमि से अन्यत्र चले गए।

द्रोणाचार्य जब युधिष्ठिर के सम्मुख पहुँचे तो दोनों में

भीषण संग्राम होने लगा। दोनों ही साधारण अस्त्र-शस्त्र छोड़ कर दिव्यास्त्रों के प्रयोग पर उतर आए। जब धर्मराज के रथ, सारथि और धनुष नष्ट हो गए तो वे सहदेव के रथ पर सवार हो गये। सहदेव उन्हें आचार्य के सामने से हटा ले गए। वीर धृष्टकेतु ने द्रोणाचार्य पर अनेक तीक्ष्ण वार किये। जिनसे वे व्यथित हो गये। आचार्य को संकट में देख वीर धन्वा उनकी सहायता के लिए बढ़े। उन्होंने एक तीक्ष्ण बाण से धृष्टकेतु का धनुष काट दिया। धनुष कटते ही उन्होंने लोहे की एक भयानक शक्ति वीर धन्वा के वक्षस्थल पर फेंक कर मारी जिससे उनका हृदय फट गया और वे पृथ्वी पर गिरकर मर गये। सात्यकि ने मगध के राजकुमार व्याघ्रदत्त को यमलोक का मार्ग दिखाया। इससे रुष्ट होकर कौरव सेना उन्हें चारों ओर से घेरकर मारने का प्रयत्न करने लगी किन्तु महावीर सात्यकि ने उनकी इच्छा पूरी न होने दी। द्रोणाचार्य कौरव सेना का विनाश असहाय की भाँति देखने लगे। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि सात्यकि को किस प्रकार रोका जाय। तभी युधिष्ठिर ने आकर कहा, "वीर सात्यकि! इस समय गाण्डीव की टंकार का स्वर सुनाई नहीं पड़ रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारे गुरु और मित्र अर्जुन इस समय किसी संकट में घिर गये हैं। तुम्हें उनकी सहायता के लिए तत्काल पहुँचना चाहिए। युधिष्ठिर का निर्देश मिलते ही वे अर्जुन की खोज में कौरव सेना में घुस गये। उनका मार्ग रोककर जलसंध ने सात्यकि की छाती पर अनेक बाण मारे जिनकी चिन्ता न करते हुए उन्होंने जलसंध की दोनों भुजाएँ

तथा मस्तक काट डाला। जलसंध की मृत्यु से कौरव सेना के साहस को भारी धक्का लगा। इसी समय दुःशासन ने आकर सात्यकि पर वार किया, किन्तु सात्यकि ने उस वार को निष्फल कर दिया। तब त्रिगर्त सेनापति उसे अपने रथ पर बिठाकर अन्यत्र ले गया।

अपराह्न में द्रोणाचार्य का सोमकों के साथ फिर भयानक युद्ध हुआ। कैकय वीर वृहत्क्षत्र उनका सामना करने के लिए आये और उन्होंने अनेक बाण मारकर द्रोणाचार्य के शरीर को क्षत-विक्षत कर दिया। इसके उत्तर में उन्होंने वृहत्क्षत्र के रथ के चारों घोड़ों को मार डाला और सारथि को मारकर नीचे गिरा दिया। अगले बाण से उन्होंने वृहत्क्षत्र को भी यमलोक भेज दिया। वृहत्क्षत्र के मरते ही चेदिराज धृष्टकेतु द्रोणाचार्य को मारने के लिए दौड़े। धृष्टकेतु को अपनी ओर आता देख उन्होंने एक साथ अनेक तीक्ष्ण बाण छोड़े जिन्होंने धृष्टकेतु का कवच तोड़, हृदय फाड़ उनके प्राणों का हरण कर लिया। जब चेदिराज के मरने पर उनके पुत्र ने द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया तो उन्होंने हँसते हुए उसे भी एक बाण से अपने पिता के पास यमलोक भेज दिया। पाण्डव पक्ष के वीरों को इस प्रकार धराशायी होते देख जरासंध का पुत्र सहदेव द्रोणाचार्य को मारने के लिये बाणों की वर्षा करने लगा तो उन्होंने उसे भी मृत्यु के घाट उतार दिया। इस प्रकार अनेक वीर उनके सम्मुख आ-आकर मृत्यु को प्राप्त होते गये। उस समय श्वेत केशधारी द्रोणाचार्य एक नवयुवक की भाँति अपने पराक्रम से सबको स्तब्ध कर रहे थे।

पाँचवाँ अध्याय

अर्जुन और सात्यकि की खोज में युधिष्ठिर का भीमसेन को भेजना, धृतराष्ट्र के पुत्रों एवं भूरिश्रवा का वध

संजय बोले--हे राजन्! जिस समय यह लोमहर्षक युद्ध चल रहा था, उससमय अर्जुन और सात्यकि का कोई समाचार न पाकर युधिष्ठिर अत्यधिक चिंतित हो रहे थे। वे सोचने लगे, मैंने ही सात्यकि को अर्जुन की सेवा में भेजकर उन्हें किसी संकट में फँसा दिया है। अब उन दोनों की कुशल की सूचना पाने के लिये मैं किसे भेजूं? इस कार्य के लिए किसी साधारण योद्धा से काम नहीं चलेगा। यह सोचकर उन्होंने भीमसेन के पास आकर कहा, "भैया! इस समय श्रीकृष्ण के पांचजन्य शंख की जैसी ध्वनि सुनाई दे रही है, उससे प्रतीत होता है कि अर्जुन युद्ध में मारे गए हैं और श्रीकृष्ण युद्ध करते हुए क्रोधपूर्वक शंख बजा रहे हैं। इस समय मैं अर्जुन और सात्यकि के लिए अत्यन्त चिन्तित और दुःखी हो रहा हूँ। मेरा संशय निरन्तर बढ़ता जा रहा है। जहाँ वे दोनों युद्ध करने गये हैं वहाँ का कुशल समाचार लाकर केवल तुम ही मेरी चिन्ता को दूर कर सकते हो। शीघ्र जाकर उन दोनों की खोज करो, किन्तु अर्जुन से पहले सात्यकि की खोज करना। वे मेरी ही इच्छा से अर्जुन की खोज में गये थे।"

भीमसेन बोले, "महाराज! जब अर्जुन के साथ श्रीकृष्ण हैं तो किसी प्रकार का भय हो ही नहीं सकता। फिर भी मैं आपकी आज्ञा मानकर जा रहा हूँ और उन दोनों वीरों के कुशल क्षेम की सूचना आपको दूंगा।" यह कहकर भीमसेन

धृष्टद्युम्न के हाथों में युधिष्ठिर की रक्षा का भार सौंप उस ओर चले जिस ओर अर्जुन गए थे। पांचाल एवं सोमक वीरों ने भी उनका अनुसरण किया। उनके चलते ही आपके पुत्रों ने उन्हें घेरकर उन पर आक्रमण कर दिया। परन्तु भीमसेन उन सबको लाँघ द्रोणाचार्य की सेना पर टूट पड़े। उन्हें देख आचार्य बोले, "भीमसेन! तुम मुझे परास्त किये बिना कौरव सेना में प्रवेश नहीं कर सकते। अर्जुन भी मेरी अनुमति से सेना में प्रविष्ट हुए थे।" भीम ने क्रोधित होकर उत्तर दिया, "आचार्य! अर्जुन को कहीं जाने के लिए किसी की अनुमति की आवश्यकता नहीं है। वे अजेय हैं। उन्होंने आपकी पूजा करके अवश्य आपको सम्मानित किया होगा, परन्तु मैं दयालु अर्जुन नहीं हूँ। मैं आपका शत्रु भीमसेन हूँ। हम आपको पिता तुल्य मानते हैं, परन्तु आज आपके मुख से जो वचन निकले हैं, उनसे शत्रुता का भाव प्रकट होता है।" यह कहकर भीमसेन ने गदा घुमाकर आचार्य की ओर फेंकी। वे उसी क्षण रथ से कूद पड़े, परन्तु उस गदा ने उनके रथ, सारथि और घोड़ों को चूर चूर कर दिया। आचार्य तत्काल एक अन्य रथ पर चढ़ गये। तब भीमसेन ने रथ सेना पर बाण वर्षा आरम्भ कर दी। क्रोधित होकर दु:शासन ने भीमसेन को मारने के लिए लोहे की गदा फेंकी जिसे भीमसेन ने अद्भुत कौशल से दो टुकड़े कर दिए। फिर उन्होंने आपके चार पुत्रों कुण्डभेदी, सुषेण, दीर्घलोचन और वृन्दारक को मार डाला। इन चार राजकुमारों को मारकर भी उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने फिर चार बाण मारकर अभय, रौद्रकर्मा, दुर्विमोचन तथा

सुवर्मा नामक आपके पुत्रों के भी प्राण हर लिए। विन्द और अनुविन्द भी उनके हाथों से मारे गए। आपका पुत्र सुदर्शन भी उनके हाथों से नहीं बच सका। जब द्रोणाचार्य फिर उनके सम्मुख आए तो भीमसेन ने अपने दोनों हाथों से उनके रथ को झकझोर कर दूर फेंक दिया। द्रोण उस रथ से कूदकर एक अन्य रथ पर जा चढ़े और व्यूह के द्वार पर पहुँच गये। इस प्रकार भीमसेन ने एक-एक कर आठ रथ उठाकर फेंक दिए। फिर शत्रुओं का विनाश करते हुए वहाँ पहुँचे जहाँ सात्यकि युद्ध कर रहे थे। सात्यकि को देखकर उन्हें सन्तोष हुआ। अब उनकी दृष्टि अर्जुन को खोजने लगी। उन्होंने देखा, वे सिन्धुराज से युद्ध कर रहे थे। उन्हें देखकर भीम ने बड़े उच्च स्वर में आह्लादपूर्वक सिंहनाद किया जिसे सुनकर युधिष्ठिर को ज्ञात हो गया कि सात्यकि और अर्जुन सकुशल हैं।

जब भीमसेन इस प्रकार गर्जना कर रहे थे। तब कर्ण ने आकर उन पर भारी आक्रमण किया। भीमसेन ने उसके आक्रमण को विफल करके उसका धनुष काट दिया, फिर सारथि और घोड़ों को मार गिराया। कर्ण ने वृषसेन के रथ पर शरण ली। तब दुर्योधन की आज्ञा से छोटा भाई दुर्जय भीम के सम्मुख आया। भीमसेन ने शीघ्र ही उसे यमलोक भेज दिया। कर्ण पुनः युद्ध करने उसके सामने पहुँचा। भीम ने उन्हें फिर पराजित किया। तब तुम्हारे अनेक पुत्रों ने बड़े वेग से भीमसेन पर आक्रमण किया। तब भोसेमन ने एक-एक करके दुर्मख, दुर्मर्षण, दुर्मद, दुर्धर, जय, चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, चित्रायुध, चित्रवर्मा को मार गिराया। फिर शत्रुंजय

शत्रुसह, दृढ़, चित्रसेन, विकर्ण आदि तुम्हारे पुत्रों को यमलोक भेज दिया। इस प्रकार आज तुम्हारे इकतीस पुत्र भीमसेन के हाथों मारे गये। यह देखकर कर्ण क्रुद्ध हुआ भीम पर टूट पड़ा। उसने भीमसेन का धनुष काटकर रथ, घोड़े व सारथि को भी नष्ट कर दिया। तब गदा लेकर भीम कर्ण की ओर दौड़े। कर्ण ने उस गदा को भी काट गिराया। तब भीम न अर्जुन द्वारा मारे गए हाथियों के बीच खड़े होकर उन मरे हुए हाथी, घोड़े, रथ के टुकड़े आदि कर्ण के ऊपर फेंके। कर्ण ने उन प्रहारों को भी नष्ट कर भीमसेन को आ पकड़ा, किन्तु कुन्ती को दिये वर के कारण उसका वध नहीं किया अपितु धनुष के अग्र भाग से उसका स्पर्श कर बोले, "अरे बिना दाढ़ी मूंछ के नपुंसक! तू अस्त्र-शस्त्रों के विषय में कुछ नहीं जानता। रे कायर! अब कभी मेरे समान पुरुष से युद्ध मत करना। अरे पेटू! वृकोदर! तू तो भोजन का ढेर ही खा सकता है, तू रणभूमि में खड़े होने योग्य नहीं है।" इस प्रकार अनेक दुर्वचनों से भीमसेन को प्रताड़ित करके महाबली कर्ण श्रीकृष्ण और अर्जुन के सम्मुख बार-बार अपनी बड़ाई करने लगे। तब श्रीकृष्ण की प्रेरणा से अर्जुन ने कर्ण के ऊपर अनेक तीक्ष्ण बाण छोड़े। उन बाणों से घायल हुए कर्ण भीमसेन के पास से हट गये और अपने रथ पर बैठ चले गये। भीम भी सात्यकि के रथ पर चढ़कर अर्जुन के पास पहुँच गए। फिर अर्जुन ने क्रोध करके एक नाराच बाण कर्ण पर छोड़ा। द्रोण पुत्र अश्वत्थामा ने उस बाण को रास्ते में ही काट गिराया। इससे क्रुद्ध हो अर्जुन ने अश्वत्थामा को अपने बाणों से पीड़ित कर दूर हटा दिया।

सात्यकि को अपने पास आते देख अर्जुन को प्रसन्नता नहीं हुई। वे खिन्न होकर श्रीकृष्ण से बोले, "सात्यकि को धर्मराज के पास होना चाहिए था। न जाने उनकी क्या दशा होगी? पता नहीं, वे जीवित भी हैं या नहीं? इन्होंने महाराज युधिष्ठिर को आचार्य के लिए छोड़ दिया और इधर अभी जयद्रथ भी नहीं मारा जा सका है। देखो, भूरिश्रवा सात्यकि को मारने के लिए आगे बढ़ रहे हैं। मैं इस समय क्या करूँ? मुझे धर्मराज का कुशल समाचार चाहिए, सात्यकि को बचाना है और जयद्रथ को मारना है। इधर सूर्य अस्ताचल को ओर जा रहा है। सात्यकि थके हुए प्रतीत होते हैं, किन्तु भूरिश्रवा पूरे उत्साह से युद्ध कर रहा है। सात्यकि को धर्मराज को छोड़कर नहीं आना चाहिए था।"

उधर भूरिश्रवा सात्यकि से बोला, "सात्यकि! यह कितने सौभाग्य की बात है कि आज तुम श्रीकृष्ण और अर्जुन के सामने ही मेरे हाथों से मारे जाओगे।" यह सुनकर सात्यकि ने हँसकर कहा, "कुरुनन्दन! मुझे रण में किसी से भय नहीं लगता। मुझे तुमसे युद्ध करने की अभिलाषा थी। वह आज पूरी हो गई।" इस प्रकार कहते हुए दोनों वीर एक दूसरे पर आक्रमण करने लगे। वे ऐसे भिड़ रहे थे जैसे दो गजराज भिड़ते हैं। जब दोनों के रथ नष्ट हो गए तो दोनों ही हाथों में खड्ग लेकर परस्पर टूट पड़े। सहसा भूरिश्रवा ने सात्यकि को अपने वश में कर लिया और भूमि पर गिराकर उन पर सवार हो गया। फिर उनके केशों को पकड़कर म्यान से तलवार निकाल ली और उनके सिर को काटने का प्रयत्न

करने लगा। सात्यकि भी बड़ी स्फूर्ति से अपने मस्तक को घुमा घुमा कर बचाने की चेष्टा करने लगे। यह देख अर्जुन ने एक क्षुरप्र बाण से भूरिश्रवा का दाहिना हाथ काट डाला। इससे क्रोधित हो भूरिश्रवा अर्जुन से बोला, "अर्जुन! तुम्हें ऐसा करते हुए लज्जा नहीं आई? जब मैं दूसरे व्यक्ति से युद्ध कर रहा था तब तुमने यह दुष्कर्म क्यों किया? तुम धर्म पुत्र युधिष्ठिर से क्या यह कहोगे कि जब भूरिश्रवा किसी और से युद्ध कर रहेथे तब मैंने उन्हें मार डाला? इस अस्त्र विद्या की शिक्षा तुम्हें रुद्र ने दी है या द्रोणाचार्य अथवा कृपाचार्य ने दी है? तुम तो अस्त्र धर्म के अद्वितीय ज्ञाता हो, फिर तुमने यह अधर्म क्यों किया? विज्ञ पुरुष असावधान मनुष्य पर प्रहार नहीं करते। मैं जानता हूँ, तुम श्रेष्ठ कुरुकुल में उत्पन्न होने के कारण स्वयं यह नीच कर्म नहीं कर सकते। यह तुमने कृष्ण के परामर्श से किया है।" अर्जुन बोले, "राजन्! आपका यह लांछन उचित नहीं है। रणभूमि में गए हुए वीर के लिए केवल अपनी ही सुरक्षा पर्याप्त नहीं है। जो जिसके कार्य में संलग्न होता है, वह उसके द्वारा रक्षणीय होता है। जहाँ अपने और शत्रु पक्ष के लोगों में युद्ध चल रहा हो, वहाँ एक योद्धा की एक ही योद्धा के साथ लड़ाई कैसे मानी जा सकती है?"

संजय कहने लगे--हे राजेन्द्र! अर्जुन के ऐसा कहने पर महाबाहु यशस्वी भूरिश्रवा सात्यकि को छोड़कर युद्धभूमि में आमरण अनशन का व्रत लेकर बैठ गये। वे बाएँ हाथ से बाण बिछाकर प्राणायाम करते हुए प्राण त्यागने को उद्यत हो गए। उस समय सब लोग श्रीकृष्ण और अर्जुन की निन्दा तथा वीर

भूरिश्रवा की प्रशंसा करने लगे। इस निन्दा का उत्तर देते हुए अर्जुन ने कहा, "सब लोग मेरी इस प्रतिज्ञा को जानते हैं कि यदि मेरा आत्मीय जन मेरे बाणों की पहुँच के भीतर होगा तो उसे कोई नहीं मार सकेगा। जब रणभूमि में थके हुए सात्यकि की भूरिश्रवा हत्या करना चाहते थे तो उनकी रक्षा करना निन्दनीय कार्य नहीं है। जब शस्त्र, कवच और रथहीन बालक अभिमन्यु का छः महारथियों ने मिलकर वध किया था तो क्या वह प्रशंसनीय और धार्मिक कृत्य था?" जब अर्जुन इस प्रकार स्पष्टीकरण दे रहे थे तभी सात्यकि ने उठकर श्रीकृष्ण और अर्जुन के रोकने पर भी तलवार से भूरिश्रवा का सिर काट डाला। और चिल्लाकर बोले, "मैं जानता हूँ, तुम सब लोग मेरे इस कार्य की निन्दा करोगे, परन्तु जब तुमने बालक अभिमन्यु को शस्त्रविहीन करके मार डाला था तब तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था। मैंने प्रतिज्ञा कर रखी थी जो कोई युद्धभूमि में मेरा तिरस्कार करेगा या मेरे लात मारेगा वह कभी मेरे हाथों जीवित नहीं बचेगा। इसलिए मैंने भूरिश्रवा को मारकर अपनी प्रतिज्ञा ही पूरी की है।" यह सुनकर किसी कौरव योद्धा ने कोई उत्तर नहीं दिया।

छठा अध्याय

अर्जुन द्वारा जयद्रथ वध

संजय बोले—हे भरतकुलभूषण! भूरिश्रवा की मृत्यु के पश्चात् अर्जुन श्रीकृष्ण से बोले, "हे महाबाहो! सूर्य तीव्र गति से अस्ताचल की ओर जा रहा है। इसलिए आप मुझे शीघ्र जयद्रथ के पास ले चलिए।" अर्जुन को जयद्रथ की ओर जाते

देख समस्त कौरव महारथी उन्हें रोकने के लिए दौड़े, किन्तु अर्जुन भयंकर बाण वर्षा करते हुए मार्ग में आने वाले वीरों का सफाया करते हुए वहाँ पहुँच गये जहाँ छः महारथी उन्हें घेरे खड़े थे। यह देख श्रीकृष्ण बोले, "हे पार्थ! इन छः महारथियों को इस समय सरलता से नहीं जीता जा सकता। इसलिए मैं माया से सूर्य को इस प्रकार आच्छादित कर दूंगा कि सब लोगों को वह अस्त दिखाई दे, किन्तु जयद्रथ को उदित दिखाई देगा। उस समय तुम जयद्रथ पर प्रहार करना।" श्रीकृष्ण ने अपनी माया से सूर्य को ढँक लिया। कौरव लोग यह सोचकर प्रसन्न हो गए कि सूर्य अस्त हो गया और अब अर्जुन जीवित ही अग्नि में प्रवेश करेगा। यह सोचकर वे निश्चिन्त हो गये, किन्तु जयद्रथ बार-बार सूर्य की ओर देख रहा था कि उसके छिपने में कितनी देर है। तभी अर्जुन ने श्रीकृष्ण का संकेत पाकर कौरव सेना को नष्ट करना आरम्भ किया। उन्होंने कृपाचार्य को बीस, कर्ण को पचास और शल्य तथा दुर्योधन को छः छः बाण मारे। इस प्रकार अन्य सैनिकों को भी घायल करके अर्जुन ने जयद्रथ पर आक्रमण किया। सब महारथियों को व्याकुल करके उन्होंने एक भयंकर बाण निकालकर जयद्रथ पर छोड़ा जो उसका सिर काटकर उसे आकाश में ले उड़ा। जयद्रथ के मरते ही श्रीकृष्ण ने अपने मायामय अन्धकार को समेट लिया और सूर्य आकाश में चमकने लगा। इस प्रकार हे राजन्! अर्जुन ने आठ अक्षौहिणी सेना और आपके जामाता जयद्रथ को मार गिराया। फिर सब पाण्डवों ने अपने-अपने शंख बजाये जिनसे युधिष्ठिर को

विश्वास हो गया कि अर्जुन ने जयद्रथ को मारकर प्रण पूरा कर लिया है।

सातवाँ अध्याय

युद्ध में कृपाचार्य तथा कर्ण की पराजय, दुर्योधन का द्रोण को उपालम्भ

धृतराष्ट्र ने पूछा—संजय! जयद्रथ के मारे जाने पर मेरे पुत्रों ने क्या किया? संजय बोले--राजन्! जब जयद्रथ को अर्जुन ने मार दिया तो कृपाचार्य तथा अश्वत्थामा ने अत्यन्त क्रोधित होकर अर्जुन पर दो ओर से भयंकर बाणों की वर्षा की। वे गुरु तथा गुरु-पुत्र का वध नहीं करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने उन दोनों पर प्रत्याक्रमण नहीं किया, केवल उनके बाणों को काटते रहे और मन्द बाण चलाते रहे। उन मन्द बाणों से भी कृपाचार्य मूर्च्छित हो गए। उनका सारथि उन्हें मृत समझकर रणभूमि से बाहर ले गया। कृपाचार्य को मूर्च्छित देख अर्जुन को बहुत दुःख हुआ और वे आँसू बहाते हुए कहने लगे, आज मैंने न चाहते हुए भी अपने गुरुदेव को कष्ट पहुँचाकर भारी पाप किया है। वे इस प्रकार शोक कर ही रहे थे कि कर्ण को सात्यकि की ओर जाते देखा। वे कृष्ण से बोले, "वासुदेव! कर्ण भूरिश्रवा की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के के लिए सात्यकि की ओर जा रहा है। मेरा रथ भी उसी ओर ले चलो। कहीं वह सात्यकि को न मार डाले।" श्रीकृष्ण बोले, "अर्जुन! सात्यकि को तुम कम मत समझो। वे अकेले ही कर्ण पर भारी पड़ेंगे। फिर इस समय द्रुपद के दो पुत्र उनके साथ हैं। इस समय तुम्हें कर्ण के पास नहीं जाना चाहिए। इस समय उसके पास इन्द्र द्वारा दी हुई महाशक्ति विद्यमान है।"

इस समय सात्यकि के पास रथ नहीं था। अतएव श्रीकृष्ण ने दारुक को बुलाकर उनके लिए रथ की व्यवस्था कराई। फिर सात्यकि और कर्ण में भीषण युद्ध होने लगा। युधामन्यु और उत्तमौजा सात्यकि को पूरा सहयोग दे रहे थे। सात्यकि ने कर्ण और उसके सारथि पर एक साथ अनेक बाण छोड़कर सारथि को रथ से गिरा दिया, घोड़ों को मार दिया और रथ की ध्वजा काट दी। कर्ण चुपचाप मैदान से हट गया। श्रीकृष्ण ने जाकर युधिष्ठिर को बधाई दी कि अर्जुन ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके जयद्रथ का वध कर दिया है। इसी समय विजय पताका फहराते हुए भीमसेन और सात्यकि वहाँ पहुँच गये।

उधर जयद्रथ के मारे जाने से दुर्योधन के हृदय को भारी आघात लगा और पाण्डवों को पराजित करने की आशा उसे धूमिल प्रतीत होने लगी। इसके पश्चात् कर्ण को सात्यकि से पराजित होते देख उसे और भी धक्का लगा। जिनके भरोसे पर वह पाण्डवों से लोहा लेना चाहता था, वे ही महारथी वीर पाण्डवों के सामने तिनके की भाँति उड़े जा रहे हैं। इस विचार से उसे बड़ी वेदना हुई और द्रोणाचार्य के पास जाकर बोला, "आचार्य! आज तक भीष्मपितामह से लेकर अनेक रणबाँकुरे नरेश--जिनके भय से पृथ्वी भी काँपती थी--पाण्डवों के हाथों मारे जा चुके हैं। आप इस बात की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते क्योंकि अर्जुन आपका प्रिय शिष्य है। आप उसे तनिक भी क्षति पहुँचाना नहीं चाहते। वह हमारे वीरों को गाजर-मूली की भाँति काटता चला जाता है, और आप उधर से आँखें मूंदे बैठे हैं। इतना ही नहीं, आप हमारी विजय चाहने

वाले सभी शूरवीरों को मरवा रहे हैं। महारथी जलसन्ध को सात्यकि ने मार डाला, जयद्रथ और भूरिश्रवा दोनों आज ही मारे गये। अभिषाह, शूरसेन, शिवि तथा वसातीगण भी आज मारे गए। जब मेरे हितैषी इस प्रकार मेरे लिए प्राण देकर स्वर्गगामी हो चुके हैं तो मैं इस संसार में जीवित रहकर क्या करूँगा? आप मुझे प्राण त्यागने की अनुमति दें ताकि आपके प्रिय शिष्य पाण्डव इस पृथ्वी पर निष्कण्टक राज्य कर सकें।"

दुर्योधन का यह उपालम्भ सुन द्रोणाचार्य मन ही मन बहुत दुःखी हुए। फिर याचना भरे शब्दों से बोले, "दुर्योधन! तुम क्यों इस प्रकार विषैले बाणों से मुझे बींध रहे हो? अर्जुन के पराक्रम का कारण मेरा स्नेह नहीं है। मैं तुमसे अनेक बार कह चुका हूँ कि वह अजेय हैं। उसे युद्ध में कोई परास्त नहीं कर सकता। उसके पौरुष को तो तुम्हें इसी बात से समझ लेना चाहिए कि उसका संरक्षण पाकर शिखण्डी जैसे व्यक्ति ने पराक्रमी भीष्मपितामह को लड़ते हुए मार डाला। तुमने भरी सभा में द्रौपदी का अपमान करके जो महापाप किया था, उसी के कारण आज कौरव दल का विनाश हो रहा है। तुम मुझे बार बार उपालम्भ देते हो, किन्तु मैं पूछता हूँ--तुम सब लोगों ने बड़ी सावधानी से अर्जुन को घेर लिया था, फिर तुम उसे परास्त क्यों न कर सके? तुम, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा और शल्य सभी तो महारथी हो फिर तुम जीते जी जयद्रथ को क्यों न बचा सके? इसकी ओर ध्यान न देकर तुम मुझे ही दोषी बता रहे हो। मैं तुम्हारे सन्तोष के लिए फिर प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक मैं समस्त पांचालों का नाश नहीं

कर लूंगा, यह कवच नहीं उतारूँगा। मैं पाण्डवों का विनाश करने के लिए जा रहा हूँ।" यह कहकर द्रोणाचार्य पाण्डवों और सृन्जयों से युद्ध करने के लिए चल दिये।

आठवाँ अध्याय

दुर्योधन और कर्ण की मन्त्रणा, रात्रि युद्ध में द्रोण का पराक्रम

द्रोणाचार्य के शब्दों से पीड़ित हो दुर्योधन ने मन ही मन युद्ध करने का निश्चय किया और कर्ण के पास जाकर बोला, "देखो कर्ण! कृष्ण की सहायता से अर्जुन ने आचार्य निर्मित व्यूह का भेदन कर जयद्रथ को मार डाला। मैं समझता हूँ, यदि आचार्य अपनी पूरी शक्ति से व्यूह की रक्षा करते तो वह कदापि नहीं टूट सकता था। किन्तु उन्होंने अपने परमप्रिय शिष्य को बिना युद्ध किये ही व्यूह में घुस जाने दिया।" कर्ण ने दुर्योधन को समझाते हुए कहा, "मित्र! तुम व्यर्थ ही गुरु द्रोण की निन्दा कर रहे हो। अर्जुन के व्यूह में घुस जाने के लिए आचार्य को दोष नहीं देना चाहिए। वह अद्वितीय योद्धा और पराक्रमी है। द्रोणाचार्य वृद्ध हो गए हैं। वे युवा अर्जुन की समता नहीं कर सकते। ऐसा प्रतीत होता है कि आजकल दैव ही हमारे विरुद्ध है। हम लोगों ने कपटपूर्वक पाण्डवों को छला, उन्हें मारने के लिए विष दिया, लाक्षागृह में जलाया, जुए में हराकर वन-वन घुमाया, परन्तु हमारे सभी प्रयत्नों को विधाता ने विफल कर दिया। फिर भी हमें अपने प्रयत्न नहीं छोड़ने चाहिए। कभी न कभी तो सफलता मिलेगी ही।"

उधर जब द्रोणाचार्य पाण्डव सेना में घुस गए तो धृष्टद्युम्न, विराट तथा अन्य अनेक योद्धा उन पर टूट पड़े।

उनका सामना करते हुए आचार्य ने कैकेय राजकुमारों और धृष्टद्युम्न के पुत्रों को मार गिराया। जब शिबि ने आकर उन्हें ललकारा तो अपने अद्भुत पराक्रम का प्रदर्शन करते हुए उन्होंने शिबि को भी यमलोक भेज दिया। इस समय आचार्य का शौर्य और पराक्रम अद्वितीय था। धर्मराज युधिष्ठिर भी उसी वीरता से कौरव सेना का विनाश कर रहे थे। जब आचार्य ने उनके विरुद्ध दिव्य अस्त्रों का प्रयोग किया तो वे भी उन पर दिव्य अस्त्रों से वार करने लगे। अपने दिव्यास्त्रों को उस प्रकार व्यर्थ जाते देख द्रोणाचार्य तिलमिला उठे और उन्होंने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। इस पर भी धर्मराज विचलित नहीं हुए। उन्होंने ब्रह्मास्त्र से ही उनके ब्रह्मास्त्र का निवारण कर दिया। इस प्रकार जब उनके आगे आचार्य की एक न चली तो वे राजा द्रुपद की सेना का संहार करने लगे। इससे पीड़ित पांचाल सैनिकों के पैर उखड़ गये। अपनी सेना को व्याकुल देख अर्जुन और भीमसेन आचार्य को दोनों ओर से घेर उन पर बाण बरसाने लगे। उनके आक्रमणों को न सह कर आपकी सेना इधर-उधर भागने लगी।

नवाँ अध्याय

कृपाचार्य और कर्ण में वाक् युद्ध, अर्जुन द्वारा कर्ण की पराजय

संजय बोले—हे राजन्! कौरव सेना को अस्त-व्यस्त होकर समरक्षेत्र से भागते हुए देख दुर्योधन ने कर्ण से कहा, "मित्र! इस समय मुझे केवल तुम्हारा भरोसा है। तुम आगे बढ़कर समस्त कौरव महारथियों की रक्षा करो।" दुर्योधन को धैर्य बँधाते हुए कर्ण ने कहा, "मित्र! तुम चिन्ता मत करो।

मैं अर्जुन को रणभूमि में अवश्य मारूँगा। आज मैं तुम्हें अवश्य विजय दिलाऊँगा। मैं इन्द्र द्वारा दी हुई अमोघ शक्ति का प्रयोग करके अर्जुन को यमलोक भेजूंगा। मैं जानता हूँ कि अर्जुन के मारे जाने पर पाण्डव हताश होकर तुम्हारे सम्मुख घुटने टेक देंगे। इसलिए तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो।" इस प्रकार कर्ण को डींग मारते देख कृपाचार्य ने मुस्कराकर कहा, "वाह कर्ण! क्या कहने हैं तुम्हारे! यदि केवल बातें बनाने से कार्य सिद्ध हो जाय तो राजा दुर्योधन को पाण्डवों पर सहज ही विजय मिल जायेगी। अब तक तो किसी ने तुम्हारा कोई पराक्रम देखा नहीं है। जब-जब पाण्डवों से तुम्हारी मुठभेड़ हुई है, तब तब तुमने मुँह की खाई है। जब गन्धर्व दुर्योधन को पकड़कर ले गये थे, तब भी तुम ही सबसे पहले मैदान छोड़कर भागे थे। विराटनगर में भी तुम अर्जुन के हाथों परास्त हुए थे। फिर पाण्डवों पर विजय पाने की डींग क्यों हाँक रहे हो? अच्छा हो, दुर्योधन को भुलावे में डालने के स्थान पर स्वयं साहसपूर्वक युद्ध करो।"

कृपाचार्य के कथन से चिढ़कर कर्ण ने कहा, "यदि मैं कृष्ण और सात्यकि सहित समस्त पाण्डवों को मारने की बात कहता हूँ तो उससे आपको पीड़ा क्यों होती है? एक दिन आप देखेंगे, मैं श्रीकृष्ण, सात्यकि और शेष समस्त पाण्डवों तथा उनकी सेना को मारकर सारे संसार का निष्कंटक राज्य दुर्योधन को सौंप दूंगा।" कृपाचार्य बोले, "सूतपुत्र! खाली गाल बजाने से विजय नहीं मिलती। विजय उसी पक्ष की होगी जिसमें युद्ध विशारद श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं।" कर्ण ने

उत्तर दिया, "तुम पाण्डवों से भयभीत होकर ऐसी बात कह रहे हो। यह तुम्हारे लिये उचित ही है क्योंकि तुम वृद्ध और निर्बल ब्राह्मण हो। अब तुम में युद्ध करने की क्षमता नहीं रह गई है। इसके अतिरिक्त तुम अन्दर ही अन्दर पाण्डवों से स्नेह और हमसे द्वेष रखते हो। दुर्बुद्धि ब्राह्मण! यदि तुमने फिर कभी मेरे विषय में ऐसी बात कही तो मैं तलवार से तुम्हारा सिर धड़ से अलग दूंगा और जीभ काटकर फेंक दूंगा।"

कर्ण को इस प्रकार अपने मामा का अपमान करते देख अश्वत्थामा तलवार निकाल कर कर्ण पर टूट पड़े और बोले, "नराधम! क्या तू नहीं जानता कि मेरे मामा संसार में श्रेष्ठ धनुर्धर वीर हैं। यदि उन्होंने अर्जुन के सच्चे गुणों का वर्णन कर दिया तो तू उनका अपमान करने लगा। जब अर्जुन ने तेरे देखते-देखते जयद्रथ को मार डाला, उस समय तेरा पराक्रम कहाँ था? ठहर, मैं अभी तेरा सर धड़ से अलग किये देता हूँ।" इस प्रकार कर्ण को मारने के लिए अश्वत्थामा को उद्यत देख स्वयं कृपाचार्य और दुर्योधन ने आगे बढ़कर रोका। अनमनेभाव से तलवार फेंकते हुए अश्वत्थामा ने कहा, "मूर्ख सूत पुत्र! आज हम तेरे इस अपराध को क्षमा करते हैं। एक दिन तेरा यह गर्व अर्जुन के हाथों चूर-चूर होगा।" दुर्योधन ने भी अश्वत्थामा को शान्त करते हुए कहा, "द्विजश्रेष्ठ! तुम कर्ण को क्षमा करो। कौरव सेना को विजय दिलाने का भार तुम पर, कर्ण, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, शल्य और शकुनि पर ही है। इस प्रकार घर में ही कलह करना उचित नहीं है। तुम सब एक से एक बढ़कर श्रेष्ठ योद्धा हो।"

जब ये लोग इस प्रकार वार्तालाप कर रहे थे तभी पाण्डव सेना कर्ण को युद्ध के लिए ललकारती हुई चढ़ आई। दोनों ओर से भीषण संग्राम आरम्भ हो गया। कर्ण और अर्जुन पूरे उत्साह के साथ एक-दूसरे से भिड़ गये। अर्जुन ने कर्ण के रथ के घोड़ों को मार उसके सारथि का सिर काट डाला। उसका धनुष काट उसे भी घायल कर दिया। कर्ण शीघ्रता-पूर्वक कूदकर कृपाचार्य के रथ पर चढ़ गया। इस प्रकार कर्ण को पराजित होता देख कौरव सेना इधर-उधर भागने लगी। "वीरो! तुम यों भागो मत। मैं आज स्वयं अर्जुन को मारूँगा।" ऐसा कहते हुए दुर्योधन ने पाण्डव सेना पर धावा बोल दिया। यह देख कृपाचार्य ने अश्वत्थामा के पास जाकर कहा, "वत्स! तुम दुर्योधन के पास जाकर उसे अर्जुन से युद्ध करने से रोको, अन्यथा वह अर्जुन की मार के आगे जीवित नहीं बच सकेगा।" कृपाचार्य का निर्देश पाते ही अश्वत्थामा ने जाकर दुर्योधन से कहा, "सुयोधन! मेरे होते हुए तुम स्वयं युद्ध करो, यह अच्छा नहीं लगता। तुम यहाँ से हट जाओ। अर्जुन से मैं निपट लूँगा।" दुर्योधन बोला, "ठीक है, तुम ही मेरे इन शत्रुओं का नाश करो। मैं जानता हूँ, तुम्हारे सामने देवता और दानव भी नहीं ठहर सकते। किन्तु तुम अपने पिता की भाँति पाण्डवों का मोह मत करना। अपने कर्त्तव्य के मार्ग में अनुचित स्नेह को मत आने देना।"

अश्वत्थामा ने कहा, "हे दुर्योधन! यह सही है कि पाण्डव मुझे और मेरे पिता दोनों को प्रिय हैं, परन्तु रणभूमि में हमारा यह भाव नहीं रहता। मैं, कर्ण, शल्य, पिताजी,

कृपाचार्य और कृतवर्मा क्षण भर में पाण्डव सेना का संहार कर सकते हैं। इसी प्रकार हमारे न रहने पर पाण्डव कौरव सेना को नष्ट कर सकते हैं। किन्तु पाण्डव भ्राताओं के रहते उनकी सेना पर विजय प्राप्त नहीं की जा सकती। तुम सबकी निष्ठा पर सन्देह करते हो। इसका कारण यह है कि तुम्हारा अन्तःकरण पाप-भावना से परिपूर्ण है। मैं अपने प्राणों का मोह छोड़कर पूरी शक्ति से युद्ध करने जा रहा हूँ।" ऐसा कहकर अश्वत्थामा ने शत्रु सेना में जाकर भयानक मारकाट मचा दी। देखते-देखते उन्होंने अनेक वीरों को मौत के घाट उतार दिया। अपनी सेना को भागते देख धृष्टद्युम्न ने कहा, "अश्वत्थामा! आओ मेरे साथ युद्ध करो। इन्हें मारने से क्या लाभ?" ऐसा कहकर उन्होंने तीक्ष्ण बाणों से अश्वत्थामा को घायल कर दिया। इससे कुपित हो उन्होंने अपने बाणों से धृष्टद्युम्न को उनके रथ सहित ढँक दिया। उन्होंने भी विशेष स्फूर्ति का परिचय देते हुए बाणों के आच्छादन को ही नष्ट नहीं किया, अश्वत्थामा पर भी अनेक चुटीले बाणों से प्रहार किया। दोनों ही महारथी एक-दूसरे से बढ़-चढ़कर अपने शौर्य का प्रदर्शन कर रहे थे। अश्वत्थामा ने तत्काल धृष्टद्युम्न के ध्वज, धनुष, छत्र, दोनों पार्श्व रक्षकों, सारथि एवं चारों घोड़ों को नष्ट कर दिया। धृष्टद्युम्न को संकट में देख युधिष्ठिर और भीमसेन ने अपनी सेना के साथ अश्वत्थामा को घेर लिया। उस समय दोनों ओर से भीषण नरसंहार हो रहा था। प्रतिपक्षी योद्धा एक-दूसरे की सेना में हलचल मचा रहे थे। इस स्थिति में दुर्योधन ने पुनः अपनी सेना को व्यूह रूप में एकत्रित

होने का आदेश दिया। इस व्यूह के अग्रभाग में द्रोणाचार्य, मध्यभाग में शल्य तथा पार्श्व में अश्वत्थामा और शकुनि रखे गये। पैदल सैनिकों को अस्त्र छोड़कर मशालें सँभालने का आदेश दिया गया। जब इन मशालों ने रात्रि के अन्धकार को दूर कर दिया तो योद्धा लोग अपने प्रतिपक्षियों को पहचान कर उनसे भिड़ने लगे। फिर भी कौरव सेना भागने लगी।

दसवाँ अध्याय

द्रोणाचार्य तथा कर्ण द्वारा घोर युद्ध, घटोत्कच द्वारा अलम्बुष का वध

संजय ने कहा--हे महाराज! इस प्रकार कौरव सेना को दुखित होते देख दुर्योधन ने द्रोणाचार्य और कर्ण के पास आकर कहा, "आप लोगों ने जयद्रथ की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए रात्रि में भी युद्ध जारी रखने का निर्णय किया था। आप उसका प्रतिशोध तो न ले सके, अपितु मेरी विशाल सेना का विनाश करा रहे हैं। आज आपके शौर्य को क्या हो गया है?" जब दुर्योधन ने उन्हें इस प्रकार बुरा भला कहा तो वे पुनः युद्ध करने लगे। उनकी मार से पीड़ित हो पाण्डव सेना भागने लगी तो भी ये दोनों महारथी पीछे से उसका संहार करने लगे। यह देख भीमसेन अपनी सेना को उत्साहित कर पुनः रणक्षेत्र में लौटा लाये। भीमसेन ने दुर्मद और दुष्कर्ण नामक तुम्हारे दो पुत्रों को मार दिया। कर्ण ने धृष्टद्युम्न के रथ तथा सारथि को नष्ट करके उन्हें परास्त कर दिया। यह देख अर्जुन ने श्रीकृष्ण से अनुग्रह किया, "मेरा रथ कर्ण के सम्मुख ले चलो। या तो आज मैं उसे मार दूंगा या वह मुझे मार देगा।" यह सुन श्रीकृष्ण बोले, "आज तुम्हारा उसके सम्मुख जाना

उचित नहीं है। उसके पास इन्द्र द्वारा दी हुई अमोघ शक्ति है। उसका प्रयोग वह तुम पर अवश्य करेगा। उससे तुम्हें कोई नहीं बचा सकेगा। इसलिए तुम कर्ण से युद्ध करने के लिए घटोत्कच को भेजो। उसके पास सभी आसुरी एवं दिव्य अस्त्र-शस्त्र हैं। वह अवश्य उस शक्ति पर पार पा लेगा।"

श्रीकृष्ण और अर्जुन का आदेश पाकर समस्त अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित घटोत्कच कर्ण से युद्ध करने के लिए चला। उस वीर को भयंकर गर्जना करते आते देख दुर्योधन ने जटासुर के पुत्र अलम्बुष को उससे युद्ध करने के लिए भेजा। दोनों ही राक्षस मायावी युद्ध करने लगे। घटोत्कच एक साथ अलम्बुष, कर्ण और कौरव सेना से युद्ध करने लगा। उसने घोर युद्ध में अलम्बुष के सारथि, घोड़ों और सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रों की धज्जियाँ बिखेर दीं। इससे क्रोधित होकर उसने घटोत्कच पर बड़े जोर का मुष्टिका प्रहार किया। इससे एक बार तो घटोत्कच विचलित हो गया। फिर दूसरे ही क्षण अलम्बुष पर मुक्के बरसाने लगा। इसके पश्चात् उसे भूमि पर पटक रगड़ने लगा। अन्त में तलवार से उसका सिर काट डाला। उस सिर को केश से पकड़कर दुर्योधन पर फेंकते हुए बोला, "दुर्योधन! यह तेरे लिए पहली भेंट है। अब दूसरी भेंट कर्ण के मस्तक की दूंगा।" यह कहकर वह कर्ण से आकर भिड़ गया।

ग्यारहवाँ अध्याय

अलायुध एवं घटोत्कच का वध

जब घटोत्कच और कर्ण का युद्ध चल रहा था तब विख्यात पराक्रमी राक्षस अलायुध ने दुर्योधन के पास आकर

कहा, "महाराज! भीमसेन ने हमारे सम्बन्धी हिडिम्ब, बक, तथा किर्मीर को मारा है। इसके अतिरिक्त राक्षसकन्या हिडिम्बा के साथ बलात्कार किया है। मैं भीमसेन, उसके भाइयों, उसके सहायकों तथा घटोत्कच को मारकर राक्षस जाति के अपमान का प्रतिशोध लेना चाहता हूँ। आप अपनी सेना को एक ओर कर लीजिए। हम लोग पाण्डवों के साथ युद्ध करना चाहते हैं।" अलायुध का प्रस्ताव सुनकर दुर्योधन ने प्रसन्न होकर कहा, "राक्षसराज! हम अपनी सेना को युद्धभूमि से हटा तो नहीं सकते, किन्तु तुम्हें आगे रखकर युद्ध का अधिक से अधिक अवसर देंगे ताकि तुम अपनी अभिलाषा पूरी कर सको।" दुर्योधन की बात मानकर अलायुध सबसे पहले घटोत्कच से युद्ध करने गया। घटोत्कच कर्ण को छोड़कर इस नये योद्धा से भिड़ गया। दोनों में अत्यन्त भयंकर एवं घमासान युद्ध हुआ। जब अलायुध ने एक विशाल परिध फेंककर घटोत्कच के मस्तक पर आघात किया तो उसे मूर्छा सी आने लगी, किन्तु उसने तत्काल अपने आपको सँभालकर अपनी वज्र सदृश गदा से उस पर भीषण आघात किया जिससे अलायुध का रथ, सारथि और घोड़े चूर-चूर हो गये। फिर घटोत्कच ने उसे पकड़ कर पूरे वेग से भूमि पर पटक दिया और तलवार से उसका सिर काट डाला। उसने यह सिर भी दुर्योधन की ओर फेंक दिया।

इसके पश्चात् घटोत्कच पुनः कर्ण के पास जा पहुँचा जो निर्दयतापूर्वक पाण्डवसेना का विनाश कर रहा था। घटोत्कच ने अपने तीक्ष्ण बाणों से कर्ण को व्याकुल कर दिया। पीड़ित

कर्ण ने एक भयंकर अस्त्र से घटोत्कच के रथ, घोड़ों और सारथि को नष्ट कर दिया। रथहीन होने पर घटोत्कच अदृश्य हो गया। कौरव सेना चिल्लाकर कहने लगी, यह राक्षस अदृश्य होकर कर्ण को अवश्य मार डालेगा। इसी समय आकाश से भयंकर अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा होने लगी। जिससे कौरव सेना हताहत होने लगी। फिर घटोत्कच ने आकाश से शतघ्नी छोड़ी जिसने कर्ण के चारों घोड़ों को मार डाला। जब कर्ण ने देखा कि घटोत्कच के हाथों स्वयं वह ही नहीं सम्पूर्ण कौरव सेना भी नष्ट हो जायेगी तो उसने इन्द्र द्वारा दी हुई अमोघ शक्ति का प्रयोग करके घटोत्कच की माया को भस्म कर दिया और उसके वक्षस्थल को चीर दिया जिससे वह प्राणहीन होकर पृथ्वी पर आ गिरा। उसका शरीर विदीर्ण हो गया और जीभ बाहर निकल आई।

जब पाण्डवों को घटोत्कच की मृत्यु का समाचार मिला तो वे शोकसागर में डूब गये। उस समय श्रीकृष्ण ने हर्षविभोर होकर अर्जुन को हृदय से लगा लिया। अर्जुन द्वारा हर्ष का कारण पूछने पर वे बोले, "अर्जुन ! जिस अमोघ शक्ति से कर्ण ने घटोत्कच को मारा है, वह उसने तुम्हें मारने के लिए प्राप्त की थी। अब उस शक्ति के बिना कर्ण तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। वह शीघ्र ही तुम्हारे हाथों मारा जायेगा। यही मेरे हर्ष का कारण है।"

बारहवाँ अध्याय

दुर्योधन-द्रोणाचार्य संवाद, घमासान युद्ध, दुर्योधन-सात्यकि संग्राम

दुर्योधन ने द्रोणाचार्य के पास जाकर उपालम्भ देते हुए

कहा, "आचार्य ! हम लोग तेज और बल में हीन होते जा रहे हैं, किन्तु पाण्डव आपसे सुरक्षित होकर बराबर अग्रसर हो रहे हैं। मैं यह भलीभाँति जानता हूँ कि यदि आप सच्चे मन से युद्ध करें तो संसार में कोई आपकी समानता नहीं कर सकता।" यह उपालम्भ सुनकर आचार्य बोले, "दुर्योधन ! वृद्ध होने पर भी मैं तुम्हारी ओर से पूरी सामर्थ्य से युद्ध कर रहा हूँ। ऐसा प्रतीत होता है कि तुम अपनी विजय के लिए मुझसे कोई नीच कार्य कराना चाहते हो। स्मरण रखो, अर्जुन को देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस अथवा मनुष्य कोई भी पराजित नहीं कर सकता। यह बिल्कुल सत्य है।"

द्रोणाचार्य के मुख से अर्जुन की प्रशंसा सुनकर वे चिढ़ते हुए बोले, "आप देख लेना, आज के युद्ध में मैं, कर्ण, दुःशासन और मामा शकुनि मिलकर अर्जुन को मार गिरायेंगे।" यह सुनकर द्रोणाचार्य बोले, "दुर्योधन ! जो कुछ तुम कह रहे हो, ऐसी बातें मूर्ख लोग ही कह सकते हैं। भला अर्जुन को कौन मार सकता है ? जाओ, तुम ही अर्जुन को मार आओ। इस कौरव सेना का व्यर्थ में क्यों विनाश कराते हो ? तुम्हारे मामाजी जुए, छल, कपट में तो पारंगत हैं ही, रण में भी पाण्डवों को जीत लेंगे। जब वे तुम्हारे साथ हैं तो फिर तुम्हारी पराजय कैसे हो सकती है ? तुमने अपने पिता के सम्मुख प्रतिज्ञा की थी कि मैं, कर्ण और दुःशासन हम तीनों ही पाण्डवों को युद्ध में मार डालेंगे। अब जाकर उस प्रतिज्ञा को पूरी करो।" यह कहकर द्रोणाचार्य पाण्डव सेना से युद्ध करने चले गये।

द्रोणाचार्य ने अपने अद्भुत पराक्रम से पाण्डव सेना के

छक्के छुड़ा दिये। उन्होंने इस संग्राम में चेदि, कैकेय, सृन्जय और अनेक महारथियों को परास्त किया। उधर द्रुपद और विराट निरन्तर द्रोणाचार्य पर बाणों की वर्षा कर रहे थे, परन्तु बाणों की वह वर्षा आचार्य को तनिक भी प्रभावित न कर पा रही थी। अन्त में वे दोनों महारथी नरेश तथा कैकेय द्रोणाचार्य के हाथों मारे गये। यह देख धृष्टद्युम्न ने दोनों सेनाओं के मध्य में आकर द्रोणाचार्य को मार डालने की भीषण प्रतिज्ञा की। फिर वे आचार्य पर पूरी शक्ति से टूट पड़े। उन दोनों में इतना भयंकर घमासान युद्ध हुआ जितना कि अब तक कभी नहीं हुआ था। युद्ध करते-करते सूर्योदय हो गया और दोनों दल सूर्य की वन्दना करने लगे।

सूर्यवन्दन एवं उपासना के पश्चात् पुनः युद्ध प्रारम्भ हो गया। जो लोग सूर्योदय से पूर्व द्वंद्व युद्ध कर रहे थे वे ही लोग सूर्योदय के पश्चात् पुनः द्वंद्व युद्ध करने लगे। जब दुर्योधन धृष्टद्युम्न और द्रोणाचार्य के बीच में आ गये तो सात्यकि दुर्योधन से भिड़ गये। दोनों एक-दूसरे की ओर मुस्कराते हुए वार करने लगे। दुर्योधन ने दुःखी होकर कहा, "मित्र सात्यकि! यह कितने दुःख की बात है कि हम लोग कभी कितने घनिष्ठ मित्र थे। फिर भी आज तुम मेरे और मैं तुम्हारे प्राण लेने के लिए उद्यत हैं। मैं जानता हूँ कि दोनों में से कोई भी मारा जाय, जीवित रहने वाला अपने मित्र के लिए आँसू बहाये बिना नहीं रहेगा।" सात्यकि बोले, "दुर्योधन! मैं तुम्हारे मरने पर आँसू नहीं बहाना चाहता, मैं उस दृश्य को सहन भी नहीं कर सकूंगा। यदि तुम अब भी मुझसे स्नेह करते हो

तो तुम मुझे अब भी मार डालो। अपनी तीक्ष्णतम शक्ति का मुझ पर प्रयोग करो।"

फिर सात्यकि तुरन्त दुर्योधन के सामने आगे बढ़े। उन्होंने स्वयं को बचाने का बिलकुल प्रयास नहीं किया। तब दुर्योधन बोले, "सात्यकि! बाण चलाओ। यों अपनी बलि मत दो। अच्छा, पहले मैं ही बाण चलाता हूँ।" और फिर दोनों घनिष्ठ मित्र रणकौशल दिखाते हुए युद्ध करने लगे। सात्यकि के एक बाण से व्यथित हो दुर्योधन रथ के भीतर चले गए। और सात्यकि अपना रथ अन्यत्र ले गये।

तेरहवाँ अध्याय

धृष्टद्युम्न द्वारा निहत्थे द्रोणाचार्य का वध

संजय बोले—हे राजाधिराज! जब द्रोणाचार्य ने अपने अद्भुत पराक्रम से पाण्डव सेना का भयंकर रूप से संहार करना आरम्भ कर दिया तो पाण्डव वीरों के हृदय दहल उठे। स्वयं धर्मराज भी उनके आतंक से काँप उठे। पाण्डवों की यह दशा देख श्रीकृष्ण अर्जुन से बोले, "हे पार्थ! द्रोणाचार्य रण-विद्या के अद्वितीय ज्ञाता हैं। जब तक इनके हाथों में धनुष बाण रहेंगे, तब तक ये तुम्हारी सेना का इसी प्रकार संहार करते रहेंगे। अस्त्र-शस्त्र हाथ में रहते देवता भी इन्हें परास्त नहीं कर सकते। इसलिए ऐसा प्रयत्न करो कि ये अपने अस्त्र-शस्त्र का त्याग कर दें। इसका एक ही उपाय है। यदि अश्वत्थामा मारा जाय तो इसकी सूचना पाकर वे अस्त्र-शस्त्र त्याग देंगे, किन्तु अश्वत्थामा को मारना इतना सरल नहीं है। कोई उन्हें उसके मरने की मिथ्या सूचना दे दे तो भी काम चल सकता

है।" श्रीकृष्ण की यह सम्मति अर्जुन को रुचिकर नहीं लगी, किन्तु अन्य सब लोगों ने इस युक्ति को पसन्द किया। श्रीकृष्ण यह भी जानते थे कि आचार्य केवल युधिष्ठिर की बात का विश्वास करेंगे, परन्तु युधिष्ठिर मिथ्या भाषण के लिए तैयार नहीं हुए। तब भीमसेन ने अश्वत्थामा नाम के हाथी को मार दिया। उस हाथी के मारे जाने पर युधिष्ठिर ने कृष्ण के विवश करने पर द्रोणाचार्य के सम्मुख जाकर बड़े जोर से कहा 'अश्वत्थामा मारा गया' और धीरे से बोले, 'आदमी नहीं हाथी मारा गया।'

युधिष्ठिर की बात पर विश्वास कर द्रोणाचार्य ने शोकाकुल हो अपने अस्त्र-शस्त्र पृथ्वी पर डाल दिये। और रथ के पिछले भाग में जाकर बैठ गए। उसी समय द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न ने सबके मना करने पर भी द्रोणाचार्य के केश पकड़कर तलवार से उनका सिर काट डाला। अर्जुन उनकी रक्षा के लिए दौड़े, परन्तु तब तक उनका मस्तक विहीन शरीर पृथ्वी पर लोट चुका था।

जब अश्वत्थामा को छलपूर्वक अपने पिता के मारे जाने का समाचार मिला तो उनके नेत्रों में आँसू भर आए और मुखमण्डल क्रोध से लाल हो गया। जब उन्होंने यह सुना कि धृष्टद्युम्न ने उनके निहत्थे पिता का सिर काटा था तो उन्हें मारने की प्रतिज्ञा कर अश्वत्थामा ने नारायणअस्त्र का प्रयोग करने का निश्चय किया। जब अश्वत्थामा ने भयंकर नारायण अस्त्र को अपने हाथों में लिया तो उसे देखकर ही अनेक नरेश भयभीत हो गये। पाण्डव सेना उस अस्त्र का नाम सुनकर ही

भागने लगी। अपनी सेना को भागते देख युधिष्ठिर ने अर्जुन से इसका कारण पूछा। वे बोले, "पांचालकुमार धृष्टद्युम्न ने मेरे गुरु की जो उनके केश पकड़कर निर्मम हत्या की थी, उसका प्रतिशोध लेने के लिए उनका महान पराक्रमी पुत्र अश्वत्थामा नारायणास्त्र लेकर संग्राम भूमि में आ रहा है। उसी से भयभीत होकर आपकी सेना भाग रही है। आपने धर्मज्ञ होते हुए भी राज्य के लोभ से अपने गुरु के साथ छल किया, मिथ्या भाषण किया। इस महान पाप और कलंक से आपकी कभी मुक्ति नहीं होगी। मैं अपने नेत्रों के सम्मुख अपने गुरु की निरीह-हत्या होते देखता रहा। इससे तो मैं मर जाता तो अच्छा होता।"

अर्जुन की मर्मभेदी बातें सुनकर भीम ने कहा, "अर्जुन! क्या तुम्हें इस समय ऐसा कहना शोभा देता है? एक तो हम वैसे ही भय से पीड़ित हो रहे हैं, उस पर तुम हमें अपने वाग्बाणों से पीड़ित कर रहे हो। यदि तुम्हें अश्वत्थामा से भय लगता है तो तुम यहीं खड़े रहो। मैं अकेला ही उसे परास्त करूँगा।" तभी धृष्टद्युम्न ने अपने कृत्य का समर्थन करते हुए कहा, "अर्जुन! ब्राह्मणों के लिए केवल छः कर्म शास्त्रानुकूल हैं जो इस प्रकार हैं—यज्ञ करना और कराना, वेदों को पढ़ना तथा पढ़ाना, दान देना और दान लेना। द्रोणाचार्य ने इनमें से कौनसा कर्म किया था? उन्होंने तो अपना धर्म त्यागकर क्षत्रिय धर्म का आश्रय लिया था। यदि मैंने अपने धर्म से भ्रष्ट द्रोणाचार्य का वध कर दिया तो तुम मेरी निन्दा क्यों करते हो? मैं अश्वत्थामा से तनिक भी भयभीत नहीं हूँ। तुम्हीं मुझे यह

बताओ कि जो व्यक्ति ब्रह्मास्त्र का प्रयोग न जानने वालों को ब्रह्मास्त्र से मार डाले, क्या वह अधर्मी नहीं है ? और क्या ऐसे अधर्मी को मारना पाप है ? मैंने युद्ध नीति के अनुसार ही द्रोणाचार्य का वध किया है, क्योंकि वे मेरे शत्रु थे। जब तुम शिखण्डी की ओट में रहकर भीष्मपितामह को मार कर भी धर्मात्मा रह सकते हो, तो फिर मुझे अधर्मी कैसे कहते हो ? मैं केवल अपनी बहिन द्रौपदी के नाते तुम्हारी उल्टी-सीधी बातों को सह रहा हूँ। अब इन बातों को छोड़कर जाओ युद्ध करो। विजय तुम्हारी होगी। अश्वत्थामा तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा।''

धृष्टद्युम्न के वचन सुनकर कोई कुछ नहीं बोला। अर्जुन आँसू बहाते रहे, परन्तु सात्यकि से यह सहन नहीं हुआ वे रोष में भरकर बोले, "धृष्टद्युम्न! यह नीच कर्म करके भी तुझे लज्जा नहीं आ रही है जो ऐसी बातें कर रहा है। तेरी जीभ के सैकड़ों टुकड़े क्यों नहीं हो जाते ? तू लज्जा से डूब क्यों नहीं मरता ? तेरे अतिरिक्त ऐसा और कौन नीच पुरुष होगा जो इस प्रकार केश पकड़कर अपने गुरु का सिर काट सके! तू मेरे सम्मुख बार-बार मेरे गुरु और मेरे गुरु के भी गुरु की निन्दा कर रहा है। मेरे सामने से हट जा, अन्यथा मैं तेरा वध कर दूँगा।'' धृष्टद्युम्न ने क्रोध से तिलमिलाकर कहा, "दुष्ट सात्यकि! आज तू मेरी निन्दा कर रहा है। उस दिन तेरी यह धर्मबुद्धि कहाँ गई थी जब तूने मौन बैठे भुजाहीन भूरिश्रवा की हत्या की थी ? क्या ऐसा निन्दनीय कर्म करने वाला व्यक्ति दूसरे की निन्दा करने का अधिकारी है ? अश्वत्थामा से तो मैं फिर

निबटूँगा। आ, पहले तुझसे ही दो-दो हाथ कर लूँ।" जब इस प्रकार दोनों वीर परस्पर युद्ध करने को तैयार हो गये तो श्रीकृष्ण और अर्जुन ने बड़ी कठिनता से दोनों को शान्त किया।

चौदहवाँ अध्याय

अश्वत्थामा द्वारा नारायणास्त्र का प्रयोग

संजय बोले--अश्वत्थामा ने जो नारायणास्त्र प्रगट किया था उससे आकाश में सहस्रों बाण प्रकट हुए। सबके अग्रभाग प्रज्वलित हो रहे थे। कुछ ही क्षणों में वे बाण सब ओर फैल गये और उनसे जलते हुए गोले पाण्डव सेना पर आकर गिरने और उसका विनाश करने लगे। अपनी सेना का अभूतपूर्व विनाश होते देख युधिष्ठिर अत्यन्त भयभीत हो उठे। तब श्रीकृष्ण ने समस्त सैनिकों को सम्बोधित करते हुए कहा, "वीरो! तुम सब लोग भय छोड़कर अपने अस्त्र-शस्त्र पृथ्वी पर डालकर सवारियों से नीचे उतर जाओ। पृथ्वी पर निहत्थे खड़े लोगों पर यह अस्त्र वार नहीं करता। इससे बचने का एकमात्र उपाय यही है कि इस अस्त्र का सामना करने का विचार भी मन में नहीं आना चाहिए।" श्रीकृष्ण का आदेश पाते ही सब योद्धाओं ने तत्काल अपने अस्त्र-शस्त्र पृथ्वी पर फेंक दिये और स्वयं नीचे उतरकर खड़े हो गये।

भीमसेन को श्रीकृष्ण की बात रुचिकर प्रतीत नहीं हुई। वे बोले, "वीरो! अस्त्र-शस्त्र फेंककर क्षत्रिय धर्म पर कलंक मत लगाओ। आगे बढ़कर शौर्यपूर्वक युद्ध करो।" जब किसी ने भीमसेन की बात नहीं मानी तो वे अकेले ही गदा लेकर अश्वत्थामा से युद्ध करने के लिए दौड़े। जब सब पाण्डव

अस्त्र-शस्त्र त्यागकर पृथ्वी पर खड़े हो गए तो नारायणास्त्र की सम्पूर्ण शक्ति भीमसेन पर केन्द्रित होकर उन्हें जलाने लगी। जब श्रीकृष्ण के बहुत मना करने पर भी वे नहीं माने तो अर्जुन ने वरुणास्त्र छोड़कर नारायणास्त्र की ज्वाला को कम करने का प्रयत्न किया। फिर श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों भागकर भीमसेन के पास पहुँचे और उन्हें डाँटते हुए उनके हाथों से सब अस्त्र-शस्त्र छीनकर भूमि पर पटक दिये और उन्हें पकड़कर पृथ्वी पर खड़ा कर दिया। इस प्रकार श्रीकृष्ण की युक्ति से वह नारायणास्त्र शान्त हुआ।

नारायणास्त्र के शान्त होते ही पाण्डव सेना फिर आपकी सेना के साथ युद्ध करने लगी। यह देख दुर्योधन ने नारायणास्त्र का फिर उपयोग करने के लिए जब अश्वत्थामा से कहा तो अश्वत्थामा ने बताया, "इस अस्त्र को न तो दुबारा लौटाया जा सकता है और न दुबारा प्रयोग ही किया जा सकता है। यदि इसका दुबारा प्रयोग किया जाय तो यह प्रयोग करने वाले को ही मार डालता है। यदि आज श्रीकृष्ण ने इसके निवारण का उपाय न बताया होता तो आज सेना सहित समस्त पाण्डव नष्ट हो जाते।" यह कहकर अश्वत्थामा अपने शिविर को लौट गए। उस दिन का युद्ध समाप्त हो गया। इस प्रकार पाँच दिन तक द्रोणाचार्य अपना अद्भुत पराक्रम दिखाकर ब्रह्मलोक को गये।

॥ इति द्रोण पर्व सम्पूर्ण ॥

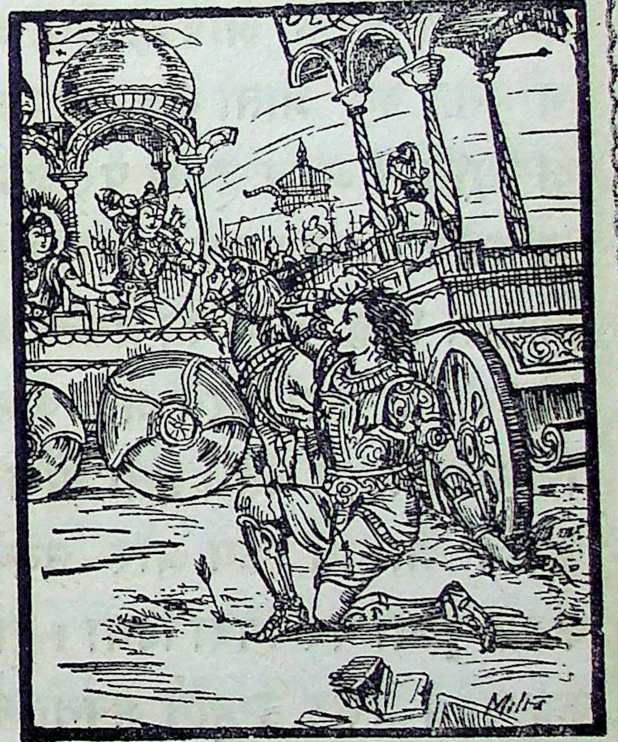
॥ ओ३म् ॥

महाभारत भाषा

८. कर्ण पर्व



भीम द्वारा दुःशासन का रक्तपान



अर्जुन द्वारा कर्ण वध

पहला अध्याय

कर्ण का सेनापति बनना, भीम द्वारा क्षेमधूर्ति का वध

संजय बोले—राजन् ! द्रोणाचार्य की मृत्यु के पश्चात् दुर्योधन ने परस्पर परामर्श करके अत्यन्त बलवान, शूरवीर, पराक्रमी कर्ण को कौरव सेना का सेनापति बनाया। सेनापति बनते ही कर्ण ने सेना को आज्ञा दी कि वह सूर्योदय के समय युद्ध करने के लिए तैयार रहे। प्रातःकाल कर्ण श्वेत रंग के

घोड़ों वाले रथ पर दिव्य धनुष बाण लेकर शंखध्वनि करता हुआ अपने शिविर से बाहर निकला। सबसे पहले उसने मकर व्यूह की रचना की। यह देखकर अर्जुन ने युधिष्ठिर के परामर्श से अर्द्धचन्द्राकार व्यूह का निर्माण किया। इसके पश्चात् दोनों पक्षों के वीर योद्धा उत्साहपूर्वक युद्ध करने लगे। घमासान युद्ध आरम्भ हो गया। इस समय पाण्डवों ने भीमसेन को आगे करके आपकी सेना को मथना आरम्भ कर दिया। भीमसेन को आता देख आपकी सेना के पराक्रमी महारथी क्षेमधूर्ति ने अपने हाथी पर बैठे हुए उन्हें ललकारा और फिर भीमसेन से भिड़ गये। दोनों एक दूसरे पर रणकौशल में अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने का प्रयत्न करने लगे। कभी वे शक्ति और तोमरों की वर्षा करते और कभी एक-दूसरे का धनुष काटकर छिन्न-भिन्न कर देते। इसी बीच क्षेमधूर्ति ने भीमसेन पर अनेक कठोर आघात किये और उनके हाथी को अत्यधिक घायल करके पृथ्वी पर गिरा दिया। हाथी के गिरते ही भीमसेन नीचे कूद पड़े। फिर उन्होंने अपनी गदा से क्षेमधूर्ति के हाथी को मार डाला। तब क्षेमधूर्ति तलवार लेकर भीमसेन को मारने को दौड़ा किन्तु भीमसेन ने उसके मस्तक पर इतने वेग से गदा मारी कि उसके प्राण पखेरू उड़ गये। क्षेमधूर्ति के मर कर गिरते ही आपकी सेना भागने लगी।

कौरव सेना को भागते देख अश्वत्थामा ने भीमसेन पर धावा बोल दिया और दोनों घमासान युद्ध करने लगे। उस समय ऐसा प्रतीत होता था। मानो दो भयानक गजराज क्रुद्ध होकर एक-दूसरे से भिड़ रहे हों। दोनों ही पैंतरे बदल-बदल

कर अपने युद्ध कौशल का परिचय दे रहे थे। फिर दोनों ने अपने-अपने विपक्षी को मार डालने के विचार से एक साथ दो तीक्ष्ण बाण निकालकर एक ही साथ छोड़े। उन दोनों ही बाणों ने दोनों वीरों को घायल कर दिया। जिससे वे अपने अपने रथों में गिर पड़े। उनके गिरते ही उन दोनों के सारथि अपने-अपने रथों को वहाँ से हटा ले गये।

दूसरा अध्याय

कर्ण से नकुल की और युधिष्ठिर से दुर्योधन की पराजय

संजय बोले—जब नकुल कौरव सेना का संहार करने लगे तो कर्ण ने आकर उन पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। कर्ण के बाणों से घायल होकर नकुल ने भी कर्ण के धनुष को काटकर उसके सारथि को घायल कर दिया। कर्ण ने तत्काल दूसरा धनुष लेकर उन्हें बाणों से आच्छादित कर दिया। किन्तु नकुल ने इस आच्छादन को तत्काल ध्वंस कर दिया। फिर कर्ण ने हँसते हुए नकुल का धनुष काटकर उनके सारथि को नीचे गिरा दिया और चारों घोड़ों को मार डाला। उसने नकुल के दिव्य रथ को भी नष्ट कर दिया। जब नकुल स्वयं घायल हो गये तो कर्ण के सामने से हट गये। नकुल को भागते देख कर्ण ने उसके गले में अपना धनुष डाल कर रोक लिया और कहा, "पाण्डुकुमार! तुमने व्यर्थ ही बढ़ बढ़कर डींगें मारी थीं। अब मेरे बाणों की मार खाकर पुनः उन वचनों को दोहराओ। जाओ, घर भाग जाओ। मैं तुम्हें नहीं मारूँगा।" ऐसा कहकर उसने नकुल को छोड़ दिया। फिर वह वीर पाण्डव सेना का प्रलय की भाँति संहार करने लगा

उधर युधिष्ठिर और दुर्योधन के बीच भयानक युद्ध चल रहा था, जब दुर्योधन ने नौ तीक्ष्ण तीर युधिष्ठिर के मारे तो उन्होंने इसके बदले में दुर्योधन पर तेरह तीक्ष्ण बाण छोड़कर उन्हें घायल कर दिया। इसके उत्तर में दुर्योधन ने युधिष्ठिर का धनुष काट डाला। युधिष्ठिर ने तत्काल दूसरा धनुष लेकर दुर्योधन के ध्वज और धनुष दोनों काट डाले। फिर एक बाण मारकर उन्हें मूर्च्छित कर दिया। अगले ही क्षण मूर्च्छा से उठकर जब दुर्योधन ने युधिष्ठिर पर गदा से आक्रमण किया तो उन्होंने महाशक्ति का प्रहार करके उसका कवच फाड़ डाला। इतना ही नहीं, उस महाशक्ति ने वक्षस्थल में घुसकर दुर्योधन को घायल भी कर दिया। युधिष्ठिर एक भयानक बाण मारकर दुर्योधन का जीवन समाप्त करने जा रहे थे तभी भीमसेन ने अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाते हुए कहा, "महाराज! यह आपका वध्य नहीं है।" यह सुनकर युधिष्ठिर ने उन्हें छोड़ दिया।

इसी समय कृतवर्मा ने आकर दुर्योधन को रणभूमि से हटवा दिया और वे स्वयं युधिष्ठिर तथा भीमसेन से युद्ध करने लगे। दूसरी ओर कर्ण के प्रलयंकारी आक्रमण के फलस्वरूप पाण्डव सेना क्षत विक्षत हो रही थी। पाण्डव सेना की दुर्दशा देख अर्जुन ने आकर कर्ण पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। यह युद्ध चल ही रहा था कि सन्ध्या हो जाने के कारण आपकी सेना ने रात्रि में युद्ध करना अस्वीकार कर दिया। अतः दोनों सेनाएँ अपने-अपने शिविरों को लौट गईं।

तीसरा अध्याय

कौरवों की रात्रि में मन्त्रणा, शल्य का कर्ण का सारथि बनना

संजय बोले—हे कुरुश्रेष्ठ! रात्रि को कौरव शिविर में दुर्योधन, कर्ण आदि गुप्त मन्त्रणा करने लगे। उन्होंने गुप्तरूप से अगले दिन के युद्ध की रूपरेखा तैयार की जिसमें कर्ण ने अतुल पराक्रम दिखाने का वचन दिया। उसने कहा, "कल या तो मैं अर्जुन को युद्ध में मार डालूँगा या स्वयं लड़ते-लड़ते मर जाऊँगा। अर्जुन केवल एक बात में मुझसे श्रेष्ठ है। उसके पास कृष्ण जैसा सारथि है। यदि महाराज शल्य मेरे सारथि बनना स्वीकार कर लें तो यह कमी भी दूर हो सकती है।" यह सुनकर दुर्योधन ने मद्रनरेश शल्य से कर्ण का सारथि बनने को प्रार्थना की।

शल्य ने तीखे स्वर में कहा, "राजन्! तुम मेरे कुल, प्रतिष्ठा, पराक्रम को भूलकर मुझे सूतपुत्र कर्ण का सारथि बनने के लिए कहकर मेरा अपमान कर रहे हो। मुझे आशा नहीं थी कि तुम इस प्रकार मेरा अपमान करोगे। अब मैं युद्ध भी नहीं करूँगा।" ऐसा कहकर शल्य उठकर खड़े हो गये। दुर्योधन ने नम्र शब्दों में उनकी अभ्यर्थना करते हुए कहा, "आप ठीक कहते हैं। कर्ण आपसे कदापि श्रेष्ठ नहीं है। आप अश्वविद्या के सर्वोत्तम ज्ञाता हैं, इसीलिए मैंने आपसे यह प्रार्थना की है। सारा संसार जानता है कि आप अश्वविद्या में श्रीकृष्ण से भी अधिक पारंगत हैं।" इस प्रकार बार-बार प्रार्थना करने पर शल्य ने कर्ण का सारथि बनना स्वीकार कर लिया। साथ ही एक शर्त यह रख दी कि मैं कर्ण से जिस प्रकार

चाहूँगा, वार्त्तालाप करूँगा। उसे मेरी किसी बात का बुरा नहीं मानना होगा। दुर्योधन और कर्ण दोनों ने यह शर्त स्वीकार कर ली।

दूसरे दिन प्रातःकाल जब कर्णयुद्ध करने चला तो उसने आदरपूर्वक पहले शल्य को रथ पर चढ़ाया। फिर बोला, "शल्य! आज तुम देखोगे कि मैं किस प्रकार अर्जुन को परास्त करके सब पाण्डवों का वध करूँगा।" शल्य ने कहा, "सूतपुत्र! तुम्हारी ये बातें तभी तक हैं, जब तक तुम्हारा सामना अजेय अर्जुन से नहीं होता। गांडीव की मार के आगे तुम्हारी सारी डींगें धरी रह जायेंगी। जो तुम अर्जुन और श्रीकृष्ण को मारने के हवाई किले बना रहे हो, वे सब व्यर्थ हैं। हमने आज तक किसी गीदड़ को दो सिंहों को मारते नहीं सुना। यदि तुम कल्याण चाहते हो तो व्यूह रचना कर सैनिकों के बीच सुरक्षित रहकर ही अर्जुन से युद्ध करो।" शल्य की बात सुनकर कर्ण ने कहा, "शल्य! ऐसा प्रतीत होता है कि तुम वास्तव में मित्र के रूप में शत्रु हो जो मुझे भयभीत करना चाहते हो। परन्तु आज मेरे लक्ष्य से मुझे कोई भी विचलित नहीं कर सकता।"

कर्ण को अधिक क्रोधित करने के उद्देश्य से शल्य ने कहा, "कर्ण! जिस प्रकार कोई खरगोश गजराज को युद्ध के लिए ललकार कर उस पर विजय प्राप्त करने की इच्छा रखता है इसी प्रकार तुम अर्जुन से युद्ध करके उसे परास्त करने की दुराशा कर रहे हो। जैसे कोई गीदड़ सिंह से युद्ध करने के लिए गरजे, वैसा ही आज तुम कर रहे हो। क्या तुम विशाल सागर को केवल अपने हाथों के सहारे बिना किसी नौका के

पार करना चाहते हो ?" शल्य के कटु वचन सुनकर कर्ण बोला, "शल्य ! गुणीजनों के गुणों को गुणवान ही समझता है। तुम्हारे जैसा मूर्ख उन्हें नहीं समझ सकता। मैं अर्जुन के बल पराक्रम को जानकर ही उसके साथ युद्ध करने जा रहा हूँ। तुम जैसे कायर ही भयभीत होकर इस प्रकार का अनर्गल प्रलाप करते हैं। मैं तुम्हें बता दूं कि मैं पाण्डवों का विनाश करके तुम्हारा भी वध कर डालूंगा। क्योंकि कपट वेषधारी मित्र प्रत्यक्ष शत्रु से अधिक घातक होता है। मैं जानता हूँ, मद्रनिवासी मिथ्यावादी, दुरात्मा और कुटिल होते हैं। ये जन्म से म्लेच्छ धर्म-कर्म के बारे में बिल्कुल नहीं जानते। तुम भी उसका अपवाद नहीं हो। मुझे प्रतीत होता है कि तुम दुर्योधन के मित्र के रूप में पाण्डवों के गुप्तचर हो। चाहे कुछ भी हो तुम मुझे भयभीत नहीं कर सकोगे। अच्छा, अब तुम चुपचाप बैठे रहो। यदि तुम बोलोगे तो मैं तुम्हारे टुकड़े करके माँसाहारी पक्षियों को खिला दूँगा।"

शल्य बोले, "कर्ण ! मैं इन धमकियों से नहीं डरता। इस समय तुम्हारा सारथि होने के कारण मैं तुम्हारे हित की बात कह रहा हूँ। मैं एक दृष्टान्त सुनाता हूँ। उसे सुनकर तुम अपना मार्ग स्वयं चुन लेना। एक बार समुद्रतटीय नगर में एक धनी दानी वैश्य रहता था। उसके अनेक अल्प व्यस्क यशस्वी पुत्र थे। वहाँ एक काग भी था जो उनकी बची जूठन खाता था। पौष्टिक जूठन खा खाकर कौआ अभिमान में भरकर श्रेष्ठ पक्षियों का अपमान करने लगा। एक दिन उस समुद्र तट पर मानसरोवर के कुछ राजहंस आये। उन्हें देखकर बालकों ने

कौए से कहा—तुम भी इनके समान दूर-दूर तक ऊँचे उड़ सकते हो। फिर क्यों नहीं उड़ते? उस अभिमानी कौए ने पहले तो यह देखा कि उन राजहंसों में सबसे अधिक दूर तक कौन उड़ता है। फिर एक राजहंस को ललकारते हुए बोला—आओ, हम दोनों उड़ने की प्रतियोगिता करें।

उस श्रेष्ठ हंस ने कहा—अरे जूठन खाने वाले कौए! तू हम मानसरोवर निवासी राजहंसों को ललकारने की मूर्खता क्यों कर रहा है? हमारी लम्बी उड़ान के कारण ही संसार में हमें सम्मान प्राप्त है। यह सुनकर कौआ बोला—मैं एक सौ एक प्रकार की उड़ानें उड़ सकता हूँ। और वह सभी सौ सौ योजन की और विविध प्रकार की होती हैं। कौए की गर्वोक्ति सुन हंस बोला—मैं तो एक ही उड़ान जानता हूँ। तू भी जिस उड़ान को उचित समझे, उड़।

हंस और कौआ होड़ लगाकर उड़ चले। राजहंस एक गति से उड़ रहा था और कौआ अपनी उड़ान में विविधता का प्रदर्शन कर कौओं का मनोरंजन कर रहा था। वे काँव काँव करके अपनी प्रसन्नता व्यक्त कर रहे थे और राजहंस का उपहास कर रहे थे। थोड़ी देर में कौआ थक गया। हंस समुद्र पर उड़ता जा रहा था। थके हुए कौए को विश्राम करने के लिए कोई पेड़ पौधा भी दिखाई नहीं दे रहा था। अतः वह भयतीत होकर अचेत हो गया। कौआ हंस से बहुत पीछे रह गया। और बार-बार पानी पर गिर रहा था। हंस ने पूछा—काग! यह कौनसी उड़ान थी जो तू बार-बार पानी पर गिर रहा था? कौए ने उससे क्षमा माँगते हुए कहा—मुझे क्षमा

करो और किसी प्रकार मुझे वापिस अपने द्वीप पर पहुँचा दो। जब कौआ पानी में डूबने लगा तो हंस ने उसे पानी से बाहर निकालकर अपनी पीठ पर बिठाकर उसके स्थान पर पहुँचा दिया। जैसे वह कौआ जूठन खाकर पला और अभिमान करने लगा उसी प्रकार तुम भी धृतराष्ट्र के पुत्रों की जूठन खाकर स्वयं को अद्वितीय योद्धा समझने लगे हो। याद करो, अब तक तुम अर्जुन के सामने कितनी बार पीठ दिखाकर भाग चुके हो। इसलिए उचित यह होगा कि तुम उससे युद्ध करने का विचार त्याग दो।"

कर्ण बोला, "शल्य! चाहे तुम कुछ भी कहो, कितने ही दृष्टान्त दो, तुम मुझे भयभीत नहीं कर सकते। मैं तुम्हें क्षमा करने का वचन दे चुका हूँ इसलिए अभी तक तुम जीवित हो।" दुर्योधन ने कर्ण को समझाकर और शल्य को हाथ जोड़कर चुप कराया।

उधर अर्जुन ने जब संशप्तकों पर धावा बोल दिया तो संशप्तकों ने भी पूरे उत्साह से अर्जुन का सामना किया किन्तु उनका यह उत्साह अधिक समय तक न चल सका। वे शीघ्र ही इधर-उधर बचकर अपने प्राण बचाने लगे। उधर वीर कर्ण भी पाण्डव सेना का संहार करता हुआ युधिष्ठिर के पास जा पहुँचा। पहले तो उसने अपने बाणों से युधिष्ठिर को पीड़ित किया फिर पाण्डव वीरों का संहार करने लगा। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि दो दिशाओं से महाकाल के रूप में अर्जुन और कर्ण उतर आये हैं।

चौथा अध्याय

कर्ण का युधिष्ठिर को हराना किन्तु भीमसेन से हारना

संजय बोले—हे राजन् ! जब कर्ण ने अपने सम्मुख धृष्टद्युम्न तथा पाण्डव सेना को देखा तो उसने तीव्रगति से उन पर आक्रमण कर दिया। पांचाल सेना भी उसका अस्त्र-शस्त्रों से स्वागत करने के लिए तैयार थी। किन्तु शीघ्र ही पांचालों का उत्साह ठंडा हो गया और वे कर्ण के बाणों से हताहत होकर गिरने लगे। सेना की यह दुर्दशा देखकर कर्ण ने युधिष्ठिर पर धावा बोल दिया, परन्तु वह उनके रक्षकों के बाँध को सरलता से न तोड़ सका। तभी युधिष्ठिर ने अपने दस बाणों से कर्ण को बींध डाला। इन बाणों की मार से उत्तेजित होकर कर्ण ने भी एक साथ दस बाण छोड़कर युधिष्ठिर को घायल कर दिया। तब युधिष्ठिर ने एक तीक्ष्ण बाण कर्ण की पसली में मारा जिससे वह घायल होकर गिर पड़ा। थोड़ी देर में सँभलकर उस महावीर ने अपने पैने बाणों से युधिष्ठिर को आच्छादित कर दिया। उन्होंने तत्काल उस आच्छादन को विदीर्ण कर चार तोमरों से कर्ण की भुजाओं, ललाट एवं वक्ष पर वार किया। इससे क्रुद्ध हो उसने युधिष्ठिर के रथ, घोड़ों और सारथि को नष्ट कर डाला। इस प्रकार रथ विहीन युधिष्ठिर को मारने के लिए ज्योंही कर्ण ने प्राणनाशक बाण निकालकर छोड़ना चाहा त्योंही उसे कुन्ती को दिया गया वचन याद आ गया और उसने युधिष्ठिर को छोड़ दिया। वह बोला, "युधिष्ठिर ! तुम यज्ञ और स्वाध्याय ही किया करो। युद्ध करना तुम्हारे वश की बात नहीं है। जाओ, घर

जाकर विश्राम करो।" कर्ण के ये व्यंग बाण सहते हुए युधिष्ठिर अपने शिविर को लौट गए।

युधिष्ठिर के रणभूमि से हट जाने पर भीमसेन आदि महारथी कर्ण पर टूट पड़े। उन्होंने कर्ण की छाती पर एक पैना बाण मारा। इसके उत्तर में कर्ण ने अनेक बाण मारकर भीमसेन के धनुष के दो टुकड़े कर दिये। भीमसेन ने तत्काल दूसरा धनुष लेकर उसके मर्म स्थानों पर चोट की। जब कर्ण इन चोटों से घायल होकर मूर्च्छित हो गया तो शल्य उसे रणक्षेत्र से बाहर ले गये। कर्ण को परास्त करके भीमसेन ने उनकी सेना का संहार करना आरम्भ कर दिया। तब दुर्योधन ने भीमसेन से युद्ध करने के लिये अपने भाइयों को भेजा। उन्हें देखते ही भीमसेन ने क्रोधावेश में विवित्सु, विकट, सम, क्राथ, नन्द और उपनन्द को मार गिराया। उनके मरते ही आपके शेष पुत्र वहाँ से भाग गये। इसी बीच में चैतन्य होकर कर्ण फिर युद्धभूमि में आकर भीमसेन से संग्राम करने लगा। उसने भीमसेन के सारथि को मारकर उनका धनुष काट डाला। रथहीन होकर भीमसेन ने हाथ में गदा लेकर कौरव सेना को मारना आरम्भ कर दिया जिससे भयभीत होकर वह इधर-उधर भागने लगी।

उस समय अर्जुन संशप्तकों से, भमसेन कौरवों से और कर्ण पांचालों से युद्ध कर रहे थे। इन तीनों महारथियों ने असंख्य सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया। उधर नकुल और सहदेव दुर्योधन से युद्ध कर रहे थे। तभी धृष्टद्युम्न भी आपके पुत्र से युद्ध करने के लिए पहुँच गये।उ न्होंने आते ही

दुर्योधन के रथ, ध्वज, खड्ग, शक्ति, गदा एवं कवच नष्ट कर दिये। अपने भाई की यह दुर्दशा देख दण्डधार उन्हें अपने रथ पर बिठाकर ले गया। कर्ण ने वहाँ पहुँचकर ऐसा भीषण युद्ध कौशल दिखाया जैसा अब तक भीष्म और द्रोणाचार्य भी नहीं दिखा सके थे। इस अद्भुत शौर्य की चर्चा सुनकर अर्जुन भी श्रीकृष्ण सहित वहाँ आ पहुँचे और कर्ण से भिड़ गए। उसी समय अश्वत्थामा भी वहाँ आ पहुँचे और भीषण नरसंहार करने लगे। अश्वत्थामा का यह शौर्य देख श्रीकृष्ण ने अर्जुन को और अधिक तीव्रता से युद्ध करने के लिए उत्तेजित किया। इससे प्रेरित हो अर्जुन ने चौदह भल्ल बाण मारकर अश्वत्थामा का धनुष, ध्वज, छत्र, पताका काट दिये और स्वयं को घायल कर दिया। घायल अश्वत्थामा को उनका सारथि रणभूमि से बाहर ले गया। चैतन्य होने पर अश्वत्थामा ने प्रतिज्ञा की कि जब तक मैं अपने पितृघाती धृष्टद्युम्न को नहीं मार डालूँगा तब तक अपना कवच नहीं उतारूँगा।

पाँचवाँ अध्याय

अर्जुन द्वारा कर्ण को मारने की प्रतिज्ञा, अर्जुन का अपमान

संजय बोले—हे भरतश्रेष्ठ! इस प्रकार प्रतिज्ञा करके अश्वत्थामा धृष्टद्युम्न के पास पहुँचे और उसके साथ भयंकर युद्ध करने लगे। उसने धृष्टद्युम्न के धनुष, ध्वज को काटकर घोड़ों और सारथि को मार डाला। वे तलवार और ढाल लेकर अश्वत्थामा की ओर दौड़े, किन्तु उन्होंने उनके भी टुकड़े कर दिए। फिर भी वह उन्हें न मार सके तो रथ से उतरकर उन्हें पकड़कर खींचने लगे। तभी अर्जुन ने अश्वत्थामा पर अनेक

बाण छोड़े। इस पर वह धृष्टद्युम्न को छोड़कर पुनः अपने रथ पर जा चढ़े और अर्जुन से युद्ध करने लगे। अर्जुन ने जब एक नाराच बाण मारकर उन्हें घायल तथा मूर्च्छित कर दिया तो उनका सारथि उन्हें रथ सहित समरभूमि से दूर ले गया।

जब अर्जुन को रणभूमि में युधिष्ठिर कहीं दिखाई न दिए तो उन्होंने कृष्ण से कहा, "मुझे तत्काल धर्मराज के पास ले चलो। वे कहाँ हैं? मैं उनके दर्शन करना चाहता हूँ।" यह सुनकर श्रीकृष्ण अपना रथ युधिष्ठिर के पास ले गये। इन दोनों को आते देख उन्होंने समझा कि कर्ण युद्ध में मारा गया। अतएव प्रसन्नतापूर्वक कर्ण के मारे जाने का वृत्तान्त पूछने लगे। जब उन्हें मालूम हुआ कि कर्ण अभी तक नहीं मारा गया तो उन्हें बड़ी निराशा हुई और वे उसके द्वारा किये गए अपमान को स्मरण करके दुःखी होने लगे। उनको दुःख से व्याकुल होता देख अर्जुन ने प्रतिज्ञा की, "आप इस प्रकार दुःखी न हों। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज मैं कर्ण का अवश्य वध करूँगा। यदि मैं यह प्रतिज्ञा पूरी न कर सकूँ तो मेरी वही गति हो जो प्रतिज्ञा भंग करने वाले की होती है।"

यह सुनकर युधिष्ठिर बोले, "जब कर्ण अभी तक जीवित है तो तुम मेरे पास क्यों आये हो? तुम भीमसेन को कर्ण के बाणों का शिकार बनने के लिए छोड़कर भयभीत हो यहाँ चले आये। धिक्कार है तुम्हारे भ्रातृ प्रेम पर। यदि तुम्हें कर्ण से भयभीत होकर नाममात्र की प्रतिज्ञाएँ ही करनी थीं तो तुमने द्वैतवन में साफ-साफ क्यों नहीं कह दिया कि मैं कर्ण से युद्ध नहीं कर सकूँगा। फिर हम कौरवों से युद्ध क्यों मोल

लेते ? तुमने हमें स्वर्ग का आश्वासन देकर घोर नरक में धकेल दिया। तुम केवल बातून और कायर हो। श्रीकृष्ण जैसे कुशल सारथि के होते तुम रणभूमि से भाग आये। तुम्हें सौ-सौ बार धिक्कार है।" इस प्रकार धिक्कारे जाने पर अर्जुन के नेत्र क्रोध से लाल हो गए। उनके सम्पूर्ण शरीर में क्रोध की ज्वालाएँ उठने लगीं। उन्होंने युधिष्ठिर का वध करने के लिए तलवार उठा ली। उनके मन को बात समझकर श्रीकृष्ण ने कहा, "पार्थ! यह क्या कर रहे हो? तुम किसे मारना चाहते हो?"

अर्जुन बोले, "मेरी प्रतिज्ञा है कि जो मेरा अपमान करेगा मैं उसे कभी जीवित नहीं छोड़ूंगा।" आज इस धर्म-भीरु नरेश ने मेरा घोर अपमान किया है। मुझ पर कायरता का लाँछन लगाया है। मैं इसे जीवित नहीं छोड़ूंगा।" यह सुनकर श्रीकृष्ण बोले, "अर्जुन! अब मुझे भी कहना पड़ेगा कि तुम्हें धिक्कार है। तुम निर्बुद्धि हो। तुम्हारे अन्दर गुरुजनों के प्रति सम्मान की भावना नहीं है। तुम्हें शास्त्र का भी ज्ञान नहीं है। इसीलिए तुम कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य में भेद नहीं कर पाते। तुम अज्ञानवश अपने आपको धर्मज्ञ मान बैठे हो। तुम मूर्ख व्यक्ति की भाँति अपने ज्येष्ठ भ्राता का वध करना चाहते हो? तुमने नासमझ बालक की भाँति पहले कोई प्रतिज्ञा कर ली थी, अब उसके पालन के लिए इतना बड़ा पाप करने जा रहे हो।"

श्रीकृष्ण के वचन सुन अर्जुन ने पश्चाताप भरे स्वर में कहा, "केशव! इस समय मैं क्रोध के वशीभूत होकर अपनी समस्त बुद्धि खोकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया था। धर्मराज!

मुझे क्षमा करो। मैं घोर पापी हूँ जो ऐसा नीच कृत्य करने जा रहा था।" यह कहते हुए अर्जुन ने युधिष्ठिर के चरण पकड़ लिए। फिर बोले, "राजन्! अब कर्ण के वध में अधिक विलम्ब नहीं है। मैं तत्काल उससे युद्ध करने के लिए जा रहा हूँ।" अर्जुन को हृदय से लगाते हुए युधिष्ठिर ने कहा, "भाई! आज मैं सचमुच अपनी बुद्धि खो बैठा था। इसका कारण यह था कि युद्ध में कर्ण ने मेरे कवच, ध्वज, धनुष काटकर मुझे निरस्त्र कर दिया। फिर उसने मेरा अपमान किया। इसी से मैंने व्याकुल होकर तुम्हारे प्रति अशोभनीय शब्द कह डाले थे। तुम मेरे इन कठोर वचनों को भूल जाओ।" अर्जुन बोले, "हे तात! मैं अब जाता हूँ और आज कर्ण को मारे बिना आपके दर्शन नहीं करूँगा।" यह कहकर अर्जुन श्रीकृष्ण को साथ लेकर युद्ध करने के लिए चले गए।

छठा अध्याय

कर्ण और अर्जुन का युद्ध तथा भीमसेन द्वारा दुःशासन का वध व रक्तपान

संजय बोले—हे राजन्! जब अर्जुन युधिष्ठिर से विदा लेकर चले तब उनके मस्तिष्क में एक ही विचार घुमड़ रहा था कि मैं किस प्रकार आज कर्ण को मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करूँ। जब वे इस प्रकार चिन्ता में मग्न चले जा रहे थे तो श्रीकृष्ण बोले, "अर्जुन! तुम कर्ण को मारने तो जा रहे हो, किन्तु उसको मारना इतना सरल नहीं है। तुम युद्ध भूमि में उसको कदापि छोटा मत समझना। वह बलवान महारथी, अस्त्रविद्या का ज्ञाता, युद्ध कुशल और देशकाल का ज्ञान रखने वाला है। मैं उसे तुम्हारे समान अथवा तुमसे भी अधिक

रण-निपुण मानता हूँ। उसमें श्रेष्ठ शूरवीर के सभी गुण हैं। दुर्योधन उसी के बल पर नाच रहा है। उसका वध आवश्यक है, परन्तु इसके लिए तुम्हें अत्यधिक सूझ-बूझ और रण-कौशल का परिचय देना पड़ेगा।"

श्रीकृष्ण के वचनों से उत्साहित हो अर्जुन आपकी सेना का मर्दन करते हुए कर्ण की ओर बढ़ने लगे। जब भीमसेन को अर्जुन के आने की सूचना मिली तो वे और भी अधिक उत्साह से कौरव सेना पर प्रलय बनकर गिरने लगे। भागकर घायल योद्धाओं ने कर्ण की शरण ली। कर्ण ने उन्हें साहस बँधाते हुए पूरे वेग से पाण्डव सेना का संहार आरम्भ कर दिया। सैकड़ों योद्धाओं के मस्तक और भुजाएँ काटकर उन्हें यमलोक भेज दिया। उस समय वह पाण्डव सेना को साक्षात् यमराज प्रतीत हो रहा था। कर्ण का यह भीषण ताण्डव देख कर अर्जुन ने पूरी शक्ति से युद्ध करते हुए कौरव सेना का प्रलयंकारी विनाश करना आरम्भ कर दिया। उस समय कौरव पाण्डवों की विशाल सेनाएँ कर्ण और अर्जुनरूपी दो मस्त गज-राजों द्वारा निर्ममतापूर्वक रौंदी जा रही थी। अर्जुन की ओर लक्ष्य करके शल्य ने कर्ण से कहा, "कर्ण! यदि तुम आज अर्जुन को मार सको तो यह कौरव कुल के लिए कल्याणकारी होगा। इस समय तुम अकेले ही अर्जुन और श्रीकृष्ण को परास्त करने की शक्ति रखते हो। आगे बढ़कर उस पर आक्रमण करो। तुम्हारी विजय होगी।"

शल्य के ये शब्द सुनकर कर्ण ने प्रसन्न होकर कहा, "शल्य! इस समय तुम अपने वास्तविक रूप में हो और मुझसे

सहमत प्रतीत होते हो। आज मैं अकेला ही अर्जुन सहित समस्त पाण्डवों को नष्ट कर दूंगा। तुमने सच कहा है मैं आज अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों को अवश्य मारूँगा।" इधर कर्ण और शल्य का इसप्रकार वार्त्तालाप चल रहा था उधर अर्जुन और भीमसेन आपकी सेना को नष्ट करने में जुटे हुए थे। भीमसेन को उस समय कौरव सेना के लिए अधिक घातक समझकर आपका बलवान पुत्र दुःशासन उनसे आकर भिड़ गया। दोनों के मन में एक-दूसरे के प्रति तीव्र रोष तो था ही, अतः दोनों प्राणों की बाजी लगाकर परस्पर युद्ध करने लगे। जब भीमसेन ने दुःशासन पर एक भयंकर शक्ति छोड़ी तो दुःशासन ने एक साथ दस बाण छोड़ उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। फिर उसने भीमसेन पर एक भयंकर शक्ति चलाई। उस शक्ति को आते देखकर भीमसेन ने अपनी गदा को इस प्रकार घुमाकर फेंका कि उससे शक्ति तो खण्ड-खण्ड हो ही गई, दुःशासन का मस्तक भी अत्यधिक घायल हो गया। उसका कवच टूट गया और कपड़े फट गए। इसके पश्चात् दुःशासन की ओर दौड़कर भीमसेन उस पर सवार हो कर्ण, दुर्योधन, कृपाचार्य, अश्वत्थामा तथा कृतवर्मा को सम्बोधित करके बोले, "आज मैं दुःशासन को यमलोक भेज रहा हूँ। यदि तुम सब मिलकर उसकी रक्षा कर सकते हो तो करो।" फिर दुःशासन से बोले, "नराधम! तुझे स्मरण है न वह दिन, जब तूने कर्ण और दुर्योधन के सामने मुझे बैल कहा था। इसी हाथ से तूने राजसभा में द्रौपदी के केश खींचे थे। ले, यह हाथ।" कहकर उन्होंने दुःशासन की भुजा उखाड़ डाली और

उसी भुजा से उसे पीटने लगे। उन्होंने उसका हृदय चीर डाला और तलवार से मस्तक काट डाला। फिर उसका गर्म-गर्म रक्त चाटने लगे।

उस समय जिसने भी भीमसेन को दुःशासन का रक्त चाटते देखा, वह यह कहता हुआ भयभीत होकर भाग गया कि 'यह मनुष्य नहीं राक्षस है।' एक ओर सैनिक भयभीत होकर भाग रहे थे, दूसरी ओर क्रोध से भरकर आपके दस महापराक्रमी पुत्रों ने भीमसेन को घेरकर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा कर दी। किन्तु उस समय भीमसेन का साहस और उत्साह आकाश को छू रहा था। उन्होंने अपने पराक्रम से दसों राजकुमारों को मार गिराया। भीमसेन के इस अद्भुत कृत्य से कर्ण भी आतंकित हो गया। शल्य ने समयोचित वचन कह कर कर्ण को युद्ध के लिए प्रेरित किया।

सातवाँ अध्याय

अर्जुन द्वारा वृषसेन का वध, अश्वत्थामा द्वारा सन्धि का प्रस्ताव

संजय बोले—हे नृपशिरोमणि! अपने पिता कर्ण को हताश होता देख वृषसेन ने भीमसेन, नकुल और सहदेव तीनों पर एक साथ धावा बोल दिया। पहले तो उसने नकुल को अपने बाणों से बींध डाला। फिर उनके घोड़ों को मार डाला। जब अर्जुन ने वृषसेन के बाणों से नकुल के घोड़ों को मरते देखा तो वे वृषसेन को मारने के लिए बढ़े। उन्हें अपनी ओर आते देख वृषसेन ने अर्जुन को एक बाण से घायल कर बड़े उच्च स्वर में जयघोष किया। तभी अर्जुन ने कर्ण, दुर्योधन, अश्वत्थामा आदि लोगों को लक्ष्य करके कहा, "कर्ण! तुम सब

लोगों ने मिलकर मेरी अनुपस्थिति में मेरे पुत्र अभिमन्यु को मारा था। आज तुम सबके सामने मैं अकेला तुम्हारे पुत्र को मार रहा हूँ। बचा सकते हो तो बचाओ।" ऐसा कहकर अर्जुन ने चार तीक्ष्ण बाणों से उसके धनुष, दोनों भुजाओं एवं मस्तक को काट डाला।

वृषसेन को इस प्रकार मरते देख कर्ण शोक-विह्वल हो आँसू बहाने लगे। शल्य के समझाने से शान्त और क्रोधित होकर वह अर्जुन पर आक्रमण करने लगा। उनका भीषण संग्राम देखने के लिए कौरव और पाण्डव सेनाएँ युद्ध बन्द करके खड़ी हो गईं। कौरव कर्ण का और पाण्डव अर्जुन का उत्साह बढ़ाने लगे। उसी समय कर्ण ने शल्य से मुस्कराते हुए पूछा, "शल्य! सच बताना। यदि आज युद्ध में अर्जुन मुझे मार डाले तो तुम इस संग्राम में क्या करोगे?" शल्य बोले, "कर्ण! यदि अर्जुन तुम्हें मार डालेंगे तो मैं इसी रथ से श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों को मार डालूँगा।"

यही बात अर्जुन ने श्रीकृष्ण से पूछी, तो श्रीकृष्ण ने हँसकर कहा, "चाहे असम्भव बातें सम्भव हो जाएँ, किन्तु कर्ण किसी भी दशा में तुम्हें नहीं मार सकता। यदि ऐसा हो गया तो मैं अपनी दोनों भुजाओं से ही कर्ण और शल्य दोनों को मार डालूँगा। इसके पश्चात् समस्त सैनिक स्तब्ध होकर दोनों महान् धनुर्धारियों का महासंग्राम देखने लगे। तभी कर्ण की सहायता के लिए दुर्योधन, कृतवर्मा, शकुनि और कृपाचार्य श्रीकृष्ण और अर्जुन को अपने बाणों से पीड़ित करने लगे। यह देख अर्जुन ने सब महारथियों को घायल करके कर्ण को

भी अपने तीक्ष्ण बाणों से बींध डाला। साथ ही कौरव सेनानियों के मस्तक कट-कटकर पृथ्वी पर गिरने लगे। एक बार तो इस संहार से दुर्योधन का हृदय भी काँप गया।

इस अवसर पर अश्वत्थामा ने दुर्योधन को पृथक ले जाकर कहा, "दुर्योधन! अब तक बहुत जन-संहार हो चुका है। फिर भी विजय की कोई आशा दिखाई नहीं देती। मेरे विचार से तुम्हें अब पाण्डवों से सन्धि कर लेनी चाहिए। मैं युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण, अर्जुन आदि को सन्धि के लिए मना लूंगा। भीमसेन, नकुल, सहदेव आदि युधिष्ठिर की आज्ञा का विरोध नहीं कर सकेंगे। यदि तुम मेरी बात नहीं मानोगे तो कौरव कुल का नाश हो जाएगा। अपनी घनिष्ठ मित्रता को देखकर ही मैं तुम्हारे सम्मुख इस प्रस्ताव को रख रहा हूँ। तुम मान जाओगे तो कर्ण को भी मैं सहमत कर लूँगा।"

यह सुनकर दुर्योधन ने गहरा निःश्वास छोड़ते हुए कहा, "मित्र! तुम्हारा कथन सर्वथा उचित है, किन्तु भीमसेन ने जिस प्रकार दुःशासन का वध किया है, उसे देखते हुए मैं कदापि सन्धि नहीं कर सकता। फिर मैं जानता हूँ कि कर्ण के हाथों अर्जुन की अवश्य पराजय होगी और अन्त में हम विजयी होंगे।" इस प्रकार उसने अश्वत्थामा का सन्धि प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया।

आठवाँ अध्याय

अर्जुन द्वारा कर्ण का वध

संजय बोले—हे राजन्! इस बीच अर्जुन और कर्ण दोनों एक-दूसरे पर बढ़-चढ़कर आक्रमण कर रहे थे। कभी

कर्ण अर्जुन को घायल कर देता था तो कभी अर्जुन कर्ण को। पहले दोनों ने तीक्ष्ण बाणों का प्रयोग किया। फिर दोनों ही दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करने लगे। दोनों ही प्रति-स्पर्द्धा के साथ विपक्षी आक्रमणों को यथाशक्ति विफल कर रहे थे। जब अर्जुन ने आग्नेय अस्त्र का प्रयोग किया तो कर्ण ने वरुणास्त्र छोड़ा। अब उन्होंने वज्रास्त्र छोड़ा तो कर्ण ने भार्गवास्त्र का प्रयोग करके वज्रास्त्र के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। यह देखकर श्रीकृष्ण अर्जुन से बोले, "हे पार्थ! आज तुम्हें और तुम्हारे अस्त्रों को क्या हो गया है। सब कर्ण द्वारा सहज ही नष्ट हो रहे हैं। सावधान होकर संग्राम करो। तुम्हें कर्ण का वध करना है। इस प्रकार अपने अस्त्रों को नष्ट करवाकर खिलवाड़ मत करो।"

श्रीकृष्ण के इन वचनों से प्रेरित हो अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र को प्रकट किया और उससे कर्ण के अस्त्रों को नष्ट करने लगे। कर्ण ने उससे भी श्रेष्ठ अस्त्रों का प्रयोग करके अर्जुन को घायल कर दिया। जब क्रोधित होकर अर्जुन ने गांडीव की प्रत्यंचा को बहुत अधिक खींचा तो वह टूट गई। इस अवसर का लाभ उठाकर कर्ण ने उनको एक साथ सौ बाण मारकर घायल कर दिया। उनके शरीर के अनेक अंगों से रक्त प्रवाहित होने लगा। तभी उन्होंने गांडीव पर पुनः प्रत्यंचा चढ़ाकर बारह बाणों से कर्ण को और सात बाणों से शल्य को घायल कर दिया। इससे कुपित होकर कर्ण ने सर्पमुख बाण से प्रहार करने का निश्चय किया। यह बाण उसने अर्जुन को मारने के लिए ही सुरक्षित रख छोड़ा था। जब कर्ण ने उस बाण को धनुष पर चढ़ाया

तो शल्य ने कहा, "कर्ण! तुम्हारा यह बाण अर्जुन के कण्ठ में नहीं लगेगा। इसलिए सावधानी से इस बाण का पुनः सन्धान करो ताकि वह शत्रु का मस्तक काट सके।" यह सुन कर्ण ने रोषपूर्वक कहा, "शल्य! कर्ण दो बार बाण का सन्धान नहीं करता।" यह कहकर उसने बाण छोड़ दिया।

इस अमोघ बाण को आते देख श्रीकृष्ण ने अपने रथ को पैरों से इस प्रकार दबाया कि उसके पहियों का कुछ भाग धरती में धँस गया और घोड़े घुटनों के बल बैठ गए। इससे वह बाण लक्ष्य पर न लगकर अर्जुन के किरीट से लगा। जिससे किरीट पृथ्वी पर गिर पड़ा। फिर श्रीकृष्ण रथ को अपनी पूर्व स्थिति पर ले आये। इससे खीजकर कर्ण ने एक अन्य बाण छोड़कर अर्जुन को घायल कर दिया। अर्जुन ने भी अपने नाराच बाण से वैसा ही प्रत्युत्तर दिया। यह बाण कर्ण का कवच फाड़कर उसके शरीर में घुस गया। इस बाण से पीड़ित हो उसने श्रीकृष्ण के बारह और अर्जुन के निन्यानवे बाण मार कर दोनों को घायल कर दिया। यह देखकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को असाधारण अस्त्रों का प्रयोग करने का परामर्श दिया। इस परामर्श के अनुसार उन्होंने अपने धनुष पर रौद्राक्ष चढ़ाया तभी कर्ण के रथ का पहिया पृथ्वी में धँस गया। कर्ण ने अर्जुन से प्रार्थना की, "हे पार्थ! दो घड़ी प्रतीक्षा करो ताकि मैं इस पहिये को पृथ्वी से बाहर निकाल लूँ। इस समय मुझ पर बाण चलाकर कायरों जैसा व्यवहार मत करो क्योंकि तुम युद्ध कर्म में विशिष्ट वीर के रूप में प्रसिद्ध हो। युद्ध के धर्मों एवं नियमों के ज्ञाता हो।"

कर्ण की बात सुन श्रीकृष्ण बोले, "कर्ण! यह सौभाग्य की बात है कि आज तुम्हें धर्म का स्मरण हो रहा है। जब तुमने, दुर्योधन, दुःशासन तथा शकुनि ने रजस्वला द्रौपदी को सभा में बुलवाया था, तब तुम्हें धर्म का स्मरण नहीं आया? जब युधिष्ठिर को शकुनि ने जुए में छलपूर्वक हराया था, उस समय तुम्हारा धर्मबोध कहाँ चला गया था? जब लाक्षा-गृह में तुमने पाण्डवों को जलाने का प्रयत्न किया था तब तुम्हारा धर्म कहाँ था? जब तुमने बहुत से महारथियों के साथ मिलकर बालक अभिमन्यु को मार डाला था, तब तुम्हें धर्म का स्मरण क्यों नहीं आया था?" जब कर्ण इसका कोई उत्तर न दे सका तो अर्जुन ने अत्यन्त क्रोधपूर्वक उस पर बाणों की बौछार कर दी। तब कर्ण ने अर्जुन का वध करने के लिए एक भयंकर बाण छोड़ा जो उनके वक्षस्थल में जा टकराया। उसने कवच फाड़कर उन्हें घायल कर दिया। इससे अर्जुन को चक्कर आ गया। उधर अवसर पाकर कर्ण रथ के पहिये को बाहर खींचने का प्रयत्न करने लगा, परन्तु सफल न हो सका। इधर अर्जुन ने चैतन्य होते ही पहले बाण से कर्ण के रथ की ध्वजा काट दी। फिर उन्होंने अंजलिका बाण से कर्ण का मस्तक काट डाला। कर्ण के मरते ही कौरव सेना भयभीत हो अपने प्राण बचाकर भाग खड़ी हुई और पाण्डव सेना हर्षोल्लास से नाच उठी। यह दशा देखकर दुर्योधन के नेत्रों से अश्रु बहने लगे। उस दिन का युद्ध यहीं समाप्त कर दिया गया।

श्रीकृष्ण ने अर्जुन के साथ जाकर युधिष्ठिर को कर्ण के मारे जाने का समाचार सुनाया तो वे हर्षविभोर हो गये।

उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि कर्ण द्वारा किये गए अपमान की सारी पीड़ा सहसा लुप्त हो गई है। उनके नेत्रों से आनन्द के आँसू बहने लगे। पाण्डव दल के सभी महारथियों ने वहाँ आकर धर्मराज को बधाई दी और श्रीकृष्ण के चातुर्य तथा अर्जुन के रणकौशल की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

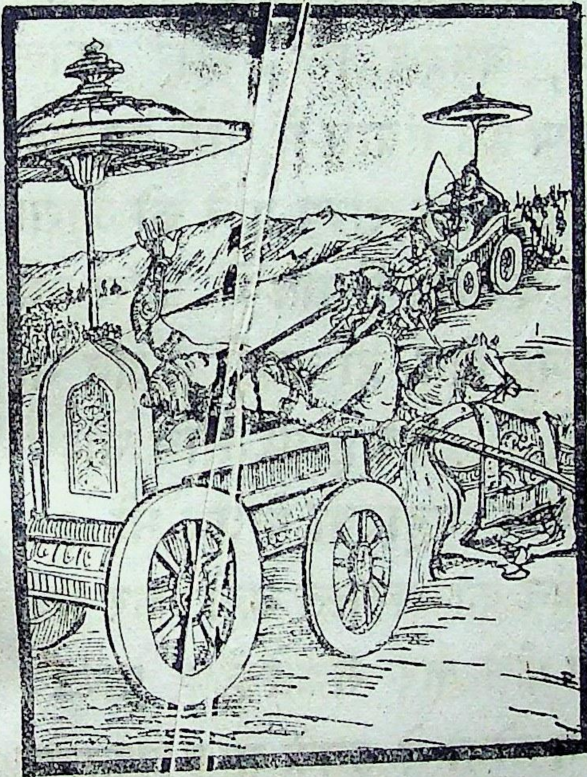
वैशंपायनजी बोले—हे राजा जनमेजय! संजय से कर्ण की मृत्यु का यह दुःखदायी समाचार सुनकर महाराज धृतराष्ट्र अत्यन्त दुःखी हो कटे वृक्ष की भाँति गिर पड़े। जब गांधारी को कर्ण की मृत्यु का समाचार मिला तो वह दूरदर्शिनी विदुषी भविष्य की कल्पना करके शोक-विह्वल हो विलाप करने लगी। उस समय विदुर ने गांधारी को और संजय ने धृतराष्ट्र को समझा-बुझाकर सान्त्वना दी।

॥ इति कर्ण पर्व सम्पूर्ण ॥

॥ ओ३म् ॥

महाभारत भाषा

९. शल्य पर्व



धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा शल्य वध



भीम व दुर्योधन का गदा युद्ध

पहला अध्याय

कृपाचार्य का सन्धि के लिए दुर्योधन को समझाना

संजय बोले—हे नृपश्रेष्ठ! युद्धक्षेत्र में कर्ण के मारे जाने और कौरव योद्धाओं के भारी संख्या में नष्ट हो जाने से आपके पुत्र दुर्योधन को अत्यन्त दुःख हुआ और वे सिर झुकाकर मणि-हीन सर्प की भाँति शोक-विह्वल हो गहरी-गहरी साँसें लेने लगे। उसकी यह दशा देखकर कृपाचार्य को उस पर बहुत

दया आई। वे उनसे बोले, "हे दुर्योधन! अब हमें इस प्रकार शोक करने से कोई लाभ नहीं हैं। तुम शान्त चित्त होकर मेरी बात ध्यानपूर्वक सुनो। यह सच है कि क्षत्रियों के लिए युद्ध से बढ़कर अन्य कोई कल्याणकारी मार्ग नहीं है। युद्ध में शत्रु को मारना अथवा उसके हाथ से मारा जाना दोनों ही श्रेष्ठ धर्म हैं। हमारे युद्ध की स्थिति इस समय कुछ भिन्न है। भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, कर्ण, जयद्रथ और तुम्हारे अनेक पराक्रमी भ्राता तथा पुत्र लक्ष्मण इस संग्राम में मारे जा चुके हैं। अब किस पर युद्ध का भार डालकर राज्य पाने की आशा करें। इस समय हम वास्तव में दयनीय स्थिति में पहुँच गये हैं। युद्ध प्रारम्भ हुए आज सत्रह दिन हो गये हैं। अब भी इसका पलड़ा हमारे पक्ष में नहीं है। जब हमारे साथ भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण जैसे विश्वविख्यात महारथी थे तब भी हम पाण्डवों को--और विशेषकर अर्जुन को--परास्त नहीं कर सके तो अब उन्हें हराने की आशा कैसे कर सकते हैं? पाण्डव लोग साधु पुरुष हैं। फिर भी तुम लोगों ने उनके साथ अकारण ही अनेक अनुचित कार्य किये हैं। इसी का फल आज हम लोगों को भुगतना पड़ रहा है। तुम्हारा स्वयं का जीवन संशय में पड़ गया है। शास्त्रों में कहा गया है कि जब अपना बल शत्रु के बराबर या उससे कम जान पड़े तो सन्धि कर लेनी चाहिए। यह निर्विवाद है कि हम लोग पाण्डवों से हीन हो गये हैं। ऐसी दशा में हमें उनके साथ सन्धि कर लेनी चाहिए। मूर्खतावश पराजय स्वीकार कर लेने से यह अच्छा होगा कि हम युधिष्ठिर के सम्मुख नतमस्तक होकर अपना राज्य प्राप्त कर

लें। युधिष्ठिर दयालु हैं। वे सन्धि प्रस्ताव अवश्य स्वीकार कर लेंगे।

कृपाचार्य का यह कथन सुनकर दुर्योधन थोड़ी देर तक चुप बैठे रहे। फिर गहरी साँस लेकर बोले, "आचार्य! आप मेरे शुभचिन्तक हैं, आपका कहना उचित है, किन्तु यह बात मुझे इस प्रकार रुचिकर नहीं लगती जिस प्रकार मरणासन्न रोगी को औषधि अच्छी नहीं लगती। हमने युधिष्ठिर के साथ छल किया है, फिर वे हमारी बात पर विश्वास कैसे करेंगे? श्रीकृष्ण और अर्जुन अभिमन्यु की मृत्यु को क्षमा नहीं कर सकेंगे और भीम मुझे मार डालने की प्रतिज्ञा को कभी झूठी नहीं होने देंगे। इसके अतिरिक्त जब मैं सम्पूर्ण पृथ्वी का एकछत्र सम्राट रह चुका हूँ तो पाण्डवों की कृपा का भिखारी कैसे बन सकता हूँ। आपके कथन को मैं दोषपूर्ण नहीं मानता। फिर भी मैं पाण्डवों के साथ सन्धि नहीं कर सकूँगा। मेरी मान्यता है कि यह समय कायरता दिखाने का नहीं, अपितु उत्साहपूर्वक युद्ध करने का है। मैंने अब तक वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत किया है, लोगों पर शासन किया है। अतएव अब मैं युधिष्ठिर के सम्मुख जाकर याचना नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त मित्रों, भाइयों और वृद्धजनों को मरवाकर मैं अपने प्राणों की रक्षा कर लोक में निन्दा का भागी नहीं बनना चाहता। मैं घर में खाट में पड़कर मरने की अपेक्षा संग्राम में शूरवीर की भाँति मरूँगा। यही मेरा अन्तिम निर्णय है।" यह कहकर वे पराजय का शोक छोड़ संग्राम में पराक्रम दिखाने के लिए उत्साहपूर्वक उठकर खड़े हो गये।

दूसरा अध्याय

शल्य का सेनापति बनना, कर्ण के तीन पुत्रों का वध

संजय बोले—हे राजा धृतराष्ट्र! कर्ण की मृत्यु से दुर्योधन को सब ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देने लगा। फिर भी उसने दैव और भविष्यता को प्रबल मानकर युद्ध जारी रखने का निश्चय किया। अपने पक्ष के बचे हुए महारथियों में मद्रराज शल्य को सबसे अधिक योग्य समझकर उसने उन्हें कौरव सेना का प्रधान सेनापति बनाया। जब युधिष्ठिर को शल्य के कौरव सेना का सेनापति बनने का समाचार मिला तो उन्होंने श्रीकृष्ण से पूछा, "दुर्योधन ने महापराक्रमी शल्य को अपनी सेना का सेनापति बनाया है। अब हमें क्या करना चाहिए।" युधिष्ठिर के वचन सुनकर श्रीकृष्ण बोले, "महाराज! शल्य अर्जुन और भीमसेन से भी अधिक पराक्रमी हैं। उनकी तुलना में केवल आप ही ठहर सकते हैं। इसलिए उनसे युद्ध करने का भार आप अपने ऊपर ही लीजिए। शल्य के मारे जाने पर कौरव सेना पूर्णतया दीन-हीन हो जायेगी। इसलिए आज के संग्राम में आप अपने तपोबल और क्षात्र बल का प रिचय दीजिये।" यह निश्चय हो जाने के पश्चात् सब लोग अपने-अपने शिविरों को चले गए।

जब शल्य की उपस्थिति में गुप्तचरों ने दुर्योधन को बताया कि शल्य से युद्ध करने के लिए युधिष्ठिर को पाण्डव सेना का सेनापति बनाया गया है तो शल्य ने कहा, "पाण्डव सेना में युधिष्ठिर से अधिक श्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं, परन्तु वे दोनों मिलकर भी बाहुबल में मुझसे श्रेष्ठ नहीं हैं। मैं रण-

भूमि में कुन्ती के सभी पुत्रों और सामने आए सोमकों को मार भगाऊँगा। मैं ऐसे व्यूह का निर्माण करूँगा जिसका भेदना शत्रु के लिए संभव नहीं होगा।" यह सुनकर कौरव सेना को विश्वास हो गया कि अब पाण्डव अवश्य शल्य द्वारा मारे जायेंगे।

प्रातःकाल सूर्योदय होते ही कौरव-पाण्डवों की सेनाएँ कोलाहल मचाती हुई उत्साहपूर्वक रणक्षेत्र में आ डटीं। उसी समय शल्य ने अपने वीरों को आदेश दिया कि कोई भी कौरव योद्धा अकेला रहकर पाण्डवों से युद्ध न करे। फिर वे कौरव सेना को साथ लेकर पाण्डव सेना पर टूट पड़े। शल्य ने इस संग्राम में 'सर्वतोभद्र' नामक व्यूह की रचना की थी। दोनों सेनाओं में घोर संग्राम होने लगा। इसी समय नकुल कर्ण के पुत्र चित्रसेन से युद्ध करने लगे। चित्रसेन ने नकुल का धनुष काटकर उनके ललाट पर तीन बाण मारे। फिर उनके सारथि को मारकर रथ को भी नष्ट कर दिया। इससे क्रोधित हो नकुल दौड़कर चित्रसेन के रथ पर चढ़ गए और देखते-देखते तीक्ष्ण तलवार से उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। अपने भाई को मरता देख कर्ण के दो पुत्रों सुषेण और सत्यसेन ने नकुल पर बाण बरसाने आरम्भ कर दिये। जब दोनों ने मिल कर नकुल को घायल कर दिया तो उन्होंने रथशक्ति से सत्य-सेन को मार डाला। इससे अत्यन्त कुपित होकर सुषेण ने नकुल के नये रथ और घोड़ों को नष्ट कर दिया। वे तत्काल रथ से कूद पड़े और उन्होंने एक अर्द्ध-चन्द्राकार तीक्ष्ण बाण चलाकर उसका मस्तक काट डाला। इन तीन वीरों के इस

प्रकार संग्राम में मारे जाने पर समस्त कौरव सेना में भय छा गया।

तीसरा अध्याय

युधिष्ठिर का शल्य को मारना

संजय बोले—हे राजन्! कर्ण के पुत्रों की मृत्यु से कौरव सेना पर जो भय छा गया था उसे दूर करने के लिए शल्य पाण्डव सेना का संहार करके अद्भुत पराक्रम दिखाने लगे। स्वयं युधिष्ठिर को भी उन्होंने अनेक बाण मारकर घायल कर दिया। युधिष्ठिर के घायल होने पर भीमसेन ने शल्य के रथ के चारों घोड़ों को मार डाला। इससे क्रोधित होकर शल्य ने भीमसेन की छाती में एक तोमर फेंककर मारा जिससे उनका कवच टूट गया। भीमसेन ने उस तोमर को निकालकर उसी से शल्य के सारथि की छाती छेद डाली जिससे वह रक्त का वमन करता हुआ धराशायी हो गया। सारथि के मरते ही शल्य हाथ में गदा लेकर भीमसेन की ओर लपके। उत्तर में भीमसेन ने भी गदा सँभाल ली। गदा युद्ध में दोनों ही असाधारण योद्धा थे। दोनों एक-दूसरे पर पैंतरे बदल-बदल कर आक्रमण करने लगे। युद्ध करते-करते दोनों एक साथ पृथ्वी पर गिर पड़े। कृपाचार्य शल्य को अपने रथ पर बिठाकर अन्यत्र ले गये और भीम अगले ही क्षण उठकर खड़े हो गए।

दुर्योधन ने तत्काल आगे बढ़कर अपने बाणों से चेकितान को घायल करके मार डाला। इतने में शल्य सचेत होकर फिर रणक्षेत्र में आये। इस बार उनके साथ कृपाचार्य, कृतवर्मा और शकुनि भी थे। वे सब युधिष्ठिर से भिड़ गए। उधर

अश्वत्थामा के साथ तीन सहस्र योद्धा अर्जुन के विरुद्ध लड़ रहे थे। इस प्रकार घोर घमासान मचा हुआ था। उस समय प्रत्येक योद्धा मारो या मरो के विचार से युद्ध कर रहा था। शल्य ने युधिष्ठिर को पैने बाणों से बींध डाला। जब युधिष्ठिर की सहायता के लिये अनेक पाण्डव महारथी आगये तो शल्य ने अपने तीक्ष्ण बाणों से सात्यकि, भीमसेन, नकुल तथा सहदेव को भी घायल कर दिया। ऐसा प्रतीत होता था कि कोई पाण्डव उनके सम्मुख नहीं ठहर सकेगा। उनके युद्ध की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे अकेले ही सम्पूर्ण पाण्डव सेना के साथ युद्ध कर रहे थे। पाण्डव और कौरव दोनों ही दलों के योद्धा उनके रणकौशल को देखकर दंग थे।

युधिष्ठिर यह निश्चय करके शल्य के सम्मुख आये कि या तो मैं युद्ध में विजय प्राप्त करूँगा अथवा अपने प्राण दे दूंगा। उन्होंने आते ही शल्य और कौरव सेना पर बाणों की बौछार कर दी। सहस्त्रों सैनिकों का थोड़ी ही देर में संहार कर दिया। फिर दोनों वीर परस्पर घात-प्रतिघात करने लगे। दोनों ही एक-दूसरे के बाणों से घायल हो रहे थे। फिर भी दूने उत्साह से युद्ध कर रहे थे। सहसा शल्य ने युधिष्ठिर का धनुष काट डाला। इसके उत्तर में युधिष्ठिर ने दूसरे धनुष से एक साथ तीन सौ बाण छोड़कर शल्य को घायल कर दिया। उनके धनुष के दो टुकड़े कर दिए और पार्श्व-रक्षकों को यम-लोक भेज दिया। तब शल्य ने दूसरा धनुष ले युधिष्ठिर को घायल कर सिंह की भाँति गर्जना की। युधिष्ठिर ने फिर भी साहस न छोड़ा और शल्य पर अनेक तीक्ष्ण बाणों से प्रहार

किया। शल्य भी उतनी ही उग्रता से युधिष्ठिर के आक्रमणों का प्रतिकार कर रहे थे। जब उनका रथ घोड़ों और सारथि सहित नष्ट हो गया तो वे हाथ में ढाल और तलवार लेकर धर्मराज की ओर दौड़े। तभी युधिष्ठिर ने एक शक्तिशाली शक्ति उन पर चलाई जिसने उनका वक्षस्थल चीरकर उन्हें सदा के लिये धराशायी कर दिया। शल्य के मरने पर उनका भाई क्रुद्ध होकर युधिष्ठिर को मारने के लिए दौड़ा किन्तु एक पल के संग्राम के उपरान्त ही उसकी भी जीवन-ज्योति बुझ गई। इस प्रकार मद्र नरेश और उनके भ्राता के मारे जाने से कौरव सेना का साहस टूट गया।

चौथा अध्याय

अर्जुन-भीम का पराक्रम, कौरव पुत्रों का संहार

संजय बोले—हे कुरुश्रेष्ठ! जब कौरव सेना प्राण बचा कर रणभूमि से भागने लगी तब दुर्योधन और शकुनि ने मिल कर अपनी सेना को प्रोत्साहित करके पाण्डवों से लड़ने के लिए तैयार किया। परन्तु अर्जुन और भीमसेन द्वारा किये गये नरसंहार ने उनके पैर फिर उखाड़ दिये। दुर्योधन ने उन्हें रोकते हुए कहा, "वीरो, इस प्रकार प्राण लेकर भागने से क्या लाभ? क्या तुम्हें पृथ्वी, आकाश, पाताल में ऐसा कोई स्थान दिखाई देता है, जहाँ जाकर तुम पाण्डवों की क्रोधाग्नि से बच सकोगे? शान्त हृदय से सोचो, अब पाण्डवों के पास बहुत थोड़ी सेना शेष रह गई है। अर्जुन और भीम भी घायल हो चुके हैं। यदि हम साहसपूर्वक इनका सामना करें तो हम अब भी विजय प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए हम सबको संगठित

होकर उनसे युद्ध करना चाहिए। अलग-अलग भागने से तुम लोग निर्बल हो जाओगे। ऐसी दशा में पाण्डव तुम्हें बड़ी सरलता से मार डालेंगे। यदि हमें मरना ही है तो हम युद्ध करते हुए क्यों न मरें ताकि हम स्वर्ग के अधिकारी हो सकें। क्षत्रिय धर्म के अनुसार संग्राम में प्राप्त मृत्यु ही कल्याणकारी है।'' दुर्योधन के वचनों से उत्साहित होकर सभी शूरवीर पाण्डवों से पुनः युद्ध करने के लिये तैयार हो गये।

पुनः दोनों पक्षों में युद्ध प्रारम्भ हो गया। धृष्टद्युम्न और सात्यकि के भीषण वारों से व्यथित होकर कौरव वीर फिर भागने लगे। क्योंकि उनका साहस टूट चुका था और उनके अस्त्र-शस्त्र नष्ट हो चुके थे। उन सबकी यह दुर्दशा मुझसे नहीं देखी गई। इसलिए मैं स्वयं चार महारथियों को लेकर धृष्टद्युम्न की सेना से युद्ध करने लगा। हमने बड़ी वीरता से युद्ध किया परन्तु हमें वहाँ से परास्त होकर हटना पड़ा। तभी सात्यकि ने मुझ पर धावा बोल दिया। उन्होंने मेरी सारी सामग्री नष्ट कर दी और मुझे बाण मारकर घायल कर दिया। जब मैं रणभूमि में मूर्च्छित हो गया तो वे मुझे पकड़कर ले गये। इधर जब आपके राजकुमारों को दुर्योधन दिखाई नहीं दिये तो उन सभी ने एकत्रित होकर भीमसेन को मार डालने के लिए उन पर आक्रमण कर दिया। परन्तु वे भीमसेन के सम्मुख अधिक समय तक टिक नहीं सके और थोड़ी ही देर में मरकर यमलोक सिधार गए।

पाँचवाँ अध्याय

अर्जुन द्वारा सुशर्मा और सहदेव द्वारा शकुनि का वध

संजय बोले—हे राजन् ! दुर्योधन ने रणभूमि से हट कर अश्वारोहियों के मध्य में खड़े हो अन्तिम युद्ध के लिए व्यूह बनाने का विचार किया। उस समय दुर्योधन के पास आपका दूसरा पुत्र सुदर्शन खड़ा था। आपके सौ पुत्रों में से एक पाण्डवों के साथ जा मिला था। सत्तानवे भीम के हाथों मारे जा चुके थे। अब ये दो ही शेष बचे थे। इन दोनों तथा शेष बची सेना का संहार करने के लिए भीमसेन, अर्जुन और सहदेव तीनों एक साथ बढ़े। उनकी ओर इन पाण्डव पुत्रों को आता देख शकुनि युद्ध करने के लिए आगे बढ़ा। सुशर्मा भी उसके साथ हो लिया और दोनों अर्जुन पर आक्रमण करने लगे। अर्जुन ने उनकी सेना को नष्ट करके सत्यकर्मा के घोड़ों को मार डाला फिर क्षुरप्र बाणों से सत्यकर्मा का भी सिर काट डाला। एक अन्य बाण से सत्येषु को मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया। इस युद्ध में सुशर्मा भी अर्जुन के हाथों से नहीं बच सका। इसके पश्चात् उन्होंने सुशर्मा के पैंतालीस वीर पुत्रों को मारकर उसकी शेष सेना को भी समाप्त कर दिया। उधर भीमसेन ने अपने युद्धकौशल से आपके पुत्र सुदर्शन की जीवन लीला समाप्त कर दी।

इस प्रकार कौरव सेना का संहार होते देख शकुनि और उसके पुत्र उलूक दोनों ने मिलकर सहदेव पर आक्रमण कर दिया। उलूक ने सहदेव के सत्तर बाण मारे। इससे क्रोधित होकर सहदेव ने एक भल्ल बाण से उसका सिर काट डाला।

अपने पुत्र को इस प्रकार मरते देख शकुनि ने सहदेव के एक साथ तीन बाण मारे। सहदेव ने इसके उत्तर में शकुनि का धनुष काट डाला। तब कुपित होकर शकुनि ने एक बहुत बड़ी तलवार सहदेव को फेंककर मारी परन्तु उन्होंने उसके दो टुकड़े कर दिए। इससे भयभीत होकर शकुनि अपने सहायकों सहित वहाँ से भागने लगा। सहदेव ने उसका पीछा करके पहले उसके घोड़ों को मार डाला, फिर स्वयं शकुनि का भी सिर काट डाला।

छठा अध्याय

संजय का छुटकारा, दुर्योधन का सरोवर में छिपना

संजय बोले—हे महाराज! शकुनि के मारे जाने पर दुर्योधन ने हतोत्साह हुई सेना को पुनः एकत्रित करके पाण्डव सेना पर धावा बोल दिया। किन्तु शीघ्र ही यह सेना इस प्रकार नष्ट हो गई जिस प्रकार दीपक की ज्योति पर गिरकर शलभ नष्ट हो जाते हैं। अब दुर्योधन के पास न कोई सहायक था और न कोई वाहन। पाण्डवों की सेना का भी भारी विनाश हुआ था। उस समय पाण्डवों के पास केवल दो सहस्र रथ, सात सौ हाथी, पाँच हजार घोड़े और दस हजार पैदल सैनिक बचे थे। अकेले रह जाने पर दुर्योधन हाथ में गदा लेकर सरोवर की ओर भागे। उस समय उनके साथियों में केवल अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा जैसे महारथी शेष बचे थे।

मुझे बन्दी अवस्था में देखकर धृष्टद्युम्न कहने लगे, "इसे बन्दी बनाकर रखने से क्या लाभ है? इसे भी कौरव महारथियों के पास पहुँचा दो।" जब सात्यकि तलवार निकाल

कर मुझे मारने के लिए दौड़े तो वेदव्यासजी ने बीच में पड़कर मुझे मुक्त करा दिया। मार्ग में मैंने दुर्योधन को देखा जिन्होंने सरोवर में प्रवेश करके मायाकौशल से उसका पानी बाँध दिया था। जब मैं वहाँ से चलने लगा तभी मैंने वहाँ अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा को पहुँचते देखा। उन्होंने मुझे देखकर दुर्योधन का कुशल समाचार पूछा तो मैंने उन्हें उनके सरोवर में प्रवेश करने की बात बता दी। थोड़ी देर तक वे उस सरोवर पर खड़े होकर दुर्योधन के लिए शोक करते रहे। फिर पाण्डव सेना को उधर आते देख वहाँ से चुपचाप चले गये।

सम्पूर्ण कौरव शिविर खाली हो गया तो वे तीनों महारथी फिर उस सरोवर पर आये और सोते हुए दुर्योधन को जगाकर बोले, "राजन्! उठो और हमारे साथ चलकर युधिष्ठिर से युद्ध करो। विजयी होकर या तो इस पृथ्वी का राज्य भोगो अथवा वीरगति पाकर स्वर्ग प्राप्त करो।" यह सुनकर दुर्योधन ने कहा, "इस जनसंहारकारी महायुद्ध के पश्चात् मैं आप लोगों को जीवित देख रहा हूँ। यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है। आप सब इस समय थके हुए हैं और मैं भी घायल हूँ। ऐसी दशा में इस समय युद्ध करने से कोई लाभ नहीं होगा। इस समय आप लोग विश्राम करो। कल प्रातः हम मिलकर उनसे युद्ध करेंगे।"

ये लोग इस प्रकार वार्तालाप कर ही रहे थे कि दिन भर के परिश्रम से थके हुए कुछ व्याध उस सरोवर पर पानी पीने के लिए आये। इन लोगों के वार्तालाप से वे समझ गए कि राजा दुर्योधन इसी तालाब में छिपे हुए हैं। धन के लोभ में

उन्होंने जाकर युधिष्ठिर को दुर्योधन का पता बता दिया। भीमसेन ने उन्हें बहुत सा धन देकर विदा किया। युधिष्ठिर श्रीकृष्ण आदि को लेकर तत्काल उस द्वैपायन नामक सरोवर पर जा पहुँचे। ये लोग शंखनाद और कोलाहल करते हुए सरोवर की ओर जा रहे थे। उनकी आहट पाकर अश्वत्थामा कृपाचार्य एवं कृतवर्मा दुर्योधन से बोले, "राजन्! हर्ष से भरे हुए पाण्डव लोग द्रुतगति से इसी ओर आ रहे हैं। अतएव हम कुछ समय के लिए यहाँ से जा रहे हैं। उनके चले जाने के पश्चात् फिर आकर आपसे मिलेंगे।" इन तीनों महारथियों के चले जाने के पश्चात् दुर्योधन ने सरोवर के जल को फिर स्तम्भित कर दिया। तीनों कौरव वीर कुछ दूर स्थित एक वृक्ष के नीचे जाकर बैठ गये। तभी पाण्डव लोग भी वहाँ पहुँच गए।

सातवाँ अध्याय

युधिष्ठिर-दुर्योधन संवाद, दुर्योधन की एक पाण्डव को गदायुद्ध को चुनौती

संजय बोले—द्वैपायन सरोवर पर पहुँचकर युधिष्ठिर श्रीकृष्ण से बोले, "प्रभो! देखिए तो सही दुर्योधन ने अपनी माया से पानी बाँध दिया है और अब निर्भय होकर सो रहा है, फिर भी यह मेरे हाथ से बच नहीं सकता।" श्रीकृष्ण बोले, "दुर्योधन की इस माया को माया द्वारा ही नष्ट करना होगा।" तब युधिष्ठिर ने दुर्योधन को सम्बोधित करते हुए कहा, "हे राजन्! तुम अपने कुल का विनाश करके अब इस जलाशय में छिपकर अपनी जान बचा रहे हो। यह तुम्हें शोभा नहीं देता। आओ, बाहर निकलकर युद्ध करो। तुम तो शूरवीर कहलाते हो,

फिर पानी में छिपकर क्यों बैठे हो ? युद्ध से भागना तुम्हें शोभा नहीं देता। सच्चे शूरवीर कभी इस प्रकार प्राणों का मोह नहीं करते।" उनके ये वचन सुनकर दुर्योधन ने कहा, "महाराज! मैं प्राणों के भय से भागकर यहाँ नहीं आया। मेरे पास न तो रथ है और न तरकस। मेरी सेना नष्ट हो चुकी है। रणभूमि में मैं अकेला रह गया हूँ। इस समय मुझे कुछ देर तक विश्राम करने की इच्छा थी। इसलिए मैं यहाँ आकर विश्राम कर रहा हूँ। मैं यहाँ किसी के भय से नहीं छिपा हूँ। तुम लोग भी आराम कर लो। फिर मैं अवश्य तुमसे युद्ध करूँगा।"

युधिष्ठिर बोले, "तुम काफी विश्राम कर चुके हो। बाहर निकल आओ ताकि यहीं संग्राम के द्वारा भविष्य का निर्णय हो जाय। या तो तुम हम लोगों को मार कर पृथ्वी का वैभव भोगो अथवा वीरगति प्राप्त करके स्वर्गलोक प्राप्त करो।" दुर्योधन ने कहा, "हे राजन्! मैं जिन लोगों के लिए राज्य प्राप्त करना चाहता था, वे सब युद्ध में मारे जा चुके हैं। अतएव राज्य के प्रति अब मुझे कोई लगाव नहीं है। तुम सब इसका उपभोग करो।" यह सुनकर युधिष्ठिर बोले, "सुयोधन! तुम्हारी इन बातों का मेरे लिए कोई अर्थ नहीं है। तुम जानते हो कि क्षत्रिय होने के नाते मैं तुमसे राज्य दान में नहीं ले सकता। और न दान में प्राप्त राज्य पर शासन करने की मेरी इच्छा है। मैं तुम्हें परास्त करकेही राज्य का उपभोग करूँगा। इसलिए उठकर बाहर निकलो। इसी में तुम्हारा कल्याण है।"

दुर्योधन ने कहा, "इस समय तुम्हारी मेरी क्या समता

है ? तुम्हारे पास रथ, वाहन, सेना, अस्त्र-शस्त्र आदि हैं और मैं अकेला वाहन तथा अस्त्र-शस्त्र रहित हूँ। न्यायोचित यह होगा कि तुममें से प्रत्येक व्यक्ति एक-एक करके युद्ध करो। मुझे तुममें से किसी से भी भय नहीं है।" युधिष्ठिर बोले, "सुयोधन! यह सौभाग्य की बात है कि तुम भी धर्म को जानते हो और अब भी युद्ध करने को तैयार हो। यदि तुम हममें से एक-एक से पृथक-पृथक युद्ध करना चाहते हो तो हम इसके लिए भी प्रस्तुत हैं। जिस अस्त्र से युद्ध करना चाहते हो, वह चुन लो। मैं अपनी ओर से तुम्हें ये वर देता हूँ कि यदि तुम एक पाण्डव को भी हरा दोगे तो यह राज्य तुम्हारा हो जाएगा।" युधिष्ठिर का आश्वासन पाकर दुर्योधन ने कहा, "ठीक है, मैं इसी गदा से युद्ध करूँगा। तुम में से कोई भी मुझसे युद्ध करने के लिए गदा लेकर मेरे सामने आ जाय।" यह कहकर हाथ में गदा लेकर दुर्योधन सरोवर से बाहर निकल आया। तब युधिष्ठिर बोले, "सुयोधन! अपने केशों को भली भाँति बाँध लो। यदि किसी अन्य युद्ध सामग्री की आवश्यकता हो तो वह भी ले लो। यदि तुम्हारी कोई अन्य इच्छा हो तो वह भी बता दो। उसे हम अवश्य पूरी करेंगे।" यह सुनकर दुर्योधन ने स्वर्णमय कवच और विचित्र शिरस्त्राण धारण किया। फिर बोला, अब तुम में से जिसकी इच्छा हो, मेरे साथ युद्ध करो।"

आठवाँ अध्याय

भीम और दुर्योधन का गदा युद्ध

संजय बोले—हे राजन्! जब दुर्योधन गदायुद्ध करने के लिए तैयार हो गया तो श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर की भर्त्सना

करते हुए कहा, "युधिष्ठिर ! यदि दुर्योधन भीमसेन के अतिरिक्त तुम में से किसी को गदा युद्ध के लिए चुन ले तो क्या होगा ? तुममें से कोई भी उसका सामना नहीं कर सकता। उसने तेरह वर्ष तक भीमसेन को परास्त करने के लिए कठोर अभ्यास किया है। तुम्हारे यहाँ भीमसेन का अभ्यास भी छूटा हुआ है। इस समय तुमने उससे भी भयंकर भूल की है जो शकुनि के साथ जुआ खेलकर की थी। इस प्रकार तुमने स्वयं को ही नहीं हमको भी भारी संकट में फँसा दिया है। आज संसार में कोई भी शूरवीर ऐसा नहीं है जो दुर्योधन को गदा युद्ध में परास्त कर सके। मुझे तो इसमें भी सन्देह है कि भीमसेन भी न्याययुद्ध में उसे परास्त कर सकेंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि विधाता ने आप लोगों को वनवास भोगने के लिए ही उत्पन्न किया है।"

भीमसेन ने श्रीकृष्ण को आश्वासन देते हुए कहा, "केशव! आप दुःखी न हों मैं इस संग्राम में दुर्योधन को अवश्य मार डालूंगा। मेरी यह गदा दुर्योधन की गदा से डेढ़ गुणी भारी है।" श्रीकृष्ण ने आश्वस्त होकर भीमसेन की प्रशंसा करते हुए कहा, "तुम्हारे उत्साह को देखते हुए मुझे विश्वास है कि तुम अवश्य दुर्योधन को मार दोगे और इस प्रकार उसकी जंघा तोड़कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करोगे। किन्तु तुम्हें सावधानी से युद्ध करना होगा क्योंकि वह गदायुद्ध में कुशल ही नहीं है, उसका अभ्यास भी बढ़ा हुआ है।" फिर भीमसेन ने अपनी गदा सम्हाल कर दुर्योधन को उसके पापों की याद दिलाते हुए उसे मारने की इच्छा से लड़ने के लिए ललकारा।

नवाँ अध्याय

बलराम का आगमन और भीम का दुर्योधन को गदायुद्ध में मारना

संजय बोले—हे राजन् ! जिस समय भीमसेन और दुर्योधन गदा युद्ध की तैयारी कर ही रहे थे उसी समय श्रीकृष्ण के बड़े भ्राता बलरामजी भी वहाँ आ पहुँचे। सबने उनका आदरपूर्वक स्वागत किया। युधिष्ठिर बोले, "बलरामजी ! अपने दोनों शिष्यों का यह गदा युद्ध देखिए।" इसके पश्चात् दोनों वीर योद्धा अपने गुरु बलरामजी के चरण स्पर्श करके युद्ध करने लगे। उनकी गदाओं के टकराने का स्वर दूर-दूर तक सुनाई पड़ रहा था। दोनों पैंतरे बदल बदलकर एक-दूसरे पर आक्रमण करते हुए अपना कौशल दिखा रहे थे। जब लड़ते लड़ते दोनों थक गए तो उन्होंने दो घड़ी विश्राम किया और फिर संग्राम करने लगे। उनके संग्राम को देखकर कोई भी यह नहीं कह सकता था कि उन दोनों में कौन विजयी होगा। इस समय दोनों के शरीरों से रक्त धाराएँ बह रही थीं। फिर सहसा दुर्योधन ने भीमसेन के मस्तक पर अपनी गदा का प्रहार किया, किन्तु वे इस आघात से तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने क्रोध में भरकर अपनी गदा दुर्योधन पर फेंकी जिसे पैंतरा बदलकर आपका पुत्र बचा गया और उन्होंने भीमसेन की छाती में बड़े जोर से गदा मारी जिससे वे कुछ क्षणों के के लिए मूर्च्छित हो गए। फिर सचेत होकर उन्होंने दुर्योधन की पसली में गदा से प्रहार किया जिससे वे आहत होकर घुटनों के बल बैठ गए। इस प्रकार युद्ध में भिड़ते देख श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा, "अर्जुन ! इस युद्ध में दुर्योधन को हराना

सम्भव नहीं है। यदि भीमसेन को विजय प्राप्त करनी है तो न्याय अन्याय का विचार छोड़कर खल के साथ खल की नीति को ही अपनाना होगा। गदा युद्ध के नियम की अवहेलना कर उन्हें दुर्योधन की जंघा पर प्रहार करना होगा। तभी वह मारा जा सकेगा। इसके अतिरिक्त भीमसेन ने दुर्योधन की जंघा तोड़ने की जो प्रतिज्ञा की है, उसे उन्हें पूरा करना चाहिए।"

श्रीकृष्ण की सम्मति से सहमत होते हुए अर्जुन ने भीमसेन को देखकर अपनी बायीं जाँघ को ठोका। इस सन्देश को समझकर अवसर पाते ही भीमसेन ने दुर्योधन की जाँघों पर बड़े वेग से गदा चला दी। इससे दुर्योधन की दोनों जाँघें टूट गईं और वे कटे वृक्ष की भाँति पृथ्वी पर गिर पड़े। उनके गिरते ही भीमसेन ने उनके पास जाकर बायें पैर से उनके मुकुट को ठुकराया और उनके मस्तक पर ठोकर मारते हुए कहा, "रे दुर्बुद्धि मूर्ख! तूने मुझे बैल कहकर और रजस्वला द्रौपदी को राजसभा में बुलाकर जो अपमानित किया था, अब उसका फल भोग। छल कपट करना, घर में आग लगाना और जुआ खेलना हमारा काम नहीं है। हम तो अपने बाहुबल पर भरोसा रखते हैं।" इस प्रकार दुर्योधन को अपमानित करते देख युधिष्ठिर ने उनसे कहा, "भीम! तुमने शुभ अथवा अशुभ कर्म से अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ली। अब इस काम से विरक्त हो जाओ। उसके साथ अब ऐसा व्यवहार मत करो।"

भीमसेन का दुर्योधन के प्रति किया गया यह व्यवहार बलराम को भी रुचिकर प्रतीत नहीं हुआ। वे क्रोधित होकर बोले, "भीम! तुम्हें धिक्कार है। इस धर्म युद्ध में नाभि के

नीचे तुमने जो प्रहार किया है, वह धर्म विरुद्ध है। श्रीकृष्ण! इस प्रकार शास्त्र-विरुद्ध युद्ध करके दुर्योधन को नहीं मारा गया है, मेरा भी अपमान किया गया है। मैं भीमसेन को इसका दण्ड अवश्य दूंगा।" यह कहकर बलराम जी अपना हल उठा भीमसेन को मारने के लिए दौड़े। उन्हें रोकते हुए श्रीकृष्ण बोले, "भैया! इन कौरवों ने पाण्डवों के साथ बहुत छल कपट किए थे। इससे क्रोधित होकर भीमसेन ने अपनी गदा से दुर्योधन की दोनों जंघाएँ तोड़ने की प्रतिज्ञा की थी और अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करना क्षत्रिय का बहुत बड़ा धर्म है।" बलराम ने श्रीकृष्ण को उत्तर दिया, "गोविन्द! तुम जो इस कार्य को धर्मानुकूल बता रहे हो, यह सब तुम्हारी मनमानी कल्पना है। मैं तुम्हें बताये देता हूँ कि धर्मात्मा राजा दुर्योधन को अधर्मपूर्वक मारकर भीमसेन इस संसार में कपटपूर्वक युद्ध करने वाले योद्धा के रूप में कुख्यात होंगे।" यह कहकर रोष में भरकर वे रथ पर बैठ द्वारिकापुरी चले गए। थोड़ी देर तक महाराज युधिष्ठिर के मन पर उदासी छाई रही, परन्तु अन्य पाण्डवों पर इसका कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ा।

दसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण दुर्योधन संवाद और श्रीकृष्ण का हस्तिनापुर गमन

संजय बोले—हे भरतश्रेष्ठ! दुर्योधन पर विजय प्राप्त करने के कारण पाण्डव पक्ष के सब लोग भीमसेन की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे और नाना प्रकार से हर्ष मनाने लगे। यह देख श्रीकृष्ण ने उन्हें रोकते हुए कहा, "बन्धुओ! मरे हुए शत्रु को पुनः मारना उचित नहीं है। अब कठोर वचन कहकर

दुर्योधन को और पीड़ा मत पहुँचाओ। यह मतिमन्द तो उसी समय मर चुका था जब लोभ के वशीभूत होकर इसने पापियों को अपना सहायक बनाया था। अब यह न किसी का शत्रु है न किसी का मित्र। इसके लिए अब कटु शब्दों का प्रयोग करने से क्या लाभ?" श्रीकृष्ण के आक्षेप भरे शब्द सुनकर दुर्योधन ने पीड़ा से कराहते हुए अत्यन्त रोष भरी वाणी में कहा, "ओ कंस के दास के पुत्र! मुझे गदायुद्ध में इस प्रकार अधर्म से मरवाकर क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती? तुमने मेरी जंघा को तुड़वाने के लिए अर्जुन के द्वारा भीम को जो संकेत दिलवाया था, क्या वह मुझे ज्ञात नहीं है? शूरवीर भीष्म पितामह का वध कराने के लिए तुमने शिखण्डी को आगे कर के युद्ध कराया, द्रोणाचार्य को धोखे से मरवाया, फिर भी धर्मात्मा होने का ढोंग रचते हो। यदि तुमने पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य और कर्ण के साथ धर्मयुक्त युद्ध किया होता तो तुम्हारे पक्ष की कभी विजय नहीं होती। तुम्हारे सभी कृत्य अनार्यों जैसे हैं।"

श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया, "दुर्योधन! तुमने पाप के मार्ग पर चलकर अपने बन्धु-बान्धवों और कुल का नाश कराया। तुम्हारे ही पाप के फलस्वरूप भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण, शल्य, आदि मारे गये। तुमने शकुनि के परामर्श से समस्त कुकर्म किये थे। तुमने भीमसेन को विष देकर और पाण्डवों को लाक्षागृह में जलाने का प्रयत्न करके स्वयं को वध करने योग्य सिद्ध कर दिया था। तुमने जो अनुचित कार्य किए थे उन्हीं का फल तुम्हें भोगना पड़ा है।" दुर्योधन बोले, "मैंने कोई

पाप नहीं किया। इसीलिए मैं वीर क्षत्रिय की भाँति आज रणभूमि में वीरगति पाकर स्वर्ग जा रहा हूँ।"

तत्पश्चात् पाण्डवों ने कौरवों के शिविर में प्रवेश किया। उस समय वे शिविर शोभाहीन दिखाई दे रहे थे। वहाँ पहुँच कर पाण्डव अपने रथों से उतरे। तब श्रीकृष्ण अर्जुन से बोले, "पार्थ! तुम अपने अस्त्र-शस्त्रों को लेकर रथ से उतर जाओ, तब मैं पीछे रथ से उतरूँगा। इसी में तुम्हारा कल्याण है।" श्रीकृष्ण के वचन सुनकर अर्जुन ने वैसा ही किया। अनन्तर श्रीकृष्ण भी घोड़ों की रास छोड़कर रथ से उतर पड़े। उनके उतरते ही ध्वज पर अंकित दिव्य कपि भी अन्तर्ध्यान हो गया और वह रथ घोड़ों सहित बिना अग्नि के ही आप ही आप जल उठा। अर्जुन द्वारा इस आश्चर्य के विषय में पूछने पर श्रीकृष्ण ने कहा, "हे कुन्ती पुत्र! यह रथ तो नाना प्रकार के अस्त्रों से पहले ही दग्ध हो चुका था। किन्तु मेरे कारण यह पहले नहीं जला था। आज कार्य पूर्ण होने पर मैंने इसे छोड़ दिया। अतः अब यह भस्म हो गया है।"

तत्पश्चात् पाण्डवों ने कौरवों के शिविरों पर अधिकार कर लिया। जब वे वहाँ विश्राम करने लगे तो श्रीकृष्ण ने उन्हें परामर्श दिया कि आज की रात हमें शिविर से बाहर ही रहना चाहिए। ऐसा निश्चय कर उन्होंने ओघवती नदी के तट पर उस रात निवास किया। एकान्त पाकर युधिष्ठिर ने केशव से कहा, "प्रभो! आपकी कृपा से हमें यह राज्य प्राप्त हो गया, किन्तु गान्धारी देवी के हृदय की क्या दशा होगी। जिनके निन्यानवे पुत्र इस संग्राम में मारे जा चुके हैं। वे पुत्रों और

पौत्रों के वध का समाचार सुनकर अवश्य ही हमें भस्म कर डालेंगी। इसलिए आप कृपा करके हस्तिनापुर जाइये और उनके क्रोध को शान्त कीजिए।"

युधिष्ठिर की बात मानकर श्रीकृष्ण तुरन्त अपने रथ पर बैठ हस्तिनापुरी में धृतराष्ट्र और गान्धारी देवी के पास जा पहुँचे। वहाँ वेदव्यासजी पहले ही विद्यमान थे। धृतराष्ट्र का हाथ अपने हाथ में ले श्रीकृष्ण दो घड़ी तक विलाप करते रहे। फिर बोले, "हे भारत! जो कुछ भी हुआ है, वह आपसे छिपा नहीं है। पाण्डवों ने इस संग्राम को यथाशक्ति टालने का प्रयत्न किया। मैंने स्वयं यहाँ सन्धि कराने की चेष्टा की। इसमें पाण्डवों का कोई अपराध नहीं है, यह समझकर आप और गान्धारी देवी कभी उनका अहित चिन्तन न करें। उन लोगों की आपके प्रति अटूट श्रद्धा और भक्ति है। हे महारानी! उस दिन स्वयं आपने अपने पुत्रों को कितना समझाया था, परन्तु उन्होंने आपकी बात पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। आपने कहा था, सदा धर्म की विजय होती है। आज वही बात सत्य हुई।" गान्धारी ने कहा, "केशव! तुम्हारा कहना यथार्थ है। दोष मेरे पुत्रों का ही था। अब मैं पाण्डवों का अनिष्ट कभी नहीं सोचूँगी। अब पाण्डवों के साथ तुम ही हम लोगों के आश्रयदाता हो।" यह कहकर गान्धारी विलाप करने लगी। तब कृष्ण ने नाना प्रकार से समझाकर उन्हें शान्त किया। दोनों को समझाकर वे रात्रि में ही पाण्डवों के पास लौट आये।

ग्यारहवाँ अध्याय

दुर्योधन की दशा पर अश्वत्थामा का शोक, अश्वत्थामा को सेनापति बनाना

संजय बोले—राजन्! सन्देशवाहकों से दुर्योधन के मरणासन्न होने का समाचार सुनकर अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा उनके पास पहुँचे और उनकी यह दुर्दशा देखकर आँसू बहाने लगे। अश्वत्थामा बोले, "सुयोधन! इस संसार में सब कुछ नाशवान है। आज तुम्हारे जैसा प्रतापी सम्राट धूल में लोट रहा है। जो अपने शौर्य और वैभव से इन्द्र की समता करता था, उसकी यह दशा हो सकती है, यह तो सोचा भी नहीं जा सकता था।" दुर्योधन ने उन्हें धैर्य बँधाते हुए कहा, "मित्रो! इस संसार का ऐसा ही नियम है। काल क्रम से एक न एक दिन सब प्राणियों का नाश होना है। वही घड़ी आज मेरी भी आ पहुँची है। भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, शकुनि, शल्य तथा तुम्हारे जैसे मेरे रक्षक होते हुए भी मेरी यह दशा हो गई। वास्तव में काल की गति को कोई नहीं रोक सकता। मेरे माता पिता मेरी मृत्यु का समाचार सुनकर अत्यन्त दुःखी होंगे। उनसे कहना, मैं जब तक जिया, गौरव के साथ जिया। न मैंने कभी संग्राम में पराजय पाई और न कभी शत्रु से शरण माँगी। इससे बढ़कर गर्व की बात और क्या हो सकती है? मैं जानता हूँ मेरी माता, बहिन दुःशला तथा लक्ष्मण की माता मेरे वियोग में अत्यन्त दुःखी होंगी, परन्तु तुम उन्हें समझा बुझाकर शान्त कर देना। हे मित्रो, जिस प्रकार भीम ने मर्यादा भंग करके मेरा वध किया है उसे स्मरण रखते हुए तुम पाण्डवों पर कभी विश्वास मत करना।

यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है कि इस भीषण नरसंहार के पश्चात् भी मैं तुम्हें जीवित देख रहा हूँ। आप लोगों ने यथाशक्ति मुझे विजय दिलाने का प्रयत्न किया, परन्तु विधाता को यह स्वीकार नहीं था।" यह कहते-कहते दुर्योधन का गला भर आया और नेत्रों से आँसू बहने लगे।

अश्वत्थामा ने व्यथित होकर कहा, "मित्र! तुम्हारी यह दशा देखकर मुझे इतनी वेदना हो रही है जितनी मुझे अपने पिताजी की मृत्यु से भी नहीं हुई थी। मैं आज तुम्हारे सामने शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करता हूँ कि जैसे भी होगा, आज पाँचों पाण्डवों का मैं अवश्य वध करूँगा।" अश्वत्थामा की यह प्रतिज्ञा सुनकर दुर्योधन ने प्रसन्न हो कृपाचार्य से जल मँगवाया और अश्वत्थामा का सेनापति पद पर अभिषेक कर दिया। इसके पश्चात् तीनों महारथी आगामी कार्यक्रम पर विचार करने लगे।

॥ इति शल्य पर्व सम्पूर्ण ॥

॥ ओ३म् ॥

महाभारत भाषा

१०. सौप्तिक पर्व



निद्रामग्न धृष्टद्युम्न की अश्वत्थामा द्वारा निर्मम हत्या



मृत पुत्रों को देखकर द्रौपदी का विलाप

पहला अध्याय

सोते हुए पाण्डव पक्ष के वीरों का संहार

संजय बोले—हे राजन्! दुर्योधन से विदा होकर अश्वत्थामा कृपाचार्य और कृतवर्मा जब एक वन में होकर जा रहे थे, तो एक विशाल वट वृक्ष को देखकर उसके नीचे विश्राम करने के विचार से बैठ गये और आगामी कार्यक्रम के विषय में परस्पर विचार विमर्श करने लगे। थकावट के कारण कृपाचार्य और

कृतवर्मा तो वहीं लेटकर सो गए, किन्तु अश्वत्थामा को नींद नहीं आई। वे व्याकुल होकर इधर-उधर करवटें बदलने लगे। तभी उन्होंने देखा एक भयानक उल्लू उस वृक्ष पर आया और उसने वट वृक्ष पर सोये हुए बहुत से कौओं को मार डाला। कौओं के प्रति उलूक के इन नृशंस कृत्य को देखकर अश्वत्थामा के मन में भी वैसा ही संकल्प उठा। वे सोचने लगे, मैं न्याय पूर्वक संग्राम करके पाण्डवों का संहार नहीं कर सकता। इस लिए मुझे भी छल का सहारा लेकर सोते हुए पाण्डवों का संहार कर डालना चाहिए। हमारे नीति शास्त्रों में भी कहा गया है कि यदि शत्रु सेना अर्द्ध रात्रि में निद्रा में अचेत पड़ी हो, जिसका सेनापति मारा गया हो, जिसके योद्धाओं में फूट पड़ी हो और जो दुविधा में पड़ी हो, उस पर अवश्य प्रहार करना चाहिए। इस संकल्प से प्रेरित होकर अश्वत्थामा ने कृपाचार्य और कृतवर्मा को जगाकर सोते हुए पाण्डवों को मारने के अपने निश्चय से अवगत कराया। अश्वत्थामा की बात सुनकर कृपाचार्य ने सिर हिलाकर अपनी अस्वीकृति प्रगट की और बोले, "तुम्हारा प्रस्ताव सुनकर ही मेरा सिर लज्जा से झुका जा रहा है। तुम्हारे मन में जो यह नीच विचार आया है, वह दुर्योधन की कुसंगति का फल है। उसने लोभ, अदूरदर्शिता, दम्भ एवं मूर्खता के कारण न तो किसी गुरुजन का सत्परामर्श ही माना और न स्वयं ही अपने विचारों पर गम्भीरता पूर्वक मनन किया। इस समय मोह के कारण मैं तुम्हें उचित परामर्श नहीं दे सकता। इसलिए हमें धृतराष्ट्र, देवी गान्धारी और विदुरजी से चलकर परामर्श करना चाहिये।

यह सुनकर अश्वत्थामा ने कहा, "मामाजी ! प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को दूसरे से अधिक बुद्धिमान समझता है। मैं आपके विचार से सहमत नहीं हो सकता। मैं आज सोते हुए पाण्डवों और पांचाल सेना का वध अवश्य करूँगा।" कृपाचार्य ने कहा, "वत्स ! इस समय तुम उद्विग्न हो रहे हो। अब सो जाओ। कल प्रातः इस पर फिर विचार कर लेंगे। सोते हुए व्यक्ति की हत्या महापाप है। अब तक का तुम्हारा शौर्यमय जीवन निष्कलंक रहा है। तुम्हारा यह कार्य उस पर अमिट कलंक बन जायेगा।" कृपाचार्य के परामर्श को ठुकराते हुए अश्वत्थामा बोले, "मामाजी ! मैं आपकी बात से सहमत हूँ, परन्तु धर्म मर्यादा को तो पाण्डव पहले ही भंग कर चुके हैं। टूटी जाँघ वाले राजा दुर्योधन का विलाप मेरे मर्मस्थल को विदीर्ण कर रहा है। पिताजी के हत्यारों का सोते हुए वध करके मैं भले ही महाभयानक रौरव नरक में जाऊँ, परन्तु मैं अपना प्रतिशोध अवश्य लूंगा।"

ऐसा कहकर अश्वत्थामा रथ में बैठ पाण्डव शिविर की ओर चल दिये। कृपाचार्य और कृतवर्मा ने भी उनका अनुसरण किया। जब अश्वत्थामा ने देखा कि वे दोनों महारथी भी उन्हें सहयोग देने को तैयार हैं तो उन्होंने कहा, "मैं शिविर के अन्दर जाकर सबका वध करता हूँ। आप दोनों द्वार पर खड़े रहकर यह देखें कि कोई जीवित बचकर न निकल जाय।" यह कहकर सबसे पहले वे धृष्टद्युम्न के शिविर में पहुँचे और उनके बाल पकड़कर उन्हें जगाया। जब उन्होंने आँख खोली तो उन्हें भूमि पर पटककर अश्वत्थामा ने चैतन्य होने से पूर्व ही

क्रूरतापूर्वक मार डाला। फिर उसके अंगरक्षकों को भी समाप्त कर दिया। इसके पश्चात् उन्होंने दूसरे खेमे में पलंग पर सोये हुए उत्तमौजा को देखा। उसके कण्ठ और वक्ष पर पैर रखकर उसे भी निरीह पशु की भाँति मार डाला। वहीं द्रौपदी के पाँचों पुत्र सो रहे थे। उनके मस्तक भी उन्होंने खड्ग से काट डाले। फिर शिखण्डी के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। फिर वे सभी को ढूंढ-ढूंढकर उनका संहार करने लगे। किसी का सिर काट डाला, किसी के धड़ के दो टुकड़े कर दिये, किसी की भुजाएँ काटकर मस्तक धड़ से अलग कर दिया। किसी की छाती चीर डाली। जो जागकर भयभीत हो शिविर से बाहर की ओर भागे, उन्हें कृपाचार्य और कृतवर्मा ने मौत के घाट उतार दिया। प्रातःकाल होने तक शिविरों में कोई भी पुरुष जीवित नहीं बचा था।

दूसरा अध्याय

पांचालों का वध सुनकर हर्षपूर्वक दुर्योधन का प्राण त्याग, भीम का अश्वत्थामा को मारने के लिए प्रस्ताव

संजय बोले—हे राजन्! अश्वत्थामा से पांचाल वीरों के वध का समाचार सुनकर दुर्योधन का हृदय गद्गद होगया। अश्वत्थामा ने बताया, "राजन्! अब हममें और पाण्डवों में विशेष अन्तर नहीं रह गया है। उधर श्रीकृष्ण और सात्यकि सहित केवल सात व्यक्ति बचे हैं और इधर हम तीन हैं। सबसे बड़ी प्रसन्नता की बात यह है कि धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और द्रौपदी के पाँचों पुत्र भी मारे गए। शत्रु की सम्पूर्ण सेना नष्ट हो गई है।" दुर्योधन ने प्रसन्न होकर कहा, "मित्रवर! आज

तुमने, कृपाचार्य और कृतवर्मा ने जो कार्य किया है वह भीष्म, द्रोणाचार्य और कर्ण भी न कर सके थे। आज मैं वास्तव में शान्ति के साथ मर रहा हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। स्वर्ग में हम लोगों का पुनर्मिलन होगा।" यह कहते-कहते दुर्योधन के प्राण पखेरू उड़ गए।

प्रातःकाल जब युधिष्ठिर ने रात्रि में अश्वत्थामा और उनके साथियों द्वारा किये गए भीषण हत्याकाण्ड का समाचार सुना तो वे शोक से संतप्त हो पृथ्वी पर गिर पड़े। जब उन्हें कुछ चेतना आई तो वे विलाप करने लगे, "हाय! मैं शत्रुओं को जीतकर भी अन्त में परास्त हो गया। मेरे ये सभी सुहृद सगे सम्बन्धी और परिजन मेरी असावधानी से मारे गये। द्रौपदी जब अपने पुत्रों, भाइयों और निकट सम्बन्धियों की मृत्यु का समाचार सुनेगी तो उस पर क्या बीतेगी? भाई नकुल! तुम जाकर उस अभागिनी द्रौपदी को उनके मातृपक्ष की स्त्रियों सहित रथों पर बिठाकर यहाँ लिवा लाओ।" नकुल को भेजकर उन्होंने शिविर में प्रवेश किया और रक्त से लथ-पथ एवं मरे हुए अपने पुत्रों, पौत्रों, स्वजनों आदि को देखकर वे व्याकुल और अर्द्ध चेतन होकर पृथ्वी पर बैठ गए।

उसी समय द्रौपदी आदि स्त्रियों को लेकर नकुल शिविर में पहुँच गये। वे शिविर के अन्दर का दृश्य देखकर आर्तनाद और विलाप करती हुई बोली, "हे पार्थ! यदि आप आज रण-भूमि में अश्वत्थामा तथा उसके साथियों का वध नहीं करेंगे तो मैं यहीं अनशन करके अपने प्राण त्याग दूंगी। आप अश्वत्थामा को मारकर उसके मस्तक की मणि मुझे लाकर

दीजिये। तभी मैं विश्वास करूँगी कि वह पापी वास्तव में मारा गया है।" फिर वह भीमसेन के पास आकर बोली, "तुम मेरी इच्छा पूरी कर सकते हो। अभी जाकर अश्वत्थामा का वध करो, यह मेरी तुमसे प्रार्थना है।" फिर वह जोर जोर से विलाप करने लगी।

द्रौपदी के आग्रह की रक्षा करने के लिए भीमसेन ने अनेक प्रकार के दिव्य अस्त्र लिए और नकुल को अपना सारथि बना अश्वत्थामा को मारने के लिए चल पड़े। यह देख श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा, "राजन्! आप यहाँ खड़े खड़े विलाप कर रहे हैं। भीमसेन अश्वत्थामा को मारने के लिए अकेले ही चले गये हैं। इस समय उनके प्राण संकट में हैं। आप नहीं जानते द्रोणाचार्य ने अपने पुत्र को ब्रह्मशिर नामक जिस अस्त्र का प्रशिक्षण दिया है, वह सम्पूर्ण भूमण्डल को जला डालने की क्षमता रखता है। इसलिए जैसे भी हो, भीमसेन की इस अस्त्र से रक्षा करनी होगी। इस प्रकार के दो ही अस्त्र संसार में द्रोणाचार्य के पास थे। एक उन्होंने अर्जुन को प्रसन्न होकर दिया था और दूसरा अश्वत्थामा को उसके विशेष हठ करने पर दिया था। अतः उससे भीमसेन की रक्षा करनी चाहिये।

तीसरा अध्याय

अश्वत्थामा और अर्जुन में ब्रह्मास्त्रों से युद्ध, अश्वत्थामा का मणि देना

वैशंपायनजी बोले—हे जनमेजय! भीमसेन को बचाने का निश्चय करके श्रीकृष्ण सम्पूर्ण महत्वपूर्ण अस्त्रों से सुसज्जित रथ पर युधिष्ठिर और अर्जुन को बिठाकर भीमसेन के पास जा पहुँचे। उस समय रोष में भरे प्रचण्ड वीर भीमसेन को

इन तीनों महारथियों ने रोकने का प्रयत्न किया किन्तु वे किसी के रोके न रुके और सीधे गंगा तट पर वहाँ पहुँच गए जहाँ अश्वत्थामा शरीर पर घी लगाये और कुश का चीर पहने महर्षि वेदव्यास के पास बैठा था। आगे आगे भीमसेन और पीछे पीछे श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर तथा अर्जुन थे। भीमसेन के ललकारने पर अश्वत्थामा ने उस दिव्य अस्त्र का चिन्तन किया और बायें हाथ में सींक उठाकर कहा, "यह अस्त्र समस्त पाण्डवों का विनाश कर डाले।" यह कहकर उसने वह दिव्य अस्त्र छोड़ दिया। तभी श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहकर द्रोणाचार्य द्वारा दिये गए ब्रह्मास्त्र को तत्काल छुड़वा दिया ताकि अश्वत्थामा द्वारा छोड़े गये ब्रह्मास्त्र का निवारण हो सके। अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र छोड़ते समय कहा, "आचार्य पुत्र का कल्याण हो। मेरे समस्त भ्राताओं का जीवन मंगलमय हो और इस ब्रह्मास्त्र से शत्रु का ब्रह्मास्त्र शान्त हो जाय।" इस अस्त्र से भयानक लपटें निकलने लगीं। इसी प्रकार अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र भी तेजोमय हो रहा था। सारे वातावरण में अग्निमय लपटें उठने लगीं। उसी समय नारद और व्यास दोनों ने एक साथ आकर दर्शन दिए और इन दोनों प्रज्वलित ब्रह्मास्त्रों के बीच में आकर खड़े हो गए। इन्हें देखते ही अर्जुन ने अपने ब्रह्मास्त्र का उपसंहार करना आरम्भ कर दिया और हाथ जोड़कर बोले, "महात्मन्! मैंने इस दिव्यास्त्र का प्रयोग अश्वत्थामा द्वारा छोड़े गए ब्रह्मास्त्र का प्रभाव नष्ट करने के लिए किया था। अब अपने अस्त्र का मैं उपसंहार कर रहा हूँ। किन्तु अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र हम लोगों को भस्म कर देगा। अतः आप हमें वह मार्ग दिखायें जो

हमारे लिए कल्याणकारी हो। ब्रह्मास्त्र को केवल जितेन्द्रिय व्यक्ति ही लौटा सकता था। अर्जुन को अस्त्र लौटाते देख अश्वत्थामा ने भी उसे लौटाने का प्रयत्न किया, परन्तु सफल न हो सका। वह हाथ जोड़कर बोला, "मुनिवर! मैंने यह अस्त्र क्रोधित होकर पाण्डवों के विनाश के लिए छोड़ा था। अब इसे लौटाना मेरी शक्ति के बाहर है। अब मैं क्या करूँ?"

व्यासजी बोले, "अर्जुन भी इस शस्त्र के ज्ञाता हैं परन्तु उन्होंने तुम्हें मारने के लिए अस्त्र का प्रयोग नहीं किया। तुमने भारी भूल की है। अब तुम अपने मस्तक की मणि निकालकर पाण्डवों को दे दो। वे तुम्हें प्राण दान दे देंगे।" अश्वत्थामा ने कहा, "महर्षे! आप जिस मणि को देने की बात कह रहे हैं, वह कोई साधारण रत्न नहीं। इसे बाँध लेने पर शस्त्र, व्याधि, क्षुधा, देव, दानव, नाग, किन्नर किसी से भी किसी प्रकार का भय नहीं। यह मुझे अपने प्राणों के समान प्रिय है, परन्तु मैं आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता। इसलिए यह मणि मैं युधिष्ठिर को दे रहा हूँ। मेरे हाथ में जो यह अभिमन्त्रित सींक है, यह अमोघ अस्त्र है। इसका मारक प्रभाव कभी निष्फल नहीं होता। इसलिए इसका प्रयोग मैं पाण्डवों के विरुद्ध तो नहीं करूँगा, किन्तु इसका प्रभाव न्यूनतम हो इस दृष्टि से यह पाण्डवों के गर्भस्थ शिशुओं पर गिरेगी।" यह कह कर व्यासजी की अनुमति से अश्वत्थामा ने वह सींक पाण्डवों के गर्भस्थ शिशुओं की ओर प्रेरित कर दी।

श्रीकृष्ण बोले, "अश्वत्थामा! तुम्हारी सींक पाण्डवों के गर्भस्थ शिशुओं को नष्ट तो कर देगी किन्तु उत्तरा के गर्भ में

जो शिशु है, उसका नाम परीक्षित होगा और वही पाण्डव वंश का प्रवर्तक होगा।" यह सुनकर अश्वत्थामा ने क्रोधित होकर कहा, "केशव! तुम पाण्डवों के साथ पक्षपात कर रहे हो। यह कभी नहीं हो सकता। मेरा अमोघ अस्त्र कभी विफल नहीं होगा।" मधुसूदन ने उसे समझाते हुए कहा, "तुम्हारा वचन मिथ्या नहीं होगा। वह शिशु मृत ही उत्पन्न होगा परन्तु पुनः जीवित हो जायेगा। वह शूरवीर बालक कृपाचार्य से सम्पूर्ण शस्त्र-अस्त्रों का ज्ञान प्राप्त करेगा।" इस वार्त्तालाप के पश्चात् अश्वत्थामा पाण्डवों को मणि देकर उदास मन से वन में चला गया।

शिविर में लौटकर वह मणि भीमसेन ने युधिष्ठिर की आज्ञा से द्रौपदी को दे दी। द्रौपदी की प्रार्थना पर युधिष्ठिर ने वह अपने मस्तक पर धारण कर ली।

॥ इति सौप्तिक पर्व सम्पूर्ण ॥

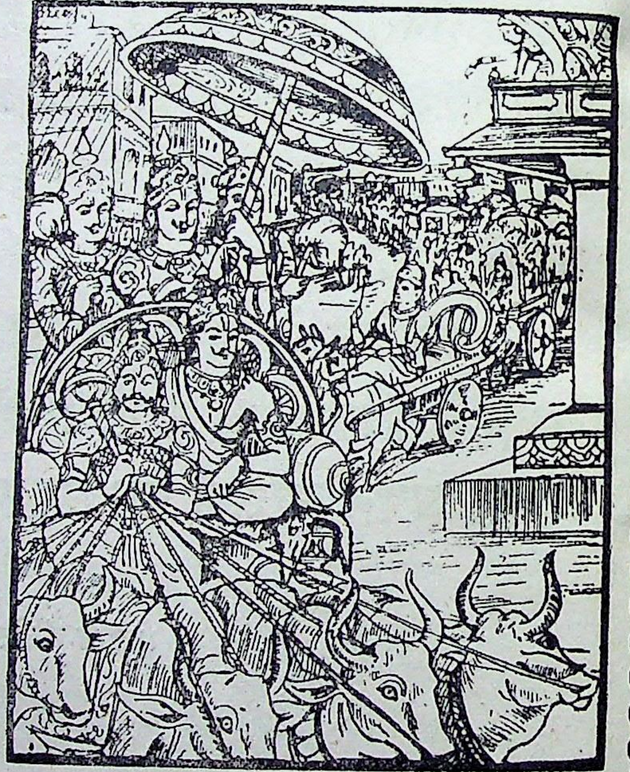
।। ओ३म् ।।

महाभारत भाषा

११. स्त्री पर्व



ऋषियों एवं मुनियों द्वारा युधिष्ठिर को समझाना



पाण्डवों का हस्तिनापुर प्रवेश

पहला अध्याय

धृतराष्ट्र का विलाप और संजय तथा विदुर का उन्हें समझाना

महायुद्ध के पश्चात् धृतराष्ट्र की जो दशा हुई उसका वर्णन करते हुए वैशंपायनजी बोले—हे राजन् ! अपने पुत्र पौत्रों के इस प्रकार मारे जाने का विस्तृत समाचार सुनकर धृतराष्ट्र शोक से व्याकुल होकर विलाप करने लगे उन्हें अत्यन्त व्याकुल देखकर संजय ने उन्हें धैर्य बँधाते हुए कहा,

"महाराज ! आपके शोक को देखकर हृदय फटा जाता है। आज आपके परिवार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं बचा है जिसे देखकर आप धैर्य धारण कर सकें ? इस भयंकर युद्ध में अठारह अक्षौहिणी सेना का संहार हो गया। सैकड़ों भूपतियों ने इस महासमर में प्राण त्याग करके अपने अपने राज्यों को अनाथ कर दिया। अब आप उठकर धैर्य धारण करें और मृत परिजनों के अन्तिम संस्कारों की व्यवस्था करायें। आप वेद शास्त्रों के ज्ञाता हैं। आपको मोह के वशीभूत नहीं होना चाहिए।"

उसी समय महात्मा विदुर वहाँ पधारे। उन्होंने धृतराष्ट्र को धैर्य बँधाते हुए कहा, "राजन् ! आप भूमि पर क्यों पड़े हैं ? उठकर धैर्य धारण कीजिए। आप बुद्धिमान हैं ? आप जानते हैं, समस्त प्राणियों की अन्तिम गति यही होती है। समस्त संग्रह अन्त में क्षय को प्राप्त होते हैं। सभी संयोगों का अन्त वियोग होता है। इसी प्रकार प्रत्येक जीवन का अन्त मृत्यु है। युद्ध न करने वाला भी मर जाता है और महासंग्राम में लड़कर घायल हो जाने वाला भी जीवित रह जाता है। शोकाकुल व्यक्ति न तो मरने वाले के साथ जा सकता है और और न उसे पुनः जीवित ही कर सकता है। फिर दिवंगत के प्रति शोक करने से क्या लाभ ? काल तो राग द्वेष रहित होकर प्राणिमात्र के जीवन का अन्त करता है। किसी का अन्त पहले होता है किसी का बाद में। युद्ध में मारे गये वीरों के लिए तो शोक करना ही नहीं चाहिए। वे सब अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए स्वर्ग के अधिकारी हुए हैं। जो प्राण

त्याग करके अन्य लोकों को जा चुके हैं, अब वे न हमारे हैं और न हम उनके हैं। दुःख को दूर करने की सर्वश्रेष्ठ औषधि यह है कि उसका चिन्तन छोड़ दिया जाय। चिन्तन करने से दुःख कम नहीं होता, अपितु बढ़ता है। राजन्! प्राणिमात्र की स्थिति कुम्हार द्वारा बनाये जाने वाले बर्तन की भाँति है। कुछ बर्तन चाक पर मिट्टी चढ़ाते ही टूट जाते हैं, कुछ बनते बनते और कुछ बनने के पश्चात् नष्ट हो जाते हैं। कुछ बर्तन कुछ दिन चलते हैं कुछ बर्तन कुछ महीने और कुछ कई वर्ष चलकर टूट जाते हैं। नष्ट सभी होते हैं। चिरस्थायी कोई नहीं होता। प्राणी पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार ही यहाँ रहते हैं और यहाँ से चले जाते हैं। यह आप भलीभाँति जानते हैं। फिर आप शोक क्यों कर रहे हैं?"

धृतराष्ट्र को पुनः सान्त्वना देते हुए वे बोले, "लोभ के वशीभूत होकर यह संसार ठगा जा रहा है। लोभ, क्रोध, एवं दम्भ के वशीभूत होकर वह स्वयं को और वास्तविकता को भूल गया है। इस संसाररूपी वन में फँसा हुआ व्यक्ति वन्य पशुओं, रोगों आदि के भय एवं आशंकाओं से घिरा रहता है। फिर भी उसे जीवन की आशा बनी रहती है और उसके मन में वैराग्य उत्पन्न नहीं होता। वही मनुष्य सच्ची शान्ति प्राप्त कर सकता है जो जितेन्द्रिय हो, क्रोध एवं लोभ से शून्य हो, सत्यवादी एवं सन्तोषी हो। इस दुःख से पराक्रम, धन, मित्र और सगे-सम्बन्धी कोई मुक्ति नहीं दिला सकता। केवल दृढ़तापूर्वक संयम से रहने वाला मन ही इस महादुःख से छुटकारा दिला सकता है। ऐसा जानकर आप अपने मन पर

संयम रखकर इस शोक का त्याग कर दीजिए और मरे हुए सगे-सम्बन्धियों का प्रेत-संस्कार कीजिए।"

दूसरा अध्याय

धृतराष्ट्र का परिजनों सहित युद्धभूमि में पहुँचना, भीम की लौह मूर्ति को तोड़ना, गान्धारी का क्रोध और विलाप

वैशंपायनजी कहते हैं—विदुर का उपदेश सुनकर धृतराष्ट्र ने गान्धारी, कुन्ती तथा कुल की समस्त महारानियों, रानियों, वधुओं आदि को बुलवाया। वे परस्पर गले मिल मिलकर और चीख चीख कर आर्त्तनाद कर रही थीं। विदुर जी ने सबको सान्त्वना देकर युद्धभूमि में चलने के लिए उन्हें रथ पर बिठाया। जब उनके रथ नगर की सड़कों पर होकर चले तो प्रजाजन भी आर्त्तनाद करते हुए उनके साथ हो लिए। उन्होंने देखा, राजकुल की स्त्रियाँ अपने केश खोले, मूल्यवान वस्त्रों एवं आभूषणों से रहित होकर साधारण जनों की भाँति विलाप करती हुई समरभूमि की ओर जा रही थीं। उधर जब युधिष्ठिर ने सुना कि महाराज धृतराष्ट्र संग्राम में मारे गए परिजनों का अन्तिम संस्कार करने के लिए हस्तिनापुर से सपरिवार चल चुके हैं तो वे अपने पुत्रों एवं कुटुम्बीजनों के शोक से सन्तप्त होते हुए भी अपने भाइयों, श्रीकृष्ण, सात्यकि तथा युयुत्सु के साथ राजा धृतराष्ट्र के पास चले। द्रौपदी आदि महिलाएँ भी उनके साथ थीं।

युधिष्ठिर ने आगे बढ़कर धृतराष्ट्र को प्रणाम किया और उन्होंने अनमने भाव से उन्हें हृदय से लगा लिया। फिर वे भीमसेन से मिलने की इच्छा करने लगे। श्रीकृष्ण ने

धृतराष्ट्र की भाव-मुद्रा से उनके मन की दुर्भावना का पता लगा लिया और उन्होंने धक्का देकर भीमसेन को पीछे कर दिया। फिर भीमसेन की एक लौह प्रतिमा को धृतराष्ट्र के सामने कर दिया। महाबुद्धिमान श्रीकृष्ण को पहले ही धृतराष्ट्र की भावना के सम्बन्ध में यह आशंका थी। अतः वे लोहे की प्रतिमा साथ लेकर आये थे। धृतराष्ट्र ने उस प्रतिमा को भीमसेन समझकर इतनी शक्ति से दबाया कि वह खण्ड-खण्ड हो गई। जब उनका रोष समाप्त हो गया तो वे शोकाकुल होकर 'हा भीम!' 'हा भीम!' कहकर विलाप करने लगे। जब श्रीकृष्ण को विश्वास हो गया कि अब धृतराष्ट्र वास्तव में शोकाकुल हो गए हैं तो उन्होंने बताया कि भीम सकुशल हैं। आपने उनकी लौह प्रतिमा को चकनाचूर कर दिया है। अब आपको क्रोध का त्याग कर देना चाहिए। आपके पुत्रों की आयु समाप्त हो चुकी थी। भीमसेन तो उनकी मृत्यु के लिए निमित्तमात्र थे।

यह सुनकर धृतराष्ट्र ने लज्जित होकर कहा, "हे कृष्ण! मैं अपने कुकृत्य के लिए लज्जित हूँ। अब आप निर्भय होकर समस्त पाण्डु पुत्रों को मेरे पास ले आइये।" उनके आने पर 'तुम्हारा कल्याण हो!' कहकर सबको हृदय से लगा लिया। इसके पश्चात् जब युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ गान्धारी के पास आये तो उसने उन्हें शाप देना चाहा। महर्षि व्यास गान्धारी के विचार को ताड़ते हुए बोले, "गान्धारी! शान्त हो जाओ। तुम्हें युधिष्ठिर पर क्रोध नहीं करना चाहिए। तुम मेरी बात को ध्यानपूर्वक सुनो, यह महासमर अठारह

दिन तक निरन्तर चलता रहा और प्रत्येक दिन युद्ध पर जाने से पूर्व दुर्योधन तुमसे आकर कहता था कि माँ, मेरी विजय के लिए मुझे आशीर्वाद दो तो तुम सदा यही कहती थीं, जहाँ धर्म है वहीं विजय है, तब तुम अपने मन में अनुचित विचार क्यों ला रही हो ?" गान्धारी ने कहा, "महर्षे! मेरे मन में पाण्डवों के प्रति कोई दुर्भाव नहीं है परन्तु इस समय मेरा मन पुत्र-शोक से व्याकुल हो रहा है। मैं जानती हूँ कि कुरुकुल का विनाश दुर्योधन, शकुनि आदि की दुर्बुद्धि के कारण हुआ है। परन्तु भीमसेन ने जो अधर्म का सहारा लेकर दुर्योधन को मारा, वह मुझे अच्छा नहीं लगा। इसी से मुझे सोच आ रहा है।"

गान्धारी की बात सुनकर डरते-डरते भीमसेन ने कहा, "पूज्ये! मैं यह मानता हूँ कि मैंने गदायुद्ध में अधर्म का आश्रय लिया था, परन्तु इसके दो कारण थे। उसने द्रौपदी का अपमान करके जब उसे अपनी जंघा पर बैठने का कुत्सित संकेत किया था तभी मैंने उसकी जंघा तोड़ डालने की प्रतिज्ञा की थी। मुझे उसी प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए यह अनुचित कार्य करना पड़ा। दूसरे, दुर्योधन ने हमारे साथ सदा छल और अधर्म का सहारा लिया था। जुआ, लाक्षागृह, अभिमन्यु वध आदि की घटनाएँ इसका प्रमाण हैं।" यह सुनकर गान्धारी ने कहा, "भीम! मेरे इन पुत्रों में कोई तो ऐसा होगा जिसका अपराध नगण्य या सबसे कम होगा। उसी को हमारे लिए छोड़ दिया होता जिससे वृद्धावस्था में वह हमारा सहारा बन सकता। इस विषय में कम से कम युधिष्ठिर को तो सोचना

चाहिए था। कहाँ है युधिष्ठिर जो बहुत धर्मात्मा बना फिरता है ?"

गान्धारी के रोषपूर्ण शब्द सुनकर युधिष्ठिर ने आगे आकर हाथ जोड़ते हुए विनम्र शब्दों में कहा, "देवि ! आपके समस्त पुत्र मेरे ही दोष के कारण मारे गये हैं। मैं आपका अपराधी हूँ। आप मुझे शाप दें। अपने सुहृदों का वध करके अब मुझे अपने जीवन से कोई मोह नहीं रह गया है।" युधिष्ठिर के इन विनम्र शब्दों से गान्धारी का रोष जाता रहा और वे स्नेह से उनके मस्तक पर हाथ फेरने लगीं। फिर उन्होंने कुन्ती के पास जाकर उन्हें धैर्य बँधाया। कुन्ती ने शोक संतप्त द्रौपदी को अपने हृदय से लगा लिया। फिर सबने कुरुक्षेत्र में जाकर अपने बन्धु-बान्धवों के शवों को देखा जिन्हें माँस-भक्षी जीव-जन्तु नोच नोच कर खा रहे थे। अपने प्रियजनों का यह अन्त देखकर सब स्त्रियाँ बिलख-बिलखकर विलाप करने लगीं। अपनी वधुओं की यह दशा देखकर गान्धारी श्रीकृष्ण से बोली, "माधव ! मेरे सामने ही मेरी पुत्र और पौत्र वधुएँ इतनी दुःखी होकर विलाप कर रही हैं। इससे मेरा हृदय फटा जा रहा है।" यह कहकर वह वहीं जोर जोर से आर्त्तनाद करने लगी। फिर बोली, "माधव ! मुझे अपने दुर्बुद्धि पुत्रों के मारे जाने का इतना दुःख नहीं है क्योंकि उनका निश्चित रूप से यहीं अन्त होना था, मुझे तो महाराज धृतराष्ट्र के लिए दुःख हो रहा है जिनका आज पुत्र-पौत्र कोई नहीं बचा है। मुझे इन दीन-हीन सन्तानहीन विधवाओं पर दुःख हो रहा है जिनका अकारण ही सब कुछ लुट गया। मुझे ऐसा प्रतीत

होता है कि पूर्व जन्म में मैंने और इन अबलाओं ने भयंकर पाप किये हैं जिनका फल हम इस समय भोग रही हैं। देखो, यह मेरी पुत्री दुःशला कैसी असहाय की भाँति अपने शूर वीर भाइयों और यशस्वी पति जयद्रथ को खोकर कुररी की भाँति विलाप कर रही है। श्रीकृष्ण! जिस दिन तुम भग्न मनोरथ होकर उपप्लव्य नगर लौट गये थे उसी दिन मैंने भावी के ललाट पर कौरव कुल के विनाश के धधकते हुए अक्षर पढ़ लिए थे। उसी दिन भीष्म पितामह और विदुरजी ने मुझसे कह दिया था कि अब तुम्हारे पुत्रों पर काल की गहरी छाया पड़ गई है। उनका अनुमान सत्य निकला और कुछ ही दिनों में मेरे समस्त पुत्र, पौत्र एवं स्नेही-सम्बन्धी काल के ग्रास हो गए।" इस प्रकार विलाप करती हुई गान्धारी पृथ्वी पर गिर कर मूर्च्छित हो गई।

थोड़ी देर में जब गान्धारी को चेतना आई तो वह शोकाकुल होकर अपनी विवेक शक्ति खो चुकी थी। उसकी दृष्टि में इस महाविनाश के एकमात्र अपराधी श्रीकृष्ण थे। वह बोली, "श्रीकृष्ण! तुम्हारे देखते देखते पाण्डु और धृतराष्ट्र के पुत्र आपस में लड़ मरे। तुम चुपचाप तमाशा देखते रहे। तुम शक्तिशाली थे। यदि तुम चाहते तो तुम बलपूर्वक इन दोनों को लड़ने से रोक सकते थे, परन्तु तुमने ऐसा नहीं किया। तुमने स्वेच्छा से कुरुकुल के नाश की उपेक्षा की। इसके लिए मैं तुम्हें क्षमा नहीं कर सकती। मैं तुम्हें शाप देती हूँ जिस प्रकार मैं कुरुकुल का नाश होते देख रही हूँ, उसी प्रकार तुम भी अपने भाई बन्धुओं को परस्पर लड़कर नष्ट होते देखोगे।"

फिर धृतराष्ट्र के निर्देश पर महाराज युधिष्ठिर ने सुधर्मा, धौम्य, संजय, विदुर, युयुत्सु, इन्द्रसेन आदि को आज्ञा दी कि समस्त मृत व्यक्तियों का धार्मिक विधि के अनुसार अन्तिम संस्कार किया जाय। चन्दनादि की चिता बनाकर सबका अन्तिम संस्कार करने के पश्चात् पाण्डव लोग महाराज धृत-राष्ट्र को आगे कर पुण्य सलिला गंगा पर पहुँचे और सबने अश्रुविमोचन करते हुए अपने मृत प्रिय जनों का तर्पण एवं स्नान किया।

॥ इति स्त्री पर्व सम्पूर्ण ॥

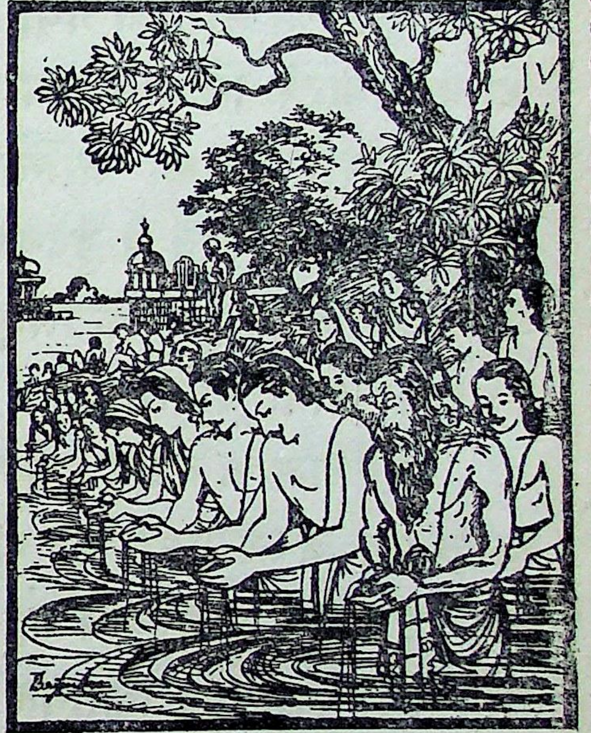
॥ ओ३म् ॥

महाभारत भाषा

१२. शान्ति पर्व



गांधारी का श्रीकृष्ण को शाप देना



धृतराष्ट्र एवं पाण्डवों का गंगा पर अपने सुहृदों का तर्पण करना

पहला अध्याय

युधिष्ठिर का परिताप तथा भाइयों, द्रौपदी एवं व्यासजी का उन्हें समझाना

वैशंपायनजी बोले—हे राजन् ! समस्त मृत बन्धु-बान्धवों का अन्तिम संस्कार करके पाण्डव लोगों ने आत्म-शुद्धि के लिए एक मास तक गंगा तट पर ही निवास करने का निश्चय किया। बहुत से ऋषि, मुनि और महात्मा युधिष्ठिर के पास आकर उन्हें अपने सत्संग का लाभ देने लगे। ऐसे ही एक सत्संग में धर्मराज युधिष्ठिर कहने लगे, "श्रीकृष्ण के आश्रय, आप

सबकी कृपा और अर्जुन भीम के पराक्रम से मुझे विजय तो प्राप्त हो गई, किन्तु मेरे हृदय में यह क्षोभ बना रहता है कि मैंने राज्य के लोभ में पड़कर अपने बन्धु-बान्धवों का विनाश कर डाला। उनकी मृत्यु के पश्चात् मिली हुई विजय भी मुझे पराजय जैसी प्रतीत होती है। दुर्योधन के दुराग्रह के कारण हमारे कुल का नाश हो गया है। हम लोग अवध्य सम्बन्धियों का नाश करके निन्दा के पात्र बन गए हैं। जहाँ शत्रु का विनाश करके हमारे मन को शान्ति मिली है, वहाँ पुत्र-पौत्रों एवं स्नेही सुहृदों के मरने से हृदय को आघात लगा है। हे अर्जुन! मैं अपने मन की शान्ति के लिए तुम लोगों से विदा होकर वन को चला जाना चाहता हूँ।"

धर्मराज के वचन सुनकर अर्जुन बोले, "राजन्! आपकी व्याकुलता चरमसीमा पर पहुँच गई है। अपने शत्रुओं को मारकर आपने धर्मानुकूल यह राज्य पाया है। उसे इस प्रकार त्याग देना कहाँ तक तर्कसंगत है? यदि आपको वन का जीवन ही प्रिय था तो फिर आपने इतना भारी जन-संहार क्यों कराया। क्या आप अपने पूर्वज राजा नहुष का यह कथन भूल गए, "सब कुछ त्यागकर निर्धन या अकिंचन हो जाना मुनियों का धर्म है, राजाओं का नहीं। महाराज! धन से ही धर्म, काम और मोक्ष की सिद्धि होती है। धन के बिना तो जीवन-निर्वाह भी नहीं हो सकता।" अर्जुन का तर्क सुनकर युधिष्ठिर ने कहा, "अर्जुन! मैं तुम्हारे विचारों से सहमत नहीं हूँ। मैंने निश्चय किया है कि मैं विलासितापूर्ण जीवन को त्यागकर वन में कठोर तप करूँगा और फल फूल खाकर मृगों के साथ

विचरण करूँगा। परिमित भोजन करके शरीर को क्षीण कर के प्रिय-अप्रिय, दुःख-सुख, राग-द्वेष, निन्दा-स्तुति सबको समान समझूंगा। केवल आत्म-चिन्तन और प्रभु-साधना में समय व्यतीत करूँगा।"

भीमसेन ने भी युधिष्ठिर के विचार का विरोध करते हुए कहा, "यदि आपको वन में जाकर आलसी का ही जीवन बिताना था तो आपने धृतराष्ट्र के पुत्रों का संहार क्यों कराया? यदि हमें आपके इन विचारों का आभास पहले ही मिल जाता तो यह भीषण नर-संहार क्यों करते? केवल वनवास या संन्यास ही पुण्यदायक नहीं होता। आप तो क्षत्रिय-कर्म का त्याग करके अकर्मण्य बनने की बात कर रहे हैं।" नकुल और सहदेव ने भी अपने अपने विवेक के अनुसार युधिष्ठिर को समझाने का प्रयत्न किया।

सभी पाण्डवों के समझाने का युधिष्ठिर पर कोई प्रभाव न पड़ते देख द्रौपदी बोली, "राजन्! आज आपको क्या हो गया है जो आप किसी की भी बात नहीं सुन रहे हैं। द्वैत वन में आपने कहा था कि हम युद्ध में दुर्योधन को मारकर इस पृथ्वी का उपभोग करेंगे। उस समय ऐसी उत्साहवर्द्धक बातें कहकर आज अपने भाइयों को इस प्रकार पीड़ित क्यों कर रहे हैं? केवल कायर और नपुंसक व्यक्ति पृथ्वी का उपभोग नहीं कर सकते। आपने तो इस पृथ्वी को वीरता, पराक्रम और अपने भुजबल से प्राप्त की है। इस प्रकार प्राप्त पृथ्वी का परित्याग करना क्या आपको शोभा देता है?" जब भीमसेन ने फिर अनुग्रहपूर्वक राज्य सँभालने के लिए निवेदन किया तो

युधिष्ठिर बोले, "भीमसेन! असन्तोष, प्रमाद, मद, राग, अशान्ति, बल, मोह, अभिमान और उद्वेग इन सभी पापों ने तुम्हारे अन्दर प्रवेश कर लिया है। इसीलिए तुम्हें राज्य की इच्छा होती है।"

युधिष्ठिर के ये वचन सुनकर भीमसेन तो कुछ नहीं बोले, किन्तु महातपस्वी देवस्थान ने कहा, "राजन्! आपने धर्म के अनुसार इस भूमि को जीता है। इसे जीतकर अकारण ही त्याग देना आपके लिए उचित नहीं है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ब्रह्म को प्राप्त करने की चार सीढ़ियाँ हैं। इन्हें क्रमशः यथोचित रूप में पार करो। आप बड़ी बड़ी दक्षिणा वाले यज्ञ करें। स्वाध्याय एवं ज्ञान यज्ञ करना तो ऋषि-मुनियों का काम है।" इसी बीच अर्जुन ने खिन्न चित्त होकर कहा, "धर्मराज! आप क्षत्रिय धर्म के अनुसार इस देव दुर्लभ राज्य को पाकर भी इतने सन्तप्त क्यों हो रहे हैं? क्षत्रियों के लिये रणक्षेत्र में मर जाना खेद की बात नहीं, पारलौकिक फल देने वाली होती है। फिर वीरगति पाकर मरने वालों के लिए शोक करके सब कुछ त्याग देना कहाँ तक युक्तिसंगत है? आपको तो क्षत्रियोचित कर्म करने के लिए उद्यत होना चाहिए। अब आप अपने मन को वश में करके यज्ञ और दान में तत्पर होइये।"

अर्जुन की बात का समर्थन करते हुए व्यासजी बोले, "युधिष्ठिर! अर्जुन का कहना यथार्थ है। शास्त्रोक्त परमधर्म गृहस्थ के आधार पर ही टिका हुआ है। अतः तुम शास्त्र के अनुसार विधिपूर्वक अपने कार्य का पालन करो। तुम्हारे लिए

गृहस्थ को त्यागकर वन में जाने का विधान नहीं है। गृहस्थाश्रम समस्त आश्रमों से श्रेष्ठ है। इस समय भाइयों के साथ तुम धर्म, अर्थ और काम का उपभोग करो। तत्पश्चात् तुम वन में चले जाना। पहले तुम सर्वमेध और अश्वमेध यज्ञ करो जिससे तुम्हें परमगति प्राप्त होगी। स्मरण रखो, शोक करने से दुःख और दुःख से दुःख की तथा भय से भय की वृद्धि होती है।" युधिष्ठिर बोले, "मुनिवर! आपका कथन यथार्थ है, परन्तु मैं परिजनों का घातक, राज्य का लोभी और अत्यन्त क्रूर हूँ, यही सब सोचकर मैं दुःख से परित्राण नहीं पा रहा हूँ। मैंने इतने भयंकर पाप किये हैं, जिनका अन्त नहीं है। अतः मैं आमरण अनशन करके प्राण त्याग दूंगा, ताकि अगले जन्म में मुझे कुलघाती के रूप में जन्म न लेना पड़े। अब मैं न अन्न लूंगा और न पानी ही पिऊँगा। आप सब लोग मुझे आज्ञा दें कि मैं प्राण त्यागकर शान्ति प्राप्त कर सकूँ।" उन्हें इस निश्चय से रोकते हुए व्यासजी ने कहा, "नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। तुम इस व्यर्थ के शोक का परित्याग करो। हमने संसार में अनेक बार जन्म लेकर सहस्रों माता पिताओं तथा सहस्रों स्त्री-पुत्रों के सुख का अनुभव किया है, किन्तु अब वे किसके हैं? उचित तो यह है कि विधाता ने जिन कर्मों के लिए तुम्हारी सृष्टि की है तुम उन कर्मों का अनुष्ठान करो। तुम कर्मफल के स्वामी अथवा नियन्ता नहीं हो।"

दूसरा अध्याय

युधिष्ठिर का नगर में प्रवेश, राज्य व्यवस्था के लिए लोगों की नियुक्ति

वैशंपायनजी बोले—हे जनमेजय! इस प्रकार के उपदेश

सुनने के पश्चात् युधिष्ठिर ने व्यासजी से कहा, "हे महामुने! मैं चारों वर्णों के सम्पूर्ण धर्मों तथा राजधर्म का विस्तृत वर्णन सुनना चाहता हूँ। एक ओर धर्म का आचरण और दूसरी ओर राज्य पर शासन ये दोनों बातें मुझे एक दूसरे के विरुद्ध प्रतीत होती हैं।" व्यासजी ने कहा, "हे राजन्! यदि तुम पूर्ण रूपसे धर्म का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हो तो पितामह भीष्म के पास जाओ। वे सब धर्मों के विद्वान एवं ज्ञाता हैं। वे तुम्हारी समस्त शंकाओं का समाधान कर देंगे।" इस बात पर मनन करते हुए तथा अनेक मनीषियों द्वारा दिये गए प्रवचनों को हृदयंगम करके युधिष्ठिर उठ खड़े हुए और अपने कर्त्तव्य का निश्चय करके अपने भ्राताओं तथा अन्य सज्जनों के साथ अपनी राजधानी हस्तिनापुर की ओर चले। उनके स्वागत के लिए असंख्य नरनारी नगर-द्वार पर एकत्रित हो गए। चारों ओर से उनका जय जयकार होने लगा। मार्ग की अट्टालिकाएँ दर्शनोत्सुक स्त्रियों और बच्चों से भर गईं।

जब युधिष्ठिर अपनी मण्डली सहित राजभवन के समीप पहुँचे तो मन्त्री, सेनापति आदि ने उनका हार्दिक स्वागत किया। वे सब पाण्डवों की रीति, नीति, धर्मपरायणता की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे। प्रासाद के अन्दर पहुँचने पर राजपुरोहित धौम्य ने महाराज युधिष्ठिर और द्रौपदी को राजसिंहासन पर बिठाकर विधिपूर्वक उनका राज्याभिषेक किया। इसके पश्चात् राजा युधिष्ठिर ने भीमसेन को युवराज बनाने की घोषणा की। फिर बुद्धिमान विदुरजी को राजकाज सम्बन्धी गुप्त मंत्रणाएँ देने के लिए नियुक्त किया। आय-व्यय

सम्बन्धी कार्यों के लिए संजय को, सेना सम्बन्धी समस्त कार्यों की व्यवस्था के लिए नकुल को और परराष्ट्र मन्त्री के रूप में अर्जुन को तथा धार्मिक कार्यों के प्रबन्ध और संचालन के लिए महर्षि धौम्य को नियुक्त किया। सहदेव को अपने पास रखकर समस्त राज्य कार्यों में सहयोग देने का दायित्व सौंपा। इसके अतिरिक्त अन्य लोगों को जिस जिस कार्य के उपयुक्त समझा उस-उस कार्य पर उन्हें नियुक्त कर दिया।

तीसरा अध्याय

युधिष्ठिर का भीष्म के पास जाकर राजधर्म पर उपदेश लेना

वैशंपायनजी बोले—हे राजन्! विभिन्न राजपुरुषों की नियुक्ति के पश्चात् महाराज युधिष्ठिर ने चारों वर्णों को अपने अपने धर्मों एवं कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए प्रेरित किया। इसके पश्चात् युधिष्ठिर श्रीकृष्ण, कृपाचार्य, चारों भ्राताओं और सात्यकि को साथ लेकर रथ पर सवार हो भीष्मपितामह के पास चले। कुरुक्षेत्र में पहुँचकर उन्होंने देखा, पितामह शरशैया पर सो रहे हैं। सबने पहुँचकर सिर नवाकर उन्हें प्रणाम किया। फिर उन्हें चारों ओर से घेरकर बैठ गए। फिर श्रीकृष्ण मन ही मन कुछ दुःखी होकर बोले, "पितामह! क्या आपकी सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियाँ पहले की ही भाँति सचेष्ट हैं? आपको विशेष शारीरिक कष्ट तो अनुभव नहीं हो रहा है? मैं आपसे यह निवेदन करना चाहता हूँ कि युधिष्ठिर अपने कुटुम्बीजनों के मारे जाने से अत्यन्त शोक सन्तप्त हो रहे हैं। कृपा करके इनके शोक को दूर कीजिए।" भीष्मजी बोले, "मधुसूदन! बाणों के गड़ने से जो जलन हो रही है

उससे मन व्यथित है। बुद्धि कुछ काम नहीं कर रही है। फिर भी युधिष्ठिर मुझसे जो कुछ पूछेंगे, मैं उनका उत्तर दूँगा। अब मैं स्वस्थ हूँ। युधिष्ठिर! तुम निर्भय होकर प्रश्न करो।"

युधिष्ठिर बोले, "पितामह! विद्वानों का मत है कि कि राजा का धर्म श्रेष्ठ है, परन्तु मैं इसे भार मानता हूँ। अतएव आप मुझे राजधर्म का उपदेश दें।" भीष्म कहने लगे, "राजा को सदा पुरुषार्थ के लिए सचेष्ट रहना चाहिए। पुरुषार्थ के बिना केवल प्रारब्ध राजा का प्रयोजन सिद्ध नहीं कर सकता। वैसे कार्य सिद्धि में दोनों का समान योग होता है, परन्तु पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा है। कार्य पूरा हो या न हो, पुरुषार्थ करते रहो। दूसरे, राजा को सत्यपरायण होना चाहिए। इससे प्रजा में उसके प्रति विश्वास उत्पन्न होता है। गुणवान, सुशील, जितेन्द्रिय, कोमल स्वभाव वाला, धर्मपरायण और दानी मनुष्य कभी निर्धन नहीं होता। राजा को आवश्यकतानुसार कोमल और कठोर होना चाहिए। सदैव क्षमाशील रहने वाला राजा अधर्म को बढ़ावा देता है और नीच मनुष्य ऐसे राजा का तिरस्कार करते हैं। प्रत्यक्ष, आगम, अनुमान और उपमान से अपने पराये की पहचान करनी चाहिए। राजा को किसी भी प्रकार के व्यसनों के वशीभूत नहीं होना चाहिए। सदैव धैर्य रखो और अपराधियों को निःसंकोच होकर दण्ड दो। सेवकों के साथ कभी अधिक मनोविनोद मत करो। अन्यथा वे अपनी मर्यादा का उल्लंघन कर जायेंगे।

हे युधिष्ठिर! राजा को सदैव उद्योगशील एवं पुरुषार्थी होना चाहिए। विपक्षी राजा की स्थिति और सामर्थ्य देखकर संधि या

विरोध करना चाहिए। दम्भ के वशीभूत होकर कुमार्ग पर चलने वाला गुरु भी दण्डनीय है। प्रजा को प्रसन्न रखना और सत्य की रक्षा तथा व्यवहार की कुशलता राजा का कर्त्तव्य है। राजा को किसी पर भी विश्वास नहीं करना चाहिए। उसे सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय के गुण दोषों का स्वयं अपनी बुद्धि द्वारा निरीक्षण करना चाहिए। राजा को शत्रु के छिद्रों का अन्वेषण, रहस्यों का ज्ञान तथा उसके मन्त्री आदि में फूट डालने का कार्य करते रहना चाहिए। राजा का कर्त्तव्य है कि वह न्याय करने में यमराज और धन संग्रह में कुबेर के समान हो। सज्जनों को धनादि से सन्तुष्ट करे और दुष्टों से दण्ड के रूप में धन प्राप्त करे। शूरवीर, धर्मपरायण, अचल भक्ति रखने वाले, पूर्णतया विश्वस्त, कुलीन, नीरोग, शिष्ट और कर्त्तव्यपरायण लोगों को ही अपना सहायक बनाना चाहिए। उन्हें सब प्रकार से सन्तुष्ट रखना चाहिए। जिसके ऐसे सहायक होते हैं वह राजा कभी शत्रु के वश में नहीं होता। जिस राजा के राज्य में कूटनीति, कपट, ईर्ष्या आदि का अभाव हो, वहीं सनातन धर्म का पालन होता है। राज्य में कुछ रक्षात्मक धर्मों का भी पालन करना चाहिए। उनमें प्रमुख है—गुप्तचरों की नियुक्ति, दूसरे राष्ट्रों में राजदूत भेजना, सेवकों को समय पर वेतन देना, युक्तिसंगत कर लेना, प्रजा के साथ अन्याय न होने देना, कार्यदक्षता, प्रजा का हितचिंतन, सेना को प्रसन्न रखना, कोष की वृद्धि करना, शत्रुओं की ओर से सावधान रहना तथा नीच एवं दुष्ट पुरुषों का त्याग। कभी दुर्बल शत्रु की भी

उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।" इस समय सन्ध्या हो चली थी। इसलिये युधिष्ठिर आदि ने उस समय भीष्मपितामह से विदा लेकर हस्तिनापुर की ओर प्रस्थान किया।

चौथा अध्याय

वर्णाश्रम धर्म तथा राजा की आवश्यकता और 'राजा' की उत्पत्ति का प्रतिपादन

वैशंपायनजी बोले—दूसरे दिन प्रातःकाल पाण्डवगण तथा श्रीकृष्ण पुनः भीष्मपितामह के पास उपदेश लेने के लिए पहुँचे। पितामह की चरणवन्दना आदि करके युधिष्ठिर ने पूछा, "पितामह! सभी वर्णों के लिये उपयोगी धर्म कौनसे हैं? चारों वर्णों के पृथक्-पृथक् तथा उनके चारों आश्रमों के धर्म कौन से हैं और राजा को कौन से धर्मों का पालन करना चाहिये।"

भीष्मजी बोले, "बिना दी हुई वस्तु को न लेना, दान देना, वेदों को पढ़ना, द्वन्द्वों को सहना, किसी भी प्राणी के प्रति वैरभाव न रखना, सत्य भाषण, क्रोध न करना तथा यज्ञ करना ये सब धर्म के लक्षण हैं। अक्रोध, सत्यभाषण, धन का समान उपभोग, क्षमाभाव, एकपत्नीव्रत, तन मन की पवित्रता, किसी से द्रोह न करना, सरल भाव, आश्रितजनों का भरण-पोषण--ये नौ धर्म सभी वर्णों के लिए उपयोगी हैं। अब वर्णानुसार धर्म सुनो। ब्राह्मण को चाहिए मनोनिग्रह, वेद शास्त्रों का अध्ययन करे और सभी जीवों के प्रति मैत्रीभाव रखे। क्षत्रिय दान दे, किसी से याचना न करे, यज्ञ तो करे किन्तु यज्ञ में पुरोहित न बने। अध्ययन करे, अध्यापन न करे। प्रजापालन, लुटेरों का वध करे और युद्ध में पराक्रम दिखाए।

वैश्य का धर्म दान देना, स्वाध्याय, यज्ञ करना तथा पवित्रता से धन कमाना है। उसे पशुपालन भी करना चाहिए। शूद्र का धर्म तीनों वर्णों की सेवा करना है।

"अब मैं तुम्हें चारों आश्रमों के नाम और उनके कर्म बताता हूँ। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और भैक्ष्यचर्य (संन्यास) ये चार आश्रम हैं। संन्यास आश्रम केवल ब्राह्मणों के लिए है। ब्रह्मचर्य आश्रम में चूड़ाकर्म एवं उपनयन संस्कार के पश्चात् द्विजत्व को प्राप्त कर वेदाध्ययन समाप्त करे। फिर विवाह करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे और अग्निहोत्रादि करे। इसके पश्चात् इन्द्रियों को वश में करके पत्नी सहित अथवा बिना पत्नी के वानप्रस्थ ग्रहण करे और आरण्यक शास्त्रों का अध्ययन करे। उसके पश्चात् ब्रह्मचर्य पालन करके संन्यास ग्रहण करे। यदि ब्रह्मचारी ब्राह्मण मोक्ष का उत्कट अभिलाषी हो तो वह ब्रह्मचर्य के पश्चात् सीधा ही संन्यास आश्रम में प्रवेश कर सकता है। संन्यासी को जितेन्द्रिय, निष्काम और सदैव भ्रमणशील रहना चाहिए। हृदय में किसी प्रकार का विकार न आने दे।"

युधिष्ठिर बोले, "पितामह! अब यह बताइये कि नागरिक के राष्ट्र के प्रति मुख्य कर्त्तव्य क्या हैं?" भीष्म उनका समाधान करते हुए कहने लगे, "सबसे पहले तो राष्ट्रवासियों को किसी योग्य राजा का अभिषेक करना चाहिये। अराजक राष्ट्र अधर्मी, विपन्न और अरक्षित हो जाता है। राजा के बिना प्रजा में सुख, सुरक्षा एवं ऐश्वर्य की वृद्धि नहीं होती।" जब युधिष्ठिर ने पूछा कि लोक में राजा शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई तो

भीष्मजी ने बताया, "पहले न कोई राज्य था और न राजा। सम्पूर्ण प्रजा धर्मानुसार आचरण करती थी। कुछ समय पश्चात् लोगों ने मोह के वशीभूत होकर धर्म, न्याय आदि सद्‌गुणों का परित्याग कर दिया। वे लोभ के वशीभूत होकर नाना प्रकार के दुष्कर्म करने लगे। स्वाध्याय का लोप हो गया। जब विद्वानों ने दुःखी होकर ब्रह्माजी से इस दुर्दशा का वर्णन किया तो उन्होंने एक लाख अध्यायों के एक नीति शास्त्र की रचना की। जिसमें धर्म, अर्थ और काम का विस्तृत विवरण था। इस नीतिशास्त्र का पालन करने के लिए 'राजा' की सृष्टि की गई। उस नीतिशास्त्र का नाम 'वैशालाक्ष' हुआ। बाद में इसके संक्षिप्त संस्करण का नाम 'बाहुदन्तक' पड़ा। फिर बृहस्पति ने इसके केवल तीन सहस्र अध्याय करके इसका नाम 'बार्हस्पत्य' नीतिशास्त्र रखा। फिर विष्णु भगवान ने इस महत्वपूर्ण पद का नाम 'राजा' रखकर वेन के पुत्र पृथु को संसार का सर्वप्रथम 'राजा' बनाया।"

पाँचवाँ अध्याय

दण्डनीति द्वारा युगों के निर्माण तथा राजा के छब्बीस गुणों का वर्णन

युधिष्ठिर बोले, "पितामह! राजा को विशेष रूप से कौन से कर्त्तव्यों की ओर ध्यान देना चाहिए और वह सब वर्णों में कैसे विश्वास उत्पन्न करे।" भीष्मपितामह ने बताया, "राजा को सबसे पहले स्वयं पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। जितेन्द्रिय राजा ही शत्रु का दमन कर सकता है। राजा को देश की सीमा पर, दुर्गों में तथा नगर एवं गाँवों के मध्य में सेना रखनी चाहिए। महत्वपूर्ण स्थानों की रक्षा के लिए

सैनिक नियुक्त किये जायें। विश्वसीय एवं बुद्धिमान लोगों को गुप्तचर बनाया जाय जो शत्रु ही नहीं, मंत्रियों, सेनापतियों, प्रजाजनों आदि पर भी सूक्ष्म दृष्टि रखें। बलवान शत्रु के साथ सन्धि कर लेनी चाहिये। निर्बल या अन्यत्र व्यस्त पड़ोसी राष्ट्र पर आक्रमण करके उसे विजय कर ले। यदि शत्रु प्रबल हो तो उसे भीतर ही भीतर क्षीण करने का प्रयास करे। वैसे युद्ध को टालने का यथाशक्ति प्रयास करना चाहिए। प्रजा से उसकी आय का छठा भाग लेकर उसी के हित पर व्यय करे। प्रजा को पुत्र की भाँति समझे, किन्तु न्याय करते समय किसी के साथ पक्षपात न करे। दण्ड का सदा उचित प्रयोग करना चाहिए। यदि संसार में दण्ड की व्यवस्था न होती तो सब लोग एक दूसरे को नष्ट कर डालते। दण्ड से सुरक्षित प्रजा ही धन धान्य सम्पन्न होती है। अपने धर्म में स्थिर न रहने वाले व्यक्ति को अवश्य दण्ड देना चाहिए, किन्तु इस विषय में मनमानी कदापि नहीं करनी चाहिये। दुर्गों को सदा अन्न, जल ईंधन आदि से भरपूर रखे ताकि युद्ध के समय उसे कठिनाई न हो। युद्धकाल में भोजन रात्रि में बनाया जाय। दिन में किसी को आग जलाने की अनुमति न हो। अन्न के भण्डार, शस्त्रागार आदि गुप्त स्थानों पर रखे जायें। राजा को सात अंगों का प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिए। ये सात अंग हैं—राजा का अपना शरीर, मन्त्री, कोष, सेना, मित्र, राष्ट्र और नगर। राजा को छः गुणों, तीन वर्गों और तीन परमवर्गों का सम्यक ज्ञान होना चाहिए। छः गुण हैं—शत्रु से सन्धि करना, शत्रु पर आक्रमण, शत्रु से वैर, शत्रु को भयभीत करने के

लिये आक्रमण का प्रदर्शन, शत्रु में भेद डलवाना और दुर्ग या दुर्जय राजा का आश्रय लेना। तीन वर्ग हैं—क्षय, स्थान और वृद्धि। तीन परम वर्ग हैं—धर्म, अर्थ एवं काम।

"यदि राजा दण्डनीति का उत्तम रीति से प्रयोग करे तो वह चारों वर्णों को अपने अपने धर्म में स्थित रखता है और अधर्म को रोकता है। जहाँ दण्ड का उचित प्रयोग होता है वहाँ धर्म ही धर्म होता है। प्रजा में रोग, वैधव्य, अकाल मृत्यु, निर्धनता का अभाव होता है। सारे प्राणी दण्डनीति के आधार पर ही टिके हुए हैं। राजा को इहलोक व परलोक में सुख दिलाने वाले छत्तीस गुण हैं। वे इस प्रकार हैं—१. स्वधर्म (कर्त्तव्यों) का आचरण, २. आस्तिकतापूर्वक सबके साथ प्रेमव्यवहार, ३. क्रूरतारहित धन संग्रह, ४. मर्यादापूर्वक विषयों का उपभोग, ५. प्रिय भाषण, ६. अभिमानरहित शूरवीरता, ७. सुपात्र को दान, ८. साहस, ९. दुष्टों से अप्रीति, १०. बन्धु-बान्धवों से प्रेम, ११. राजभक्त गुप्तचरों की नियुक्ति, १२. अहिंसा, १३. दुष्टों पर विश्वास न करना, १४. अपने गुणों का बखान न करना, १५. श्रेष्ठ पुरुषों का धन न छीनना, १६. नीच पुरुषों का आश्रय न लेना, १७. बिना उचित प्रमाण के दण्ड न देना, १८. गुप्त मंत्रणा को प्रकट न करना, १९. लोभी को धन न देना, २०. अपकारी पर विश्वास न करना, २१. पत्नी की रक्षा करना, २२. किसी से घृणा न करना, २३. अधिक स्त्री-संग से बचना, २४. अशुद्ध और अहितकर भोजन न करना, २५. माननीय जनों का सत्कार करना, २६. गुरुजनों की निष्कपट सेवा करना, २७. दम्भहीन होकर विद्वानों का सम्मान करना,

२८. ईमानदारी से धन संग्रह करना, २९. प्रीति का पालन करना, ३०. कार्यकुशल होना, ३१. मिथ्या विश्वास न दिलाना, ३२. कृपा करते समय आक्षेप न करना, ३३. किसी पर अकारण प्रहार न करना, ३४. शत्रुओं को मारकर शोक न करना, ३५. अकारण क्रोध न करना, ३६. अपकारी पर दया न करना। इन गुणों का अनुसरण करने वाला नरेश जीवन में कभी दुःखी और असफल नहीं होता। इन गुणों से विपरीत चलने वाला राजा न तो धर्म की सिद्धि कर पाता है और न अर्थ की।"

छठा अध्याय

ऋत्विजों के लक्षण, यज्ञ तथा दक्षिणा का महत्व, राज्य की महत्ता का वर्णन

भीष्म अपना प्रवचन जारी रखते हुए बोले, "राजा को चाहिये कि वह ऐसे विद्वान् ब्राह्मण को अपना पुरोहित बनाये जो धर्मात्मा, विद्वान्, स्वाध्यायी तथा राज्य को असत्कर्मों से बचाने वाला हो।" जब युधिष्ठिर ने ऋत्विजों के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त करनी चाही तो भीष्मजी ने बताया, हे युधिष्ठिर! छन्दशास्त्र तथा ऋक्, साम और यजु नामक वेदों तथा स्मृति एवं दर्शनशास्त्र का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर चुके हों, वे ही ब्राह्मण ऋत्विज होने के अधिकारी हैं। उनका मुख्य कार्य राजा के लिए 'शान्ति' 'पौष्टिक' आदि कर्मों का अनुष्ठान करना है। वे सरल, सत्यवादी, राजा-प्रजा के हितचिन्तक, संयमी, स्नेहशील, प्रियवादी, अहिंसा-शील होते हैं।"

युधिष्ठिर ने पूछा, "पितामह! क्या यज्ञ करने के पश्चात् दक्षिणा देना अनिवार्य है?" भीष्म बोले, "दक्षिणा यज्ञ का

अंग है। दक्षिणाहीन यज्ञ किसी प्रकार भी यजमान का उद्धार नहीं कर सकता। धनी और निर्धन के लिये समान दक्षिणा का विधान नहीं है। निर्धन व्यक्ति अपनी सामर्थ्य के अनुसार दक्षिणा दे सकता है। यज्ञ से श्रेष्ठ तप है, किन्तु शरीर को सुखाने का नाम तप नहीं है। वैर का त्याग, सत्य भाषण, दयालुता, मनोनिग्रह, अहिंसा ही वास्तव में तप है। इन बातों को ध्यान में रखकर अपना कर्त्तव्य पालन करते हुए तुम राज्य करो।"

भीष्मपितामह के वचन सुनकर युधिष्ठिर ने कहा, "पितामह! मैं राज्य से सुख पाने की आशा करके एक क्षण के लिये भी राज्य करने की इच्छा नहीं करता। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें धर्म है ही नहीं।" यह सुनकर भीष्म बोले, "युधिष्ठिर! मैं जानता हूँ कि धर्म के प्रति तुम्हारा महान अनुग्रह है। राज्य का त्याग कर देने पर लोग तुम्हें कायर समझेंगे। जिस प्रकार तुम रहना चाहते हो, वह राजाओं का आचरण नहीं है। तुम्हारा जन्म प्रजा का पालन करने के लिये हुआ है। चाहे कैसा भी व्यक्ति हो, वह पूर्ण रूप से धर्म का आचरण नहीं कर सकता। अतएव कर्तव्य कर्म न करने से बढ़कर कोई दूसरा पापी नहीं है। इसलिये तुम मिथ्या विचार जाल से निकलकर राज्य करने की ओर ध्यान दो।"

युधिष्ठिर ने पूछा, "राजा के सहायकों, मन्त्रियों, सभासदों आदि के लक्षण क्या होने चाहिएँ?" भीष्मजी ने बताया, "राजा के सहायक चार प्रकार के होते हैं—(१) सहार्थ, (२) भजमान, (३) सहज और (४) कृत्रिम। इनमें से भजमान और

सहज श्रेष्ठ हैं। शेष दो मित्रों की ओर से सदैव सावधान रहना चाहिए। समय पाकर श्रेष्ठ मनुष्य दुष्ट और दुष्ट मनुष्य भी श्रेष्ठ बन जाते हैं। कभी-कभी शत्रु मित्र, और मित्र शत्रु बन जाता है क्योंकि मनुष्य की चित्तवृत्ति सदैव एक जैसी नहीं रहती। दूसरों पर किया गया पूर्ण विश्वास इस प्रकार कभी-कभी अकाल मृत्यु का कारण बन जाता है। अतएव राजा को कुछ चुने हुए व्यक्तियों पर विश्वास तो करना चाहिये, परन्तु पूर्णतया उन पर निर्भर नहीं रहना चाहिये। कुलीन, विद्वान, बुद्धिमान, शास्त्रों के ज्ञाता, सहिष्णु, अपने ही देश के निवासी, कृतज्ञ, बलवान, क्षमाशील, दूरदर्शी, मनस्वी, जितेन्द्रिय, निर्लोभी, सन्तोषी, स्वामिभक्त, हितैषी और आलस्यरहित, सक्रिय व्यक्ति को अपना मन्त्री बनाना चाहिए। स्वयं राजा को भी इन गुणों से सम्पन्न होना चाहिए। राजा के सभासद जितेन्द्रिय, सत्यपरायण, सरल, विद्वान, कुलीन एवं बुद्धिमान होने चाहिएँ। जिन मन्त्रियों का राजा के प्रति प्रेम न हो, उनका विश्वास नहीं करना चाहिए। राजा से प्रेम करने वाला, गुणवान किन्तु सरल व्यक्ति भी राजा की गुप्त मन्त्रणा को जानने का अधिकारी नहीं है।"

सातवाँ अध्याय

राजा की व्यवहार नीति, दूत आदि के गुण, राष्ट्र रक्षा का विधान

भीष्म बोले, "अब मैं तुम्हें यह बताता हूँ कि राजा को प्रजा का पालन किस प्रकार करना चाहिए जिससे वह प्रजा का स्नेह और अक्षय कीर्ति प्राप्त कर सके। सबसे पहली बात तो यह है कि उसे शुद्ध व्यवहार से प्रजापालन में तत्पर रहना

चाहिए। अन्याय और अधर्मपूर्वक प्रजा से व्यवहार करने वाले राजा के मन में सदा भय बना रहता है। उसे तो चाहिए कि दुराचारी प्रजाजन को दण्ड देकर भी सुमार्ग पर लाने का प्रयत्न करे। निरपराध को कभी दण्ड न दे। अन्य राष्ट्र का दूत जो अपनी सभा में आये, उसे अपराध करने पर भी दण्ड न दे। दूत की हत्या करने वाला नरेश लोकनिन्दा और पाप का भागी होता है। यदि उसे किसी व्यक्ति को दूत बनाकर भेजना हो तो उसमें ये गुण होने चाहिएँ—वह कुलीन, सुशील, वाक्‌पटु, चतुर, मधुरभाषी, अच्छी स्मरणशक्ति वाला होना चाहिए। राजा के मन्त्री को धर्मशास्त्र का ज्ञाता, सन्धि-विग्रह-कुशल, धीर, वीर, बुद्धिमान, कुलीन और साहसी होना चाहिए। सेनापति ब्यूहरचना में पारंगत, अस्त्र-शस्त्रों का ज्ञाता, रणकुशल, वीर, पराक्रमी, बुद्धिमान होना चाहिए। राजा को इन पर भी पूरा और अन्धविश्वास नहीं रखना चाहिए। अपने मन की गुप्त बात वह कभी किसी से न कहे।"

युधिष्ठिर ने पूछा, "राजा को राष्ट्र की रक्षा और वृद्धि के लिए क्या करना चाहिए।" भीष्मपितामह ने उत्तर दिया, "हे वत्स! राष्ट्र की रक्षा के लिए एक ग्राम का, दस ग्रामों का, बीस ग्रामों का, सौ ग्रामों का और एक सहस्त्र ग्रामों का पृथक पृथक अधिपति बनाना चाहिए। ग्राम अधिपति का यह कर्त्तव्य हो कि वह ग्रामवासियों के विवादों और अपराधों का वहीं रह कर पता लगावे और उनका पूर्ण विवरण दसग्रामाधिपति को दे। इसी प्रकार यह अधिपति बीस गाँव वाले अधिपति को और ऊपर वाले अपने ऊपर वाले अधिपतियों को क्रमशः, पूरा

वृत्तान्त भेजें। इस प्रकार अपने अधीनस्थ अधिपतियों से प्राप्त विवरणों को सहस्र ग्रामों का अधिपति स्वयं राजा के पास लेकर जावे और राजा उसके सम्बन्ध में यथोचित निर्णय ले। ग्राम से होने वाली आय को अधिपति अपने ही पास रखकर उसमें से एक नियत राशि वेतन के रूप में रख ले। शेष का एक अंश दस ग्राम के अधिपति को देकर शेष राशि ग्राम के हित में व्यय करे। सौ ग्राम का अधिपति एक ग्राम की आय का उपभोग कर सकता है। सहस्र ग्रामों का अधिपति एक शाखानगर की आय प्राप्त करने का अधिकारी हो। इन अधिपतियों के अधिकार एवं प्रबन्ध सम्बन्धी कार्यों की देख-भाल कोई सुयोग्य मंत्री करे। राजा को चाहिये कि राज्य में होने वाले सम्पूर्ण व्ययों को ध्यान में रखकर व्यापारियों पर कर लगाये। इसी प्रकार माल की उपज, खपत, क्रय-विक्रय, शिल्प की श्रेणियों का निरीक्षण करके शिल्पियों पर कर लगावे। ये कर करदाता की सामर्थ्य को देखकर लगाये जाने चाहिए। यदि प्रजाजन यह अनुभव करने लगें कि राजा उनका शोषण कर रहा है तो वे उसके विरुद्ध विद्रोह कर देंगे।

"युधिष्ठिर! प्रजा से प्राप्त होने वाले सम्पूर्ण धन को उसी समय व्यय नहीं कर देना चाहिए। उसका एक बड़ा भाग आपत्ति, अकाल आदि के लिये बचाकर रखना चाहिये। नगर की रक्षा के लिये परकोटा बनवाना चाहिए। राष्ट्रवासियों की सुविधा के लिये सड़कों, यातायात, धर्मशालाओं आदि की समुचित व्यवस्था करनी चाहिए। उसे चाहिए कि वह व्या-पारियों, उद्योगपतियों, वैश्यों, कृषकों एवं सैनिकों को सदैव

सन्तुष्ट रखे। यह न भूले कि विद्वान्, शूरवीर, धर्मनिष्ठ, धनी, सत्यपरायण एवं बुद्धिमान व्यक्ति ही राष्ट्र के सच्चे रक्षक होते हैं। समय-समय पर प्रजा में गुप्तचरों को भेजकर इस बात का पता लगाना चाहिए कि वह अपने राजा मन्त्रियों और अधिकारियों के आचार-विचार एवं व्यवहार के विषय में कैसे विचार रखती है। यदि उसके विचार में दोष दिखाई देते हैं तो उन दोषों को तत्काल दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। इससे प्रजा उसमें अनुरक्त होती है। इससे राजा के शुभचिन्तक एवं मित्रों में वृद्धि होती है और शत्रुओं का नाश होता है।"

आठवाँ अध्याय

गणतन्त्र का वर्णन, सत्य-असत्य का विवेचन, व्यावहारिक नीति

युधिष्ठिर ने पूछा, "पितामह! कृपया मुझे गणतन्त्र राज्यों का व्यवहार और वृत्तान्त सुनाइए। गणराज्य की जनता अपने राज्य की उन्नति कैसे करती है और शत्रुओं पर कैसे विजय प्राप्त करती है?" भीष्मजी ने बताया, "गणों और कुलों में लोभ और अमर्ष के कारण शत्रुता होती है। जब कोई लोभ के वशीभूत होकर दूसरे का धन हड़पना चाहता है तो दूसरे व्यक्ति को अमर्ष (क्रोध) होता है। इसके फलस्वरूप व्यक्ति समुदायों में बँटकर परस्पर लड़ने लगते हैं। गणराज्य में इस प्रकार कलह होने पर पड़ोसी राष्ट्र अपने गुप्तचर भेजकर उस कलह को भड़काते हैं, गुप्त मन्त्रणाएें करके शक्तिशाली व्यक्तियों को अपनी ओर कर लेते हैं। फिर अवसर पाकर राष्ट्र पर आक्रमण कर देते हैं। संघबद्ध होकर जीवन

निर्वाह करने वाले जिन सैनिकों को समय पर भोजन और वेतन नहीं मिलता, वे विद्रोह कर देते हैं। फिर वे भयभीत होकर शत्रु राष्ट्र के आधीन हो जाते हैं। पारस्परिक कलह के फलस्वरूप ही संघ अथवा गणराज्य का विनाश होता है। शत्रु उन पर सरलता से विजय प्राप्त कर लेता है। इसलिए आवश्यक है कि गणतन्त्र के समस्त निवासी एकजुट होकर रहें। गणतन्त्र एक श्रेष्ठ प्रणाली है। वे धर्मानुकूल व्यवहारों की स्थापना करते हैं। उसके निवासियों में एक-दूसरे को ठगने की दुर्भावना नहीं होती। वे सभी पारस्परिक सहयोग से उन्नति करते हैं। संघराज्य के लोगों में यदि क्रोध, फूट, भय, दण्डप्रहार जैसे कुत्सित प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो जाएँ तो वह राष्ट्र शीघ्र पराधीन हो जाता है। गण के सभी लोग गुप्त मंत्रणाएँ सुनने के अधिकारी नहीं हों। मन्त्रणा को गुप्त रखने और गुप्तचरों को नियुक्त करने का कार्य कुछ प्रमुख अधिकारियों के हाथ में होता है।"

जब युधिष्ठिर ने भीष्मपितामह से सत्य-असत्य का विवेचन करने की प्रार्थना की तो उन्होंने कहा, "सत्यभाषण से बढ़कर कोई दूसरा धर्म नहीं है। किन्तु कुछ अवसर ऐसे भी होते हैं जब सत्यभाषण अनुचित और असत्यभाषण उचित बन जाता है। जब सत्यभाषण किसी के प्राण संकट में डाल दे तो वह अनुचित है और असत्य भाषण से, किसी के प्राणों की रक्षा होती है तो वहाँ असत्य भाषण ही उचित है। प्राणियों के अभ्युदय और कल्याण के लिए धर्म का प्रवचन किया गया है। अतः लोक और परलोक का कल्याण करने वाले कर्म ही धर्म

हैं। जिससे धारण तथा पोषण होता है, वही वास्तव में धर्म है। प्राण संकट के समय, विवाह के अवसर पर, दूसरे के धन की रक्षा के लिए और धर्म की रक्षा के हेतु असत्य बोलना अनुचित नहीं है। जो मनुष्य जिसके साथ जैसे व्यवहार करे, उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए। कपटपूर्ण आचरण करने वाले को वैसे ही आचरण के द्वारा दबाना उचित है।"

नवाँ अध्याय

ईश्वर भक्ति का महत्व, त्रिवर्ग का विचार, राजा का आपद् धर्म

भीष्मपितामह कहने लगे, "मनुष्य इस संसार में नाना प्रकार के दुःखों में फँसा हुआ है। वह इससे निकलना चाहता है, किन्तु इससे निकल नहीं पाता। इसका एकमात्र उपाय यह है कि वह संसार की उलझनों से अपनी चित्तवृत्ति को हटाकर ईश्वर की ओर प्रेरित करे। यह समझकर कि ईश्वर समस्त प्राणियों का स्वामी और जगत की उत्पत्ति तथा प्रलय का कारण है, उसमें पूर्ण निष्ठा भक्ति रखे। उसे अवश्य कष्टों एवं विपत्तियों से मुक्ति मिल जायेगी।"

युधिष्ठिर बोले, "पितामह! धर्म, अर्थ और काम को त्रिवर्ग कहा जाता है। इसके विषय में आपका निश्चित मत क्या है? किन पर आश्रित होने से संसार यात्रा का पूर्ण निर्वाह हो जाता है? धर्म, अर्थ और काम का मूल क्या है? इन तीनों की उत्पत्ति का कारण क्या है? ये कहीं एक साथ और कहीं पृथक-पृथक क्यों रहते हैं?"

भीष्म बोले, "हे धर्मराज! जब मनुष्यों का चित्त

शुद्ध होता है और वे धर्मपूर्वक किसी अर्थ की प्राप्ति के लिए प्रवृत्त होते हैं, तब उचित काल, कारण तथा कर्मानुष्ठानवश धर्म, अर्थ और काम मिले हुए होते हैं। धर्म अर्थ की प्राप्ति का कारण है और काम धर्म का फल होता है। इन तीनों का मूल कारण है संकल्प। समस्त विषय इन्द्रियों के उपभोग के लिए है। धर्म, अर्थ, काम के त्रिवर्ग से निवृत्त होना ही 'मोक्ष' है। धर्म से शरीर की रक्षा होती है। धर्म को प्राप्ति के लिए अर्थ (धन) की आवश्यकता होती है और काम का फल है रति। ये सभी रजोगुणमय हैं। फल की इच्छा धर्म का मल है, संग्रह-वृत्ति अर्थ का मल है और आमोद-प्रमोद काम का मल है। अपने दोषों से रहित हो जाने पर त्रिवर्ग मंगलकारी हो जाता है। धर्म और अर्थ का त्याग करके काम का सेवन करने वाले की बुद्धि नष्ट हो जाती है। बुद्धि का नाश ही मोह है, मोह धर्म और अर्थ का नाश करता है और मनुष्य को दुराचारी बना देता है।"

युधिष्ठिर ने पूछा, "हे भारत श्रेष्ठ! यदि राजा के मित्र उसका साथ छोड़ दें, चारों ओर उसके शत्रु ही शत्रु हो जायँ, और उसकी सेना और कोष भी नष्ट हो जाय तो उसे क्या करना चाहिए?" भीष्म बोले, "राजा के लिए यह स्थिति अत्यन्त विपत्तिजनक होती है। ऐसी स्थिति में उसे आपद् धर्म का आश्रय लेना चाहिए। उसके लिए उचित है कि वह ऐसे संकटकाल में निर्धन प्रजा से भी यथासाध्य धन प्राप्त करके अपने कोष की वृद्धि करे। अच्छा समय आने पर प्रजा का धन किसी न किसी रूप में लौटा दे। क्षत्रिय यदि आजीविका

रहित हो जाय तो वह तपस्वी एवं ब्राह्मण को छोड़कर अन्य लोगों से धन प्राप्त करे। क्षत्रियों को न तो भीख माँगनी चाहिए और न वैश्य या शूद्र की जीविका अपनानी चाहिए। संकट के समय राजा और प्रजा दोनों को एक-दूसरे की रक्षा करनी चाहिए। राजा भूख से पीड़ित होने पर भी कोष, राजदण्ड, सेना, मित्र एवं अन्य संचित साधनों को कभी राज्य से दूर न करे। राजा का मूलाधार सेना और कोष है। इनमें भी कोष सेना का मूल है। सेना सम्पूर्ण धर्मों की रक्षा का मूल कारण है और धर्म प्रजा की जड़ है। इसलिए आपत्तिकाल में प्रजा को पीड़ा देकर भी कोष के लिए धन-संग्रह किया जा सकता है। राजा के लिये राज्य की रक्षा से बढ़कर और कोई धर्म नहीं है। परन्तु उपरोक्त कार्य केवल आपत्तिकाल में ही करने चाहिए, अन्यथा नहीं।"

युधिष्ठिर ने पूछा, "पितामह! क्षीण सेना और कोष वाले आलसी राजा को संकट से उबरने के लिए क्या करना चाहिए, विशेषत: जबकि उसके मन्त्री शत्रु से मिल गए हैं और विपत्ति के कारण राजा का चित्त व्याकुल हो?" भीष्मजी बोले, "यदि आक्रमण करने वाला राजा बाहर से आया हो, धर्मपरायण और सदाचारी हो तो उससे अनुनयपूर्वक राज्य बचाकर सन्धि कर लेनी चाहिये। यदि शत्रु अधर्मी और बलवान हो तो अपना कुछ खोकर भी उससे सन्धि कर लेनी चाहिए। यदि वह धन देने से सन्तुष्ट हो तो धन देकर भी सन्धि कर लेनी चाहिए। शत्रु का आक्रमण होने पर राजा को सबसे पहले अपने अन्त:पुर की रक्षा का प्रबन्ध करना

चाहिये। अपने आपको किसी भी दशा में शत्रु के चंगुल में नहीं फँसने देना चाहिये। यदि परिवार पर शत्रु का अधिकार हो चुका हो तो उसका मोह छोड़ देना ही श्रेयस्कर है।"

युधिष्ठिर ने पूछा, "यदि राष्ट्र और दुर्ग आदि पर आक्रमण करके शत्रु उसे पीड़ा पहुँचा रहा हो, मन्त्री आदि विरुद्ध हों, कोष खाली हो गया हो, राजा का रहस्य गुप्त न रह गया हो, तब उसे क्या करना चाहिये?" भीष्मजी बोले, "ऐसी स्थिति में राजा को या तो तत्काल सन्धि कर लेनी चाहिए अथवा सम्पूर्ण पराक्रम एवं कौशल के साथ युद्ध करके शत्रु को राज्य से बाहर निकाल देना चाहिए। यदि ऐसा करने में उसे अपने प्राणों की बाजी भी लगानी पड़े तो भी संकोच नहीं करना चाहिए। यदि सैनिक स्वामिभक्त एवं पराक्रमी हों तो भी छोटी सी सेना के बल पर विजय प्राप्त की जा सकती है। ऐसे युद्ध में राजा की मृत्यु हो जाय तो वह स्वर्ग पाने का अधिकारी होता है। दूसरा उपाय यह है कि निर्बल राजा वैरी में कोमल भावना उत्पन्न करने के लिए विपक्ष के सभी लोगों को सन्तुष्ट करके उनके मन में विश्वास उत्पन्न करके युद्ध बन्द करने के लिये प्रार्थना करे। तीसरा उपाय यह है कि वह विपक्षियों का विश्वास प्राप्त करने दुर्ग से निकल भागने की चेष्टा करे और कुछ समय पश्चात् शक्ति संचित करके अपना खोया हुआ राज्य पुनः प्राप्त करने का प्रयास करे।"

दसवाँ अध्याय

कर्त्तव्याकर्त्तव्य विवेचन

पितामह बोले, "हे राजन्! बिना दी हुई वस्तु को न लेना,

दान देना, वेदों का अध्ययन करना, किसी के प्रति शत्रुता न रखना सत्यभाषण, तथा यज्ञ करना धर्म के लक्षण हैं। वेद शास्त्रों के ज्ञान से शून्य ब्राह्मण नाममात्र का ब्राह्मण होता है। जैसे अन्न से रहित ग्राम, जलहीन कुआ और भस्म में दी हुई आहुति व्यर्थ होती है, उसी प्रकार मूर्ख को दिया हुआ दान भी निष्फल होता है।" भीष्मजी कहते हैं, "मन और इन्द्रियों पर संयम रखने वाला, सोमरस का पान करने वाला, सदाचारी, दयालु, सहिष्णु, निष्काम, सरल, क्षमाशील एवं अक्रूर व्यक्ति ही वास्तव में ब्राह्मण कहलाने के योग्य है। पापाचारी एवं दुराचारी व्यक्ति ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर भी ब्राह्मण नहीं होता। पापियों को दण्ड देने तथा सज्जनों का सत्कार एवं सम्मान करने और यज्ञों का अनुष्ठान एवं दान करने से राजा लाग सब प्रकार के दोषों से मुक्त हो जाते हैं। जो क्षत्रिय मल-मूत्र त्यागता तथा विलाप करता हुआ युद्ध में घायल हुए बिना अपनी शैया पर मरता है, वह प्रशंसनीय नहीं होता। जैसे पुत्र सदा पिता पर आश्रित होता है, वैसे ही समस्त संसार शूरवीर के शौर्य के आश्रित है। इसलिए सभी परिस्थितियों में शूरवीर का सम्मान करना चाहिये। शौर्य से बढ़कर तीनों लोकों में कोई अन्य वस्तु नहीं है क्योंकि शूरवीर सम्पूर्ण जगत का पालन करता है। शूरवीर के कर्त्तव्यों का निरूपण करते हुए इन्द्रदेव ने कहा है कि युद्ध में वृद्ध, बालक और स्त्री का वध नहीं करना चाहिए। भागते हुए व्यक्ति की पीठ पर वार नहीं करना चाहिए और जो व्यक्ति शरणागत हो जाय उसको भी नहीं मारना चाहिए। उग्र स्वभाव का राजा समस्त प्राणियों

के द्वेष का पात्र बन जाता है। इसके विपरीत यदि वह अत्यंत दयालु बन जाय तो सब लोग उसकी उपेक्षा करने लगते हैं। अतएव उसे आवश्यकतानुसार उग्र एवं कोमल भावों को ग्रहण करना चाहिए। बृहस्पतिजी ने भी यही कहा है कि मनुष्य कोमल स्वभाव वाले राजा का अपमान करते हैं और अति कठोर स्वभाव वाले से उद्विग्न हो जाते हैं। अतः अवसर के अनुसार कठोरता एवं कोमलता को अपनाना चाहिए। वैसे साधारण मनुष्य को चाहिये कि वह सदा मधुर वाणी बोले और किसी के साथ अप्रिय व्यवहार न करे। जो व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के दोष ही दोष देखता है और सद्गुणों को भी दोष मानता है, वह दुष्ट होता है।

"मनुष्य के पास धन सदा नहीं रहता। एक न एक दिन ऐसा अवश्य होता है जब धन मनुष्य को छोड़ जाता है अथवा मनुष्य ही धन का त्याग कर देता है। इसलिये मनुष्य को धन के पीछे कभी नहीं दौड़ना चाहिए। मनुष्य को चाहिए कि वह सदैव इन्द्रियों, मन और वाणी पर संयम रखे। संयम रखने का मुख्य कार्य आत्मा का है। वही इन्हें प्रयत्नपूर्वक अपने वश में रख सकता है। शास्त्र के अनुकूल आचरण करते हुए अपने मन और इन्द्रियों को वश में रखने वाला राजा अपना तो उद्धार करता ही है, प्रजा में भी प्रशंसा का पात्र बन जाता है। मनुष्य को अपने कर्त्तव्य पालन करते समय लोगों की टीका-टिप्पणी पर ध्यान नहीं देना चाहिए क्योंकि कोई कितना ही शुद्ध और महात्मा क्यों न हो, लोग उस पर भी दोषारोपण कर देते हैं। अपने धार्मिक कृत्यों में लगे हुए ऋषि-मुनियों के

भी शत्रु, मित्र और उदासीन होते हैं। लोभी लोग निर्लोभी से, कायर बलवानों से, मूर्ख विद्वानों से, दरिद्र धनिक व्यक्तियों से, पापी धर्मात्माओं से और कुरूप स्वरूप वाले व्यक्तियों से द्वेष करते हैं। किसी भी शक्तिशाली राजा के लिए किसी व्यक्ति का वध करा देना कठिन नहीं होता, परन्तु इस कार्य की उतनी प्रशंसा नहीं होती जितनी कि क्षमा कर देने पर होती है। इसी से उनकी कीर्ति बढ़ती है।

"प्रेम का बन्धन सरलता से नहीं टूटता, किन्तु यदि वह एक बार टूट जाय तो फिर बड़ी कठिनाई से जुड़ता है। बारम्बार टूटने और जुड़ने वाले प्रेम सम्बन्धों में स्नेह नहीं होता। राजाओं के सम्बन्ध में कुछ बातें और उल्लेखनीय हैं। उन्हें अपने पास अशिक्षित, कुटिल, मूर्ख एवं दरिद्र व्यक्तियों का नहीं रखना चाहिये। उन्हें अपने कोष की सब प्रकार से रक्षा करनी चाहिये क्योंकि कोष ही उनके राज्यों एवं शासन का मूल आधार होता है। उसके भण्डारों में पौष्टिक अन्न होना चाहिए और उसकी रक्षा का भार श्रेष्ठ पुरुषों पर होना चाहिये। राजा का व्यवहार अपने लोगों के प्रति निष्कपट होना चाहिए, किन्तु शत्रु के राज्य को धन-धान्य से सम्पन्न न होने दे। उसकी दुर्बलताओं पर सदा सूक्ष्मदृष्टि रखे और अपना पक्ष बलवान होते ही उस पर आक्रमण कर दे। शत्रु सेना को यथाशक्ति निर्बल बनाने का प्रयत्न करता रहे। राजा को चाहिये कि वह अपने प्रशासन के महत्वपूर्ण पदों पर कुल, स्वभाव, देश, धर्म के ज्ञाता, मधुरभाषी, सच्चरित्र, हितैषी, धैर्यवान, निर्लोभी, शिक्षित, जितेन्द्रिय, धर्मपरायण,

एवं धर्म-अर्थ की रक्षा करने वाले व्यक्तियों को ही नियुक्त करे।

"किसी की न तो निन्दा करनी चाहिए और न सुननी चाहिए। यदि तुम्हारे सामने कोई किसी की निन्दा कर रहा है और तुम उसे चुप नहीं कर सकते तो वहाँ से उठकर अन्यत्र चले जाना चाहिए। दूसरों की निन्दा करना अथवा चुगली खाना दुष्टों का स्वभाव है। सज्जन पुरुष तो दूसरों के गुणों का ही वर्णन करते हैं। धन के कारण उच्चपद प्राप्त करने वाले व्यक्ति का यदि धन नष्ट हो जाता है तो उसे धन की हानि मृत्यु के समान कष्टदायक होती है। परन्तु राजा के लिए प्रशासन की दृष्टि से धन का विशेष महत्व है। इसलिए राजा को मित्रों एवं सेना के साथ-साथ कोष में भी वृद्धि करनी चाहिए। राजा को सदैव उद्यम करना चाहिए। उद्यम ही पुरुषत्व है। स्वाभिमानी राजा की स्थिति सूखी लकड़ी के सदृश होती है? वह टूट सकता है, परन्तु किसी के आगे झुक नहीं सकता। बलवान राजा को सम्पत्ति, सेना, मन्त्री आदि सब कुछ मिल जाते हैं। बलवान के लिए कुछ भी असाध्य नहीं है।

"यह जीव जगत स्वार्थ का ही साथी है। कोई किसी का प्रिय नहीं है। दो सहोदर भ्राताओं एवं पति-पत्नी के पारस्परिक प्रेम का आधार भी स्वार्थ ही होता है। किसी से भी किसी का प्रेम निःस्वार्थ नहीं होता। सबको अपने प्राण प्यारे होते हैं। सभी को एक दूसरे से स्नेह होता है। स्नेह का बन्धन होते हुए भी कर्म उन्हें परस्पर नहीं बाँधता। पिता के कर्म से पुत्र का और पुत्र के कर्म से पिता का कोई सम्बन्ध नहीं है। अपने-अपने पुण्य और पाप के बन्धन में बँधे हुए जीव

कर्मानुसार भिन्न-भिन्न मार्गों से जाते हैं। मनुष्य को दीनता और शोक से सदा दूर रहना चाहिए। निराश व्यक्ति को कभी सुख की प्राप्ति नहीं होती। प्रयत्न करने से ही सिद्धि प्राप्त होती है। मनुष्य को चाहिये कि वह धर्म, सत्य, शास्त्र-ज्ञान, न्यायपूर्ण व्यवहार, सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति दयाभाव का आचरण करे और कुटिलता तथा शठता का त्याग करे। जो लोग जीवित माता-पिता, सुहृदों और भाई बन्धुओं की देखभाल नहीं करते वे धर्म से विचलित हो जाते हैं। सुख-दुःख का चक्र निरन्तर चलता रहता है। दोनों में से कोई भी स्थायी रूप से नहीं रहता और न कभी सुख या दुःख अकेला ही रहता है। विपत्ति सब पर आती है। उससे कभी भयभीत नहीं होना चाहिये। क्षत्रिय को अपने भुजबल से, वैश्य तथा शूद्र को धन के बल से और ब्राह्मण को मन्त्र एवं यज्ञ की शक्ति से उससे पार पाना चाहिए। मनुष्य जो भी पुण्य करे उसे श्रद्धापूर्वक तथा जितेन्द्रिय भाव से करना चाहिये। बिना दक्षिणा दिये यज्ञ नहीं करना चाहिए। बिना दक्षिणा का यज्ञ प्रजा और पशु का नाश करता है, स्वर्ग की प्राप्ति में बाधा डालता है। साथ ही ऐसा यज्ञ इन्द्रियों की शक्ति, यश और आयु को भी क्षीण करता है।

"विद्या यदि नीच पुरुष के पास हो तो उसे भी बिना किसी संकोच के श्रद्धापूर्वक लेनी चाहिये। नीच कुल से भी उत्तम स्त्री ग्रहण कर ले, विष के स्थान से यदि अमृत प्राप्त होता हो तो उसे भी ले ले क्योंकि स्त्री, रत्न और जल धर्मतः दूषित नहीं होते।"

ग्यारहवाँ अध्याय

जीव, ब्रह्म, सत्य, धर्म की विवेचना

पितामह भीष्म बोले, "हे युधिष्ठिर! स्वयंभू भगवान ब्रह्मा ने कहा है जिसके मन में आसक्ति है, उसकी मुक्ति नहीं होती। आसक्ति रहित ज्ञानी मनुष्य ही मोक्ष को प्राप्त करते हैं। इसलिए मुमुक्षु को चाहिए कि वह किसी का प्रिय अथवा अप्रिय न करें। ब्रह्म हत्यारे, शराबी, चोर और व्रत भंग करने वाले के लिए शास्त्र में प्रायश्चित का विधान है, परन्तु कृतघ्न के लिए कोई प्रायश्चित नहीं बताया गया है। उसका उद्धार नहीं हो सकता। जो मनुष्य धन का परित्याग कर उसकी आसक्ति से मुक्त हो गया और जिसके मन में भी किसी प्रकार की कामना नहीं है, उस पर न अग्नि का वश चलता है और न मृत्यु का। डाकू और लुटेरे भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। त्याग का सर्वाधिक महत्व है। त्याग के बिना न तो सांसारिक सुख मिलता है और न परमात्मा।

"भृगुजी का कहना है कि वृक्ष में केवल आत्मा ही नहीं होती उसमें पाँचों तत्व और ज्ञानेन्द्रियाँ भी होती हैं। यद्यपि वृक्ष देखने में ठोस जान पड़ता है, परन्तु उसके अन्दर जीवात्मा है। इसी से उसमें फूल-पत्तों आदि की उत्पत्ति होती है। उसमें जो ऊष्मा और स्पर्श की शक्ति है, उसके फलस्वरूप उसके पत्ते, फल, फूल आदि कुम्हला कर झड़ जाते हैं। उसमें श्रवण शक्ति है, इसीलिए वायु, अग्नि और बिजली की कड़क के भीषण शब्द को सुन कर फूल-फल झड़ जाते हैं। लता वृक्ष को चारों ओर से लपेट लेती है और ऊपर तक चढ़ती चली जाती है। इस

प्रकार उसमें देखने की भी क्षमता है। बिना देखे कोई अपना मार्ग नहीं खोज सकता। नाना प्रकार की गन्ध पाकर वृक्ष फूलते-फलते हैं। इससे सिद्ध होता है कि उनमें घ्राण-शक्ति है। वृक्ष अपनी जड़ से जल-पीता है। उसकी जड़ में औषधि डाल कर नीरोग किया जा सकता है। यह इस बात का प्रमाण है कि वृक्ष में रसनेन्द्रिय होती है। वृक्ष के कट जाने पर उसमें से नया अंकुर फूट निकलता है और वह सुख-दुःख को भी अनुभव करता है। इससे ज्ञात होता है कि उसमें जीवात्मा है। यही जीवात्मा अविनाशी है। आत्मा मस्तक के रन्ध्र स्थान में रहकर सम्पूर्ण शरीर की रक्षा करता है। शरीर का नाश हो जाने पर भी जीव का नाश नहीं होता। जो आत्मा की मृत्यु मानते हैं, वे वास्तव में भ्रम में हैं। शरीर के पाँच तत्वों का अलग-अलग हो जाना ही इस लोक में मृत्यु कहलाता है।

"सत्य ही एकमात्र ब्रह्म है, वही अविनाशी तप, यज्ञ और अविनाशी वेद है। वेदों में सत्य का ही महत्व बताया गया है। उसी से धर्म तथा इन्द्रिय-संयम की सिद्धि होती है। इस संसार का वास्तविक मूलाधार सत्य है। सत्य से ही वायु चलती है, सूर्य तपता है, अग्नि जलती है और उसी पर स्वर्गलोक प्रतिष्ठित है। मनुजी कहते हैं कि धर्म के अनुसार आचरण करने से श्रेय की वृद्धि होती है और अधर्म के अनुसार आचरण करने से उसका विनाश हो जाता है। विषय मनुष्य को प्रकृति की ओर धकेलते हैं और विरक्ति तथा आत्म-ज्ञान मुक्ति की ओर। यह सम्पूर्ण संसार आसक्ति के कारण अज्ञान जनित भोगों के द्वारा संसार-चक्र में भ्रमित होता रहता है।" भीष्मजी कहते हैं,

"समस्त प्राणियों में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है। मनुष्यों में द्विज और द्विजों में मन्त्रदृष्टा वेदज्ञ ब्राह्मण को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। सभी धर्मों में मन, वाणी एवं शरीर की पवित्रता, क्षमा, सत्य, धैर्य तथा स्मृति को कल्याणकारी माना गया है। ब्रह्मचर्य का पालन जितना कल्याणकारी है, उतना ही दुष्कर भी है। मनुष्य को चाहिए कि रजोगुण की वृत्ति प्रगट होते ही उसे रोकने का प्रयास करे। स्त्रियों की चर्चा न सुने और न उसके विषय में विलासितापूर्ण वर्णन पढ़े। उन्हें कभी नग्नावस्था में न देखे क्योंकि यदि अनजाने में भी नग्नावस्था में उन पर दृष्टि चली जाती है तो दुर्बलहृदय मनुष्य के मन में रजोगुण अर्थात् काम भावना का प्रवेश हो जाता है। यह निर्विवाद है कि मनुष्य अच्छा या बुरा जैसा भी कर्म करता है, उसका फल उसे अवश्य भोगना पड़ता है। इसलिए यह नितान्त आवश्यक है कि मनुष्य वाणी, बुद्धि और कर्म द्वारा सदा शुभ कर्मों का ही अनुष्ठान करे। जिस मनुष्य में अहिंसा, सत्य भाषण, सबके प्रति सरल व्यवहार, क्षमाशीलता और प्रमाद-शून्यता नामक गुण होते हैं, वह कभी दुःखी नहीं होता। सद्बुद्धि प्राप्त मनुष्य अपनी श्रेष्ठ बुद्धि द्वारा समस्त दोषों एवं दुर्गुणों को दूर कर देता है। जब वह निष्पाप हो जाता है तो उसे सत्वगुण की प्राप्ति होती है जो सात्विक प्रसन्नता का देने वाला है।"

भीष्मजी बोले, "हे भारत! "धैर्य दुःखी मनुष्य का सबसे बड़ा सम्बल है। जिसके स्त्री-पुत्रादि मर गये हों, सुख छिन गया हो, धन नष्ट हो गया है अथवा उसे किसी प्रकार की भारी क्षति उठानी पड़ी हो या किसी भयंकर संकट में फंस गया हो,

उसका धैर्य धारण करने में ही कल्याण है। शोकहीनता से सुख और आरोग्य की प्राप्ति होती है। शरीर नीरोग रहने से मनुष्य पुनः खोई हुई धन-सम्पत्ति एवं मानसिक शान्ति प्राप्त कर सकता है। संकट आने पर धैर्य अथवा विवेक न खोने वाला व्यक्ति ही प्रशंसा का पात्र होता है। बलि ने इन्द्र से कहा था-- इन्द्र तुम शोक का अवसर आने पर शोक मत करो और हर्ष का समय आने पर हर्षित मत होओ। भूत और भविष्य की चिन्ता छोड़ कर वर्तमान काल में जो प्राप्त होता है, उसे सहर्ष स्वीकार करो क्योंकि मनुष्य को सुख-दुःख, लाभ-हानि, काम-क्रोध, जन्म-मृत्यु, बन्धन एवं बन्धन-मुक्ति भाग्य से ही प्राप्त होते हैं। तत्व को जानने वाले मनुष्य अपमान को अमृत की भाँति ग्रहण करते हैं और सम्मान को विष-तुल्य समझ कर उससे भयभीत रहते हैं। धर्माचरण करने वाले, श्रद्धालु, मन एवं इन्द्रियों के विजेता, विद्वान् , अन्य लोगों के दोषों की उपेक्षा करने वाले तथा धर्माधर्म के ज्ञाता ज्ञानीजन समस्त दुःखों से पार हो जाते हैं।''

भीष्मजी कहते हैं, ''किसी वस्तु की इच्छा या अनिच्छा न करने वाला, सन्तोषी, निर्लोभी, जितेन्द्रिय, निष्काम कर्मों का कर्त्ता, स्थिर बुद्धि, सब प्राणियों को समदृष्टि से देखने वाला, वीतरागी, धीर, निन्दा-स्तुति से अविचलित, विषय-वासना रहित, अहिंसावादी, ब्रह्मचारी संसार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है। इस संसार में सफलता पाने के लिए विद्या, तप, इन्द्रिय-निग्रह एवं त्याग का होना अनिवार्य हैं। पण्डितजन उत्तम कुल में उत्पन्न विद्वान् ब्राह्मण तथा गौ आदि पशु एवं चाण्डाल

सभी को समान दृष्टि एवं आत्म-भाव से देखते हैं। उनकी दृष्टि में समस्त प्राणियों में सच्चिदानन्द घट घटवासी ब्रह्म का वास है। वह अपने में और दूसरों में कोई भेद नहीं करता। वह जानता है कि कण-कण में तथा महान से महान में वही ब्रह्म विद्यमान है। ध्यान, वेदाध्ययन, दान, सत्य, लज्जा, सरलता, क्षमा, शौच, आचार शुद्धि और इन्द्रिय-निग्रह से पापों का विनाश होता है। योग मार्ग का अनुसरण करने से किसी भी वर्ण का पुरुष या स्त्री परमगति को प्राप्त कर सकता है।"

बारहवाँ अध्याय

गार्हस्थ्य धर्म विवेचन, अग्नि, मन, बुद्धि के गुणों का वर्णन

भीष्मजी गृहस्थ पुरुषों के कर्त्तव्यों का वर्णन करते हुए कहते हैं, "गृहस्थ को सदा परिवार के समस्त व्यक्तियों को भोजन कराने के उपरान्त शेष पौष्टिक एवं सात्विक अन्न का भोजन करना चाहिए। पोष्य वर्ग से बचे हुए अन्न को शास्त्रकारों ने विघस और यज्ञ से बचे हुए भोजन को अमृत माना है। कुटुम्ब के समस्त लोगों को भोजन से सन्तुष्ट करने के पश्चात् जो गृहस्थ बचे हुए अन्न का सेवन करता है, उसे विघसाशी कहा गया है। पञ्च महायज्ञों से बचे हुए अन्न की तुलना अमृत से की गई है। गृहस्थ मनुष्य को चाहिए कि वह निष्ठापूर्वक एकपत्नीव्रत का पालन करे। मन को वश में रखे। किसी भी व्यक्ति के गुणों में दोष न ढूंढे। ऋत्विज, पुरोहित, आचार्य, अतिथि, गुरुजन, वृद्ध, बालक, शरणागत, रोगी, वैद्य, बन्धु-बान्धवों, सम्बन्धी, माता-पिता, पत्नी, पुत्र-पुत्री तथा सेवकों के साथ विवाद न करे। कभी भी वस्त्र-वल्कल आदि से शरीर ढँक

लेने वाले, समय पर प्राप्त होने वाले भोजन से स्वयं को तृप्त कर लेने वाले तथा कहीं भी पड़ कर भिक्षा ले लेने वाले गृहस्थ को विद्वान् ब्रह्मज्ञानी कहते हैं। जो जन समुदाय से दूर रहता है, स्वादिष्ट भोजन के पीछे नहीं दौड़ता है, स्त्रियों की ओर से सदा विरक्त रहता है, वह वास्तव में ब्रह्मज्ञानी है। ऐसे लोगों का जीवन धर्म के लिए होता है और धर्म ईश्वर की प्राप्ति के लिए होता है। उनका सारा समय धार्मिक अनुष्ठानों एवं अपने कर्त्तव्यों के पालन में ही व्यतीत होता है।

"अत्यंत हर्ष, प्रेम, आनन्द, समता एवं स्वस्थ मनोवृत्ति को सात्विक गुण कहा गया है। अभिमान, मिथ्याभाषण, लोभ, मोह एवं असहिष्णुता रजोगुण के लक्षण हैं। इसी प्रकार मोह, प्रमाद, निद्रा, तन्द्रा एवं अज्ञान तमोगुण के लक्षण हैं। जब मनुष्य न तो स्वयं दूसरे प्राणियों से डरता है और न दूसरे प्राणी उससे भयभीत होते हैं और जब वह राग-द्वेष से रहित हो जाता है, तब उसे ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है। जब योगी अपने मन, वाणी एवं कर्म से किसी भी प्राणी का अनिष्ट करने की बात नहीं सोचता, तब उसमें ब्रह्मभाव जागृत हो जाता है। वेद का सार है सत्य वचन, सत्य का सार है इन्द्रियों का संयम, इन्द्रिय संयम का सार है दान और दान का सार है तप का अनुष्ठान, तप का सार है त्याग, त्याग का सार है सुख, सुख का सार है स्वर्ग और स्वर्ग का सार है शान्ति। शोक, ममता तथा मात्सर्य से रहित किन्तु शान्त, प्रसन्नचित्त एवं सन्तोषी व्यक्ति ज्ञान से तृप्त होकर मोक्ष प्राप्त करता है।"

काम की विवेचना करते हुये भीष्मजी ने कहा, "मनुष्य की हृदयरूपी भूमि में मोह के बीज से एक वृक्ष उत्पन्न होता है जिसका नाम 'काम' है। क्रोध और अभिमान उसके दो तने हैं। कुछ करने की इच्छा उसमें जल देकर सिंचाई करने वाली झारी है। अज्ञान उस वृक्ष की जड़ है जो प्रमाद के जल से सींची जाती है। पर-दोष अवलोकन उसके पत्ते हैं और पिछले जन्म में किये गये पाप उसका मूल स्तम्भ है। शोक उसकी शाखा, मोह और चिन्ता उसकी उपशाखाएँ (टहनियाँ) हैं और भय उसकी कोपलें हैं। मोहित कर लेने वाली तृष्णाएँ वे लताएँ हैं जो उस वृक्ष से लिपटी हुई हैं। लोभी मनुष्य वासना के बन्धनों से बँधकर उसके चारों ओर फल पाने की आशा में बैठे हुए हैं। जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों तथा उनसे उत्पन्न हुई वासनाओं को अपने वश में करके वैराग्यरूपी कुल्हाड़ी से उस वृक्ष को काट डालता है, वह वृद्धावस्था और मृत्यु दोनों की वेदनाओं से मुक्त हो जाता है।"

भीष्मपितामह बोले, "हे राजन्! यह जीवात्मा पुण्य तथा पाप के फल सुख और दुःख को भोगने में स्वतन्त्र नहीं हैं क्योंकि पुण्य और पापों से उत्पन्न हुए संस्कारों के अन्धकारों से यह आच्छादित हो जाता है। काम, क्रोध, भय, निद्रा और श्वास ऐसे दोष हैं जो सभी जीवों में विद्यमान हैं। इनके कारण अज्ञानरूपी सागर में असंख्य प्राणी नित्य डूबते उतारते रहते हैं। यदि तुम इस लोक और परलोक में मनोवाँछित वस्तुएँ प्राप्त करना चाहते हो तो अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर समस्त प्राणियों के प्रतिकूल आचरण से हट जाओ।

दान देकर न तो उसके लिए पश्चाताप करो और न किसी से उसकी चर्चा करो।

"याज्ञवलक्यजी कहते हैं, कि सांख्य के समान कोई ज्ञान नहीं है और योग के समान कोई बल नहीं है। इन दोनों का लक्ष्य मृत्यु का निवारण करना है। जिस तत्व का साक्षात्कार योगी करते हैं। उसी का अवलोकन सांख्य करते हैं। अतएव सांख्य और योग एक ही वस्तु के दो रूप हैं। जो ब्राह्मण छओं अंगों सहित वेदों को पढ़कर भी उस जानने योग्य परमात्मा को नहीं जानता, वह गूढ केवल वेदों का भार ढोने वाला पशु है।

"ब्राह्मण का शरीर भोगों को भोगने के लिए नहीं मिला है। यह तो उसे यहाँ क्लेश उठाकर तपस्या करने और मृत्यु के पश्चात् अनुपम सुख भोगने के लिए मिला है। ब्राह्मण को ही नहीं, प्रत्येक मनुष्य को ऐसे धर्मरूपी धन का उपार्जन करना चाहिए जिसे न तो राजा छीन सकता है और न चोर चुरा सकता है, अपितु जो मृत्यु के पश्चात् भी उपार्जित करने वाले जीव के साथ जाता है। धर्मरूपी धन कमाने वाले मनुष्यों को चाहिए कि वे आलस्य को त्याग नास्तिक, निर्दय एवं पापी लोगों से सम्बन्ध तोड़कर एकदम तटस्थ हो जायँ। यह दुर्लभ मनुष्य शरीर वह दुर्लभ सीढ़ी है जो हमें स्वर्ग तक ले जाने के लिये प्राप्त हुई है। इस बात को सदा स्मरण रखो कि उस धन से क्या लाभ जिसे मनुष्य न तो किसी को दे सके और न जिसका स्वयं उपभोग कर सके ? उस बल से क्या लाभ जिसके द्वारा मनुष्य धर्माचरण न कर सके और उस जीवात्मा

से क्या लाभ जो न तो जितेन्द्रिय हो और न मन को ही वश में रख सकता हो ?

"कोई भी व्यक्ति अधिक वर्षों तक जीवित रहने से, सिर के बाल पक जाने से, अधिक धन होने अथवा बन्धु-बान्धवों की संख्या बढ़ जाने से बड़ा नहीं होता। वास्तव में वेदों के ज्ञान को समझकर उसका प्रवचन करने वाला बड़ा होता है। वेदाध्ययन एक महान कार्य है। यदि वेद पढ़कर उसके अनुसार आचरण न किया जाय तो यह वेदाध्ययन का दूषण है। वेदों के विषय में ब्रह्माजी ने कहा है कि वेद ही मेरे श्रेष्ठ नेत्र हैं, वेद ही मेरी परम शक्तियाँ हैं। वेद ही मेरे परम आश्रय तथा मेरे सर्वोत्तम उपास्य देव हैं।"

भीष्मजी कहते हैं, "अग्नि, मन और बुद्धि के पृथक पृथक महत्वपूर्ण गुण होते हैं। दुर्धर्ष होना, जलना, ऊष्मा, देना, पकाना, प्रकाश करना, शोक, राग, हल्कापन, तीक्ष्णता और ज्वालाओं का ऊर्ध्वगामी होना अग्नि के गुण हैं। धैर्य, तर्क-चातुर्य, स्मृति, भ्रान्ति, कल्पना, क्षमा एवं शुभाशुभ संकल्प मन के गुण हैं। इष्ट-अनिष्ट वृत्तियों का नाश, विचार समाधान, सन्देह तथा निश्चय बुद्धि के गुण कहे गये हैं।"

॥ इति शान्ति पर्व सम्पूर्ण ॥

॥ ओ३म् ॥

महाभारत भाषा

१३. अनुशासन पर्व



युधिष्ठिर का भीष्मजी से ज्ञान प्राप्त करना



पितामह भीष्म की अन्त्येष्टि

पहला अध्याय

गौतमी ब्राह्मणी का उपाख्यान

युधिष्ठिर बोले, "हे पितामह! आपने अनेक प्रकार से मुझे शोक से मुक्त होने के उपाय बताये, परन्तु अब भी मेरे हृदय को शान्ति प्राप्त नहीं हुई है। जब मैं यह सोचता हूँ कि मेरे कारण आपकी यह जीवन लीला समाप्त हो रही है और आपको इस प्रकार भूमि पर पड़ा देखता हूँ तो मुझे अत्यन्त

पीड़ा होती है। मुझे कृपा करके कोई ऐसा उपदेश दीजिए जिससे परलोक में भी मुझे इस पाप से मुक्ति मिल सके।"

भीष्मजी बोले, "तुम स्वयं को शुभाशुभ कर्मों का कारण समझते हो? यह विषय अत्यन्त गूढ़ है। इसके सन्दर्भ में मैं तुम्हें गौतमी ब्राह्मणी, व्याध, सर्प, मृत्यु और काल की एक प्राचीन कथा सुनाता हूँ। आशा है, इससे तुम्हारी शंका का समाधान हो जायेगा।

"प्राचीनकाल में गौतमी नाम की एक वृद्धा ब्राह्मणी थी जो शान्ति के साधन जुटाने में व्यस्त रहती थी। एक दिन उसने देखा कि उसके पुत्र को एक सर्प ने डस लिया है और वह चेतनाहीन होकर पड़ा है। उधर से निकलते हुए अर्जुनक नाम के व्याध ने यह दृश्य देखा और क्रुद्ध होकर सर्प को ताँत की फाँसे में बाँधकर गौतमी के पास लाया और बोला--इसी नीच सर्प ने तुम्हारे पुत्र को मार डाला है। बताओ इसका कैसे वध करूँ? गौतमी ने कहा--अर्जुनक! तुम इस सर्प को छोड़ दो। होनहार को कोई नहीं टाल सकता। इसी समय सर्प बोला--अरे मूर्ख व्याध! इसको डसने में मेरा क्या दोष है? मृत्यु ने मुझे विवश करके इसे डसने के लिये प्रेरित किया था। मैं तो मृत्यु की आज्ञा मानने के लिये विवश था। इसमें कोई दोष है तो मृत्यु का, मेरा नहीं। अर्जुनक ने कहा--यही तेरी बात सही हो, फिर भी तू कारण तो है ही। इस वार्त्तालाप को सुनकर मृत्यु भी वहाँ आ पहुँची और सर्प से बोली--सर्प! काल से प्रेरित होकर मैंने तुझे इस बालक को डसने के लिये विवश किया था। इसलिए इसकी मृत्यु के लिये न तू

दोषी है और न मैं। हम दोनों काल के आधीन होने के कारण विवश हैं। हम तो केवल उसकी आज्ञा का पालन करने वाले हैं। इस पर तीनों ने काल का आह्वान किया। काल ने आकर कहा--हे व्याध! इस बालक की मृत्यु के लिए न तो सर्प, न मृत्यु और न मैं ही दोषी हूँ। हम लोग किसी की मृत्यु के प्रेरक नहीं होते। इस बालक के कर्म ही इसकी मृत्यु के प्रेरक हैं। हम सब लोग कर्म के आधीन हैं। मनुष्य अपने किये हुए कर्म के अनुसार ही फल पाता हैं। कर्म और कर्त्ता दोनों अपने कर्मानुसार एक दूसरे से जुड़े होते हैं।"

भीष्मजी बोले, "हे युधिष्ठिर! इसके पश्चात् काल, मृत्यु और सर्प अपने-अपने स्थानों को लौट गये। इससे सिद्ध होता है कि कोई किसी को न मारता हैं, न कष्ट देता हैं। जो कुछ होता हैं वह उपभोक्ता के कर्मों का फल होता है।" यह सुनकर युधिष्ठिर की चिन्ता दूर हो गई।

दूसरा अध्याय

इन्द्र-शुक संवाद, भाग्य एवं पुरुषार्थ की तुलना और कर्मों के फल का वर्णन

जब युधिष्ठिर ने दयालु और भक्तों के गुणों के विषय में प्रश्न किया तो भीष्मजी ने कहा, "इस विषय में मैं तुम्हें इन्द्र और शुक के बीच हुए एक प्रसिद्ध संवाद को सुनाता हूँ। एक बार काशी के जंगल में एक व्याध विषयुक्त बाण लेकर मृग की खोज में निकला। कुछ दूर पर उसे कुछ मृग दिखाई दिये और उसने बाण छोड़ा। मृग तो बच गये, परन्तु वह बाण एक विशाल वृक्ष के तने में जा घुसा। बाण विष का बुझा था। अतः उस वृक्ष के फूल पत्ते झड़ गये और वृक्ष सूखने

लगा। उस वृक्ष के खोखले में एक शुक रहता था जो वृक्ष के सूख जाने पर भी उसे छोड़कर नहीं गया। उसने वृक्ष के दुःख से दुखित होकर दाना पानी लेना भी छोड़ दिया। वह स्वयं भूख-प्यास के कारण मृत-प्रायः हो गया।

इससे चकित होकर इन्द्र ने मनुष्य का वेष धारण कर उसके पास आकर कहा--हे तोते! इस सूखे वृक्ष में अब कुछ नहीं रह गया है, फिर तू इसमें क्यों पड़ा है। किसी अन्य वृक्ष पर जाकर आश्रय ले। इन्द्र की बात सुनकर तोता बोला--हे महाभाग! मैंने इसी वृक्ष पर जन्म लिया, यहीं रहकर उत्तम गुण सीखे। इसने मुझे सर्दी, गर्मी, वर्षा और शत्रुओं से बचाया। अब मैं इस विपत्ति-ग्रस्त वृक्ष को छोड़कर कहाँ जा सकता हूँ? जब यह समर्थ था, तब मैंने इसके आश्रय में रह कर अपना जीवन बिताया। अब जब यह दुर्दशाग्रस्त हो गया है तो इसे छोड़कर कैसे जा सकता हूँ? तोते की इस भावना से प्रसन्न होकर इन्द्र ने उससे कहा--शुक! तुम मुझसे कोई वर माँग लो मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तोते ने वर माँगा--यह वृक्ष पुनः हरा-भरा हो जाय। तोते की इस दृढ़भक्ति से प्रसन्न होकर इन्द्र ने उस वृक्ष को फिर हरा-भरा कर दिया।"

युधिष्ठिर ने प्रश्न किया, "पितामह! भाग्य और पुरुषार्थ में कौन श्रेष्ठ है?" भीष्मजीबोले, "इस सन्दर्भ में ब्रह्माजी और वशिष्ठजी के बीच हुआ वार्त्तालाप मैं तुम्हें सुनाता हूँ। वशिष्ठजी ने भी एक बार ब्रह्माजी से यह प्रश्न किया था, तब उन्होंने बताया था कि बीज के बिना कुछ उत्पन्न नहीं होता। बीज से बीज पैदा होता है और बीज से फल पैदा होता है।

जैसा बीज डाला जाता है, वैसा फल होता है। उसी प्रकार जैसा कर्म किया जाता है वैसा फल मिलता है। पुरुषार्थ खेत है, दैव बीज है। इन दोनों के संयोग से अन्न उत्पन्न होता है। मनुष्य अपने शुभ अशुभ कर्मों का ही फल भोगता है। शुभ कर्म करने से सुख और अशुभ कर्म करने से दुःख मिलता है। बिना किये हुए कर्म का फल कभी नहीं मिलता। पुरुषार्थी मनुष्य भाग्य के अनुसार फल पाता है। अकर्मण्य मनुष्य कभी सुख नहीं पाता। कर्म अर्थात पुरुषार्थ से सब कुछ मिल सकता है, केवल भाग्य से कुछ नहीं मिलता। यदि किये हुए कर्मों का फल प्राप्त न हो तो सम्पूर्ण कर्म ही निष्फल हो जायँ। भाग्य के भरोसे बैठकर कोई कर्म ही न करे। पुरुषार्थ से ही भाग्य फल देता है। बिना पुरुषार्थ के भाग्य किसी को कुछ नहीं दे सकता। बिना पुरुषार्थ के पिछले जन्म के शुभ कर्म भी अच्छे फल नहीं दे पाते। जिस प्रकार वायु का सहारा पाकर थोड़ी सी अग्नि प्रचण्ड रूप ले लेती है, उसी प्रकार पुरुषार्थ का सहारा पाकर भाग्य भी बलवान जाता है। इसके विपरीत कर्म के क्षीण हो जाने पर भाग्य भी नष्ट हो जाता है। भाग्य में इतनी शक्ति नहीं है कि वह कर्महीन व्यक्ति को सुख प्रदान कर सके। वह तो पुरुषार्थ को आगे करके उस का अनुसरण करता है।"

युधिष्ठिर ने पूछा, "विज्ञवर! समस्त शुभ कर्मों के फल क्या हैं?" यह प्रश्न सुनकर पितामह ने कहा, "मनुष्य स्थूल अथवा सूक्ष्म शरीर से जो कर्म करता है, उसी शरीर से वह उस कर्म का फल भोगता है। वह जिस-जिस अवस्था

में जो जो शुभ या अशुभ कर्म करता है, आगामी जन्मों को उस उस अवस्था में ही वह उनका फल भोगता है। पाँचों इन्द्रियों द्वारा किया हुआ कर्म कभी नष्ट नहीं होता। पाँचों इन्द्रियाँ और मन उसके कर्म के साक्षी होते हैं। मनुष्य दान करने से धन पाता है। मौन व्रत से दूसरों से आज्ञापालन कराने की शक्ति पाता है, तपस्या से भोग और ब्रह्मचर्य से दीर्घायु पाता है। पहले किया हुआ कर्म समय पर फल देता है। मनुष्य जिस व्यवहार से पिता को प्रसन्न करता है उससे परमेश्वर प्रसन्न होते हैं। जिस व्यवहार से वह माता को सन्तुष्ट करता है, उससे पृथ्वी माता प्रसन्न होती है।"

तीसरा अध्याय

लक्ष्मी के निवास स्थान, त्रिविध पापों के त्याग का उपदेश

युधिष्ठिर ने पूछा, "हे पितामह! किन गुणों से युक्त स्त्री-पुरुषों में लक्ष्मी निवास करती है?" पितामह बोले, "वत्स! श्रीकृष्ण के सामने रुक्मिणीजी ने भी एक बार यही प्रश्न लक्ष्मीजी से पूछा था। इसका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था--मैं सौभाग्यशाली, निर्भीक, सत्यवादी, कार्यकुशल, कर्मपरायण, अक्रोधी, आस्तिक, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय एवं सतगुणी पुरुष और स्त्री में निवास करती हूँ। कर्महीन, नास्तिक, वर्णसंकर, कृतघ्न, कायर, निराशावादी, खिन्न, दुराचारी, क्रूरकर्मा, तस्कर, अल्पसन्तोषी एवं गुरुद्वेषी पुरुषों से मैं सदा दूर रहती हूँ। फूहड़, मूर्ख, पतिद्रोही, भ्रमणशील, निर्लज्ज, अपवित्र, चटोरी, दुराचारिणी, अधीर, कलहप्रिय स्त्री के यहाँ भी मैं निवास नहीं करती। सत्यपरायणता, सुघड़, पतिव्रता, सदाचारिणी,

सक्रिय स्त्रियों में मैं सदैव निवास करती हूँ। जिस घर में लोग अग्निहोत्र करते हैं वहाँ और स्वाध्यायी ब्राह्मण, स्वधर्म-तत्पर क्षत्रियों, कृषि कर्म करने वाले वैश्यों और सेवापरायण शूद्रों के यहाँ मैं सदा निवास करती हूँ।"

युधिष्ठिर ने पूछा, "सुखी जीवन के लिए मनुष्य को किस प्रकार जीवन व्यतीत करना चाहिए।" भीष्मजी बोले, "सुखी जीवन के लिए मनुष्य को दस प्रकार के कर्मों का परित्याग कर देना चाहिए। इन दस कर्मों में तीन मन के, चार वाणी के और तीन शरीर के कर्म हैं। दूसरों के धन की प्राप्ति का लोभ, प्राणियों के प्रति वैरभाव और कर्मफल पर अविश्वास--ये तीनों मानसिक पाप हैं, इनका त्याग कर देना ही श्रेष्ठ है। वाणी के त्याज्य कर्म हैं—व्यर्थ भाषण, कटु भाषण, मिथ्या भाषण और चुगली करना। शरीर के त्यागने योग्य तीन कर्म हैं—हिंसा, चोरी और पर-स्त्री संसर्ग। अत-एव मन, वाणी एवं शरीर से कभी अशुभ कर्म न करे क्योंकि सभी शुभाशुभ कर्मों का फल अवश्य मिलता है।"

चौथा अध्याय

युधिष्ठिर के विविध प्रश्नों का उत्तर

युधिष्ठिर ने पूछा, "पितामह! पिता, माता तथा गुरुजनों का अपमान करने वालों की क्या गति होती है?" पितामह ने बताया, "माता-पिता तथा गुरुजनों का अपमान करने वाले कृतघ्न कृमि, कीट, चींटी आदि की योनि पाकर निरन्तर नरक यातना भोगते हैं। उन्हें फिर मनुष्य योनि प्राप्त नहीं होती।"

युधिष्ठिर ने पूछा, "धर्म के साधन एवं फल कौन-कौन से

हैं ? दानपात्र के कौन-कौन से गुण होते हैं ? ब्रह्मचर्य से उत्तम क्या है ?'' भीष्मजी ने कहा, "अहिंसा, सत्य, अक्रोध, दया, इन्द्रियसंयम तथा सरलता धर्म के लक्षण हैं। धर्म प्रचारक किन्तु स्वयं धर्माचरण न करने वाले ढोंगी पुरुष को जो दान देता है वह नरक में पड़कर दस वर्ष तक विष्ठा खाता है। माँस और मदिरा का परित्याग ब्रह्मचर्य से भी उत्तम है।''

युधिष्ठिर ने प्रश्न किया, "कैसा ब्राह्मण श्रेष्ठ होता है ? किसको दिया हुआ दान महाफलदायक होता है और कैसे ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए ?'' भीष्म पितामह ने कहा, "अक्रोधी, धर्मपरायण एवं जितेन्द्रिय ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ होता है। उसी को दान देने से महान फल की प्राप्ति होती है और भोजन भी ऐसे ही ब्राह्मण को कराना चाहिए। निरभिमानी, सहिष्णु, दृढ़ निश्चय वाले, जितेन्द्रिय, अहिंसावादी ब्राह्मण को दान का सुपात्र समझना चाहिए। ऐसे निर्लोभी पवित्र, सत्यपरायण, कर्त्तव्यशील विद्वान को दिया हुआ दान महान फलदायक होता है। सदाचारपरायण, आजीविकारहित, भूखे याचक को भी भोजन कराने से महान फल प्राप्त होता है।

"दूसरों की स्त्री का अपहरणकर्त्ता, परस्त्रीगामी, दूसरों का धन छीनने या नष्ट करने वाला, चुगलखोर, कपटपूर्वक निरीह व्यक्तियों के साथ छल करने वाला, किसी का घर उजाड़ने या जीविका का साधन नष्ट करने वाला, पति-पत्नी या मित्रों में कलह कराने वाला नरक भोगता है। अकारण अपने अध्यापक, भक्त और सेवक का त्याग करने वाला नरकगामी होता है। इसके विपरीत दान, तप और सत्य द्वारा धर्म

का अनुष्ठान करने वाला, मनुष्यों को भय, पाप, बाधा, दरिद्रता एवं रोगों से मुक्ति दिलाने वाला, क्षमाशील, धीर, धर्मात्मा सदाचारी, माँस-मदिरा का सेवन न करने वाला और अहिंसा-वादी, दानशील व्यक्ति स्वर्ग पाने का अधिकारी होता है। माता, पिता, गुरुजनों की सेवा करने वाले और भाइयों के प्रति स्नेह रखने तथा संयमशील व्यक्ति भी स्वर्गगामी होते हैं।"

युधिष्ठिर ने पूछा, "कुछ लोगों को ब्राह्मण की हत्या न करने पर भी ब्रह्म-हत्या का पाप लगता है। ऐसा कब होता है?" भीष्म बोले, "राजन्! जो व्यक्ति जीविका-हीन ब्राह्मण को भिक्षा देने के लिए बुलाकर भी उसे भिक्षा न दे, तटस्थ विद्वान् ब्राह्मण की जीविका छीन ले, गौओं को पानी पीकर प्यास न बुझाने दे, ऋषि प्रणीत शास्त्रों एवं वेदों की निन्दा करे, ऐसे व्यक्ति को ब्रह्म-हत्या का पाप लगता है। अन्धे, लूले अपंग व्यक्तियों का धन हरण करने वाले और गाँवों, आश्रमों आदि में आग लगा देने वाले लोग भी ब्रह्म हत्यारे होते हैं।"

पाँचवाँ अध्याय

शरणागत की रक्षा का फल, विवाह के प्रकार

युधिष्ठिर ने पूछा, "पितामह! शरण में आये प्राणियों की रक्षा करने का क्या फल मिलता है?" भीष्मजी बोले, "हे युधिष्ठिर! तुम्हारे प्रश्न का समाधान करने के लिए मैं तुम्हें एक प्राचीन कथा सुनाता हूँ। एक बार एक कबूतर किसी बाज के पीछा करने पर भयभीत होकर राजा वृषदर्भ (उशीनर) की शरण में गया और अपने प्राणों की रक्षा के लिए उसकी गोद में जा गिरा। उसे सान्त्वना देते हुए राजा ने कहा--कबूतर!

तू निर्भय होकर यहाँ विश्राम कर। उसी समय बाज उशीनर के पास आकर बोला—राजन् ! यह कबूतर मेरा आज का भोजन है। आप इसकी रक्षा न करें। इसे मैंने बड़े प्रयत्न से प्राप्त किया है। इसका रक्त, माँस, मज्जा, मेदा सभी मेरे लिए पुष्टिकारक हैं। इसे खाकर मैं अपनी भूख मिटाऊँगा। आप मेरे आहार में बाधक न बनें। मैं भूख से मरा जा रहा हूँ। आकाश में विचरण करने वाले प्राणियों पर आप अपना अनुशासन नहीं चला सकते। यदि आप इस कबूतर की रक्षा करेंगे तो मुझे भूख से मारने के पाप के भी भागी होंगे। राजा ने कहा--तुम्हारी क्षुधा की तृप्ति के लिए मैं तुम्हें कोई पशु दे देता हूँ। उसे खाकर अपनी क्षुधा शान्त कर लो। मैं शरणागत का त्याग नहीं कर सकता ! शरणागत की रक्षा करना मेरा नियम है।

"बाज बोला--राजन् ! मैं न तो किसी पशु का माँस खाऊँगा और न किसी अन्य पक्षी का। मुझे किसी दूसरे का भोजन नहीं चाहिए। सनातन काल से मेरे लिए निश्चित भोजन ही मुझे चाहिए। यदि आपको इस कबूतर से इतना स्नेह है तो आप अपने शरीर से इसी के बराबर माँस काटकर तराजू में तौलकर मुझे दे दीजिए। राजा ने कहा—मैं तुम्हारी बात से सहमत हूँ। यह कहकर उशीनर ने एक तराजू मँगाई और अपने शरीर से माँस काट-काटकर उस तराजू पर रखने लगे। वह शरीर के विभिन्न अंगों का माँस काटकर तराजू पर रखते, किन्तु वह कबूतर के भार के बराबर न होता। राजा के शरीर का सम्पूर्ण माँस समाप्त हो गया, परन्तु कबूतर का भार फिर भी अधिक था। यह देखकर राजा उशीनर स्वयं

तराजू पर बैठ गये। हे युधिष्ठिर! इस पुण्य-कर्म के प्रभाव से राजा को स्वर्ग प्राप्त हुआ और वे तीनों लोकों में प्रसिद्ध हुए। तात्पर्य यह है कि शरणागत की रक्षा करना महान फल का देने वाला है।"

युधिष्ठिर ने पूछा, "विवाह में कन्या कैसे पात्र को देनी चाहिए ?" भीष्मजी ने कहा, "कन्या का विवाह करने से पूर्व वर के शील स्वभाव, सदाचार, विद्या, कुल, मर्यादा आदि की जाँच करनी चाहिए। सब प्रकार से योग्य होने पर ही कन्या का विवाह उससे करना चाहिए। विवाह पाँच प्रकार का होता है। विवाह योग्य वर को बुलाकर उसके साथ कन्या का विवाह करना ब्रह्म-विवाह है। धनादि के द्वारा वर पक्ष को अपने अनुकूल करके कन्यादान करना प्राजापत्य विवाह कहा जाता है। माता-पिता की अनुमति के बिना वर वधू की पारस्परिक सम्मति से किया गान्धर्व विवाह कहलाता है। कन्या के बन्धु-बान्धवों को लालच अथवा धन देकर जो कन्या को प्राप्त करके विवाह किया जाता है, उसे आसुर विवाह कहते हैं। कन्या के बिलखते हुए माता-पिता को मारकर रोती हुई कन्या का बलपूर्वक अपहरण करके जो विवाह किया जाता है, उसे राक्षस विवाह कहते हैं। इन पाँचों प्रकार के विवाहों में से प्रथम तीन विवाह श्रेष्ठ और धर्मानुकूल हैं तथा शेष दो विवाह धर्म के प्रतिकूल हैं। मनुजी ने कहा है कि उसी कन्या से विवाह करना चाहिए जो माता की सपिण्ड और पिता के गोत्र की न हो। स्त्री के धार्मिक अनुष्ठानों के सम्बन्ध में शास्त्रीय व्यवस्था है कि स्त्री के लिए पृथक से यज्ञ आदि कर्म, श्राद्ध तथा उपवास

करना आवश्यक नहीं है। उसका एकमात्र धर्म है, पति की सेवा। उसी से वह स्वर्ग को प्राप्त कर लेती है।"

छठा अध्याय

विभिन्न प्रकार के तप और दानों का फल

धर्मराज युधिष्ठिर ने पूछा, "कृपानाथ! मुझे यह बताइये कि मृत्यु के पश्चात् मनुष्य को किस कर्म से कौन सी गति प्राप्त होती है और किस-किस प्रकार का दान श्रेष्ठ होता है।" भीष्मजी ने कहा, "तप से दीर्घायु, सुख, कीर्ति, ज्ञान-विज्ञान, आरोग्य, सम्पत्ति, सौभाग्य और स्वर्ग भी प्राप्त होता है। जल दान का बड़ा महत्व है। जो मनुष्य जलाशय खुदवाकर मनुष्य, गौओं आदि पशुओं तथा नाना प्रकार के पक्षियों के पीने के लिए जल की व्यवस्था करता है, वह इस लोक में यश और परलोक में स्वर्ग प्राप्त करता है। जो फल अश्वमेध यज्ञ से प्राप्त होता है, वही फल तृषित प्राणियों के लिए जल का स्थायी प्रबन्ध करने से प्राप्त होता है। जितना माहात्म्य जलाशय बनाने का है, उतना ही वृक्षारोपण का है। स्थावर प्राणियों की छः जातियाँ होती हैं—१. वृक्ष, २. गुल्म (कुश आदि) ३. लता, ४. वल्ली (पृथ्वी पर फैलने वाली बेलें), ५. त्वक्सार (बाँस आदि) और ६. घास। इन्हें लगाने वालों को इस लोक में कीर्ति और मृत्यु के पश्चात् शुभ फलों की प्राप्ति होती है। वृक्षों को धर्म की दृष्टि से सन्तान के समान माना जाता है। इसलिए उसकी सावधानी से देखभाल करनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त सभी प्राणियों को अभय प्रदान करना, संकट में उनकी सहायता करना, याचक को उसकी अभीष्ट

वस्तु देना सर्वश्रेष्ठ दान है। स्वर्ण, गौ और पृथ्वी का दान पवित्र दान माना गया है। इनसे पापी व्यक्ति काभी उद्धार हो जाता है। संकट के समय शत्रु को भी शरण देना महान दान है। वास्तविकता यह है कि याचक मर जाता है परन्तु दान कभी नहीं मरता। वह स्वयं को ही नहीं अनेक बार याचक को भी दीर्घकाल तक जीवित रखता है।"

युधिष्ठिर ने पूछा, "यज्ञ और दान, दोनों में श्रेष्ठ फल का देने वाला कौन है?" पितामह ने बताया, "क्षत्रिय के लिए तो यज्ञ और दान दोनों ही पवित्र करने वाले हैं। श्रेष्ठ व्यक्ति पापी राजा से दान नहीं लेते, इसलिए उसे पर्याप्त दक्षिणा देकर यज्ञों का अनुष्ठान करना चाहिए। श्रद्धापूर्वक किया हुआ दान आत्म-शुद्धि का सर्वश्रेष्ठ साधन है। सब दानों में श्रेष्ठ भूमि का दान है। भूमि का दान करने वाला रत्न, स्वर्ण, वस्त्र, मणि, मोती आदि के दानों का भी फल प्राप्त करता है क्योंकि यह सब वस्तुएँ भूमि से ही प्राप्त होती हैं। इसलिए विद्वान लोग भूमि से बढ़कर और किसी दान को नहीं मानते। भूमि के पश्चात् दूसरा दान अन्न का दान है। अन्न से ही प्राणिमात्र का निर्वाह होता है। उसी से बुद्धि को स्फूर्ति मिलती है। अन्न को ही लक्ष्मी का स्वरूप माना जाता है। अन्न से ही प्राण, तेज, बल और वीर्य की वृद्धि होती है। इसी के आधार पर प्राण टिके हुए हैं। सुपात्र याचक को दान देने वाला परलोक में उत्तम अन्न का भण्डार प्राप्त करता है। चाण्डाल और कुत्ते को दिया हुआ अन्न का दान भी कभी निष्फल नहीं होता। अन्न का दान ऐसा दान है जो दाता

और भोक्ता दोनों को प्रत्पक्ष रूप से सन्तुष्ट करता है। प्रजापति ने अन्न-दान को ही सर्वश्रेष्ठ बताया है।"

सातवाँ अध्याय

व्रत, नियम आदि का महत्व तथा गृहस्थ धर्मों का वर्णन

युधिष्ठिर ने पूछा, "प्रभो! व्रत, नियम, स्वाध्याय एवं ब्रह्मचर्य का पालन करने से क्या फल मिलता है? इसका क्या महत्व है?" भीष्म पितामह बोले, "हे वत्स! शास्त्रोक्त रीति से किसी भी व्रत का प्रारम्भ करके यदि नियमपूर्वक उसका समापन किया जाय तो व्रत करने वाले को सनातन लोकों की प्राप्ति होती है। इस लोक में विधिपूर्वक पालन किये जाने वाले नियम स्वयं पालनकर्त्ता तथा अन्य लोगों के लिए भी सुखदायी होते हैं। वेदों के अध्ययन का फल इस लोक और परलोक दोनों में प्राप्त होता है। स्वाध्याय से मनुष्य की इन्द्रियों की संयम की ओर प्रवृत्ति होती है। वह प्रयत्न और अभ्यास के द्वारा जितेन्द्रिय हो जाता है। उसका स्थान दानी से भी बड़ा है क्योंकि दानी मनुष्य कभी-कभी दान करते समय क्रोध भी कर बैठता है, परन्तु जितेन्द्रिय व्यक्ति कभी किसी भी दशा में क्रोध नहीं करता। दूसरा प्रश्न तुम्हारा ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में है। जो मनुष्य इस संसार में जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रता का पालन करता है, उसके लिये इस संसार में कोई भी वस्तु दुर्लभ अथवा दुष्प्राप्य नहीं है। वह अत्यन्त तेजस्वी एवं शक्तिशाली होता है। जो काम करना चाहता है, उसे बड़ी सरलता से कर लेता है। कुछ लोग उपवास को बहुत बड़ी तपस्या मानते हैं। वास्तव में उपवास तपस्या नहीं

है। जो लोग पन्द्रह दिन अथवा एक मास का उपवास रखकर यह मान लेते हैं कि उन्होंने इस अवधि में तपस्या की है, वे भ्रम में हैं। उन्होंने उपवास करके व्यर्थ ही अपने शरीर को सुखाया है। केवल उपवास रखने वाला न तो तपस्वी है और न धर्म का ज्ञाता। व्रतचारी मनुष्य का सबसे पहले ब्रह्मचारी होना आवश्यक है। तपस्वी व्यक्ति वेदों का स्वाध्यायी होता है और केवल धर्माचरण की दृष्टि से अपनी स्त्री तथा अन्य कुटुम्बियों के साथ रहता है। वह सत्यपरायण, जितेन्द्रिय और शुभ कर्मों का कर्त्ता होता है। उसका रहन-सहन पूर्णतया पवित्र और दूसरों के लिए आदर्श होता है।

"ऐसा गृहस्थ प्रातः और सन्ध्या को--केवल दो बार--सात्विक भोजन करता है। इसके अतिरिक्त दिन में वह और कुछ नहीं खाता। केवल ऋतुकाल में अपनी पत्नी के साथ ही सहवास करने वाला गृहस्थ ब्रह्मचारी माना जाता है। ऐसा सद्गृहस्थ विद्वानों, अतिथियों, वृद्धों, आश्रितों को भोजन कराने के पश्चात् भोजन करता है। ऐसे लोग इस संसार में अपने पुत्रों-पौत्रों के साथ सुख भोगते हैं और मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग को प्राप्त होते हैं। गृहस्थाश्रम के धर्म को तुम भलीभाँति समझ सको, इसलिए मैं तुम्हें श्रीकृष्ण और पृथ्वी के बीच हुआ संवाद सुनाता हूँ। श्रीकृष्ण ने एक बार पृथ्वी से पूछा था--हे वसुन्धरे! मनुष्य को गृहस्थाश्रम में रहते हुए किस धर्म का पालन करना चाहिए। उसका गृहस्थ जीवन किस प्रकार सफल हो सकता है।

"श्रीकृष्ण के प्रश्न के उत्तर में पृथ्वी ने कहा था--गृहस्थ

को सदैव देवताओं, पितरों, ऋषियों तथा अतिथियों का पूजन एवं सत्कार करना चाहिए। इसकी विधि यह है कि प्रतिदिन यज्ञ के द्वारा देवताओं का, अतिथि-सत्कार के द्वारा मनुष्यों का, श्रद्धापूर्वक सेवा द्वारा पितरों (माता-पिता) का तथा वेदों का स्वाध्याय करके पूजनीय ऋषि-महर्षियों का सत्कार करना चाहिए। इसके पश्चात् ही भोजन करना चाहिए। भोजन से पूर्व अग्निहोत्र एवं यज्ञ करना भी आवश्यक है। चाण्डालों, कुत्तों और पक्षियों को भी भोजन कराना चाहिए। पशु-पक्षियों को भोजन देने का नाम बलिवैश्यदेव यज्ञ है। इसे प्रातः-सायं दोनों समय करना चाहिए। श्रीकृष्ण ने सदैव इसी प्रकार गृहस्थाश्रम का पालन किया था। सभी मनुष्यों को इसका अनुसरण करना चाहिए।"

आठवाँ अध्याय

शुभाशुभ कर्म निरूपण

युधिष्ठिर ने पूछा, "पितामह! शास्त्रों में मनुष्य की आयु सौ वर्ष बताई गई है, परन्तु फिर भी असंख्य लोग अल्पायु में ही मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं। इसका क्या कारण है? मनुष्य दीर्घायु कैसे हो सकता है और ऐसे कौन से उपाय हैं जिनसे उसे यश और ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है?" भीष्मपितामह बोले, "युधिष्ठिर! मनुष्य सदाचार से दीर्घायु होता है और सदाचार से ही वह सम्पत्ति और ऐश्वर्य पाता है तथा इस लोक एवं परलोक में कीर्ति पाता है। दुराचारी पुरुष अपने दुष्कर्मों के कारण दीर्घायु नहीं हो पाता। सदाचार और सच्चरित्रता ही श्रेष्ठ पुरुषों के गुण हैं। नास्तिक, दुराचारी, अशुभ कर्मों के

कर्त्ता, गुरु एवं शास्त्रों को अवहेलना करने वाले व्यक्तियों की आयु घट जाती है। परस्त्रीगामी, धार्मिक एवं नैतिक मर्यादाओं का अतिक्रमण करने वाले लोगों की आयु क्षीण हो जाती है और अन्त में वे नरक को जाते हैं। जिन लोगों में अच्छे लक्षणों का अभाव होता है, किन्तु जो सदाचारी और श्रद्धालु होते हैं, वे बड़ी आयु को प्राप्त करते हैं। अक्रोधी, सत्यपरायण अहिंसावृत्ति वाले, निष्कपट तथा व्यसनों से रहित व्यक्ति दीर्घायु होते हैं। प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर नियमपूर्वक दोनों समय सन्ध्या करने वाला धर्मचेता नीरोग व्यक्ति सौ वर्ष की आयु पाता है। परस्त्री-संसर्ग तथा दुष्टों की संगति मनुष्य की आयु को बहुत शीघ्र क्षीण कर देता है।

"मनुष्य को कभी भी अप्रिय एवं कटुवाणी का प्रयोग नहीं करना चाहिए। कटुवाणी शत्रुता को जन्म देती है। जिसके मुख से वचनरूपी बाण निकलते हैं, वह तो पीछे पश्चाताप करता ही है किन्तु सुनने वाला व्यक्ति आहत होकर रात दिन शोक से पीड़ित रहता है। किसी के हृदय को वाग्बाणों से चोट पहुँचाना भारी पाप है। बाणों और अस्त्रों से किया हुआ घाव समय पाकर भर जाता है, परन्तु कटु शब्दों से होने वाला घाव जीवन भर नहीं भरता। कर्णि (कंकर), काँटा और तीर शरीर में चुभ जायँ तो चिकित्सक उन्हें निकाल देते हैं, परन्तु वचनरूपी बाण को निकालना असम्भव है। वह हृदय में धँसकर सदैव पीड़ा देता रहता है। विकलांग, अशिक्षित, कुरूप, निर्धन एवं निर्बल मनुष्य का कभी उपहास नहीं करना चाहिए। शिक्षा के लिए शिष्य और पुत्र को ताड़ना देने के

अतिरिक्त कभी किसी अन्य व्यक्ति को ताड़ना या मारना नहीं चाहिए। प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि प्रतिदिन प्रातः-काल माता, पिता एवं गुरुजनों को चरणस्पर्श करके नमस्कार करे। इससे यश, बल और आयु में वृद्धि होती है। उत्तर और पश्चिम की ओर सिर करके नहीं सोना चाहिए। टूटी, ढीली तथा अन्धेरे में पड़ी शैया पर नहीं सोना चाहिए। सदा अकेला और सीधा सोना चाहिए, तिरछा होकर नहीं। नास्तिकों पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। फूटी हुई काँसे की थाली को काम में न ले। दोनों हाथों को मिलाकर उनसे अपना सिर न खुजाये। सिर पर बार-बार पानी न डाले। इन सब बातों से आयु क्षीण होती है। सूर्य, अग्नि, गौ और ब्राह्मण की ओर मुख करके तथा मार्ग में मूत्र त्याग करने से आयु क्षीण होता है। दूसरे के पहने हुए वस्त्र पहनना भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। रात्रि में दही या सत्तू खाने से आयु घटती है। दिन में मैथुन और कुलटा के साथ समागम करना आयु के लिए घातक है। वृद्ध, कुटुम्बी और दरिद्र मित्र को अपने घर ठहराने से धन और आयु में वृद्धि होती है। सूर्यास्त के समय सोना, पढ़ना, स्नान करना और भोजन करना हानिकारक है। रात्रि के समय अधिक भोजन नहीं करना चाहिए और भोजन करने के पश्चात् दौड़ना भी नहीं चाहिए। कभी किसी से ईर्ष्या-द्वेष नहीं करना चाहिए। ये आयु को घटाने वाले हैं। दिन में, सूर्योदय के पश्चात्, प्रातः-काल एवं संध्या को सोना भी अल्पायु का कारण है। व्यभि-चार करना तथा केश कर्तन कराके स्नान न करना आयु का

नाश करता है। सदाचरण से आयु बढ़ती है और दुराचरण से घटती है।

नवाँ अध्याय

सच्चा तीर्थ तथा पतिव्रता स्त्रियों के कर्तव्य

युधिष्ठिर ने प्रश्न किया, "हे पितामह! सबसे श्रेष्ठ तीर्थ कौनसा है जहाँ जाने ने परमशुद्धि हो जाती है?" भीष्म बोले, "हे युधिष्ठिर! मैं तुमसे परमपवित्र और प्रधान तीर्थ का वर्णन करता हूँ जो मनुष्यमात्र का उद्धार करने वाला है। जिस धैर्यरूपी कुण्ड में सत्यरूपी जल भरा है और जो अगाध निर्मल तथा अत्यन्त शुद्ध है, उस मानसिक तीर्थ में परमपिता परमेश्वर का आश्रय लेकर स्नान करना चाहिये। इस मानस तीर्थ के सेवन से प्राप्त होने वाली पवित्रता के लक्षण हैं—कामना और याचना का अभाव, सरलता, सत्य, कोमलता, अहिंसा, समस्त प्राणियों से प्रेमभाव, इन्द्रिय-संयम तथा मन का निग्रह। जिन्होंने ममता, दम्भ, राग-द्वेष तथा परिग्रह का परित्याग कर दिया है ऐसे विशुद्ध अन्तःकरण वाले सज्जन पुरुष की संगति वास्तव में तीर्थ के समान है। स्नान का अर्थ शरीर को पानी से भिगो लेना नहीं है। वास्तव में सच्चा स्नान मन-इन्द्रियों के संयम-रूपी जल में गोता लगाकर बाहर-भीतर से पवित्र हो जाना है। शुद्धि चार प्रकार की मानी गई हैं—आचार शुद्धि, मन की शुद्धि, तीर्थ शुद्धि और ज्ञान शुद्धि। इन चारों में ज्ञान से प्राप्त होने वाली शुद्धि सबसे श्रेष्ठ है।"

युधिष्ठिर ने पूछा, "हे महामनीषी! कृपा करके मुझे साध्वी स्त्रियों के सदाचार का स्वरूप विस्तारपूर्वक बताइये।"

भीष्म बोले, "राजन्! देवलोक में महाविदुषी शाण्डिली देवी से केकेयराज की पुत्री सुमना ने पूछा था—कल्याणि! तुमने किस सदाचार के प्रभाव से समस्त त्राणों से मुक्ति पाकर देवलोक में यह महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है? इसके उत्तर में शाण्डिली देवी ने बताया—देवि! मैंने न तो गेरुआ वस्त्र धारण किया और न वल्कल पहना। न अपना मुण्डन कराया और न बड़ी-बड़ी जटाएँ रखीं। मैंने केवल सावधानी के साथ अपने पति की आज्ञा का पालन किया। उनसे कभी कठोर एवं अहितकर शब्द नहीं कहे। मैंने सदा सास-ससुर की सेवा की और विद्वान, ज्ञानी तथा ब्राह्मणों का आदर-सत्कार किया। मैंने न कभी किसी की चुगली की और न चुगली करना मुझे पसन्द था। न मैं किसी से किसी की निन्दा करती थी और न किसी से अश्लील परिहास करती थी। मैंने कभी कोई ऐसा कार्य नहीं किया जिससे किसी को हानि पहुँची हो। जब मेरे पतिदेव बाहर से घर लौटते थे तो मैं उन्हें बैठने के लिये आसन देती थी और श्रद्धापूर्वक उनकी सेवा करती थी। वे जिस भोजन को पसन्द नहीं करते थे और अरुचिकर अथवा अखाद्य मानते थे, मैं भी उसका परित्याग कर देती थी। अपने परिवार का सम्पूर्ण कार्य मैं प्रातःकाल उठकर पूरा कर लेती थी। जब कभी मेरे पति बाहर अथवा परदेश जाते थे तो मैं उनके उद्देश्यों की पूर्ति तथा कल्याण के लिये अनेक प्रकार के मांगलिक कार्य करती थी। पति के बाहर चले जाने पर मैं सब प्रकार के साज-शृंगारों का परित्याग कर देती थी। जब मेरे पति सुखपूर्वक निद्रा में निमग्न होते थे तो आवश्यक कार्य

होने पर भी मैं उन्हें कभी नहीं जगाती थी। परिवार के पालन-पोषण के कार्य के लिए भी मैं कभी उन्हें तंग नहीं करती थी। घर को सदा स्वच्छ रखती थी और घर की गोपनीय बातों तथा स्थिति को कभी किसी पर प्रगट नहीं करती थी। परिवार के किसी भी व्यक्ति की किसी से निन्दा नहीं करती थी। मैं स्वयं धर्माचरण करती थी और दूसरों को भी इसके लिए प्रेरित करती थी केवल ये ही कुछ बातें थीं जिनके कारण मुझे देवलोक में यह स्थान प्राप्त हुआ है।''

दसवाँ अध्याय

वर्णाश्रम धर्म का विवेचन तथा स्वर्ग में ले जाने वाले शुभ कर्म

युधिष्ठिर ने कहा, ''पितामह! मैं उस धर्म के विषय में जानना चाहता हूँ जो सब वर्णों के लिए समान रूप से हितकारी हो।'' भीष्म पितामह बोले, ''मैं तुम्हें अब उसी धर्म के विषय में बताता हूँ जो सब वर्णों के लिए—चाहे वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कोई भी है—हितकारी है। किसी भी जीव को हिंसा न करना, सत्यभाषण, सब प्राणियों पर दया करना, मन तथा इन्द्रियों को वश में रखना और अपनी शक्ति के अनुसार दान देना, परस्त्री संसर्ग से दूर रहना, स्त्री और किसी की धरोहर की रक्षा करना, अचौर्य, माँस मदिरा का परित्याग ऐसे कार्य हैं जो प्रत्येक वर्ण के व्यक्ति को करने चाहिए। प्रत्येक गृहस्थ को पञ्च महायज्ञों का अनुष्ठान करके अपने मन को शुद्ध करना चाहिए। सत्यभाषण, अन्य व्यक्तियों में केवल गुणों का अवलोकन करना, दान देना, अतिथियों तथा गुरुजनों का सत्कार करना, दम्भहीनता, सरलता, प्रियभाषी

होना, सात्त्विक भोजन करना, माँस-मदिरा का सेवन न करना, पूर्वोक्त धर्म के लक्षणों का श्रद्धापूर्वक अनुसरण प्रत्येक वर्ण के व्यक्ति का धर्म है। प्रत्येक मनुष्य को धर्माचरण करते हुए अपनी आजीविका कमानी चाहिए। अपनी आय को तीन भागों में विभाजित करके एक भाग को धर्म और अर्थ की सिद्धि में, दूसरे भाग को अपने उपभोग में और तीसरे भाग को भावी आवश्यकताओं के लिए सुरक्षित रखने में उपयोग करना चाहिए। इस धर्म से भिन्न एक अन्य धर्म है जिसे निवृत्ति कहा जाता है। यह मोक्ष का साधन है।

"मोक्ष की इच्छा रखने वाले मनुष्यों को चाहिए कि वे सभी प्राणियों पर दया करें। गृहस्थाश्रम समाप्त करके गाँव तथा नगर से दूर रहें। सब प्रकार की आशा, तृष्णा तथा कामनाओं का परित्याग कर दें। घर, जल, वस्त्र, आसन, त्रिदण्ड, शैया, यज्ञ किसी में भी आसक्ति न रखें। उनका अधिक से अधिक समय आध्यात्मिक ज्ञान के चिन्तन मनन एवं निदिध्यासन में व्यतीत होना चाहिए। योगाभ्यास में सदैव लगा रहना चाहिए। मोक्ष धर्म का अनुसरण करने वाले मुमुक्षुओं के लिए वेदों ने इसे ही उचित सन्मार्ग कहा है। ये लोग संन्यासी कहलाते हैं। संन्यासी चार प्रकार के बताये गये हैं—कुटीचक्र, बहूदक, हंस और परमहंस। इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं।"

युधिष्ठिर ने पूछा, "भगवन्! मुझे वे शुभ कर्म बताइये जिनके करने से मनुष्य स्वर्ग को पहुँच जाता है।" भीष्मजी ने बताया, "वत्स, स्वर्ग को वे लोग जाते हैं जो सब प्राणियों पर दया करते हैं, किसी जीव की हिंसा नहीं करते, किसी को

शारीरिक या मानसिक कष्ट नहीं पहुँचाते, दूसरों के धन पर गृद्ध-दृष्टि नहीं रखते, पर-स्त्री की ओर दृष्टि उठाकर भी नहीं देखते, माता, बहिन, पुत्री समझते हैं, धर्म से प्राप्त अन्न को ग्रहण करते हैं, सदाचारपूर्ण शिष्ट जीवन व्यतीत करते हैं, जितेन्द्रिय और शीलपरायण होते हैं, हास-परिहास में अथवा किसी भी उद्देश्य से कभी मिथ्याभाषण नहीं करते, सदैव प्रिय एवं हितकारी वाणी का प्रयोग करते हैं, कभी किसी से वैर-भाव नहीं रखते, कभी कपटपूर्णव्यवहार तथा छल का सहारा नहीं लेते, क्रोध एवं अभिमान नहीं करते, ऐसे शास्त्रज्ञ, धर्म-परायण, सरल हृदय महामानव स्वर्ग जाने के अधिकारी होते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है।"

युधिष्ठिर ने पूछा, "पितामह! ऐसा कौन सा मन्त्र है जिसका प्रतिदिन नियमपूर्वक जप करने से धर्म के महान फल की प्राप्ति होती है? और जो शान्ति, रक्षा तथा सब प्रकार के भय से मुक्ति दिलाता है?" पितामह बोले, "हे युधिष्ठिर! संसार में असंख्य मन्त्र हैं, किन्तु उनमें सबसे श्रेष्ठ मन्त्र गायत्री मन्त्र है। उससे बढ़कर न तो कोई जप है, न तप है और न यज्ञानुष्ठान है यह मन्त्र दीर्घायु देने और समस्त मनोरथों को सिद्ध करनेवाला है। पूर्व काल में धर्माचरण करने वाले राजर्षि भी इस मन्त्र का जप किया करते थे। मन और इन्द्रियों को वश में करके शान्तिपूर्वक प्रतिदिन इसका जप करने से सर्वोत्तम सम्पत्ति प्राप्त होती है। किसी कार्य के लिए जाने वाला मनुष्य यदि मार्ग में निष्ठापूर्वक इस मन्त्र का जप करता हुआ जाय तो उसे अपने इच्छित शुभ कार्य में अवश्य सफलता प्राप्त

होती है। नियमित रूप से गायत्री का जप करने वाले मनुष्य को राजा, दैवी विपत्ति, सर्प, पिशाच, राक्षस, अग्नि, जल, वायु आदि का भय नहीं रहता। यह मन्त्र चारों वर्णों और चारों आश्रमों के लिए सुख, सम्पत्ति एवं शान्ति का देने वाला है। जिस स्थान पर नियमपूर्वक गायत्री मन्त्र का जप होता है, उस स्थान पर अवाँछनीय अग्नि काण्ड नहीं होता, बाल मृत्यु नहीं होती और सर्प निवास नहीं करते, वहाँ के निवासियों का जीवन सुख एवं शान्तिपूर्ण रहता है और अन्त में जपकर्त्ता शुभ कर्मों को करता हुआ मोक्ष प्राप्त करता है। वास्तव में गायत्री संसार के प्राणियों की परमगति है।"

ग्यारहवाँ अध्याय

साधु-असाधु के लक्षण तथा धर्मानुष्ठान की आवश्यकता

युधिष्ठिर ने पूछा, "हे नरश्रेष्ठ! साधु पुरुष कैसे कर्म करते हैं? असाधु पुरुषों का रूप कैसा होता है? इन दोनों के लक्षण क्या हैं?" भीष्मजी बोले, "युधिष्ठिर! सज्जन पुरुष को साधु और दुर्जन पुरुष को असाधु कहते हैं। साधु पुरुष सुशील, सदाचारी और अच्छे कर्मों का करने वाला होता है। असाधु पुरुष स्वभाव से दुष्ट, दुराचारी, कटुभाषी, उद्दण्ड और दूसरों का अपकार करने वाला होता है। साधु पुरुष कभी किसी का तिरस्कार नहीं करते, वृद्ध पुरुषों को कभी आदेश नहीं देते, उनके उपदेशों को बड़े ध्यान से सुनकर उनके अनुसार आचरण करते हैं और सदैव उनकी सेवा में संलग्न रहते हैं। असाधु पुरुष जान-बूझकर पाप कर्म करते हैं और फिर उन्हें छिपाने का प्रयत्न करते हैं। वे नहीं जानते कि छिपाया

हुआ पाप सदैव बढ़ता है। अनजाने में किये हुए पाप को श्रेष्ठ जनों के सम्मुख कह देने से मन को शान्ति मिलती है और भविष्य में उस पाप-कर्म की ओर प्रवृति नहीं होती। मनीषी लोग धर्म को समस्त प्राणियों का हृदय कहते हैं, अतः साधु जन सर्वदा धर्मका ही आश्रय लेते हैं। वे कभी धर्म का आडम्बर नहीं रचते। मन, वचन, कर्म से सदैव एकरस रहते हैं। दम्भ, छल, कपट, त्याग कर विद्वानों का आदर-सत्कार करते हैं।"

जब युधिष्ठिर ने पूछा कि मनुष्य के लिए धर्मानुष्ठान की क्या आवश्यकता है तो पितामह ने बताया, "मनुष्य जब शुभ या अशुभ कर्म करता या करवाता है तब उसे यह जान लेना चाहिए कि उसे उन कर्मों का फल अवश्य मिलेगा। इसलिए शुभकर्मों का अनुष्ठान करने पर उसे पूर्ण विश्वास हो जाना चाहिए कि इन कर्मों का उसे उत्तम फल अवश्य प्राप्त होगा। ऐसी स्थिति में उसे ज्ञात हो जायेगा कि अशुभ कर्म करने पर उसे उत्तम फल कदापि नहीं मिलेगा। काल ही सदा निग्रह और अनुग्रह करता हुआ प्राणियों की बुद्धि में प्रविष्ट हो धर्म-अधर्म का फल देता रहता है। जब मनुष्य धर्म का शुभ फल देखता है तो उसे धर्म की श्रेष्ठता का निश्चय हो जाता है। जब तक मनुष्य की बुद्धि धर्म में दृढ़ नहीं होती, तब तक कोई उस पर विश्वास नहीं करता। इसलिए बुद्धिमत्ता इसी में है कि धर्म के फल में विश्वास करके उसके अनुष्ठान में लग जाय। कर्त्तव्य-अकर्त्तब्य का ज्ञान रखने वाले विवेकशील व्यक्ति भाग्य के विपरीत होने पर भी धर्म के अनुकूल ही आचरण करते हैं और यही उनके लिए कल्याणकारी है। अतुल ऐश्वर्य के

स्वामी सतोगुणी व्यक्ति रजोगुण के कारण पुनः जन्म मरण के चक्कर में न फँस जाय इसी आशंका से धर्म का अनुष्ठान करते हैं। काल किसी भी परिस्थिति में धार्मिक पुरुष को स्थायी दुःख नहीं दे सकता। विशुद्धात्मा को यह बात भली भाँति समझ लेनी चाहिए। धर्म का स्वरूप प्रज्वलित अग्नि के सदृश है और काल उसकी सब प्रकार से रक्षा करता है। अधर्म किसी भी दशा में धर्म को आच्छादित नहीं कर सकता। धर्म का कार्य है, पाप के स्पर्श से सुरक्षित रखना। परन्तु कोई कितना ही बुद्धिमान क्यों न हो, वह किसी व्यक्ति को हाथ पकड़कर बल-पूर्वक धर्म के मार्ग पर नहीं चला सकता, केवल धर्म-भय एवं लोक-भय की ओर संकेत करके उसे धर्मानुष्ठान के लिए प्रेरित कर सकता है।"

बारहवाँ अध्याय

भीष्म का युधिष्ठिर और धृतराष्ट्र को उपदेश देकर शरीर त्यागना

वैशंपायनजी बोले—हे जनमेजय! सब धर्मों का उपदेश देकर जब भीष्म पितामह चुप हो गये तो दो घड़ी पश्चात् व्यासजी ने उनसे कहा, "नरश्रेष्ठ भीष्मजी! अब युधिष्ठिर का मन शान्त हो चुका है। उनकी शंकाओं का समाधान हो चुका है। अब आप उन्हें अपने भाइयों, श्रीकृष्ण तथा अन्य लोगों के साथ हस्तिनापुर लौटने की अनुमति प्रदान करें।" व्यासजी की बात सुनकर युधिष्ठिर को जाने की अनुमति देते हुए भीष्मजी बोले, "अब तुम्हारे मन की सारी व्यथा दूर हो चुकी है। अतएव हस्तिनापुर जाकर नाना प्रकार के धार्मिक यज्ञों का अनुष्ठान करो। प्रजा को प्रसन्न रखो। सबका यथा-

योग्य सम्मान करो। जब सूर्य दक्षिणायण से उत्तरायण हो जाय, उस समय तुम फिर मेरे पास आना।" यह कहकर उन्होंने सबको विदा किया। हस्तिनापुर पहुँचकर युधिष्ठिर ने शासन की समुचित व्यवस्था की। जिन लोगों के पिता, पुत्र, भाई, पति रण में मारे गये थे, उन्हें प्रचुर धनराशि देकर सान्त्वना प्रदान की। इस प्रकार वे पचास दिन राज्य की व्यवस्था को समुचित रूप से दिशा-दर्शन देते रहे। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि सूर्य अब उत्तरायण पर आ गया है, वे भीष्मपितामह से मिलने के लिए चल पड़े। चलने से पूर्व उनके अन्तिम संस्कार के लिए सुयोग्य व्यक्तियों को नियुक्त कर समस्त आवश्यक सामग्री एकत्रित कराई। फिर उसे निश्चित स्थान पर भिजवा दिया। इससे निवृत्त होकर वे भीष्मजी के पास बन्धुओं सहित जा पहुँचे।

उस समय भीष्मजी के पास व्यासजी, देवर्षि नारद तथा असित देवल ऋषि विद्यमान थे। युधिष्ठिर ने भाइयों के साथ जाकर सबसे पहले भीष्म के चरण स्पर्श के लिये। उसके पश्चात् समस्त ऋषियों को प्रणाम किया। भीष्मजी से बोले, "नरश्रेष्ठ! आपकी आज्ञानुसार मैं आपकी सेवा में समय पर आकर उपस्थित हो गया हूँ। श्रीकृष्ण, महाराज धृतराष्ट्र तथा अनेक गणमान्य नागरिक एवं अनेक ऋषि-मुनि यहाँ उपस्थित हैं। यह सुनकर भीष्मजी ने नेत्र खोल कर चारों ओर उपस्थित जन-समुदाय को देखा। फिर युधिष्ठिर का हाथ अपने हाथ में लेकर बोले, "युधिष्ठिर! प्रसन्नता की बात है कि तुम लोग यहाँ आ गये और भगवान सूर्यदेव भी उत्तरायण को लौट

चुके हैं। इस शरशैया पर शयन करते हुए आज मुझे अट्ठावन दिन हो गये हैं; परन्तु ये अट्ठावन दिन मेरे लिए सौ वर्षों के समान व्यतीत हुए हैं। इस समय माघ के शुक्ल पक्ष का एक भाग व्यतीत हो चुका है और तीन भाग शेष हैं। धृतराष्ट्र! मुझे विश्वास है कि तुम धर्म और कर्म तत्व को भली भाँति समझ चुके हो और तुम्हारे मन में किसी प्रकार का कोई सन्देह नहीं रह गया है। क्योंकि तुमने शास्त्रों को सुना, समझा है। तुम यह भी समझ गये हो कि जो कुछ भी हुआ है वह अवश्यम्भावी था। इसलिए उसके विषय में शोक नहीं करना चाहिए। ये पाण्डव जैसे पाण्डु के पुत्र हैं, उसी प्रकार तुम्हारे भी पुत्र हैं। ये सदा गुरुजनों की सेवा में संलग्न रहते हैं। तुम धर्म में स्थित रहकर इनका भी अपने पुत्रों की भाँति पालन करो। युधिष्ठिर का हृदय अत्यन्त शुद्ध है। ये सदा तुम्हारी आज्ञा के आधीन रहेंगे। तुम्हारे पुत्र दुरात्मा, क्रोधी, लोभी और दुराचारी थे। अतः उनके लिए तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए।"

फिर भीष्म श्रीकृष्ण से बोले, "हे पुरुषोत्तम! अब मुझे जाने की आज्ञा दीजिए। मैंने दुर्योधन को बहुत समझाया था कि जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहाँ धर्म है और जहाँ धर्म है, वहीं विजय है। तुम पाण्डवों से सन्धि कर लो। परन्तु उसने मेरी बात नहीं मानी। परिणाम यह हुआ कि सम्पूर्ण पृथ्वी के वीरों का नाश कराके वह स्वयं भी काल का ग्रास बना।" श्रीकृष्ण बोले, "महातेजस्वी भीष्म! आप प्रसन्नतापूर्वक वसुलोक को जाइये। इस लोक में आपके द्वारा नाममात्र का भी पाप नहीं

हुआ है। आप अत्यन्त महान हैं। मृत्यु भी आपकी विनीत दासी के समान है।"

इसके पश्चात् भीष्मजी ने सभी उपस्थितजनों को सम्बोधित करते हुए कहा, "अब मैं प्राणों का परित्याग करना चाहता हूँ। तुम सब मुझे इसके लिए प्रसन्नतापूर्वक अनुमति दो। मेरी अन्तिम इच्छा है कि तुम सब लोग सदैव सत्यधर्म का पालन करो क्योंकि सत्य ही सबसे बड़ी शक्ति है।" ऐसा कह भीष्मजी ने सबको अन्तिम नमस्कार किया। फिर दो घड़ी तक चुपचाप रहकर उन्होंने मनसहित प्राणवायु को क्रमशः भिन्न-भिन्न धारणाओं में स्थापित किया। फिर उन्होंने रोके हुए अपने प्राण को यौगिक क्रियाओं के द्वारा मस्तिष्क तक पहुँचाया और शरीर के सभी द्वारों को बन्द कर लिया। फिर वे प्राण मस्तक स्थित ब्रह्म-रन्ध्र को भेदकर आकाश में चले गये। इस प्रकार महाप्रतापी भीष्म ने परमगति को प्राप्त किया।

जब भीष्मजी ने इस प्रकार प्राण त्याग किये तो बहुत से चन्दन, काष्ठ और नाना प्रकार के सुगन्धित द्रव्य लेकर महात्मा विदुर और पाण्डवों ने उनकी चिता तैयार की। विदुरजी और धर्मराज ने रेशमी वस्त्रों एवं मालाओं से भीष्म पितामह को आच्छादित करके चिता पर लिटाया। युयुत्सु ने उन पर छत्र ताना और भीमसेन श्वेत चँवर तथा अर्जुन पंखा डुलाने लगे। नकुल और सहदेव ने हाथों में पगड़ी लेकर पितामह के मस्तक पर रखी। रनिवास की रानी महारानी ताड़ वृक्ष के पत्तों से बने पंखे से उनके शव की चारों ओर से हवा करने लगीं। इसके उपरान्त पाण्डवों ने श्रद्धापूर्वक शास्त्रोक्त

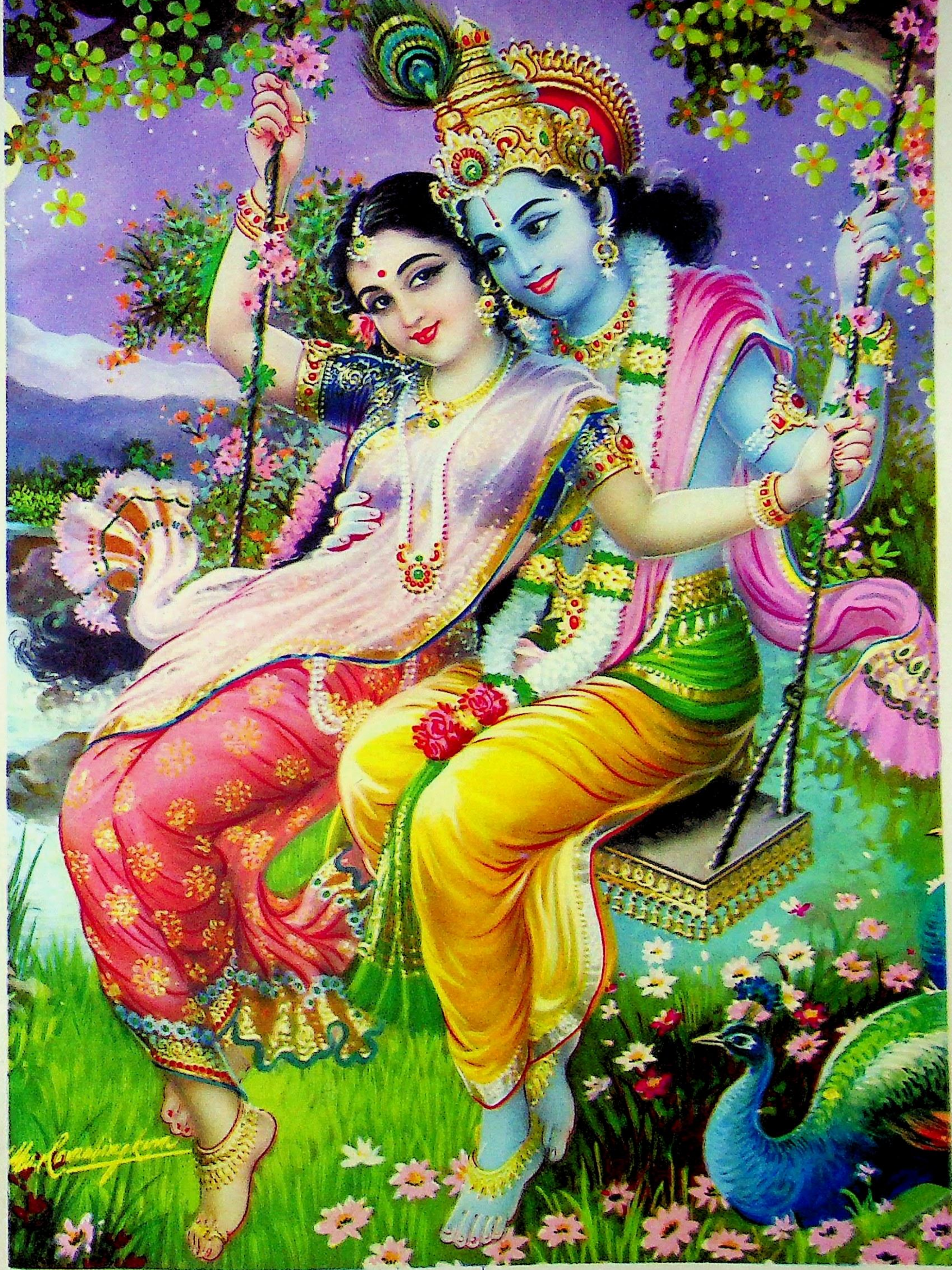
विधि से उनका पितृमेध संस्कार किया। अग्नि में बहुत सी आहुतियाँ दी गईं और सामवेद का गान करने वाले विद्वान् ब्राह्मणों ने साम मन्त्रों का पाठ किया। सभी उपस्थित जनों के मुखमण्डल पर शोक की घटाएँ छा रही थीं। फिर महाराज धृतराष्ट्र, पाण्डवों, बन्धु-बान्धवों एवं मित्रों तथा रनिवास की रानी-महारानियों ने गंगातट पर जाकर दिवंगत आत्मा को जलांजलि की। उस समय शोक से विह्वल गंगाजी जल से बाहर निकलीं और कौरवों को सम्बोधित करके बोलीं, "हे कौरवो! भीष्म एक महान पितृभक्त और महाव्रतधारी थे। जो महान पराक्रमी परशुरामजी से भी कभी पराजित नहीं हुए, वे शिखण्डी के बाणों से मारे गए। काशी के स्वयंबर में जब सब राजाओं ने मिलकर भीष्म पर आक्रमण किया था, तब उन्होंने अकेले ही केवल अपने रथ की सहायता से उन सबको पराजित किया था और काशिराज की कन्याओं को ले आये थे। इस पृथ्वी पर आज भी कोई तेजस्वी, बलवान और पराक्रमी नहीं था जो रणभूमि में भीष्म का सामना कर सकता। मेरे ऐसे महावीर पुत्र को शिखण्डी ने मार डाला। ऐसे महान तेजस्वी रणबाँकुरे योद्धा का यह अन्त। वास्तव में इसे विधि की प्रपंचना ही कहा जा सकता है। मेरा हृदय वास्तव में पत्थर का है जो अपने प्रिय पुत्र को अपने नेत्रों के सामने उठते देखकर भी शोक से विचलित नहीं होता, विदीर्ण नहीं होता।" यह कहकर गंगा जोर जोर से विलाप करने लगी और 'हा देवदत्त', 'हा देवदत्त' कहकर आर्त्तनाद करने लगी।

गंगा को इस प्रकार विलाप करते देख, श्रीकृष्ण उसे धैर्य

बँधाते हुए बोले, "हे देवि! तुम्हें इस प्रकार सांसारिक प्राणियों की भाँति शोक करना शोभा नहीं देता। भीष्म तो महातेजस्वी वसु थे, जिन्हें शाप के कारण इस नश्वर संसार में आकर मनुष्य योनि में जन्म लेना पड़ा था। अब वे पुनः अपने वसुलोक को पहुँच गए हैं। वे केवल एक निश्चित अवधि के लिए इस भारत वसुन्धरा पर आये थे। यहाँ रहकर उन्होंने मनुष्यमात्र के लिये अनुकरणीय पितृभक्ति, अखण्ड ब्रह्मचर्य तथा महान् त्याग के अद्भुत आदर्श उपस्थित किये हैं। जब तक पृथ्वी को सूर्य और चन्द्र प्रकाशित करते रहेंगे तब तक उनकी कीर्ति-गाथा बड़े सम्मान के साथ पढ़ी और सुनी जाती रहेगी। तुम यह सोचकर भी दुःखी मत हो कि उनकी मृत्यु शिखण्डी के हाथों से मारे जाने के कारण हुई है। वे अर्जुन के हाथों से मारे गये हैं। उन्हें तो समरक्षेत्र में साक्षात् इन्द्र भी नहीं मार सकते थे। वे तो अपनी इच्छा से प्राण त्याग करके स्वर्ग गये हैं। अतएव उनके लिए तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए।"

श्रीकृष्ण के ऐसे वचन सुनकर शोकरहित हो देवी गंगा पुनः जल में जाकर जलमय हो गईं। इसके पश्चात् सब लोग गंगाजी के प्रति सम्मान प्रदर्शित करके वहाँ से विदा हुए।

।। इति अनुशासन पर्व सम्पूर्ण ।।



1056 RADHA KRISHNA (JHULA) Hem Chander Bhargava & Co., Delhi-6.

महाराज धृतराष्ट्र ने कहा,

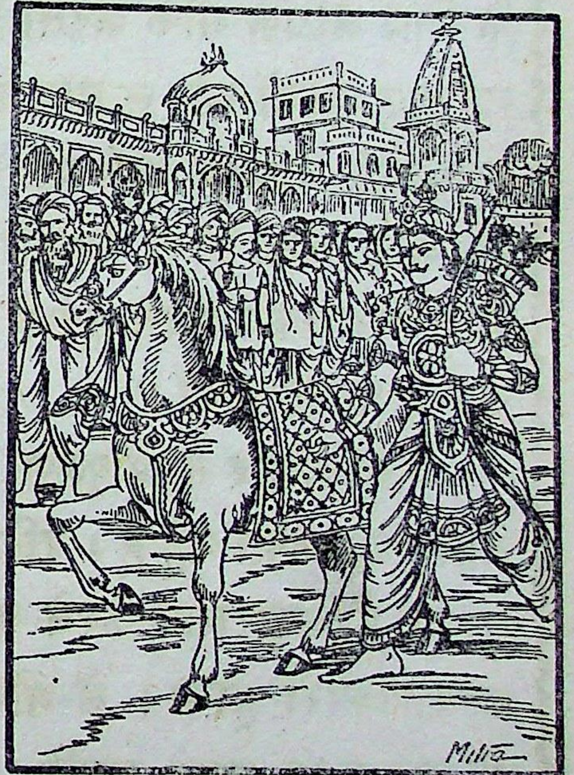
॥ ओ३म् ॥

महाभारत भाषा

१४. आश्वमेधिक पर्व



श्रीकृष्णजी की विदाई



अश्वमेध यज्ञ के घोड़े के साथ अर्जुन का जाना

पहला अध्याय

श्रीकृष्ण का युधिष्ठिर को अश्वमेध यज्ञ के लिए प्रेरित करना, उनका धर्मराज्य

वैशंपायनजी बोले—हे राजा जनमेजय! भीष्मजी की अन्त्येष्टि के पश्चात् जब युधिष्ठिर गंगा स्नान करके जल से बाहर निकले तब वे अत्यन्त शोकाकुल हो रहे थे। उनके नेत्रों से अश्रुधारा बह रही थी। उनकी यह दशा देखकर उनके भ्राता भी शोकमग्न हो गये। तब महाराज धृतराष्ट्र ने कहा,

"युधिष्ठिर! उठो और आगे के कार्यों में मन लगाओ। तुमने क्षत्रिय धर्म का पालन करतेहुए राज्य प्राप्त किया है। तुम्हारे लिये शोक करने का कोई कारण नहीं है। वास्तव में शोक तो मुझे और गान्धारी को करना चाहिए जिनके सौ पुत्र स्वप्न में प्राप्त धन की भाँति नष्ट हो गए।" यह सुनकर युधिष्ठिर तो मौन रहे, किन्तु श्रीकृष्ण बोले, "यदि मनुष्य मरे हुए प्राणी के लिये अधिक शोक करता है तो उसका यह शोक उससे पूर्व मरे हुए पूर्वजों को सन्ताप देता है। इसीलिये शोक छोड़कर बड़ी-बड़ी दक्षिणा वाले यज्ञ करके सोमरस के द्वारा देवताओं को और स्वधा द्वारा पितरों को सन्तुष्ट करो। राजकाज का भार सँभालकर अपने पूर्वजों के समान प्रजाजनों का यथोचित रूप से पालन करो।"

युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से कहा, "भगवन्! आप मुझसे सदा स्नेह करते रहे हैं। यदि आप कृपा करके मुझे तपोवन में जाकर ईश्वराराधन करने की अनुमति दे दें तो वह मेरे लिए कल्याणकारी होगा। मैं भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य और कर्ण को मरवाकर भारी ग्लानि अनुभव कर रहा हूँ।" युधिष्ठिर की बात सुनकर व्यासजी बोले, "राजन्! अभी तुम्हारी बुद्धि शुद्ध नहीं हुई है। तुम फिर मोह में पड़ गये हो। यदि तुम अब भी इस युद्ध के लिए स्वयं को उत्तरदायी मानकर पाप का भागी समझते हो तो उस पाप से मुक्ति पाने के लिए राजसूय, अश्वमेध, सर्वमेध और नरमेध यज्ञ करो। पापाचारी मनुष्य यज्ञ, दान और तपस्या से पवित्र होते हैं। अतः यज्ञों का विशेष महत्व है। उन्हीं को रकेकदेवताओंने असुरों को परास्त किया

था। इसलिये सबसे पहले तुम श्रीराम की भाँति अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करो।"

युधिष्ठिर बोले, "महर्षे! आपका विचार सब प्रकार से उचित है, परन्तु इस महायुद्ध के कारण कोष खाली हो चुका है। ये राजा लोग अभी बालक हैं। इनके गुरुजन इस युद्ध की बलि चढ़ चुके हैं। जो युवा हैं, उनके शरीर के घाव अभी नहीं सूखे हैं। अतः इनसे भी मैं धन नहीं ले सकता। विद्वानों ने अश्वमेध युद्ध में सम्पूर्ण पृथ्वी दक्षिणा में देने का प्रावधान किया है।" व्यासजी बोले, "यदि तुम्हारा कोष खाली हो गया है तो तुम उसकी चिन्ता मत करो। हिमालय पर्वत पर महात्मा मरुत्त के यज्ञ में जो विशाल धनराशि ब्राह्मणों ने छोड़ी थी, वह अब भी वहीं पड़ी है। उसे ले आओ। वह तुम्हारे लिए पर्याप्त है।" इस पर भी युधिष्ठिर को मौन बैठे देख केशव बोले, "युधिष्ठिर! तुमने अभी तक अपने कर्त्तव्य कर्म को पूरा नहीं किया है और न अपने शत्रुओं पर विजय पाई हैं। तुम्हारा शत्रु तो तुम्हारे शरीर के अन्दर बैठा है। तुम उसे पहचानते क्यों नहीं? इस समय स्वयं तुम्हें अकेले ही अपने मन के साथ युद्ध करना होगा। अतएव अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए योग के द्वारा मन को वशीभूत करके माया से परे परब्रह्म को प्राप्त करो। केवल राज्य आदि बाहरी पदार्थों का त्याग कर देने से ही सिद्धि प्राप्त नहीं होती। यह भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि काम-क्रोध आदि का त्याग करने से सिद्धि प्राप्त होती है। मम (ये दो अक्षर ही) मृत्यु-रूप हैं और न मम 'मेरा नहीं है' (ये तीन अक्षर) सनातन ब्रह्म की प्राप्ति का सोपान हैं।

ममता मृत्यु है, उसका त्याग अमृत्व है। मृत्यु और अमृत ये दोनों मनुष्य के अन्दर विद्यमान हैं। किसी को अपना मानना अथवा न मानना--ये दोनों ही मानसिक युद्ध के कारण हैं। यदि गृहस्थ में रहकर भी मनुष्य ममत्वहीन है तो वह योगी है और जो वन में रहकर भी ममता से बँधा हुआ है, उसे मृत्यु के मुख में ही समझना चाहिए। अभी आप भी यज्ञों का अनुष्ठान करके इस ममता का अन्त कर दीजिए।"

इस प्रकार धृतराष्ट्र, व्यास और श्रीकृष्ण के उपदेशों से शोकमुक्त होकर युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों को बहुत सा धन दान में दिया और धृतराष्ट्र को आगे कर हस्तिनापुर में प्रविष्ट हुए। वे धृतराष्ट्र से प्रत्येक बात में परामर्श लेकर उनकी इच्छानुसार प्रजा पर शासन करने लगे। उनकी प्रेरणा के फलस्वरूप राज्य में सर्वत्र धर्मानुकूल कार्य होने लगे। दुराचार का कहीं चिह्न भी नहीं मिलता था। राज्य में समय पर वृष्टि होती थी। कृषि, व्यापार, उद्योग सर्वत्र फल-फूल रहे थे। स्त्रियाँ पतिव्रता और बहुमूल्य वस्त्रों एवं अलंकारों से सुसज्जित रहती थीं। सभी पुरुष पुण्यात्मा, धर्माचरण में रत तथा पूर्ण सदाचारी थे।

दूसरा अध्याय

अर्जुन का श्रीकृष्ण से गीता का विषय पूछना, श्रीकृष्ण का असमर्थता प्रगट करना

वैशंपायनजी बोले--हे राजन्! जब युधिष्ठिर शोक-सन्ताप को छोड़ दत्तचित्त होकर प्रजा के पालन में लग गए तो श्रीकृष्ण और अर्जुन को बड़ी प्रसन्नता हुई। वे दोनों मित्र आनन्दपूर्वक वनों एवं पर्वत शिखरों पर आध्यात्मिक चर्चा करते हुए भ्रमण

करने लगे। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अनेक विचित्रपद, अर्थ तथा सिद्धान्तों से युक्त विलक्षण कथाएँ सुनायीं। इन सब बातों के बीच में भी अर्जुन अभिमन्यु की मृत्यु को नहीं भुला पाये थे। उनके मन पर भी अभिमन्यु की तथा अपने बन्धु-बान्धवों की मृत्यु की घटना भार बनकर कंटक की भाँति चुभती हुई उन्हें पीड़ा पहुँचाती थी। अनेक बार बातें करते करते वे शोक विह्वल हो जाते थे। एक बार उन्हें शोकाकुल देख श्रीकृष्ण ने उन्हें नाना प्रकार से सान्त्वना दी। जब वे शान्त हो गए और उनका मन स्थिर हुआ तो श्रीकृष्ण ने कहा, "मित्रवर! मुझे तुम्हारे साथ रहते हुए बहुत समय बीत गया है। मुझे अपने पिता वसुदेवजी का स्मरण आ रहा है जिनके दर्शन किये बिना कई मास बीत गये हैं। इसलिए अब मैं द्वारिकापुरी जाना चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि तुम भी मेरे साथ द्वारिकापुरी चलो। कुछ समय वहाँ बिताकर लौट आना।"

अर्जुन बोले, "मित्र! तुम्हारा प्रस्ताव तो अच्छा है, किन्तु इससे पूर्व मैं तुमसे एक अनुरोध करना चाहता हूँ। कुरुक्षेत्र में तुमने मुझे जो ज्ञान का उपदेश दिया था, वह मैं विचलित चित्त होने के कारण भूल गया हूँ। इसलिए उसे फिर सुनने की मेरे मन में उत्कट इच्छा हो रही है।" श्रीकृष्ण बोले, "अर्जुन! उस समय मैंने तुम्हें अत्यन्त गोपनीय ज्ञान विस्तार-पूर्वक बताया था, परन्तु उसे तुमने अपनी असावधानी से भुला दिया। यह बात मुझे अत्यन्त अप्रिय है। इससे प्रतीत होता है कि तुममें श्रद्धा का अभाव है और तुम मन्दबुद्धि हो। अब मैं उस ज्ञान का वर्णन जैसे का तैसा पुनः नहीं कर सकता। उस

समय मैंने योगयुक्त होकर परमतत्व का वर्णन किया था। उसे उसी रूप में दुहरा देना मेरे लिए संभव नहीं है।"

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर के पास जाकर द्वारिकापुरी जाने की अनुमति माँगी तो उन्होंने सहर्ष प्रदान कर दी। साथ ही उनसे कहा, "मैं आपकी आज्ञानुसार शीघ्र ही अश्वमेध यज्ञ का आयोजन करूँगा। उसमें आपका आना अत्यन्त आवश्यक है। अतएव उस अवसर पर आप बन्धु-बान्धवों सहित अवश्य पधारकर इस यज्ञ की शोभा को बढ़ाइयेगा। हे केशव! आपकी अनुपम कृपा से ही हमें अभूत-पूर्व विजय प्राप्त हुई है। जो अनेक दुर्धर्ष शत्रु इस युद्ध में मारे गये, वह आपके अनुग्रह और अद्भुत पथ-प्रदर्शन का परिणाम है। इसके लिए हम आपको जितना साधुवाद दें, कम हैं। इस समय जब आप हमसे विदा होकर जा रहे हैं, ये कुछ रत्न आपकी सेवा में अर्पित हैं। इन्हें स्वीकार करके मुझे अनुग्रहीत करो।" उन्हें अस्वीकार करते हुए श्रीकृष्ण बोले, "राजन्! ये रत्न, सम्पत्ति, पृथ्वी सब कुछ आपका है क्योंकि आपने इन्हें अपने बाहुबल से अर्जित किया है, किसी की कृपा से नहीं। इतना ही नहीं, द्वारिकापुरी में भी जो कुछ धन वैभव है वह सब भी आप ही का है। आवश्यकता पड़ने पर आप उसका निःसंकोच उपयोग कर सकते हैं। इस प्रकार युधिष्ठिर को समझा-बुझाकर केशव अपनी बुआ कुन्ती देवी के पास पहुँचे। उनका सत्कार करके केशव ने कुन्ती से अपनी बहिन सुभद्रा को भी अपने साथ ले जाने की अनुमति माँगी ताकि वह वहाँ कुछ दिन रहकर अपने शोक-सन्ताप को भुला सके। इस प्रकार

सबसे विदा हो जब देवकीनन्दन कृष्ण हस्तिनापुर से चले तो उनके पीछे कुछ दूर तक अर्जुन, भीमसेन, नकुल, सहदेव, सात्यकि, विदुर आदि पहुँचाने के लिए गए। श्रीकृष्ण ने उन सबका यथोचित सत्कार करके उन्हें विदा किया और दारुक तथा सात्यकि से कहा, "अब घोड़ों को तेजी से हाँको।" अर्जुन और उनके भ्राता श्रीकृष्ण के रथ को खड़े तब तक देखते रहे जब तक कि वह आँखों से ओझल नहीं हो गया। रथ के ओझल होने पर अर्जुन ने बड़े कष्ट से अपने नेत्रों को उस मार्ग से हटाया। श्रीकृष्ण भी इस प्रवास की स्मृतियों को मन में संजोये भारी मन से द्वारिकापुरी की ओर चले। द्वारिकापुरी पहुँच कर परिजनों एवं माता-पिता से वे बड़े प्रेम से मिले और उन्हें हस्तिनापुर के समाचारों से अवगत कराया।

तीसरा अध्याय

युधिष्ठिर का हिमालय से धन लाना, श्रीकृष्ण का लौटना और उत्तरा के मृत बालक को जीवन-दान देना

वैशंपायनजी बोले—हे राजन्! श्रीकृष्ण के विदा हो जाने के पश्चात् युधिष्ठिर को वेदव्यास द्वारा रखे गए अश्वमेध के प्रस्ताव का स्मरण आया। उन्होंने अपने भ्राताओं को बुलाकर कहा, "बन्धुओ! इस महासमर के कारण सारे भूमंडल पर रत्नों एवं धन का नाश हो गया है। उस दिन व्यासजी ने हिमालय पर पड़े मरुत्त के धन का पता बताया था। यदि सम्भव हो सके तो हमें उस धन को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। भीमसेन! इस विषय में तुम्हारा क्या मत है?" भीमसेन बोले, "महाराज! व्यासजी का सुझाव बहुत सुन्दर

है। हमें उस धन को प्राप्त करने की अवश्य चेष्टा करनी चाहिए। यदि वह धन हमें मिल जाय तो हमारी समस्त समस्याओं का समाधान हो सकता है।" सभी पाण्डवों ने भीमसेन के मत का समर्थन किया। यह निश्चय हो जाने पर ध्रुवसंज्ञक नक्षत्र में रविवार के दिन सेना को तैयार कर पाण्डवों ने अग्नि एवं ब्राह्मणों का पूजन किया और युधिष्ठिर के नेतृत्व में हिमालय की ओर प्रस्थान किया। निश्चित स्थान पर पहुँच कर एक समतल मैदान में युधिष्ठिर ने अपनी सेना का पड़ाव डाला। शुभ मुहूर्त्त में ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराकर महाराज युधिष्ठिर ने उस स्थान पर खुदाई आरम्भ कराई। थोड़ी ही देर में अनेक प्रकार के विचित्र, जाज्वल्यमान सहस्रों स्वर्ण पात्र दृष्टिगोचर होने लगे। उसमें नाना प्रकार के स्वर्णपात्र बहुमूल्य रत्नों से ओत-प्रोत थे। उन सबको निकलवाकर वे व्यासजी की आज्ञा से धौम्य मुनि को आगे करके हस्तिनापुर ले आये।

अश्वमेध का समय निकट जान श्रीकृष्ण भी लौट आये। उन्हीं दिनों हे जनमेजय! तुम्हारे पिता परीक्षित का जन्म हुआ। वे अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से पीड़ित होने के कारण मृतप्रायः अवस्था में उत्पन्न हुए थे। जब श्रीकृष्ण को यह समाचार मिला। तो वे सात्यकि के साथ तत्काल अन्तःपुर में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा, बुआ कुन्ती 'वासुदेव दौड़ो' 'वासुदेव दौड़ो' की एक रट लगाती हुई उन्हीं की ओर चली आ रही थी। कुन्ती के पीछे द्रौपदी, सुभद्रा तथा रनिवास की अन्य रानी-महारानियाँ बिलखती हुई विलाप कर रही थीं। कुन्ती

ने श्रीकृष्ण के पास आकर कहा, "हे देवकीनन्दन! इस कुल की रक्षा तुम्हारे ही आधीन है। हमें केवल तुम्हारा सहारा है, तुम्हीं कुछ करो। अभिमन्यु का बालक अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से पीड़ित होकर मृत उत्पन्न हुआ है। जैसे भी हो, उसे जीवनदान देकर कौरव-कुल की रक्षा करो। अश्वत्थामा ने जब सींक के बाण का प्रयोग किया था, उस समय तुमने प्रतिज्ञा की थी, कि उत्तरा के मरे हुए बालक को जीवित कर दूंगा। अब वह बालक मरा हुआ उत्पन्न हुआ है। अब इसे जीवनदान देकर उत्तरा, सुभद्रा और द्रौपदी सहित मेरी रक्षा करो। तुम ही हम सबका इस संकट से उद्धार कर सकते हो।" ऐसा कहकर वे बिलख-बिलख कर रो पड़ीं।

फिर सुभद्रा ने रोते हुए मधुसूदन से कहा, "भैया! तुम अपने मित्र गाण्डीवधारी पार्थ के इस पौत्र की अवस्था तो देखो। यह कौरव कुल का एकमात्र दीपक है। इसकी रक्षा करो।" बुआ और बहिन के इस आर्त्तनाद को सुनकर श्रीकृष्ण का हृदय दया से द्रवित हो गया। हे जनमेजय! श्रीकृष्ण तत्काल तुम्हारे पिता के जन्मस्थान प्रसूतिकागृह में गये। उसे श्वेत मालाओं से सुसज्जित किया। चारों ओर जल से भरे कलश रखवाये। इधर-उधर सरसों बिखेरी गई। तेन्दुक लकड़ी के अनेक टुकड़े घी में डुबाकर जलाये गये। चारों ओर कृमि-नाशक एवं वायु प्रदूषण का निवारण करने वाली वस्तुएँ रखी गईं। जब केशव इस सुरुचिपूर्ण की गई व्यवस्था का निरीक्षण कर रहे थे तो उत्तरा ने दुखी होकर कहा, "हे जनार्दन! आज मैं और मेरे पति दोनों ही सन्तानहीन हो गए। आर्यपुत्र ने तो

समरभूमि में शत्रुओं का भयंकर संहार करके वीरगति प्राप्त की थी, परन्तु मैं पुत्र शोक में--अपनी एकमात्र आशा का अवलम्ब टूट जाने पर--अपने प्राण विसर्जन कर दूंगी। मैं चारों ओर से निराश होकर आपके शरणागत हुई आपसे अश्वत्थामा द्वारा मारे गये इस पुत्र का जीवनदान माँग रही हूँ। आपके चरणों पर मस्तक रखकर की गई इस अबला की याचना को न ठुकराइये। मुझे निराश न कीजिए। यदि यह जीवित न हुआ तो मैं भी अपने प्राण दे दूंगी। मैं तो आर्यपुत्र के साथ उसी समय सती हो जाना चाहती थी, किन्तु मुझे उनकी इस धरोहर की रक्षा के लिए विवश होकर जीना पड़ा था। अब जब वह धरोहर ही लुट गई तो इस संसार में मेरे जीवन की क्या उपयोगिता? प्रभो! मेरी बड़ी इच्छा थी कि मैं अपने इस बालक को लेकर प्रसन्नतापूर्वक आपके चरणों में अभिवादन करूँगी, किन्तु अब वह इच्छा जल के बुलबुले की भाँति नष्ट हो गई। अब मेरा जीवन आपके हाथों में है।"

जब इस प्रकार विलाप करती हुई उत्तरा पृथ्वी पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ी तो कुन्ती आदि स्त्रियाँ और भी जोर जोर से आर्त्तनाद करने लगीं। थोड़ी देर बाद जब उत्तरा पुनः चैतन्य हुई तो वह अपने मृत शिशु को गोद में लेकर कहने लगी, "हे पुत्र! तू तो धर्मपरायण पिता का पुत्र है, फिर तू यह अधर्मपूर्ण कृत्य क्यों कर रहा है? देखता नहीं, तेरे परम-पूज्य वृष्णिवंश के महावीर योगिराज श्रीकृष्ण तेरे सम्मुख खड़े हैं और तू उठकर उनका अभिवादन नहीं करता? देख, तेरी परदादी (कुन्ती) किस प्रकार विलाप कर रही है? तेरी

दोनों दादियाँ बिलख बिलखकर व्याकुल हो रही हैं।" इस प्रकार विलाप करती हुई उत्तरा को पुनः मूर्च्छित होते देख सभी उपस्थित महिलाएँ उसका उपचार करने लगीं। अब केशव उत्तरा तथा राज्यपरिवार की अन्य महिलाओं की यह आर्त्तदशा अधिक नहीं देख सके। उन्होंने आचमन करके अश्वत्थामा के चलाए हुए ब्रह्मास्त्र को शान्त कर दिया। फिर वे दृढ़ निश्चयपूर्वक एकाग्रचित्त होकर गुरु गम्भीर वाणी में बोले, "पुत्री उत्तरे! मैं कभी असत्य भाषण नहीं करता। मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, मैं उस पर अटल हूँ। मेरी वह प्रतिज्ञा अवश्य सत्य होगी। यदि मैंने कभी हास-परिहास में भी मिथ्या भाषण न किया हो और समरभूमि में शत्रु को कभी पीठ न दिखाई हो तो उस सद्धर्म की शक्ति से यह बालक तत्काल जीवित हो जाय। यदि धर्म और ब्राह्मणों के प्रति मेरी सच्ची निष्ठा रही हो तो अभिमन्यु का यह पुत्र जो मृतप्रायः उत्पन्न हुआ है जीवित होकर सचेष्ट हो जाय। यदि मुझमें सत्य और धर्म की स्थिति निरन्तर बनी रहती हो तो यह बालक जीवित हो जाय। यदि मैंने कंस और केशी का धर्मानुसार वध किया हो तो यह बालक पुनः जीवित हो जाय।" श्रीकृष्ण के ऐसा कहने से अभिमन्यु के उस पुत्र में पुनः प्राण का संचार होने लगा और वह अपने हाथ-पैर चलाने लगा। शिशु को इस प्रकार जीवित होते और अंग संचालित करते देख सभी उपस्थित जन हर्षविभोर हो गए।

चौथा अध्याय

परीक्षित का नामकरण, युधिष्ठिर के लौटने पर यज्ञ की तैयारी

वैशंपायनजी बोले—हे राजन् ! इस प्रकार जब वह बालक जीवित हो गया तो यथासमय उसे गोद में लेकर उत्तरा ने श्रीकृष्ण के समीप जा उन्हें कृतज्ञतापूर्वक प्रणाम किया। उन्होंने बालक को अनेक उपहार देकर कहा, "यह बालक ऐसे समय उत्पन्न हुआ है जब कौरवों का कुल परिक्षीण होने जा रहा था, अतः इस बालक का नाम परीक्षित होगा। यह अपने पराक्रम, यश-गौरव से कुरुकुल की गरिमा का विस्तार करेगा।" हे जनमेजय ! इस प्रकार परीक्षित नाम पाकर आपके पिता काल क्रम से बड़े होने लगे। पाण्डव लोग अभी तक हिमालय से धन लेकर नहीं लौटे थे। जिस समय वह अतुल धनराशि लेकर हस्तिनापुर लौटे तब तक परीक्षित की आयु एक मास की हो चुकी थी। पाण्डवों के लौटने का समाचार सुनकर हस्तिनापुर को उनके स्वागत के लिए तोरण-पताकाओं बन्दनवारों आदि से बड़ी सुरुचि के साथ सजाया गया। नगर के गणमान्य नागरिक श्रीकृष्ण को आगे कर नगर के मुख्य द्वार पर उनका स्वागत करने के लिए पहुँचे, सब लोग परस्पर मिले। पाण्डव संक्षेप में नगर के महत्वपूर्ण समाचारों से अवगत होने के पश्चात् महाराज धृतराष्ट्र के पास गये। उनकी चरणवन्दना करने के पश्चात् वे सब देवी गान्धारी और कुन्ती देवी के पास गये। इसके उपरान्त उन्होंने तुम्हारे पिता के जन्म का विलक्षण वृतान्त विस्तारपूर्वक सुना और श्रीकृष्ण के अद्भुत कार्य का विवरण सुन कर उनकी कोटि-कोटि प्रशंसा

करने लगे। उन्होंने अनेक प्रकार से केशव के प्रति अपना आभार प्रगट किया।

कुछ दिनों के पश्चात् एक दिन महातेजस्वी व्यासजी पधारे तो उनका यथोचित सत्कार करने के पश्चात् युधिष्ठिर ने उनसे कहा, "महर्षे! हम लोग आपके निर्देशानुसार हिमालय से अपार धनराशि ले आये हैं। अब मैं इसका सदुपयोग अश्वमेध यज्ञ के लिए करना चाहता हूँ। अतएव मैं इसके लिए आपको आज्ञा और आशीर्वाद चाहता हूँ।" व्यासजी बोले, "मैं तुम्हारे विचार से पूर्णतया सहमत हूँ मेरी ओर से तुम्हें अश्वमेध यज्ञ करने की अनुमति है। अब तुम इस कार्य को शीघ्र प्रारम्भ कर डालो। ब्राह्मणों को विधिपूर्वक दक्षिणा देकर इस महान यज्ञ का अनुष्ठान करो।" इस प्रकार जब श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास से युधिष्ठिर को यज्ञ करने की अनुमति प्राप्त हो गई तो वे यशोदानन्दन श्रीकृष्ण के पास आकर बोले, "हे केशव! व्यासजी ने हमें अश्वमेध यज्ञ करने की अनुमति दे दी है। हमें जो कुछ सुख, वैभव, राज्य प्राप्त हुआ है, वह सभी आपकी ही कृपा का प्रसाद है। इसलिए आप से मेरी प्रार्थना है कि आप इस यज्ञ की दीक्षा ग्रहण करें। वैसे भी आप हमारे परम गुरु हैं।"

श्रीकृष्ण बोले, "राजन्! आपका यह कथन आपकी महान गरिमा का द्योतक है। हम तो आपके अनुयायी हैं और आपको अपना नरेश मानते हैं। इसलिए मेरा निवेदन है कि इस गौरवपूर्ण पद को आप स्वयं ग्रहण करें और मुझे तथा अन्य व्यक्तियों को जो कार्य उचित समझें, निःसंकोच सौंप दें। मैं आपसे

प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि आप मुझे जो भी छोटे से छोटा कार्य सौंपेंगे, मैं उसे पूरी निष्ठा के साथ करूँगा। आप राजा हैं। आपके यज्ञ करने से भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव भी इस यज्ञ के फल के अधिकारी होंगे।" यह सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर व्यासजी से बोले, "भगवन्! आपसे मेरी प्रार्थना है कि अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ करने का जो सर्वाधिक उपयुक्त समय हो, उस समय कृपा करके मुझे दीक्षा प्रदान करें।" उनकी बात को स्वीकार करते हुए व्यासजी बोले, "राजन्! उचित समय पर मैं, पैल और याज्ञवल्क्य आकर तुम्हारे यज्ञ का समारम्भ करा देंगे। आगामी चैत्र मास की पूर्णिमा को तुम्हें यज्ञ की दीक्षा दी जायेगी। तब तक तुम यज्ञ के लिए आवश्यक सामग्री एकत्रित करा लो। अश्व विद्या के ज्ञाता सूत और ब्राह्मण से यज्ञ की सिद्धि के लिए पवित्र अश्व की परीक्षा करा लो। उपयुक्त अश्व का चुनाव करके उसे शास्त्रीय रीति से छुड़वा दो ताकि वह समुद्रपर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वी पर विचरण करता हुआ तुम्हारी कीर्ति का विस्तार करे।" इस आदेश का पालन करते हुए युधिष्ठिर ने यज्ञ के लिए सब प्रकार की व्यवस्था करा दी।

जब अश्व को छोड़ा गया तो व्यासजी के परामर्श के अनुसार गाण्डीवधारी वीर अर्जुन पर उसकी रक्षा का भार सौंपते हुए धर्मराज ने कहा, "वीर अर्जुन! इस घोड़े की रक्षा का उत्तरदायित्व मैं तुम पर छोड़ता हूँ क्योंकि तुम सब धनुर्धारियों में श्रेष्ठ हो और बुद्धिमान एवं धैर्यवान हो।" व्यासजी ने कहा, "धर्मपुत्र! इस कार्य के लिए अर्जुन की नियुक्ति सर्वथा

उपयुक्त है, क्योंकि वे सम्पूर्ण भूमण्डल को जीतने की क्षमता रखते हैं। भीम और नकुल भी महान तेजस्वी और पराक्रमी हैं। इन दोनों पर यज्ञ काल में राज्य की रक्षा और प्रशासन का भार सौंपा जाय। बुद्धिमान सहदेव कुटुम्बपालन सम्बन्धी समस्त कार्यों की देखभाल करें।" युधिष्ठिर ने व्यासजी की आज्ञा को शिरोधार्य करके वैसी ही व्यवस्था कर दी। उन्होंने अश्व-रक्षा के लिए जाते समय अर्जुन से कहा, "वीर! तुम्हें अश्व की रक्षा करते समय इस बात का विशेष प्रयत्न करना चाहिए कि उस समय जो राजा तुम्हारे समक्ष आये, उसे समझा-बुझाकर अपने पक्ष में करना चाहिए। इस बात की भरसक चेष्टा करना कि तुम्हें उससे युद्ध न करना पड़े। सभी राजाओं को यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए आदरपूर्वक निमन्त्रण देना।" इस प्रकार अर्जुन, भीमसेन, नकुल और सहदेव को उन्होंने उनके कार्यों के विषय में अवगत कराकर उनसे कहा कि वे अब अपने कार्यों के विषय में आवश्यक तैयारियाँ करें।

पाँचवाँ अध्याय

अर्जुन द्वारा घोड़े का अनुसरण, वज्रदत्त तथा सैन्धवों से युद्ध

वैशम्पायनजी बोले—हे नृपश्रेष्ठ! अश्वमेध यज्ञ के शुभारम्भ का समय आने पर व्यासजी तथा अन्य ऋत्विजों ने धर्मराज युधिष्ठिर को विधिपूर्वक यज्ञ की दीक्षा दी। स्वयं व्यासजी ने समुचित पूजन करके घोड़े को विश्व-विचरण के लिए छोड़ा। अश्व ने स्वच्छन्द गति से हस्तिनापुर से प्रस्थान किया और वीर अर्जुन विशाल सेना के साथ उसका अनुसरण करते हुए चले। सबसे पहले वह उत्तर दिशा की ओर चला,

मार्ग में अनेक राजाओं के राज्यों को रौंदता और राजाओं को सन्धि के लिए प्रेरित करता हुआ पूर्व दिशा की ओर मुड़ गया। मार्ग में पड़ने वाले ऐसे अनेक राजाओं ने अर्जुन के साथ युद्ध किया तो पिछले महासमर में पाण्डवों द्वारा परास्त कर दिये गये थे। इनमें किरात, यवन तथा मलेच्छ प्रमुख थे। उनके अतिरिक्त अनेक आर्य नरेशों ने भी घोड़े को पकड़कर अर्जुन के साथ युद्ध किया। इस प्रकार असंख्य राजाओं से युद्ध करना पड़ा। बहुत से राजा वीर पार्थ के सम्मुख अधिक न टिक सके और एक दो दिन प्रतिरोध करने के पश्चात् ही उन्होंने अपनी पराजय स्वीकार कर ली, परन्तु कुछ नरेश ऐसे भी थे जिनके साथ युद्ध करने में अर्जुन को पर्याप्त कठिनाई का सामना करना पड़ा। ऐसा ही एक युद्ध त्रिगर्त नरेश के साथ हुआ था।

महाभारत युद्ध में जो त्रिगर्त वीर मारे गये थे, उनके पराक्रमी पुत्र और पौत्र पाण्डवों को अपना कट्टर शत्रु समझने लगे थे। वे उनसे अपने पूर्वजों की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए व्याकुल थे। जब युधिष्ठिर के अश्वमेध का घोड़ा त्रिगर्त राज्य से होकर निकला तो उन्हें अपना वैर चुकाने का अवसर मिल गया और उन्होंने घोड़े को पकड़ने का निश्चय कर लिया। वे कवच पहन धनुष बाण ले, रथों पर बैठ मैदान में आकर एकत्रित हो गये और उन्होंने यज्ञ के अश्व को चारों ओर से घेरकर पकड़ने का प्रयत्न किया। अर्जुन ने उन्हें समझा बुझा कर लौटा देना चाहा, परन्तु वे न माने। जब युद्ध हुआ तो अर्जुन ने त्रिगर्तराज सूर्य वर्मा को अपने बाणों से घायल कर दिया। इसके पश्चात् उन्होंने अपने सशक्त बाणों से त्रिगर्तों

के अठारह प्रमुख योद्धाओं को मार डाला। उनके मरते ही सेना में भगदड़ मच गई। फिर भी जो साहस करके युद्ध के मैदान में डटे रहे वे अर्जुन के बाणों से मारे गये। इस प्रकार अपने साथियों के मरने पर कुछ तो मैदान छोड़कर भाग गये और कुछ ने अर्जुन के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। इस प्रकार त्रिगर्तों पर विजय पताका फहराने के पश्चात् पाण्डवों के यज्ञ का घोड़ा अनेक राज्यों में होता हुआ प्राग्ज्योतिषपुर पहुँचा। वहाँ दिवंगत भगदत्त का पुत्र वज्रदत्त राज्य करता था।

भगदत्त पाण्डव सेना से युद्ध करते हुए मारा गया था। इसलिए वज्रदत्त पाण्डवों को अपना शत्रु समझता था। जब उसने घोड़े को अपनी सीमा में चरते देखा तो वह उसे पकड़ कर ले गया। अर्जुन ने तत्काल उस पर आक्रमण कर दिया, परन्तु वज्रदत्त भी साधारण योद्धा नहीं था। उसने अपना हाथी रणभूमि में अर्जुन के सामने ला खड़ा किया और दोनों में तथा उनकी सेनाओं में घनघोर युद्ध होने लगा। दोनों महा-पराक्रमी एवं अद्वितीय वीर थे। दोनों बिना रुके तीन दिन और तीन रात्रि तक युद्ध करते रहे। दोनों में से कोई थकने का नाम नहीं ले रहा था। चौथे दिन वज्रदत्त ने कहा, "अर्जुन! आज मैं तुम्हें मारकर अपने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लूंगा।" यह कहकर वज्रदत्त ने अपने हाथी को अर्जुन की की ओर हाँक दिया। इससे क्रुद्ध होकर अर्जुन ने हाथी पर एक तीक्ष्ण नाराच बाण छोड़ा जिससे घायल होकर वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। हाथी के गिरते ही वज्रदत्त भी भूमि पर गिर पड़ा। यह देख अर्जुन ने कहा, "राजन्! डरो मत। मैं तुम्हें

मारूँगा नहीं। जिस समय मैं हस्तिनापुर से निकला था तो महाराज युधिष्ठिर ने मुझे आदेश दिया था कि जहाँ तक सम्भव हो, किसी राजा का वध मत करना। इसलिए उस आज्ञा को शिरोधार्य कर मैं तुम्हारा वध नहीं करूँगा। जाओ, तुम सकुशल घर लौट जाओ। हस्तिनापुर में महाराज युधिष्ठिर का चैत्रमास की पूर्णिमा को अश्वमेध यज्ञ होगा। उसके लिए मैं तुम्हें सादर निमन्त्रित करता हूँ।" यह सुनकर पराजित हुआ राजा वज्रदत्त यज्ञ का निमन्त्रण स्वीकार कर अपने राजप्रासाद को लौट गया।

इसके पश्चात् अर्जुन का युद्ध सिन्धु देश के वीरों के साथ हुआ क्योंकि उनका घोड़ा सिन्धु देश में चला गया था और सिन्धु देश के वीर योद्धाओं ने उसे पकड़ने का प्रयत्न किया था। उन्होंने युद्धभूमि में विजय की अभिलाषा रखते हुए अर्जुन को चारों ओर से घेर लिया। दोनों ओर की सेनाओं में भयंकर युद्ध होने लगा। वर्षा की बौछारों की भाँति बाण छूटने लगे और दोनों ओर के सैनिक धराशायी होने लगे। अर्जुन ने अपने बाणों से अधिकांश सैनिक वीरों को आहत कर दिया। जब सैन्धव सेना में त्राहि-त्राहि मच गई तो धृतराष्ट्र की विधवा पुत्री (जयद्रथ की पत्नी) दुःशला अपने पुत्र सुरथ के वीर बालक के साथ रथ पर बैठ युद्धक्षेत्र में अर्जुन के पास आकर, बिलख-बिलख कर विलाप करने लगी। उसे देखकर अर्जुन ने अपना धनुष नीचे रख दिया और बहिन का स्वागत करते हुए कहा, "बहिन! तुम यहाँ क्यों आई हो? बोलो, मैं तुम्हारे लिये क्या करूँ?" दुःशला ने कहा, "भैया, यह तुम्हारे

भानजे सुरथ का पुत्र है जो तुम्हें सादर प्रणाम करता है। भैया ! तुम अपनी दुखिया बहिन की ओर देखकर इस बच्चे पर दया करो। यह तुमसे शान्त होने की प्रार्थना करता है। इसके भाई-बन्धु, पिता, पितामह सब युद्ध में मारे जा चुके हैं। इस बालक का पितामह (जयद्रथ) तुम्हारा अपराधी था जिसके लिए तुमने उसे उचित दण्ड दिया, परन्तु इस बालक का तो कोई दोष नहीं है।''

अर्जुन ने भी दुःखी होकर कहा, "बहिन, उस क्षात्र धर्म को धिक्कार है जिसके कारण मैंने अपने बन्धु-बान्धवों का वध किया। तुम चिन्ता न करो। तुम्हारे राज्य और परिवार की ओर कोई आँख उठाकर भी नहीं देखेगा।'' फिर बच्चे पर स्नेह का हाथ फेरकर तथा दुःशला को सान्त्वना देकर विदा किया।

छठा अध्याय

अर्जुन और बभ्रुवाहन का युद्ध, अर्जुन की मृत्यु, संजीवनी द्वारा अर्जुन का पुनः जीवित होना

वैशंपायनजी बोले--राजन् ! अश्वमेध का घोड़ा विचरण करता हुआ मणिपुर पहुँचा। जब मणिपुर-नरेश बभ्रुवाहन को ज्ञात हुआ कि मेरे पिता गाण्डीवधारी, अर्जुन पधारे हैं तो वह ब्राह्मणों को आगे कर बहुत सा धन साथ में ले उनके स्वागत के लिए पहुँचा। बभ्रुवाहन का इस प्रकार आना अर्जुन को रुचिकर नहीं लगा। वे क्रुद्ध होकर बोले, "पुत्र ! ऐसा प्रतीत होता है कि तू क्षत्रिय धर्म को भुला बैठा है। मैं तेरे साथ युद्ध करने आया हूँ और तू मुझे सामनीति से सन्तुष्ट करना चाहता है। यदि मैं खाली हाथ तेरे पास आता तो मेरा इस प्रकार

स्वागत करना तेरे लिए उचित हो सकता था।'' अर्जुन की पत्नी नागकन्या उलूपी भी वहाँ उपस्थित थी। उसने बभ्रुवाहन से कहा, ''तुम्हारे पिता कुरुक्षेत्र के वीर हैं। तुम अस्त्र शस्त्र सँभालो और इन्हें बता दो कि तुम किसी भी प्रकार अपने पिता से कम पराक्रमी नहीं हो। पूरी शक्ति से निःसंकोच युद्ध करो। ऐसा करने से ये तुमसे प्रसन्न होंगे।'' माता की आज्ञा पाकर कवच एवं सिरस्त्राण धारण कर हाथ में शस्त्र-अस्त्र ले रथ पर आरूढ़ हो उसने पाण्डव वीर अर्जुन के घोड़े को पकड़वा लिया। फिर उसने ललकार कर अर्जुन पर बाणों की वर्षा कर दी। अनेक तीक्ष्ण बाणों से उन्हें पीड़ित किया। अर्जुन पुत्र स्नेह के कारण बभ्रुवाहन पर तीक्ष्ण प्रहार नहीं कर रहे थे, किन्तु पुत्र को पिता की यह प्रवृत्ति रुचिकर प्रतीत नहीं हुई। उसने उन पर विषैले बाणों की बौछार कर दी। फिर बालोचित अविवेक के कारण एक अत्यन्त तीक्ष्ण बाण से उसने अर्जुन के वक्षस्थल पर आघात किया। उससे आहत होकर अर्जुन मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े। पिता को इस प्रकार धराशायी होते देख बभ्रुवाहन भी मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा।

जब चित्रांगदा ने अपने पति और पुत्र को संज्ञाशून्य होकर रणक्षेत्र में पड़े होने का समाचार पाया तो वह दौड़ी हुई रणभूमि में आई और विलाप करने लगी। फिर नागकन्या उलूपी को वहाँ खड़ा देख विलाप करती हुई बोली, ''बहिन! तुम तो आर्य धर्म को जानने वाली पतिव्रता नारी हो, तुम्हारे ही कारण आज मेरे और तुम्हारे स्वामी रणभूमि में मरे पड़े हैं। तुमने ही मेरे पुत्र बभ्रुवाहन को उन्हें मारने के लिए उत्ते-

जित किया था। यदि अब भी तुम्हारे मन में इनके प्रति दुर्भावना हो तो भी इन्हें क्षमा कर दो। मैं तुमसे इनके प्राणों की याचना करती हूँ। बहिन! जैसे भी हो, उन्हें जीवित कर दो। नागकुमारी! यहाँ मेरा पुत्र भी मरा पड़ा है, परन्तु मैं तुमसे उसके प्राणों की भिक्षा नहीं माँगती। तुम केवल मेरे पति को जीवित कर दो, जो मेरे ही नहीं, तुम्हारे भी पति हैं। यदि तुम उन्हें जीवित नहीं करोगी तो मैं अभी यहीं तुम्हारे सामने ही अपने प्राणों की बलि चढ़ा दूँगी।" नागकन्या से ऐसा कहकर चित्रवाहनकुमारी चित्राङ्गदा आमरण अनशन का संकल्प करके वहीं बैठ गई।

थोड़ी देर में जब बभ्रुवाहन की मूर्च्छा भंग हुई तो अपनी माता को वहाँ देख वह विलाप करता हुआ कहने लगा, "हा माता! आज मैंने अपने हाथों से तुम्हारा सौभाग्य छीन लिया। मैं नराधम पिता का हत्यारा हूँ। यह मैंने कैसा घोर अनर्थ कर दिया है। नागराजकुमारी माता उलूपी तथा समस्त देवतागण! मेरी यह प्रतिज्ञा सुन लें, यदि मेरे पिता अर्जुन आज पुनः जीवित नहीं हो जाते तो मैं इसी रणभूमि में भूखा-प्यासा रह कर अपने प्राण त्याग दूंगा। मेरे पिता महान वीर, धर्मात्मा और तेजस्वी थे। इनका वध करके मैंने अक्षम्य अपराध किया है!" ऐसा कहकर बभ्रुवाहन आमरण अनशन का व्रत लेकर वहीं पृथ्वी पर मौन होकर बैठ गया। तब उलूपी ने संजीवनी मणि का स्मरण किया। उस मणि को हाथ में लेकर वह नाग कुमारी बोली, "पुत्र बभ्रुवाहन! उठो, शोक मत करो, तुम्हारे पिता न तो तुमसे परास्त हुए हैं और न वे मरे हैं। वे अजेय

हैं। उन्हें तीनों लोकों में कोई परास्त नहीं कर सकता। मैंने आज तुम्हारे यशस्वी पिता महावीर धनञ्जय पर केवल मोहिनी माया का प्रदर्शन किया है। ये तुम्हारे शौर्य और पराक्रम को देखना चाहते थे। इसलिए मैंने तुम्हें उनसे युद्ध करने के लिए प्रेरित किया था। तुम यह सोचकर तनिक भी दुःखी मत होओ कि वे तुम्हारे द्वारा मारे गये हैं या वे तुमसे पराजित हुए हैं। इसलिए तुम तनिक भी पाप के भागी नहीं हो। मैं अपने साथ संजीवनी मणि ले आई हूँ। इसका प्रयोग करके तुम अपने पिता को जीवित कर सकोगे। लो, इसे इनके वक्षस्थल पर रख दो। इससे इनके अन्दर पुनः प्राणों का संचार होने लगेगा।" यह सुनकर बभ्रुवाहन ने उलूपी से वह मणि लेकर अर्जुन के वक्ष पर रख दी। उस चमत्कारपूर्ण मणि के रखते ही अर्जुन तुरन्त इस प्रकार उठ खड़े हुए जिस प्रकार कोई मनुष्य बहुत देर तक गहरी निद्रा में मग्न रह कर उठा हो। अपने पिता को इस प्रकार जीवित होता देख बभ्रुवाहन ने उनकी चरण वन्दना की। अर्जुन ने प्रसन्न होकर अपने पुत्र को हृदय से लगा लिया। फिर वे बभ्रुवाहन से बोले, "हे मणिपुर नरेश! आगामी चैत्र मास की पूर्णिमा को महाराज युधिष्ठिर हस्तिनापुर में अश्वमेध यज्ञ का शुभारम्भ कर रहे हैं। उस अवसर पर आप सादर आमन्त्रित हैं। अपनी दोनों माताओं तथा मन्त्रियों के साथ पधारने की कृपा करें।" यह सुनकर बभ्रुवाहन ने कहा, "मैं अवश्य उपस्थित होऊँगा और ब्राह्मणों को भोजन परोसने का कार्य मैं स्वयं करूँगा।" इसके पश्चात् यह घोड़ा सर्वत्र घूमता हुआ पुनः हस्तिनापुर की ओर चल पड़ा।

सातवाँ अध्याय

अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न होने पर राजाओं की विदाई

वैशंपायनजी बोले—हे राजन् ! जब युधिष्ठिर को अश्व सहित अर्जुन के हस्तिनापुर की ओर लौटने का समाचार मिला तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने समस्त भाइयों को बुलाकर कहा, "भाइयो ! घोड़े सहित अर्जुन हस्तिनापुर के समीप पहुँच गये हैं। आज माघ शुक्ला द्वादशी है। यज्ञ प्रारम्भ होने में अब केवल दो मास शेष रह गये हैं। अब विद्वान् ब्राह्मणों को भेजकर यज्ञ के लिए उपयुक्त स्थान का चुनाव कराना चाहिए।" इस आज्ञा का शीघ्र ही पालन किया गया। शाल वृक्षों से भरे हुए एक रमणीय स्थान को यज्ञ के लिए पसन्द किया गया। फिर वहाँ सुन्दर यज्ञभूमि का निर्माण करके उसके चारों ओर सुरम्य प्रासाद, वाटिकाएँ तथा प्रशस्त मार्ग बनाये गये। यज्ञ मण्डप के सभी स्थानों पर रत्न-जटित सोने के स्तम्भ बनाये गये। राजाओं, ब्राह्मणों, स्त्रियों आदि के लिए पृथक-पृथक निवास स्थानों की व्यवस्था की गई। फिर देश-देश के राजाओं को निमन्त्रण देने के लिए दूत भेजे गये। उचित समय पर देश देश के नृपति नाना प्रकार के उपहार लेकर यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए पधारे। पाण्डवों की ओर से उनके स्वागत-सत्कार की यथोचित व्यवस्था की गई थी। नरेशों के अतिरिक्त गण्य-मान्य विद्वान्, मनीषी तथा अनेक ऋषि-मुनि भी यज्ञ में भाग लेने के लिए आमन्त्रित होकर पधारे थे।

उन्हीं दिनों श्रीकृष्ण भी बलरामजी, सात्यकि, प्रद्युम्न, गद, निशठ, साम्ब, कृतवर्मा आदि के साथ हस्तिनापुर पधारे।

भीमसेन ने उन सबका यथोचित राजकीय सत्कार किया। जब युधिष्ठिर श्रीकृष्ण के साथ विचार-विमर्श कर रहे थे, उसी समय अर्जुन का भेजा हुआ दूत वहाँ पहुँचा जिसने अर्जुन के नगर द्वार के निकट पहुँचने का सन्देश दिया। दूसरे दिन तीन पाण्डवों, आगत राजाओं, तथा नगर के विख्यात नागरिकों ने बड़े हर्षके साथ उनका हार्दिक स्वागत किया। परस्पर एक दूसरे से गले मिलते हुए महावीर अर्जुन तथा उनके साथ आये सैनिक विजय गर्व से मुस्कराते हुए यज्ञ मण्डप में पहुँचे। मण्डप द्वार पर महाराज युधिष्ठिर ने राजा धृतराष्ट्र, श्रीकृष्ण तथा ब्राह्मणों को आगे करके परम विजेता अर्जुन का स्वागत किया। अर्जुन ने धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर की चरण-वन्दना करके अपने सखा श्रीकृष्ण को हृदय से लगा लिया।

उधर मणिपुर से बभ्रुवाहन, चित्राङ्गदा, उलूपी आदि भी हस्तिनापुर में आ पहुँचे। उन लोगों ने परस्पर एक-दूसरे से मिलकर परिचय प्राप्त किया। उसके पश्चात् बभ्रुवाहन ने कुन्ती, गान्धारी, सुभद्रा, द्रौपदी आदि के महलों में जाकर उन्हें प्रणाम किया। इसके तीसरे दिन व्यासजी भी पधार गये। उन्होंने उसी दिन युधिष्ठिर को यज्ञ की दीक्षा देकर यज्ञ आरम्भ करा दिया। उस यज्ञ में वेदों के ज्ञाता एवं महाविद्वान् याजकों ने सम्पूर्ण कर्म कराये। इस बात का वेदज्ञ विद्वानों द्वारा विशेष ध्यान रखा गया कि यज्ञ के अनुष्ठान में किसी भी प्रकार की कोई त्रुटि न रह जाय। पाण्डवों की ओर से दान, दक्षिणा मुक्त हस्त से दी गई थी। दीन से दीन, निर्धन से निर्धन और अति दरिद्र व्यक्ति भी उस समय दीन, निर्धन एवं दरिद्र नहीं रह

गया था। सबको मनचाहा धन प्राप्त हो रहा था। किसी के भूखे-प्यासे रह जाने की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। सभी कलाकारों, शिल्पियों तथा कर्मचारियों को प्रचुर धन देकर पुरुस्कृत किया गया था। इस यज्ञ में भाग लेने वाले ब्राह्मणों में कोई भी ऐसा नहीं था जो वेदों के छ:ओं अंगों का ज्ञाता, अखण्ड ब्रह्मचारी तथा शास्त्रार्थ प्रवीण न हो।

राजा युधिष्ठिर के इस महान् अश्वमेध यज्ञ को सफलतापूर्वक सम्पन्न कराके महर्षि व्यास ने उन्हें अभ्युदय सूचक आशीर्वाद दिया। यज्ञ की समाप्ति पर धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने सब ब्राह्मणों को विधिपूर्वक एक सहस्र करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ दक्षिणा में दी। व्यासजी को तो उन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वी ही दान में दे दी। व्यासजी ने उस भूमिदान को ग्रहण करके युधिष्ठिर से कहा, "राजन्! तुम्हारे द्वारा दान की गई पृथ्वी को मैं पुन: तुम्हारे ही अधिकार में छोड़ता हूँ। तुम मुझे इसका मूल्य दे दो। भूमि को लेकर मैं क्या करूँगा?" यह सुनकर युधिष्ठिर ब्राह्मणों से बोले, "विप्रगण! अश्वमेध महायज्ञ में पृथ्वी को दक्षिणा में देने का विधान है। मैंने अर्जुन द्वारा जीती हुई यह सम्पूर्ण पृथ्वी ऋत्विजों को दान में दे दी है। अब मैं वन चला जाऊँगा। आप लोग इस पृथ्वी के भाग करके आपस में बाँट लें। मैं ब्राह्मणों का धन नहीं लेना चाहता। मेरे भाइयों का भी ऐसा ही विचार है।" शेष पाण्डव भ्राताओं ने भी इसका समर्थन किया।

व्यासजी बोले, "राजन्! तुमने यह पृथ्वी दान कर दी। इसको अपने पास रखकर इसके बदले में तुम ब्राह्मणों को स्वर्ण

दे दो।'' व्यासजी के प्रस्ताव का श्रीकृष्ण ने भी समर्थन किया। तब युधिष्ठिर ने प्रत्येक ब्राह्मण को तीन-तीन करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ दे दीं। महर्षि व्यास ने अपनी स्वर्ण राशि ब्राह्मणों को दे दी जो उन्होंने परस्पर बाँट ली। यज्ञशाला के विभिन्न निर्माणों में प्रयुक्त सोना भी ब्राह्मणों में बाँट दिया गया। शेष धन अन्य वर्णों के लोग उठा ले गये। व्यासजी के पास जो स्वर्ण राशि बची थी, वह उन्होंने कुन्ती को समर्पित कर दी। कुन्ती ने अपने श्वसुर से प्राप्त इस धनराशि का उपयोग नाना प्रकार के पुण्य-कार्यों में किया।

इसके पश्चात् महाराज युधिष्ठिर ने यज्ञ में पधारे हुए राजाओं को रत्न, स्वर्ण, गज, अश्व, दास, दासियाँ आदि भेंट में देकर सम्मानपूर्वक विदा किया। दुःशला के पौत्र को उन्होंने सिन्धु देश का राज्य सौंप दिया। इसके पश्चात् उन्होंने महात्मा श्रीकृष्ण, परम तेजस्वी बलरामजी तथा प्रद्युम्न आदि यदुवंशी वीरों को नाना प्रकार के अमूल्य उपहार भेंट करके सम्मान-पूर्वक विदा किया। अन्य आगत व्यक्तियों, हस्तिनापुर के सभी नागरिकों को मनोवांछित वस्तुएँ देकर तथा उनकी सभी अभिलाषाएँ पूर्ण करके पूर्णतया सन्तुष्ट किया गया। उस महान यज्ञ की चर्चा देश-देशान्तरों में वर्षों तक होती रही और जिन लोगों ने इस यज्ञ में भाग लिया था अथवा स्वयं अपने नेत्रों से देखा था, वे इसका वर्णन अपने बान्धवों से करते नहीं अघाते थे। इस यज्ञ में मानो रत्नों, स्वर्ण-मुद्राओं, वस्त्रालंकारों की मूसलाधार वर्षा हुई थी जो अभूतपूर्व थी।

आठवाँ अध्याय

यज्ञ में आए नेवले का वृत्तान्त

जनमेजय ने पूछा—मुनिवर! इस यज्ञ में यदि कोई असाधारण घटना घटी हो तो मुझे अवश्य बताइये। यह सुन कर वैशंपायनजी बोले—राजन्! इस यज्ञ की समाप्ति पर एक असाधारण एवं आश्चर्यजनक घटना अवश्य हुई थी। वह वास्तव में तुम्हारे सुनने योग्य है। यज्ञ की समाप्ति पर जब समस्त ब्राह्मण और याचक राजा युधिष्ठिर द्वारा दिये गये महान दान और अश्वमेध यज्ञ की सफलता की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे तब वहाँ एक नेवला आया। उसकी आँखें नीली थीं और उसके शरीर का एक ओर का भाग सोने का था। वहाँ आकर पहले तो उसने बड़े उच्च स्वर से गर्जना की, फिर मनुष्य की वाणी में बोला, "राजाओ और ब्राह्मणो! तुम जिस यज्ञ की प्रशंसा करते नहीं अघाते, वह यज्ञ कुरुक्षेत्र निवासी उस उदार ब्राह्मण के एक सेर सत्तू दान के बराबर भी नहीं है जो भूमि पर पड़े हुए दानों को बीनकर उनसे अपना जीवन निर्वाह करता था।" नेवले की यह बात सुन समस्त उपस्थित जनों को महान आश्चर्य हुआ और वे उसके पास जाकर बोले, "हे नेवले! इस श्रेष्ठ जनसमुदाय में तुम कहाँ से आ गए? तुम कौन हो जो इस महान यज्ञ की निन्दा करते हो और तुम्हारा शास्त्रों का ज्ञान हो कितना है जो इस श्रेष्ठ यज्ञ में दिये गए भारी दान को सत्तू दान की तुलना में हेय बताते हो? इस यज्ञ का सम्पूर्ण अनुष्ठान और विधान पूर्णतया शास्त्रों के अनुकूल किया गया है। शुद्ध मन्त्रों का

उच्चारण करके आहुति दी गई हैं। पूजनीय व्यक्तियों की विधिपूर्वक पूजा की गई है। ऐसी दशा में तुम इस पर आक्षेप कैसे कर सकते हो?"

ब्राह्मणों की बात सुनकर नेवला बोला, "हे विप्रगण! न तो मैंने कोई मिथ्या बात कही है और न मैंने किसी दम्भ का परिचय दिया है। मैंने उस उदार विप्र के सत्तूदान से यज्ञ के दान की तुलना करते हुए जो कुछ कहा है, वह अक्षरशः सत्य है। पहले मेरा कथन ध्यानपूर्वक सुनकर उस पर मनन कीजिये और फिर स्वयं निर्णय कीजिए। जिस ब्राह्मण की मैंने अभी आपसे चर्चा की है, उस ब्राह्मण ने अपने एक सेर सत्तू के प्रभाव से अपनी पत्नी, पुत्र तथा पुत्रवधू के साथ स्वर्गलोक पर अधिकार कर लिया और मैं आपको यह भी बताता हूँ कि आप जो मेरा आधा शरीर स्वर्णमय देखते हैं, वह भी उसी के कारण हुआ है। ब्राह्मणो! कुरुक्षेत्र निवासी उस ब्राह्मण के द्वारा दिये गये न्याय से उपार्जित थोड़े से अन्न के दान से जो उत्तम फल उसे मिला, वह मैं आपको बताता हूँ। कुछ समय पूर्व की बात है। कुरुक्षेत्र में बहुत से महात्माओं के बीच कुछ ब्राह्मण रहते थे जो खेत काटकर फसल उठ जाने के पश्चात् भूमि पर पड़े रह जाने वाले दानों को बीनकर उनसे अपना जीवनयापन करते थे। ये दाने उनका ही नहीं, उनके कुटुम्बीजनों के जीवन का भी आधार थे। वह ब्राह्मण शुद्ध आचार-विचार वाला जितेन्द्रिय था। ये दाने इतनी कम मात्रा में मिलते थे कि वह ब्राह्मण अपने पुत्र तथा पुत्रवधू के साथ प्रत्येक तीन दिन के पश्चात् एक समय भोजन करता था। यदि उस दिन भोजन

न मिलता तो फिर आगामी तीन दिन कुछ न खाकर चौथे दिन एक समय भोजन करता था। एक बार उस प्रदेश में बड़ा भयंकर अकाल पड़ा। दुर्भिक्ष के कारण खेतों की फसल भी मारी गई थी। ब्राह्मण के पास अन्न का संग्रह तो था नहीं, अतएव उस परिवार के भूखों मरने की नौबत आ गई। बार बार तीसरा दिन आता था, परन्तु उन्हें अन्न न मिलने के कारण भूखों ही रह जाना पड़ता था। एक दिन ज्येष्ठ मास की शुक्ल पक्ष की दुपहरी में वह ब्राह्मण परिवार अन्न के दानों की खोज में निकला। शरीर भूख, प्यास, गर्मी और लू से व्याकुल हो रहा था। बहुत खोज करने पर भी उन्हें कहीं अन्न का एक दाना भी नहीं मिला।

"इस प्रकार जब तीन-तीन दिन की कई अवधियाँ बिना भोजन के व्यतीत हो गईं तब एक दिन उस ब्राह्मण को एक सेर जौ मिला। उसका उसने सत्तू तैयार किया। फिर भगवान की पूजा अर्चना करके उसने अग्नि में विधिपूर्वक आहुति दी। इस धार्मिक प्रक्रिया से निवृत्त होकर ब्राह्मण ने उसके चार भाग किये और परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने-अपने भाग का सत्तू खाने के लिए बैठा। इसी समय द्वार पर एक ब्राह्मण आ पहुँचा। उन्होंने बड़े सम्मान के साथ उस अतिथि का सत्कार करके उसे अर्घ्य, पाद्य एवं आसन दिया। फिर उसके समक्ष उसने अपने भाग का सत्तू भोजन के लिये प्रस्तुत कर दिया। जब उसके भाग का एक पाव अन्न खाकर वह अतिथि तृप्त नहीं हुआ तो ब्राह्मणी ने अपने भाग का सत्तू उसे दे दिया। जब उससे भी अतिथि की तृप्ति नहीं हुई तो पहले पुत्र ने फिर

पुत्रवधू ने भी अपने-अपने भाग का सत्तू उसे बड़ी प्रसन्नता और आग्रहपूर्वक दे दिया। किसी ने भी अपनी दीर्घकालीन क्षुधा, दुर्बल अवस्था तथा निजी अनिवार्य आवश्यकता की चिंता नहीं की। उस एक सेर सत्तू को खाकर अतिथि तृप्त और प्रसन्न हुआ। वास्तव में धर्म स्वयं मानव शरीर धारण करके उस ब्राह्मण की परीक्षा लेने के लिए पधारे थे। धर्म ने प्रसन्न होकर कहा--हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! तुमने न्याय से उपार्जन करके जो शुद्ध अन्न आज मुझे खिलाया है, उसके कारण मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम्हारी धर्म-निष्ठा अद्‌भुत है, क्योंकि तुमने अत्यन्त कठिन परिस्थिति में त्यागशीलता का परिचय दिया है। भूख मनुष्य की बुद्धि को नष्ट कर देती है और धार्मिक विचारों को मिटा देती है। भूख से पीड़ित मनुष्य का ज्ञान और धैर्य दोनों लुप्त हो जाते हैं। भूख पर विजय प्राप्त कर लेने वाला व्यक्ति स्वर्ग पर भी विजय प्राप्त कर लेता है। वास्तव में उसके दान के सम्मुख स्वर्ग भी नगण्य है।

"उस उदार ब्राह्मण की प्रशंसा करते हुए धर्मदेव कहने लगे--हे विप्रश्रेष्ठ! तुमने पत्नी के प्रेम और पुत्र के स्नेह की भी चिन्ता न करके धर्म को ही सर्वश्रेष्ठ माना है। यह शास्त्र का सिद्धान्त है कि जब मनुष्य में दान के विषय में रुचि जागती है तब उसके धर्म का ह्रास नहीं होता। तुमने उसी धर्म को वरीयता देते हुए कभी भूख-प्यास की चिन्ता नहीं की। मनुष्य के लिये एक तो धर्म और न्याय के साथ धन कमाना ही कठिन होता है। इस प्रकार अर्जित धन को सत्पात्र की सेवा में व्यय करना अत्यन्त श्रेष्ठ कार्य है। एक तो किसी को दान देना

वैसे ही उत्तम कार्य है, फिर उचित समय पर उचित व्यक्ति को श्रद्धापूर्वक दान देना उससे भी अधिक उत्तम कार्य है।

"स्वर्ग का द्वार अत्यन्त सूक्ष्म है जिसमें सर्वसाधारण सरलता से प्रवेश नहीं कर सकता। स्वर्गद्वार की साँकल लोभ ने बन्द कर रखी है। राग ने उसद्वार को छिपा रखा है। इसलिए उसे खोजकर उसमें प्रवेश करना अत्यन्त कठिन है। जो लोग क्रोध और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर चुके हैं, ऐसे पूर्ण दानी व्यक्ति ही उस द्वार में प्रवेश कर सकते हैं। जिस व्यक्ति में सहस्र रुपये दान देने की क्षमता है, यदि वह श्रद्धापूर्वक सौ रुपये भी दान दे देता है, सौ देने की सामर्थ्य वाला दस रुपये और कुछ भी न रखने वाला व्यक्ति यदि श्रद्धापूर्वक जल का दान दे देता है तो इन सबका फल बराबर होता है। जो मूर्ख मनुष्य अन्यायपूर्वक धन एकत्रित करके धर्म में सन्देह रखते हुए यज्ञ करता है, उसे यज्ञ का फल प्राप्त नहीं होता। अन्यायपूर्वक प्राप्त धन का महान फल की प्राप्ति के लिए दान करने से धर्म को उतनी प्रसन्नता नहीं होती जितनी न्यायपूर्वक कमाये हुए थोड़े से अन्न का श्रद्धापूर्वक दान करने से होती है। मनुष्य के लिए धन ही पुण्य का देने वाला नहीं है। न्यायपूर्वक अर्जित किए हुए अन्न का दान देने से जैसा उत्तम फल मिलता है वैसा उत्तम फल नाना प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान करने से भी नहीं मिलता। शास्त्रों के अनुसार दान देना, प्राणियों पर दया करना, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना, सत्यभाषण, करुणा, धैर्य, क्षमा सनातन धर्म के मूल आधार स्तम्भ हैं।

"मनुष्य क्रोध से अपने दान के फल को नष्ट कर देता है। न्यायोचित रूप से कमाये हुए धन से जीवन निर्वाह करते हुए दान देने वाला व्यक्ति स्वर्ग पाने का अधिकारी होता है। तुमने केवल सेर भर सत्तू का दान करके स्वर्ग का सुख प्राप्त कर लिया है। अतः तुम सपरिवार ब्रह्मलोक में जाकर निवास करो। ऐसा कहकर धर्मदेव वहाँ से अन्तर्ध्यान हो गये। उनके जाने के पश्चात् सत्तू की गन्ध सूँघता हुआ मैं उस स्थान पर पहुँचा। अतिथि द्वारा कुल्ला किए हुए जल का स्पर्श होने से और उस उदार ब्राह्मण की तपस्या के प्रभाव से मेरा यह आधा शरीर स्वर्णमय हो गया। यह स्वयं आप अपने नेत्रों से देख रहे हैं। जब मेरा आधा शरीर सोने का हो गया तो मैं सोचने लगा कि मेरा शेष आधा शरीर भी कैसे स्वर्णमय हो। इसी उद्देश्य से मैं अनेक तपोवनों, यज्ञ स्थानों और दानवीरों के निवास-स्थानों में भटका हूँ, परन्तु मेरी यह अभिलाषा कहीं पूरी नहीं हुई। महाराज युधिष्ठिर के महान दान-दक्षिणा वाले इस अश्वमेध यज्ञ की चर्चा सुनकर मैं अपनी मनोकामना की पूर्ति के आशय से यहाँ आया, परन्तु यहाँ भी वह पूरी न हो सकी। इसी से मैंने कहा था कि यह यज्ञ उस ब्राह्मण द्वारा दान दिये गए सेर भर सत्तू के बराबर भी नहीं है। उस सेर भर सत्तू के दान ने मेरा आधा शरीर स्वर्ण का बना दिया, परन्तु यह महान यज्ञ मेरे शरीर का अणु भर अंश भी स्वर्णमय नहीं बना सका।"

वैशंपायनजी बोले—ऐसा कहकर वह नेवला पुनः किसी बिल में घुस गया और आगत ब्राह्मण तथा अतिथि अपने-अपने स्थानों को चले गए। इस अद्भुत घटना को सुनकर तुम्हें

आश्चर्य नहीं होना चाहिए क्योंकि ऐसे करोड़ों ऋषि-मुनि हुए हैं जो केवल अपनी तपस्या के बल पर हो दिव्य लोकों को पहुँच गए हैं। किसो के प्रति वैर-भाव न रखना, आत्म-संतोष, सदाचार, तप, मन तथा इन्द्रियों का निग्रह, सत्यभाषण, श्रद्धापूर्वक दान—इनमें से प्रत्येक गुण बड़े बड़े यज्ञों की समानता कर सकता है।

॥ इति आश्वमेधिक पर्व सम्पूर्ण ॥

॥ ओ३म् ॥

महाभारत भाषा

१५. आश्रमवासिक पर्व



धृतराष्ट्र, गांधारी एवं कुन्ती का वन गमन



वन में अग्निकाण्ड से धृतराष्ट्र आदि का देहान्त

पहला अध्याय

धृतराष्ट्र एवं गांधारी की वन गमन की तैयारी

जनमेजय ने पूछा—हे ब्रह्मन् ! कृपया यह बतलाइए कि महात्मा पाण्डवों ने पुत्रविहीन महाराज धृतराष्ट्र तथा गाँधारी के साथ कैसा व्यवहार किया और पाण्डवों ने कितने समय तक राज्य किया। वैशंपायनजी बोले—हे राजन् ! महात्मा पाण्डवों ने महाराज धृतराष्ट्र के सम्मान में किसी प्रकार की

कमी नहीं आने दी। वे राज्य का जो भी कार्य करते हैं, उनके आदेश एवं परामर्श के अनुसार करते थे। पाण्डु के पाँचों पुत्रों के अतिरिक्त महात्मा विदुर, सञ्जय तथा युयुत्सु सदैव धृतराष्ट्र की सेवा के लिए तत्पर रहते थे। पाण्डवों को इस प्रकार राज्य करते हुए पन्द्रह वर्ष बीत गए। धृतराष्ट्र को उनके व्यवहार के सम्बन्ध में कभी कोई शिकायत नहीं हुई। कुन्ती देवी भी श्रद्धापूर्वक गान्धारी की सेवा में तत्पर रहती थी। द्रौपदी, सुभद्रा तथा पाण्डवों की अन्य पत्नियाँ कुन्ती और गान्धारी दोनों की समान भाव से श्रद्धापूर्वक सेवा करती थीं। समस्त परिवार का यह प्रयत्न रहता था कि उनके किसी व्यवहार से धृतराष्ट्र और गान्धारी को यह अनुभव न होने पाए कि उनके पुत्र मारे जा चुके हैं और अब वे इस संसार में निःसहाय हैं।

इतना सब कुछ होते हुए भी धृतराष्ट्र और भीमसेन के मन एक दूसरे के प्रति साफ नहीं थे। धृतराष्ट्र को जब अपने पुत्रों का स्मरण हो आता था तो वे सोचने लगते थे कि उन सबका वध भीमसेन ने किया है। उधर भीमसेन यह सोचने लगते थे कि राजसभा में खेल गए जुए के समय जो कुछ अनर्थ हुआ, वह धृतराष्ट्र की खोटी बुद्धि का परिणाम था। अतएव वे दोनों अपने मन में एक-दूसरे के प्रति दुर्भावना रखते थे और क्षमा करने को तैयार न थे। भीमसेन धृतराष्ट्र की सेवा केवल युधिष्ठिर की आज्ञा पालन करने के लिए करते थे। फिर भी वे कभी-कभी ऐसे कार्य कर बैठते थे जो धृतराष्ट्र को प्रिय न थे अथवा स्वयं द्वारा नियुक्त कृतज्ञ सेवकों के द्वारा समय-असमय पर धृतराष्ट्र की आज्ञा की अवहेलना करा देते

थे। एक दिन दुर्योधन और दुःशासन के दुर्व्यवहार को स्मरण कर भीमसेन ने धृतराष्ट्र को सुनाते हुए अपने मित्रों से कहा, मेरी इन भुजाओं ने उस अन्धे राजा के समस्त अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित पुत्रों को चींटी की भाँति मसलकर रख दिया था। इस बात को और इसी प्रकार की अन्य बातों को सुनकर धृत-राष्ट्र को भारी दुःख हुआ करता था। भीमसेन की बातों की भनक गान्धारी के कानों में भी पड़ चुकी थी। भीमसेन द्वारा कही जाने वाली बातों की जानकारी युधिष्ठिर, अर्जुन, कुन्ती, द्रौपदी आदि को नहीं थी।

एक दिन धृतराष्ट्र ने अपने नेत्रों में आँसू भरकर अपने मित्रों से कहा, "आप लोग यह तो जानते ही हैं कि कुरुवंश का नाश किस प्रकार हुआ है। मैं जानता हूँ कि इसमें मेरा अपराध कम नहीं है। दुर्योधन दुष्ट बुद्धि का अविवेकी, अन्यायी एवं महत्वाकांक्षी था। यह जानते हुए भी मैंने उसे राजसिंहासन सौंप दिया और पाण्डु पुत्र को उनका न्यायोचित राज्य नहीं सौंपा। मेरी ये सभी भूलें, अब मेरे हृदय में कसक रही हैं। आज पन्द्रह वर्ष बाद मुझे अपने कृत्यों पर पश्चाताप हो रहा है। इसके प्रायश्चितस्वरूप मैं कभी कभी चौथे दिन और कभी आठवें दिन केवल एक बार अल्पाहार करता हूँ। यह बात मैंने गान्धारी के अतिरिक्त शेष सबसे छिपा रखी है। हम दोनों अब नियम पालन के बहाने मृगचर्म पहन, कुशासन पर बैठकर मन्त्र जपते हुए भूमि पर शयन करते हैं।" फिर उन्होंने युधिष्ठिर से कहा, "वत्स ! तुम्हारी सेवा सुश्रूषा के कारण हम लोगों ने पन्द्रह वर्ष बड़े सुखपूर्वक व्यतीत किये हैं। अतएव

अब तुम मुझे और गान्धारी को तपस्या करने के लिए वन में जाने की अनुमति दो। अब हम दोनों वन में वल्कल धारण करके तपस्या करेंगे और तुम लोगों को आशीर्वाद देंगे। हमारे कुल के सभी राजाओं ने अपने अन्तिम दिनों में इसी मार्ग का अनुसरण किया है। तुम भी उस तपस्या के फल के भागी बनोगे क्योंकि तुम राजा हो और राजा अपने राज्य में होने वाले सभी अच्छे-बुरे कर्मों के फलों का भागी होता है।"

युधिष्ठिर ने दुःखी होकर कहा, "महाराज ! आप इतने दिन से यहाँ यह दुःख भोग रहे हैं और मुझे इसका आभास भी नहीं मिला। धिक्कार है मुझे और मेरे जीवन पर ! मैं कितना प्रमादी और असावधान हूँ ! आप इतने दुर्बल हो गये हैं, इतना बड़ा उपवास रख रहे हैं, भूमि पर शयन कर रहे हैं, मुझे इसका किंचित् भी ज्ञान न हो सका। मैं कितना बड़ा पापी हूँ ! आप ही हमारे पूज्य और माता-पिता हैं। आपसे पृथक होकर मैं नहीं रह सकता। युयुत्सु आपके अपने पुत्र हैं। आप उन्हें यह राजसिंहासन सौंप दीजिए अथवा आप जिसे उचित समझें उसे राजसिंहासन पर बिठा दीजिए या आप स्वयं राज-काज सँभालें। अब मैं वन में जाकर अपने इस कृत्य के लिए प्रायश्चित करूँगा। दुर्योधन ने जो कुछ किया, उसके लिए हमारे मन में कोई रोष नहीं है। भवितष्यता ही ऐसी थी। यदि आप मुझे छोड़कर चले जायेंगे तो मैं आपके पीछे पीछे वन में आपके पास पहुँच जाऊँगा।"

धृतराष्ट्र बोले, "युधिष्ठिर ! अब मेरा मन तपस्या करने को कर रहा है। जीवन के अन्तिम चरण में तपस्या के लिए वन

जाना हमारे कुल की रीति रही है। तुमने बहुत समय तक मेरी सेवा कर ली। अब मुझे वन जाने दो। यही मेरा तुम से अनुरोध है।" जब धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर में इस प्रकार वार्तालाप चल रहा था तभी व्यासजी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने भी युधिष्ठिर को यही परामर्श दिया कि वे धृतराष्ट्र को वन जाने की अनुमति दे दें। उन्होंने कहा, "राजर्षियों का यही धर्म है कि या तो वे युद्ध में लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त करें अथवा वन में योगाभ्यास करते हुए समाधि ग्रहण करें।" इस प्रकार उन्होंने युधिष्ठिर को समझा बुझाकर धृतराष्ट्र को वन जाने की अनुमति दिला दी।

दूसरा अध्याय

धृतराष्ट्र द्वारा युधिष्ठिर को राजनीति का उपदेश

युधिष्ठिर से वन जाने की अनुमति पाकर धृतराष्ट्र अपने महलों में गये। जब सब लोग भोजन से निवृत्त हो गये तो युधिष्ठिर पुनः धृतराष्ट्र की सेवा में उपस्थित हुए। अवसर पाकर धृतराष्ट्र कहने लगे, "हे कुरुनन्दन! तुम स्वयं धर्मज्ञ और नीतिवान हो। फिर भी मैं तुम्हें अपने अनुभव और ज्ञान के आधार पर कुछ महत्वपूर्ण बातें बताना चाहता हूँ। तुम अपने राज्य का सदा धर्मपूर्वक संचालन करना क्योंकि राज्य की रक्षा केवल धर्म से ही हो सकती है। सदैव विद्वानों की संगति करना और उनके विचारों को समझ-बूझकर उनके अनुसार आचरण करना। समय समय पर अपने कर्त्तव्यों के विषय में उनसे परामर्श करते रहना। उनका सम्मान करने में कभी चूक मत करना क्योंकि सम्मानित होने पर वे सदा तुम्हारे हित की

बात करेंगे। दूसरी बात यह कि तुम अपनी इन्द्रियों को सदा अपने वश में रखना। अपने मंत्रियों को नियुक्त करते समय इस बात का ध्यान रखना कि वे सब प्रकार से शुद्ध, संयमी, पवित्र, पुण्य कर्म करने वाले, विवेकशील और बुद्धिमान हों। उनके गुणों की सब प्रकार से परीक्षा करने के पश्चात् ही उन्हें नियुक्त करना चाहिए। राज्य की रक्षा के लिए जासूसों का भी विशेष महत्व है। इसलिए तुम ऐसे व्यक्तियों को गुप्तचर के रूप में नियुक्त करना जो अपने ही राज्य के निवासी हों, सब प्रकार से चतुर हों, जो शत्रुओं का भेद प्राप्त करने में कुशल हों और जिन्हें कोई पहचानता न हो। ऐसे व्यक्तियों को पूरी तरह से जाँच-परखकर ही नियुक्त करना चाहिए। नगर की रक्षा के लिए चारों ओर की दीवारें और मुख्य द्वार बहुत मजबूत हों। बीच में सब ओर से ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ हों। नगर के सभी द्वार बहुत बड़े हों और उनकी रक्षा के लिए सशस्त्र चौकियाँ और मारक तोपें स्थापित करनी चाहिएँ। स्वयं के खान-पान और रहन-सहन की इस प्रकार व्यवस्था करनी चाहिए कि कोई तुम्हें किसी प्रकार की क्षति न पहुँचा सके। इसी प्रकार तुम्हें अपने रनिवास की रक्षा करनी चाहिए।

"अपने मंत्री और परामर्शदाता ऐसे पुरुषों को बनाना जो विद्वान्, कुलीन, धर्मात्मा और निष्ठावान हों। उनसे मंत्रणा करने के लिए ऐसा स्थान चुनना चाहिए तो पूर्णतया सुरक्षित, निरापद और गुप्त हो क्योंकि किसी भी महत्वपूर्ण गुप्त मंत्रणा के प्रगट हो जाने पर राजा और राज्य को कभी-कभी ऐसी भयंकर हानि उठानी पड़ती है जिसकी पूर्ति

होना प्रायः असंभव हो जाता है। न्यायाधीश ऐसे लोगों को नियुक्त करना चाहिए जो विश्वस्त, संतोषी और जन-हितैषी हों न्याय को सर्वोपरि स्थान देते हों और विधान के अनुकूल भली-भाँति सोच समझकर केवल अपराधी ही को दण्ड दें। रिश्वत खोर, चरित्र-हीन, निर्दयी, लोभी, कटुवादी, वर्णसंकर आदि को कभी न्यायाधीश नहीं बनाना चाहिए। सैनिकों को अपने कार्य एवं व्यवहार से सदैव सन्तुष्ट और उत्साहित रखना चाहिए ताकि वे तुम्हारे और राज्य की रक्षा के लिए प्रसन्नता-पूर्वक अपने प्राणों की बलि देने को भी तैयार हों। शूरवीर, दृढ़-प्रतिज्ञ, कष्ट-सहिष्णु, हितैषी एवं स्वामिभक्त व्यक्ति को सेनापति बनायें। अपनी और शत्रुओं की दुर्बलता पर सदा दृष्टि रखें।

"राजन्! तुम्हें अपने शत्रु, आततायियों, मित्रों एवं शत्रुओं के मित्रों पर सदैव दृष्टि रखनी चाहिए। शत्रु की दृष्टि सदा देश, मंत्री, दुर्ग और सेना पर रहती है इसलिए इनकी रक्षा में सदा तत्पर रहना चाहिए। शत्रु पर उसी समय आक्रमण करना चाहिए जब उसकी स्थिति दुर्बल हो। यदि शत्रु की स्थिति प्रबल और अपना पक्ष निर्बल हो तो निःसंकोच संधि कर लेनी चाहिए। हारे हुए राजा की हत्या न करे। उससे ऐसी शर्तों पर संधि करे कि वह वर्षों तक शक्ति संचित करके पुनः सिर उठाने की चेष्टा न कर सके। बलवान पुरुषों को चाहिए कि वे निर्बल व्यक्तियों को नष्ट करने का प्रयास न करें। जब दुर्बल राजा पर बलवान राजा आक्रमण कर दे तो उसे अपने मंत्रियों के साथ उसकी शरण में जाकर कोष, दण्डशक्ति

और अन्य मूल्यवान वस्तुएँ अर्पण करके साम, दाम आदि उपायों से उसके साथ संधि कर लेनी चाहिए। यदि किसी भी उपाय से संधि न हो सके तो अपने प्राणों का मोह छोड़कर शत्रु सेना पर टूट पड़ना चाहिए। ऐसी दशा में यदि मृत्यु भी हो जाय तो वह भी प्रशंसनीय और मोक्षदायक मानी जाती है। वैसे शत्रु पर आक्रमण तभी करना चाहिए जब शत्रु के सैनिक असन्तुष्ट और निर्बल हों। अपने गुप्तचरों द्वारा शत्रुओं में परस्पर फूट डलवाने का भी प्रयत्न करना चाहिए। युद्ध में शत्रु की अपेक्षा अधिक उत्साह एवं दूरदर्शिता रखने वाला राजा ही प्राय: सफल होता है। राजा को प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए सेना, धन, सच्चे मित्रों एवं स्वामिभक्त सेवकों की शक्ति और संख्या में निरन्तर वृद्धि करते रहना चाहिए। यदि सामर्थ्य हो तो युद्ध के अनुकूल अवसर न होने पर शत्रु पर धावा बोल देना चाहिए। जो राजा इन सब बातों का विचार करके इसके अनुसार युक्तिपूर्वक आचरण करते हैं और प्रजा का धर्मपूर्वक पालन करते हैं, वे मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग के अधिकारी होते हैं। मैं जानता हूँ कि भीष्म पितामह, महात्मा श्रीकृष्ण और विदुरजी ने तुम्हें इन्हीं बातों का उपदेश दिया है। मैंने भी स्नेह के कारण तुम्हें ये सब बातें स्मरण दिलाई हैं। मुझे विश्वास है कि तुम अवश्य इनका पालन करके स्वर्ग के अधिकारी बनोगे। एक हजार अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करने वाला राजा और प्रजा का धर्मपूर्वक पालन करने वाला राजा दोनों समान फल को प्राप्त करते हैं।"

तीसरा अध्याय

धृतराष्ट्र आदि का वन गमन

वैशंपायनजी बोले--हे राजन्! वन के लिए प्रस्थान करने से पूर्व धृतराष्ट्र ने सोचा कि वन जाने से पूर्व मैं अपने मृत पुत्रों के निमित्त कुछ धन दान कर लूं। उन्होंने अपना यह विचार युधिष्ठिर को कहला भेजा। यह संदेश पाकर उन्होंने इसके लिए उचित धन, सामग्री आदि की व्यवस्था करायी। दानादि से निवृत्त होकर धृतराष्ट्र ने समस्त प्रजाजनों को बुलाकर उन्हें सम्बोधित करते हुए कहा, "प्रजाजनो! आप और कौरव लोग चिरकाल से साथ-साथ रहते आये हैं। अतः आप में और राजकुल में स्नेह एवं सौहार्द होना स्वाभाविक है। आपके स्नेह के वशीभूत होकर मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। मैं गाँधारी के साथ तपस्या के लिए वन जा रहा हूँ। इसके लिए मुझे महर्षि व्यास और राजा युधिष्ठिर की अनुमति मिल गई है। अब आप लोग भी मुझे वन जाने की आज्ञा प्रदान करें। अब मैं अपनी वृद्धावस्था में गाँधारी के साथ वन में जाकर इस राजसी सुख का परित्याग करना चाहता हूँ। युधिष्ठिर के शासन काल में मुझे जितना सुख मिला है, उतना मुझे अपने पुत्र दुर्योधन के राज्य में कभी नहीं मिला। वैसे मैं जीवन भर दुःख उठाता रहा हूँ। एक तो मैं जन्म से अंधा हूँ दूसरे मेरे पुत्रों ने न्याय और धर्म का परित्याग कर मेरी आत्मा को क्लेश पहुँचाया है। इसके अतिरिक्त मुझे अपने जीवन में ही अपने युवा पुत्रों की मृत्यु का दुःख सहना पड़ा है। इसलिए ये राजसी सुख मुझे काँटों की तरह चुभते हैं। अब मैं

वन में जाकर तपस्या करके अपना शेष जीवन व्यतीत करने में अपना कल्याण समझता हूँ। इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे सहर्ष वन जाने की अनुमति दें।"

धृतराष्ट्र के वचन सुनकर प्रजा शोकाकुल हो उठी। तभी उन्होंने परस्पर परामर्श करके वेदज्ञ एवं स्पष्ट वक्ता ब्राह्मण साम्ब को प्रजा का मन्तव्य राजा के सम्मुख प्रगट करने का अधिकार दिया। साम्ब ने धृतराष्ट्र के प्रति अपना सम्मान प्रगट करते हुए कहा, "राजन्! मैं उपस्थितजनों की प्रेरणा से प्रजा के विचार आपके सम्मुख प्रस्तुत करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। आपने जो कुछ कहा है, वह सर्वथा सत्य है। निःसंदेह राजवंश और प्रजाजनों में सदा से घनिष्ठ स्नेह रहा है। इस राजवंश के सभी नरेश प्रजापालक रहे हैं। राजा दुर्योधन ने अपने भ्राता पाण्डवों के साथ अन्याय करके भी प्रजा के साथ कभी कोई अनुचित व्यवहार नहीं किया। जब महर्षि व्यासजी ने आपको वन में जाकर तपस्या करने का परामर्श दिया है तो हम लोग उसमें बाधक बनना नहीं चाहते। यह सत्य है कि आपके चले जाने पर हम आपके सद्गुणों को स्मरण करके दुःखी होंगे। बहुत विचार करने पर भी हमें आप में कोई ऐसा दुर्गुण दिखाई नहीं देता जो प्रजा के लिए हानिकारक हो। आपके ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। महाभारत के युद्ध में अपने जाति-भाइयों के संहार के लिए जो आपने दुर्योधन को दोषी ठहराया है, उसके विषय में मैं कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। कौरवों की मृत्यु के लिए न दुर्योधन उत्तरदायी हैं और न आप या कर्ण या शकुनि।

वास्तव में यह दैवी विधान था जिसे किसी के भी द्वारा नहीं टाला जा सकता था। केवल अठारह दिनों में अठारह अक्षौहिणी सेना का संहार और भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण जैसे योद्धाओं की मृत्यु दैवी शक्ति के ही खेल हैं। इसलिए हम आप सब लोगों को निर्दोष मानते हुए परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि आप महान पुण्य से प्राप्त होने वाले फल के भागी हों। आपके वन गमन के पश्चात् महाराज युधिष्ठिर भी अपने वंशानुकूल प्रजा का पालन करते हुए हम लोगों का हित-साधन करेंगे, ऐसा हमें दृढ़ विश्वास है। अतएव आप हमारी चिन्ता से मुक्त होकर निश्चिन्त हो वन में जाकर तपस्या करें। समस्त प्रजा श्रद्धापूर्वक आपको नमस्कार करते हुए वन जाने की अनुमति प्रदान करती है और परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करती है कि वे आपका कल्याण करें।"

इस प्रकार प्रजाजनों की शुभकामना लेकर उन्हें अनेकानेक धन्यवाद देते हुए धृतराष्ट्र पहले अपने महलों में गये। वहाँ उन्होंने सबसे पहले भीष्म आदि गुरुजनों का श्राद्ध कर तर्पण किया। इसके पश्चात् दुर्योधन, दुःशासन आदि सब मृत पुत्रों का श्राद्ध किया और ब्राह्मणों एवं याचकों को बहुत सा धन, वस्त्र, गौ आदि दान में दिये। अपने शत्रु कौरवों की शान्ति के लिए इस प्रकार प्रचुर मात्रा में धन-वस्त्र इत्यादि दान में दिये जाते देख भीमसेन को बहुत क्रोध आया और वे विषैले नाग की भाँति फुफकारने लगे। उन्होंने धृतराष्ट्र को भी खूब जली-कटी सुनाई। अर्जुन ने अनेक प्रकार से समझा-बुझाकर उन्हें शान्त किया। इसके पश्चात् एक शुभ मुहूर्त्त में

कार्तिक पूर्णिमा के दिन महाराज धृतराष्ट्र ने नगर निवासियों से अश्रुपूर्ण विदाई लेकर अग्निहोत्र की अग्नि को आगे कर विदुर, संजय, गाँधारी और कुन्ती के साथ वन के लिए प्रस्थान किया। पाण्डव लोग नहीं चाहते थे कि माता कुन्ती भी उनके साथ वन को जाये। इसलिए उन्होंने उसे वन जाने से रोकने के लिए बहुत प्रयत्न किये, परन्तु कुन्ती अपने निश्चय पर अटल रही। उसने पाण्डवों की प्रार्थना को अस्वीकार करते हुए कहा, "मेरे प्यारे बच्चो ! तुम मुझे रोकने का प्रयत्न मत करो। मुझे व्यर्थ के माया मोह में मत जकड़ो। अब मैं इस संसार में नहीं रहना चाहती। मैं तपस्या करके अपने पति के पुण्यदायक लोक को जाना चाहती हूँ। तुम लोग मेरी इच्छा में बाधक मत बनो। मैं तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ कि तुम्हारी बुद्धि सदैव धर्मानुकूल आचरण करने में रहे और तुम्हारे मन में सदा पवित्र एवं उच्च विचार उत्पन्न हों।" कुन्ती के शब्द सुनकर पाण्डव उससे अधिक आग्रह नहीं कर सके, परन्तु वे उदास हो गये और उनके चेहरे लटक गये।

हस्तिनापुर से विदा हो धृतराष्ट्र कुरुक्षेत्र में स्थित महर्षि व्यास के आश्रम में पहुँचे। वहाँ उन्होंने व्यासजी से दीक्षा ली और वल्कल वस्त्र धारण करके तपस्या करने लगे। उनका अनुसरण करते हुए कुन्ती और गाँधारी ने भी वल्कल वस्त्र धारण कर लिये। फिर वे भी आश्रम में रहकर तपस्या करने लगीं। परम नीतिवान विदुर संजय के साथ उन लोगों की सेवा करने लगे। धृतराष्ट्र ने इतनी कड़ी तपस्या की कि उनके शरीर में केवल त्वचा और अस्थियाँ शेष रह गईं।

माता कुन्ती के वन गमन के पश्चात् सभी पाण्डवों को कुन्ती का वियोग खटकने लगा और जब वे उसका वियोग अधिक न सह सके तो युधिष्ठिर हस्तिनापुर की रक्षा और प्रशासन का भार युयुत्सु एवं धौम्य ऋषि को सौंपकर एक दिन भाइयों के साथ धृतराष्ट्र के आश्रम में जा पहुँचे। बहुत से नगर निवासी भी उनके साथ थे। सबसे पहले वे उस स्थान पर पहुँचे जहाँ महाराज धृतराष्ट्र तपस्या कर रहे थे। सबने उन्हें प्रणाम करके आशीर्वाद प्राप्त किया। इस बीच वनवासी लोग भी पाण्डवों के आने का समाचार पाकर आश्रम में आ गये थे। संजय ने उन सबसे पाण्डवों का परिचय कराया। धृतराष्ट्र के पास विदुर को न पाकर युधिष्ठिर ने पूछा, "हे तात! महात्मा विदुरजी कहीं दिखाई नहीं दे रहे हैं। वे कहाँ हैं? कुशलपूर्वक तो हैं न?"

युधिष्ठिर का प्रश्न सुनकर धृतराष्ट्र बोले, "वत्स! विदुरजी पूर्णतया सकुशल हैं। वे आजकल केवल पवन का आहार करते हुए इच्छानुसार इधर-उधर भ्रमण करते हैं। किसी वनवासी को वे कभी दिखाई दे जाते हैं।" अभी इस प्रकार वार्तालाप चल ही रहा था कि दूर से विदुरजी आते दिखाई पड़े। उनके सिर के बालों ने बढ़ कर जटाओं का रूप धारण कर लिया था। सम्पूर्ण शरीर धूल से लथपथ हो रहा था। शरीर पर उन्होंने नाममात्र का वस्त्र धारण कर रखा था। मुखमण्डल की मुद्रा अत्यंत गंभीर किन्तु तेजस्वी बनी हुई थी। उन्हें देखते ही वनवासियों ने उनकी ओर संकेत करते हुए युधिष्ठिर से कहा, "देखिये, वे विदुरजी अन्य मनस्क भाव से चले आ रहे हैं। अरे! यह क्या? वे तो आश्रम में लगी भीड़ को

देखकर वहीं से लौट पड़े।" यह सुनते ही युधिष्ठिर उस ओर दौड़ पड़े जिधर लौटकर विदुरजी जा रहे थे। वे दौड़ते हुए चिल्ला रहे थे, "सुनिये, ठहरिये। मैं आपका प्यारा युधिष्ठिर हूँ। मेरी बात सुनिये। मैं आपके दर्शनों के लिए यहाँ तक आया हूँ।" युधिष्ठिर की आवाज सुनकर विदुरजी एक पेड़ के नीचे निर्जन स्थान में जाकर खड़े हो गये। उनके पास पहुँच कर युधिष्ठिर ने उन्हें श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। उन्होंने निकट जाकर देखा कि विदुरजी अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं और उनका शरीर अस्थियों का कंकाल-मात्र बन कर रह गया है। थोड़ी देर तक विदुरजी बिना कुछ बोले एकाग्रचित्त होकर युधिष्ठिर की ओर देखते रहे। फिर उन्होंने उनकी दृष्टि से दृष्टि मिला कर उस दृष्टि के द्वारा ही अपने सूक्ष्म शरीर को युधिष्ठिर के शरीर में प्रविष्ट करा दिया। युधिष्ठिर ने देखा कि विदुरजी की आँखें अपलक और स्थिर हैं। शरीर पेड़ से सटा खड़ा है, परन्तु उसमें चेतना नहीं है। इसके विपरीत उन्होंने अपने शरीर में विशेष बल और ज्ञान का संचार होते हुए पाया। वे यह समझ कर कि विदुरजी ने प्राण त्याग दिये हैं, उनका दाह संस्कार करने को प्रस्तुत हुए। तभी उन्हें आभास हुआ कि कोई उनसे कह रहा है, "विदुरजी ने संन्यास ग्रहण कर लिया था, इसलिए उनके शरीर का अग्नि-कर्म मत करो।"

वे दुःखी मन से धृतराष्ट्र के पास लौट आये और उन्हें विदुरजी के देह त्याग का समाचार सुनाया। यह संवाद सुन कर सभी लोग अत्यन्त विस्मित हुए। रात्रि को विश्राम कर दूसरे दिन युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ वनवासी ऋषियों

के आश्रम देखने के लिए गये और उनके प्रवचन सुने। लौट कर उन्होंने देखा धृतराष्ट्र नित्यकर्म से निवृत्त होकर गाँधारी के साथ शान्त भाव से बैठे हैं और उनसे कुछ दूरी पर माता कुन्ती शिला की भाँति खड़ी हैं। अभी पाण्डवगण प्रणामादि करके बैठे ही थे कि महर्षि व्यासजी अपने शिष्यों के साथ वहाँ पहुँचे। सबने खड़े होकर उनका सत्कार किया और उन्हें बैठने के लिए उचित आसन प्रदान किये।

जब धृतराष्ट्र ने व्यासजी को महात्मा विदुर की मृत्यु का समाचार सुनाया तो वे बोले, "विदुरजी महानविद्वान, उच्च कोटि के योगी और महातपस्वी थे। बुद्धिमत्ता में उनकी बराबरी देवताओं के गुरु बृहस्पति और राक्षसों के गुरु शुक्राचार्य भी नहीं कर सकते। वे साक्षात् धर्म के स्वरूप थे जो माण्डव्य ऋषि के शाप के कारण मनुष्य योनि में आये थे। जिन्हें धर्म कहते हैं, वे ही विदुर थे। और जो विदुर थे, वे ही धर्मराज युधिष्ठिर हैं। विदुर अपने सूक्ष्म शरीर से अब युधिष्ठिर के शरीर में विराजमान हैं। आज मेरे यहाँ आने का एक उद्देश्य है। मैं तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करने के लिए आया हूँ। यदि तुम मुझसे कोई अभीष्ट वस्तु पाना चाहते हो, या किसी मृत व्यक्ति को देखना, मिलना या उससे बात करना चाहो तो मैं तुम्हारी वह इच्छा भी पूरी करने को तैयार हूँ।"

चौथा अध्याय

कौरवों का मृत सम्बन्धियों से साक्षात्कार

वैशंपायनजी बोले—हे राजा जनमेजय! जब महात्मा व्यास इस प्रकार राजा धृतराष्ट्र तथा अन्य पाण्डवों से वार्ता-

लाप कर रहे थे, उसी समय वहाँ और कुछ ऋषि-मुनि आकर एकत्रित हो गये। उनमें महर्षि नारद, पर्वत, देवल, विश्वावसु, तुम्बुरु तथा चित्रसेन भी थे। व्यास जी द्वारा कही हुई बात की चर्चा जब गाँधारी, कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा तथा अन्य रानियों तक पहुँची तो वे भी वहाँ आकर बैठ गईं। महर्षि व्यास फिर बोले, "हे राजा धृतराष्ट्र! मैं जानता हूँ कि तुम और गाँधारी अपने पुत्रों की मृत्यु के कारण अत्यन्त दुःखी हो और उन्हें स्मरण कर-करके निरन्तर शोकाकुल रहते हैं। कुन्ती, द्रौपदी और सुभद्रा भी अभिमन्यु आदि पुत्रों की मृत्यु से दुःखी हैं। कहिये, मैं आपके मन की शान्ति के लिए क्या करूँ?"

धृतराष्ट्र कहने लगे, "महर्षे! मेरे मन में यह जानने की तीव्र उत्कण्ठा है कि महाभारत के युद्ध में मारे गये मेरे पुत्रों और पौत्रों की क्या गति हुई? मैं यह सोच-सोच कर भयानक पीड़ा से उद्विग्न हो रहा हूँ कि मेरे पापी पुत्र ने सारे संसार का राज्य पाने के लिए भीष्म पितामह तथा द्रोणाचार्य जैसे महात्माओं के साथ साथ असंख्य निर्दोष राजाओं और सैनिकों को काल का ग्रास बनवा दिया। जब भी मुझे इस बात का स्मरण आता है, मैं पीड़ा से छटपटाने लगता हूँ।" यह कहते हुए धृतराष्ट्र के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो चली। अपने पति के आँसू बहते देख गाँधारी भी विलाप करने लगी। फिर वह हाथ जोड़कर व्यासजी से बोली, "भगवन्! पिछले सोलह वर्षों से ये पुत्र-शोक में इसी प्रकार व्याकुल हो रहे हैं। यदि संभव हो सके तो इन्हें अपने दिवंगत पुत्रों से मिला दीजिए। ये ही नहीं बहिन कुन्ती, मेरी पुत्रवधू द्रौपदी, सुभद्रा अपनी

सन्तानों तथा अन्य पुत्र वधुएँ अपने पति-पुत्रों के वियोग में दुःखी हो रही हैं। भूरिश्रवा की विधवा पत्नी की दयनीय दशा आप देख ही रहे हैं। इसलिए मुनिवर ! आप ऐसी कृपा करें जिससे हम सब का शोक दूर हो जाय।"

जिस समय गांधारी व्यासजी से इस प्रकार अनुनय-विनय कर रही थी, उसी समय कुन्ती को अपने पुत्र कर्ण का भी स्मरण हो आया जो कौमार्यावस्था में सूर्य के तेज से उत्पन्न हुआ था। कर्ण का स्मरण आते ही कुन्ती के नेत्र डबडबा आये। यह देखकर व्यासजी बोले, "पुत्री ! यदि तुम्हारी कोई कामना हो तो तुम भी कह डालो।" ऋषि की बात सुन कुन्ती ने लज्जा से अपना मुख झुका लिया। फिर साहस करके बोली, "महर्षे ! आप मेरे लिए अत्यन्त पूज्य हैं। इसलिए मैं आपके सम्मुख अपने जीवन की एक रहस्यपूर्ण घटना रख रही हूँ। एक समय की बात है। परम क्रोधी मुनि दुर्वासा एक दिन मेरे पिता के यहाँ आये। उस समय पिता वहाँ नहीं थे। मैंने अपनी पवित्र सेवा से उन्हें सन्तुष्ट कर दिया। वे प्रसन्न होकर बोले--मैं तुम्हारी सेवा से प्रसन्न होकर तुम्हें वरदान देना चाहता हूँ। जब मैं यह निश्चय न कर सकी कि मैं क्या वर-दान माँगूं तो वे किंचित क्रुद्ध होकर बोले--शीघ्र बोल, तुझे क्या वरदान चाहिए। मैं घबड़ा गई कि कहीं मुनि रुष्ट होकर मुझे शाप न दे दें। मैंने तत्काल कहा--आप जो भी वरदान देंगे, मैं सहर्ष स्वीकार कर लूंगी। दुर्वासाजी ने कहा--मैं तुम्हें यह वर देता हूँ कि तुम जिस देवता का आवाहन करोगी, वे सभी तुम्हारे आधीन हो जायेंगे। यह सुनकर मैं आश्चर्य-

चकित हो गई। एक दिन मैं सूर्योदय के समय उदीयमान सूर्य को देख रही थी, तभी मैं चाहभरी दृष्टि से सूर्य का स्मरण करने लगी। दूसरे ही क्षण सूर्य भगवान स्वयं मेरे निकट आकर खड़े हो गये और मुझसे वर माँगने के लिए कहा। जब मैंने उनसे कहा कि मुझे कोई वर नहीं चाहिए तो वे बोले कि यदि तुम वर नहीं माँगोगी तो मैं तुम्हें और तुम्हारे वरदाता दोनों को भस्म कर दूंगा। इस पर मैंने कहा--प्रभो ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे यह वरदान दें कि मेरे आप जैसा तेजस्वी पुत्र प्राप्त हो। इतना कहते ही सूर्यदेव अपने तेज के द्वारा मेरे शरीर में प्रविष्ट हो गये। फलस्वरूप मेरे एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसे मैंने गंगा में प्रवाहित कर दिया। इस समय मैं उसी पुत्र कर्ण को देखना चाहती हूँ।"

गाँधारी एवं कुन्ती की बात सुनकर महर्षि व्यास ने कहा, "आज रात्रि को गाँधारी अपने पुत्रों और भाइयों को, कुन्ती कर्ण को, सुभद्रा अभिमन्यु को और द्रौपदी अपने पुत्रों, भाइयों तथा पिता को देखेंगी। तुम लोगों को उन क्षत्रिय वीरों के लिए शोक नहीं करना चाहिए क्योंकि वे क्षत्रियोचित कर्म करते हुए मृत्यु को प्राप्त हुए हैं। गंधर्वों के राजा ही महाराजा धृतराष्ट्र के रूप में अवतीर्ण हुए हैं। महाराज पाण्डु मरुद्गण के अवतार थे। धर्मात्मा विदुर और युधिष्ठिर धर्म के अंशावतार हैं। दुर्योधन कलियुग और शकुनि द्वापर के अवतार थे। दुःशासन आदि पिछले जन्म में राक्षस थे। भीमसेन का जन्म मरुद्गणों से हुआ है। अर्जुन पुरातन ऋषि नर और श्रीकृष्ण नारायण हैं। नकुल तथा सहदेव अश्विनी कुमार

के अवतार हैं। अभिमन्यु चन्द्रमा का अंश था। धृष्टद्युम्न अग्नि का अंश था। द्रोणाचार्य वृहस्पति के, अश्वत्थामा भगवान शिव के अंश से उत्पन्न हुए थे और भीष्म अष्ट वसुओं में से एक थे। अतः वे सब स्वर्ग पहुँच चुके हैं। अब सब लोग गंगा के तट पर चलें। वहीं सबको उनके दर्शन होंगे।"

महर्षि का आदेश मान सब लोग गंगा तट पर गये। मुनि ने कहा था कि द्विवंगत आत्माओं के दर्शन रात्रि को होंगे। इसलिए सब लोग बड़ी आतुरता से रात्रि होने की प्रतीक्षा करने लगे। दिन का यह शेष भाग उन्हें काटना दूभर हो गया। ऐसा प्रतीत होता था कि भगवान सूर्य ने पृथ्वी को अपने सम्मोहन से स्थिर कर दिया है और उसने परिक्रमा करना बन्द कर दिया है। जैसे तैसे सन्ध्या हुई। सूर्यास्त हुआ रात्रि आई। सब लोग अपने नित्य कर्मों से निवृत्त हो महर्षि व्यास के पास आकर बैठ गये। सबकी बढ़ती हुई उत्सुकता को देखकर मुनिश्रेष्ठ व्यासजी ने गंगा के पवित्र जल में प्रवेश किया और कौरवों तथा पाण्डवों दोनों पक्ष के दिवंगत सम्बन्धियों एवं योद्धाओं का आवाहन किया। सहसा भागीरथी के पवित्र जल से वैसी हो ध्वनियाँ सुनाई देने लगीं जैसी कुरुक्षेत्र के मैदान में कौरव पाण्डव सेना के एकत्रित होने पर सुनाई देती थीं। कुछ क्षण पश्चात् भीष्म, द्रोणाचार्य, राजा विराट तथा उनके पुत्र, द्रुपद, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, अभिमन्यु, घटोत्कच, कर्ण, दुर्योधन, शकुनि, अपने सभी भ्राताओं सहित दुःशासन आदि असंख्य वीर अपने दीप्तिमान शरीरों को धारण किये हुए जल में से प्रगट हुए। प्रत्येक वीर योद्धा वैसे ही वेष, ध्वजा एवं वाहनों

के साथ दृष्टिगोचर हुए जैसे मृत्यु से पूर्व उनके पास थे। वस्त्र, कुण्डलादि सबके दिव्य थे। वे परस्पर जिस प्रकार व्यवहार कर रहे थे, उससे ज्ञात होता था कि वे वैर, क्रोध, मद, अहंकार आदि का पूर्णतया परित्याग कर चुके हैं। उन्हें देखने के लिए महर्षि व्यास ने अपने योग के चमत्कार के बल से धृतराष्ट्र को दिव्य दृष्टि प्रदान की। गाँधारी ने भी पति की आज्ञा से अपने नेत्र खोल दिये। दोनों ने प्रसन्नतापूर्वक अपने पुत्र-पौत्रों को देखा। सब लोग आश्चर्य से अपने मृत सम्बन्धियों को देख रहे थे और आनन्द से रोमांचित हो रहे थे। फिर सबने व्यास जी द्वारा बताई हुई पद्धति से अपने दिवंगत सम्बन्धियों से वार्तालाप किया। उन लोगों ने यह रात्रि उन आत्माओं के साथ हर्षपूर्वक की। उस समय किसी के मन में शोक, ग्लानि, भय, वैर आदि नहीं था। जो स्त्री-पुरुष अपने प्रियजनों के वियोग के कारण अत्यन्त दुःखी थे, अब उन सबका मानसिक क्लेश मिट चुका था।

जब रात्रि समाप्त होने को हुई तो व्यासजी के आदेश पर सब स्त्री-पुरुषों ने अपनी-अपनी प्रिय दिवंगत आत्माओं से पृथक होने की अनुमति ली। इसके पश्चात् सब दिव्य आत्माएँ अपनी ध्वजाओं एवं वाहनों के साथ गंगा के पवित्र जल में डुबकी लगाकर अन्तर्ध्यान हो गये। उन सब के अदृश्य हो जाने पर महामुनि व्यासजी ने जल में खड़े-खड़े उन विधवा स्त्रियों को सम्बोधित करते हुए कहा, "देवियो, तुम में से जो अपने दिवंगत पतियों के पास परलोक में रहना चाहती हों, वे तत्काल गंगाजी के जल में गोता लगा लें। वे अवश्य अपने-अपने

पति से जा मिलेंगी।" व्यासजी की बात सुनते ही सभी श्रद्धालु सती स्त्रियाँ गंगाजी में कूद पड़ीं। इस प्रकार सभी नारियाँ अपने पतियों के पथ की अनुगामिनी हो गईं।

पाँचवाँ अध्याय

जनमेजय को परीक्षित का दर्शन

वैशंपायनजी से यह विचित्र कथा सुनकर राजा जनमेजय ने कहा, "मुनिवर! आपके द्वारा सुनाई गई दिवंगत आत्माओं के दर्शन की कथा बड़ी अद्‌भुत है। कोई भी सांसारिक व्यक्ति इस चमत्कारिक कथा पर सरलता से विश्वास नहीं करेगा। किन्तु मैं समझता हूँ कि महान योगियों के लिए कोई भी कार्य असम्भव नहीं है। क्या आप कृपा करके महर्षि व्यासजी को इस बात के लिए सहमत कर सकेंगे कि वे मुझे मेरे स्वर्गवासी पिता महाराज परीक्षित के साक्षात् स्वरूप का दर्शन करा दें? यदि आप मुझ पर यह अनुग्रह कर सकें तो मैं आजीवन आपका कृतज्ञ रहूँगा।" राजा जनमेजय के इस प्रकार प्रार्थना करने और वैशंपायन के आग्रह पर महर्षि व्यास ने अपने योग के बल से जनमेजय के पिता परीक्षित का यज्ञ-भूमि में आवाहन किया। इसके फलस्वरूप परीक्षित वहाँ सदेह प्रकट हुए। वे अपनी मृत्यु से पूर्व के रूप, वेष और वस्त्रों में थे। उनके साथ उनके मंत्रिगण तथा महात्मा शमीक भी अपने पुत्र श्रृंगी ऋषि के साथ थे। उनके दर्शन करके जनमेजय के आनन्द का ठिकाना न रहा। जब जनमेजय अपने आनन्द की बात जरत्कारुनन्दन आस्तीक को बताने लगे तो उन्होंने कहा, "राजन्! मैं तुम्हें एक नई बात और बताता हूँ। तुम्हारे शत्रु समस्त सर्प अग्नि

में भस्म होकर उसी पदवी पर पहुँच गये हैं जिस पर तुम्हारे पिताजी पहुँचे हैं। यह तो तुम्हें स्मरण ही है कि तुम्हारी सत्य-परायणता के फलस्वरूप सर्पराज तक्षक के प्राण बच गये थे। सर्प नाश के पाप से मुक्ति प्राप्त करने के लिए तुमने सब ऋषियों की पूजा की थी और महर्षि व्यासजी से पापमोचनी कथा सुनी थी।"

आस्तीक की बात सुनकर और अपने पिता के दर्शन से अनुगृहीत हो जनमेजय ने वैशम्पायनजी से पूछा—मुनिवर! जब व्यासजी की कृपा से महाराज धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर आदि ने अपने सगे-सम्बन्धियों के दर्शन प्राप्त कर लिए तो उसके पश्चात् उन्होंने क्या किया?

वैशम्पायनजी बोले—अपने स्वजनों की आत्माओं से मिल कर धृतराष्ट्र शोकरहित होकर अपने आश्रम को लौट गये। पाण्डव आदि भी उनके साथ थे। शेष ऋषि-मुनि अपने-अपने आश्रमों को चले गये। जब युधिष्ठिर अपने बन्धु-बांधवों सहित धृतराष्ट्र के पास गये तो उन्होंने आशीर्वाद देते हुए कहा, "युधिष्ठिर, जाओ तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे विदा हो जाने से पूर्व मैं तुमसे एक बात कहना चाहता हूँ। तुम्हारे प्रयत्नों से से मैं अपना शोक भूलने में समर्थ हुआ हूँ। यह बात मैं कभी नहीं भूल सकता। तुम्हारी दोनों माताएँ--कुन्ती और गाँधारी-मेरी ही भाँति सूखे पत्ते चबाकर रहती हैं। अतएव अब वे अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकेंगी। मैं समझता हूँ कि अब मेरे भी अधिक समय तक जीवित रहने का कोई प्रयोजन नहीं रह गया है। इसलिए मैं कठोर तपस्या करके अपना जीवन

समाप्त कर देना चाहता हूँ। मेरे पश्चात् पितरों के सुयश और कुल का भार तुम्हारे ऊपर है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस भार को उठाने में तुम सब प्रकार से सक्षम हो। अब तुम प्रसन्नतापूर्वक राजधानी लौट जाओ। तुमने मेरे लिए बहुत कष्ट उठाये हैं।"

धृतराष्ट्र की बात सुनकर युधिष्ठिर ने दुःखी होकर कहा, "आप मेरे पूज्य और धर्म के ज्ञाता है। इस प्रकार मेरा परित्याग न कीजिए। मुझे यहीं रहने की अनुमति दीजिए। मैं भी अब यहाँ रह कर ईश्वर का ध्यान करना चाहता हूँ। हस्तिनापुर का राज्य मेरे भाई भली भाँति सँभालने की क्षमता रखते हैं। मैं खाली समय में आपकी और दोनों माताओं की सेवा करूँगा।" यह सुनकर गाँधारी ने कहा, "युधिष्ठिर ! हम तुम्हारी भावनाओं को भली-भाँति समझते हैं। फिर भी मैं तुमसे यही कहूँगी कि तुम इनकी आज्ञा मानकर हस्तिनापुर लौट जाओ, गुरुजनों की आज्ञा का पालन करना तुम्हारा कर्त्तव्य है।" गाँधारी का यह कथन सुनकर युधिष्ठिर कुन्ती से बोले, "माता ! तुम लोगों को छोड़कर मेरा मन जाने का नहीं होता। मुझे अब राज-काज में तनिक भी रुचि नहीं है और न राजपद का मोह है। मैं चाहता हूँ कि वन में आप लोगों की सेवा करते हुए अपना शेष जीवन ईश्वर की आराधना और तपस्या में व्यतीत कर दूँ।"

युधिष्ठिर की इस प्रकार की बात सुनकर कुन्ती ने कहा, "तुम लोग अनुचित प्रस्ताव कर रहे हो। हम लोग यहाँ तपस्या करने के लिए आये हैं। तुम्हारे यहाँ रहने से हमारी तपस्या में

बाधा पड़ेगी। हमारे मन में अवाँछनीय मोह जागृत होगा। इसलिए मेरी बात को आदेश मानकर तुम सब लोग हस्तिनापुर लौट जाओ।" इस प्रकार सबको समझा बुझाकर कुन्ती और गाँधारी ने उन लोगों को विदा किया। द्रौपदी, सुभद्रा आदि ने भी उनसे विदा लेकर हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान किया।

छठा अध्याय

धृतराष्ट्र, गाँधारी और कुन्ती की दावानल में जलने से मृत्यु

जब वन से लौटकर हस्तिनापुर आये हुए उन्हें दो वर्ष हो गये तो एक दिन देवर्षि नारद अनेक स्थानों को भ्रमण करते हुए राजा युधिष्ठिर के दरबार में पहुँचे। युधिष्ठिर ने उनका यथोचित सत्कार कर बैठने के लिए आसन दिया और विभिन्न स्थानों के कुशल समाचार पूछे। बातों ही बातों में उन्होंने प्रश्न किया मेरे पितृव्य महाराज धृतराष्ट्र माता गाँधारी और कुन्ती के साथ गंगा तट पर कठोर तपस्या कर रहे हैं। क्या भ्रमण करते हुए आप कभी उस ओर भी गये हैं ? क्या उनका कुछ कुशल समाचार आपको ज्ञात है ?"

नारदजी बोले, "हाँ, उस ओर मैं गया भी था और मैंने महाराज धृतराष्ट्र की तपस्या के विषय में सुना भी था। जब तुम लोग उनमें विदा होकर यहाँ आये तो वे सब लोग हरिद्वार पहुँचकर धृतराष्ट्र ने घोर तप किया। बहुत दिनों तक उन्होंने मुख में पत्थर का टुकड़ा रखकर मौन व्रत रखा और केवल वायु का सेवन किया। शरीर में केवल त्वचा से ढँकी अस्थियाँ रह गई। छः मास तक उन्होंने ऐसा किया। देवी गाँधारी ने भी केवल जल पीकर तपस्या की। कुन्ती देवी एक

मास में केवल एक बार भोजन करने लगी। धृतराष्ट्र वन में इधर-उधर विचरण करने लगे और कभी-कभी ही दिखाई देते थे। उनके साथ केवल गाँधारी और कुन्ती छाया की भाँति लगी रहती थीं। धृतराष्ट्र के हाथ पकड़कर गाँधारी चलती थी और गाँधारी का हाथ पकड़कर कुन्ती देवी उन्हें मार्ग दिखाती थीं। एक दिन जब वे भ्रमण कर रहे थे तो जंगल में भयंकर आग लग गई। वन के हिंसक पशु इधर-उधर दौड़कर अपने प्राण बचाने लगे। महाराज भी दोनों रानियों के साथ अग्नि की लपेट में आ गये। दीर्घकालीन तपस्या के कारण उनके शरीर इतने क्षीण और दुर्बल हो गये थे कि उनमें भाग कर प्राण बचाने की शक्ति भी नहीं रह गई थी। तभी राजा धृतराष्ट्र ने संजय से कहा--संजय! तुम भाग कर किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँच जाओ। हम लोग तो अब इस अग्नि में जलकर ही परम गति प्राप्त करेंगे। संजय ने उन्हें अपने साथ चलने के लिए बहुत आग्रह किया किन्तु वे उनके साथ जाने को सहमत न हुए। अन्त में संजय को विवश होकर हिमालय पर चला जाना पड़ा और धृतराष्ट्र, गाँधारी एवं कुन्ती उस दावाग्नि में जलकर भस्म हो गये।"

यह सुनकर युधिष्ठिर अत्यन्त दुःखी हुए। फिर उन्होंने भाइयों सहित गंगा तट पर जाकर उनके निमित्त जलांजलि दी और कर्मकाण्डी ब्राह्मणों को बहुत सा धन देकर उनकी अंतिम क्रिया करने के लिए हरिद्वार भेजा। इसके पश्चात् समय पर उनके श्राद्धादि किये और ब्राह्मणों को विपुल दक्षिणाएँ दीं।

॥ इति आश्रमवासिक पर्व सम्पूर्ण ॥

॥ ओ३म् ॥

महाभारत भाषा

१६. मौसल पर्व



यदुवंशियों का ऋषियों से उपहास एवं उनका शाप देना



बलरामजी का देह त्याग

पहला अध्याय

वृष्णि और अन्धकों को ऋषियों का शाप

वैशम्पायनजी बोले—हे राजा जनमेजय! जब महाराज युधिष्ठिर को राज्य करते हुए पैंतीस वर्ष हो गये तो अकस्मात् अनेक प्रकार के अपशकुन दिखाई देने लगे। नदियों का प्रवाह उलट गया। दिशाओं में कुहरा छाने लगा। आकाश से अंगारे बरसाती उल्काएँ गिरने लगी। धूल से सूर्य बहुधा छिपने

लगा। जहाँ हस्तिनापुर में इस प्रकार के अपशकुन हो रहे थे, वहाँ द्वारिकापुरी पापाचार का गढ़ बनता जा रहा था। वृष्णियों का व्यवहार अत्याचारों एवं दुर्नीतियों से पूर्ण हो रहा था। सत्य, धर्म और सदाचार का लोप हो रहा था।

एक दिन देवर्षि नारद, कण्व तथा विश्वामित्र भ्रमण करते हुए द्वारिकापुरी पहुँचे। इन महात्माओं को द्वारिकापुरी में आया देख वहाँ के कुछ दुर्बुद्धि यादवों ने उनका उपहास करने का निश्चय किया। अतएव सारण आदि यदुवंशी श्री कृष्ण के पुत्र साम्ब को स्त्री वेष में सजाकर मुनियों के पास ले गये और बोले, "हे ऋणिगण! यह बभ्रु की पत्नी गर्भवती है। कृपया इसे आशीर्वाद दें और यह भी बताइये कि इसे क्या उत्पन्न होगा?" यादवों के उपहास से क्रुद्ध हो ऋषियों ने कहा, "वासुदेव के इस पुत्र साम्ब के एक मूसल उत्पन्न होगा जिससे वृष्णि एवं अन्धकों का विनाश होगा। तुम्हारे कुकर्मों के परिणाम स्वरूप सम्पूर्ण यदुवंश का नाश होगा। केवल श्रीकृष्ण और बलराम शेष रहेंगे। वे भी अब जीवित नहीं रहेंगे। बलराम समुद्र में जाकर प्राण त्याग करेंगे और श्रीकृष्ण जरा नामक बहेलिये के बाण से घायल होकर मृत्यु को प्राप्त होंगे।" इस प्रकार शाप देकर ऋषिगण वहाँ से विदा हुए।

जब श्रीकृष्ण को इस शाप की बात मालूम हुई तो वे अत्यन्त दुःखी हुए और वृष्णियों से कुछ कहे बिना महाराज उग्रसेन के पास जाकर उनको सम्पूर्ण समाचार से अवगत करा दिया। साथ ही यह भी बता दिया कि अब यदुवंश का सर्वनाश निकट है। राजा उग्रसेन यह सुनकर अत्यन्त दुःखी हुए। उन्होंने

मूसल के टुकड़े-टुकड़े करके समुद्र में फिकवा दिये और राज्य में आज्ञा प्रसारित करवा दी कि अब कोई व्यक्ति मदिरा-पान नहीं करेगा। इस आज्ञा का उल्लंघन करने वाले को मृत्यु दण्ड दिया जायेगा।

ऋषियों के शाप के फलस्वरूप द्वारिकापुरी में अमंगल सूचक अपशकुन होने लगे। गौओं के उदर से खच्चर, गधी के पेट से ऊँट और कुतिया के पेट से बिल्ली बिलौटे उत्पन्न होने लगे। फिर भी वृष्णवंशी देवताओं, ब्राह्मणों, ऋषि-मुनियों से द्वेष करने लगे। गुरुजनों का अपमान और सुहृदों के साथ विश्वासघात होने लगा। दुष्टजन धर्मात्माओं के धार्मिक कार्यों में व्यवधान उत्पन्न करने लगे। यह देख श्रीकृष्ण ने अपने कुटुम्बियों और पुरवासियों को बुलाकर कहा कि ये सारे योग इस बात की सूचना देते हैं कि अब शीघ्र ही हम लोगों का नाश होने वाला है। इसलिए इस संकट के समय हमें तीर्थ यात्रा पर चले जाना चाहिए। कृष्ण का परामर्श मानकर सब लोग तीर्थ यात्रा के लिए निकल पड़े।

दूसरा अध्याय

यदुवंशियों का महाविनाश, बलराम और श्रीकृष्ण का परलोक गमन

वैशंपायनजी बोले—हे राजन् ! श्रीकृष्ण का परामर्श मानकर यादवगण तीर्थ यात्रा के लिए तो चल पड़े, किन्तु उन्होंने साथ में अपने परिजनों को और पीने के लिए मदिरा भी ले ली। मार्ग में उन्होंने प्रभास क्षेत्र पर पड़ाव डाला। नित्य कर्म से निबट कर वे मदिरा पान करके प्रलाप करने लगे। नशे में वे इतने धुत् हो गये कि ब्राह्मणों के लिए बनाया हुआ

भोजन बन्दरों को खिला दिया। बलराम, सात्यकि, बभ्रु, आदि जो श्रीकृष्ण का बहुत सम्मान करते थे उन्हीं के सामने मदिरा पान करके अनुचित भाव प्रदर्शित करने लगे। नशे में डूबे सात्यकि ने कृतवर्मा की ओर अपमानपूर्वक इशारा करते हुए कहा, "बन्धुओ! तुम जानते हो, यदि कोई पुरुष क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होकर सोते हुए व्यक्तियों का वध कर दे तो उसे क्या कहना चाहिए? क्या यदुवंशी कभी इस कुकृत्य को सहन कर सकते हैं?" सात्यकि की बात सुनकर प्रद्युम्न ने कहा, "ऐसे व्यक्ति को क्षत्रिय कदापि नहीं कहा जा सकता।"

इस आक्षेप से क्रुद्ध होकर कृतवर्मा ने कहा, "दूसरों पर आक्षेप लगाना तो बहुत सरल है। तनिक उस घटना को भी तो स्मरण करो जब तुमने भुजाहीन ध्यानमग्न भूरिश्रवा का निर्ममतापूर्वक वध कर दिया था। क्या इसे क्षत्रियोचित कार्य कहा जा सकता है?" कृतवर्मा की बात सुनकर श्रीकृष्ण ने रोषपूर्वक उसकी ओर देखा। श्रीकृष्ण को इस प्रकार देखते देख सात्यकि ने कहा, "जिस पापात्मा ने अश्वत्थामा के साथ मिलकर सोते हुए वीरों का वध किया है, उस कृतवर्मा की आयु अब पूरी हो चुकी है।" यह कहते हुए सात्यकि ने कृतवर्मा का सिर काट डाला और उसके समर्थकों को मार डाला। इस पर भोज और अंधकवंशियों ने सात्यकि पर आक्रमण कर दिया। प्रद्युम्न सात्यकि की सहायता के लिए दौड़े। दोनों ओर के लोग परस्पर भिड़ गये। फलस्वरूप सात्यकि एवं प्रद्युम्न सहित अनेक योद्धा मारे गये। प्रद्युम्न और सात्यकि के मारे जाने पर श्रीकृष्ण ने क्रोधपूर्वक एक मुट्ठी एरका (पटेर)

उखाड़ा और विपक्षियों पर पिल पड़े। उनकी देखा-देखी अन्य यादवगण भी पटेर उखाड़कर एक-दूसरे का वध करने लगे। इस प्रकार श्रीकृष्ण के पुत्र और अनेक विपक्षी मारे गये।

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने दारुक द्वारा अर्जुन के पास यादवों के विनाश का समाचार भेजा। इसके पश्चात् उन्होंने रनिवास की रक्षा के लिए विभ्रु को द्वारका भेजा किन्तु एक बहेलिये ने मूसल द्वारा मार्ग में ही उसकी हत्या कर दी, जब श्रीकृष्ण अपने भ्राता बलराम के पास पहुँचे तो उन्होंने देखा कि उनके मुख से एक बड़ा सफेद सर्प निकल कर समुद्र की ओर जा रहा है। अपने बड़े भ्राता को संसार त्याग करते देख उन्होंने समझ लिया कि अब मेरा भी परमधाम जाने का समय हो गया है। इस प्रकार सोच विचार करते हुए वे विश्राम करने के लिए एक कुञ्ज में लेट गये। श्रीकृष्ण को लेटे देख जरा नामक एक बहेलिये ने मृग के धोखे में उन पर एक बाण छोड़ दिया जो उनके पैर के तलुए में लगा। इससे घायल होकर श्रीकृष्ण ने अपने प्राणों का परित्याग कर दिया।

तीसरा अध्याय

अर्जुन का द्वारिकावासी स्त्री पुरुषों को लेकर प्रस्थान, द्वारिका का समुद्र में डूबना, मार्ग में लुटेरों का अर्जुन से धन व स्त्रियों का छीनना

उधर जब अर्जुन ने दारुक से यादवों के विनाश का समाचार सुना तो वे तत्काल दारुक के साथ द्वारिकापुरी की ओर चल पड़े। मार्ग में ही उन्हें श्रीकृष्ण की मृत्यु का समाचार मिला वे रोते-बिलखते द्वारिकापुरी के रनिवास में पहुँचे। उन्हें देखते ही सब रानियाँ जोर-जोर से विलाप करने लगीं। अर्जुन उनकी यह दशा न देख सके और स्वयं विलाप करते हुए

मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। मूर्च्छा भंग होने पर वे विलाप करते हुए अपने मामा वसुदेवजी के पास पहुँचे। उन्होंने रोते-रोते अर्जुन को बताया कि श्रीकृष्ण ने मुझसे कहा था कि अब इस कुल का अन्त आ गया है। द्वारिका में अर्जुन आयेगा, उसे सब वृतान्त बता देना और जैसा वह कहे, वैसा करना। अर्जुन ही सबका क्रियाकर्म करेगा। उसके जाते ही द्वारिकापुरी समुद्र में डूब जायेगी। इसलिए जैसा तुम उचित समझो, वैसा करो। मैं यहाँ का सब कुछ तुम्हें सौंप कर योग द्वारा शरीर त्याग करने जा रहा हूँ। ऐसा कहकर वसुदेवजी अर्जुन से विदा हो चले गये। अर्जुन ने समस्त पुरवासियों को एकत्रित कर कहा कि अब शीघ्र ही यह पुरी समुद्र में डूब जायेगी। इसलिए तुम सब लोग मेरे साथ इन्द्रप्रस्थ चलो।

अगले दिन प्रातःकाल ही वसुदेवजी ने प्राण त्याग दिये। देवकी, भद्रा, मदिरा और रोहिणी उनके साथ चिता में बैठकर सती हो गईं। अर्जुन ने बलराम तथा श्रीकृष्ण सहित समस्त मरे हुए यादवों का अंतिम संस्कार किया। इन सब कार्यों से निवृत्त हो उन्होंने समस्त रानियों और पुरवासियों को लेकर इन्द्रप्रस्थ के लिए प्रस्थान किया। अर्जुन सहित यह दल द्वारिकापुरी के जिस-जिस भाग को छोड़ता जाता वह भाग सागर के जल में डूबता जाता। जानेवाले पुरवासी पीछे मुड़कर आश्चर्य से यह दृश्य देख रहे थे।

मार्ग में अर्जुन पंचनद प्रदेश के निकट एक स्थान पर ठहरे। जब आभीर लुटेरों ने देखा कि अर्जुन के साथ असंख्य स्त्रियाँ रत्न-आभूषणों से लदी हुई जा रही हैं तो उन्होंने अवसर

पाकर लाठियों से उन पर धावा बोल दिया। उनकी रक्षा के लिए अर्जुन अपने गांडीव पर प्रत्यञ्चा चढ़ाने लगे, किन्तु वे श्रीकृष्ण के वियोग में इतने क्षीण और दुर्बल हो गये थे कि वे प्रत्यञ्चा न चढ़ा सके। इससे हड़बड़ा कर उन्होंने दिव्यास्त्रों का प्रयोग करना चाहा किन्तु उस हड़बड़ाहट में मंत्र भी भूल गये। परिणाम यह हुआ कि अर्जुन और उनके साथ आये द्वारिका के सैनिक उन स्त्रियों की रक्षा नहीं कर सके और लुटेरे न केवल उन स्त्रियों के रत्न-आभूषणों को लूट कर ले गये, अपितु बहुत सी स्त्रियों को भी अपने साथ ले गये। इस दुर्घटना से अर्जुन बहुत दुःखी और लज्जित हुए। शेष स्त्रियों को लेकर वे कुरुक्षेत्र पहुँचे। वहाँ आकर कृतवर्मा के पुत्र को मार्तिकावत का राज्य सौंपकर भोजवंशी स्त्रियों को उसके पास छोड़ दिया और श्रीकृष्ण के पौत्र वज्रनाभ को इन्द्रप्रस्थ का राजा बनाया।

फिर वे मुनि व्यासजी के आश्रम में पहुँचे। उन्हें दुःखी देखकर व्यासजी ने कहा, "हे अर्जुन! यह जो कुछ हुआ है वह ऋषियों के शाप से हुआ है। यदि मधुसूदन चाहते तो वे यदुकुल को विनाश से बचा सकते थे, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया क्योंकि वे पृथ्वी का भार हल्का करने के लिए आये थे। उसे उतार कर वे अपने लोक चले गये। अब तुम लोगों की महायात्रा का समय भी निकट आ रहा है। अतएव तुम्हें किसी बात का शोक नहीं करना चाहिए।" इसके पश्चात् व्यासजी से विदा हो अर्जुन हस्तिनापुर चले गये।

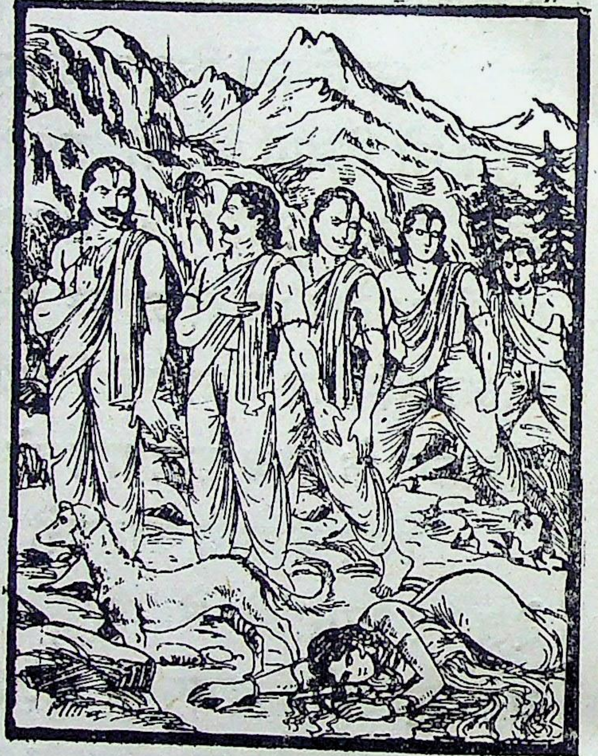
॥ इति मौसल पर्व सम्पूर्ण ॥

॥ ओ३म ॥

महाभारत भाषा

१७. महाप्रस्थानिक पर्व


अग्निदेव के आग्रह पर अर्जुन का गांडीव त्याग


द्रौपदी का भूमि पर गिरना

पहला अध्याय

पाण्डवों का हिमालय गमन, सबका गलना और युधिष्ठिर का सदेह स्वर्ग गमन

वैशंपायनजी बोले—हे राजन् ! जब युधिष्ठिर ने अर्जुन के मुख से श्रीकृष्ण, बलराम, वसुदेव आदि के परलोक गमन का समाचार सुना तो वे शोक विह्वल हो उठे। फिर हृदय में धैर्य धारण कर उन्होंने युयुत्सु को बुलाकर उसके निर्वाह योग्य राज्य उसे सौंप दिया और शेष राज्य का अधिपति अभिमन्यु

के पुत्र परीक्षित को बनाया। सुभद्रा को बुलाकर उन्होंने कहा, "तुम्हारा पौत्र परीक्षित और इन्द्रप्रस्थ का नया राजा वज्रनाभ धर्म के मार्ग पर चलें। अतः उनकी रक्षा का भार तुम्हें सँभालना है।" इसके पश्चात् कृपाचार्य को बुलाकर परीक्षित को उनका शिष्य बनाया और उसकी शिक्षा-दीक्षा का दायित्व उन पर सौंपा। इस कार्य से निबट कर उन्होंने अपने ममेरे भ्राता श्रीकृष्ण तथा बलराम एवं मृत सम्बन्धियों को जलाँजलि देकर उनका श्राद्धादि किया तथा ब्राह्मणों को प्रचुर दान-दक्षिणा देकर सम्मानित किया।

वैशंपायनजी बोले—हे जनमेजय! फिर उन्होंने अपने भाइयों एवं द्रौपदी से परामर्श कर राजसी वस्त्राभूषणों का परित्याग किया और प्रजा से अनुमति ले संन्यासी वेष धारण कर वन के लिए प्रस्थान किया। सभी पुरवासियों ने रोते हुए उन्हें विदा किया। जब वे वन को जा रहे थे तो एक कुत्ता भी उनके पीछे हो लिया। जब पाण्डवगण चलते-चलते उदयाचल के निकट लोहित्य सागर के तट पर पहुँचे तो उन्होंने देखा कि अग्निदेव उनका मार्ग रोके खड़े हैं। वे चलकर अर्जुन के पास आये जो अब भी गाण्डीव धनुष धारण किये हुए थे और बोले, "हे अर्जुन! मैंने यह गाण्डीव धनुष तुम्हें वरुण से लाकर दिया था। उसे अब लौटा दो।" यह सुनकर अर्जुन ने तरकस सहित गाण्डीव जल में फेंक दिया। अग्निदेव तत्काल अन्तर्ध्यान हो गये।

जब वे लोग सब दिशाओं में भ्रमण करते हुए सुमेरुपर्वत पर पहुँचे तो द्रौपदी एकाएक फिसलकर पृथ्वी पर गिर पड़ी।

यह देख भीम ने युधिष्ठिर से पूछा, "भ्राता, द्रौपदी ने तो कभी कोई पाप नहीं किया, फिर भी ये गिर पड़ीं। इसका क्या कारण है ?" युधिष्ठिर ने बताया, "हम सब लोग समान रूप से द्रौपदी के पति थे, परन्तु यह अर्जुन से सर्वाधिक प्रेम करती थी। इसी पक्षपात के कारण द्रौपदी का यह पतन हुआ है।" यह कहकर वे आगे बढ़ गये। कुछ दूर चलने के पश्चात् सहदेव पृथ्वी पर गिर पड़े। भीमसेन के कारण पूछने पर युधिष्ठिर ने बताया, "सहदेव को अपनी विद्वता पर बहुत अधिक अभिमान था। यह उनके अभिमान का फल है।" द्रौपदी और सहदेव की यह दशा देखकर नकुल भी अत्यंत शोकाकुल हो मृत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। जब भीमसेन ने इसका कारण पूछा तो धर्मराज ने कहा, "इन्हें अपने सौन्दर्य का अहंकार था जिसके कारण उनकी यह दशा हुई है। इनके कर्म फल पर शोक न करके आगे चलो।" किन्तु अर्जुन आगे न बढ़ सके। उन्होंने भी दुःखी हो वहीं प्राण त्याग दिये। भीम के जिज्ञासा करने पर युधिष्ठिर ने बताया, "अर्जुन ने एक ही दिन में समस्त शत्रुओं को मार डालने की प्रतिज्ञा की थी, परन्तु उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं की। उसी का यह फल है।" यह कहकर जब युधिष्ठिर आगे बढ़ने लगे तभी भीमसेन भी गिर पड़े। उन्होंने गिरते ही धर्मराज से अपने गिरने का कारण पूछा तो वे बोले, "तुम्हें अपने बल पर बहुत अधिक अहंकार था। इससे तुम सबकी अवज्ञा करते थे। यह उसी का परिणाम है।"

अब केवल युधिष्ठिर और उनके साथ आया हुआ कुत्ता शेष रह गये। तभी इन्द्र ने रथ सहित आकर उनसे रथ पर

बैठकर स्वर्ग चलने का आग्रह किया। युधिष्ठिर बोले, "मेरे भाई और द्रौपदी सब यहीं धराशायी हो गये हैं। इसलिए मैं अकेला स्वर्ग जाना नहीं चाहता।" देवराज इन्द्र ने कहा "वे लोग तो शरीर त्याग करके पहले ही स्वर्ग पहुँच चुके हैं। इस लिए आप निःसंकोच स्वर्ग चलिये और इसी शरीर के साथ चलिये।" युधिष्ठिर बोले, "यह कुत्ता मेरे साथ बराबर चला आ रहा है। इसलिए इसे छोड़कर मैं अकेला स्वर्ग नहीं जाऊँगा।" इन्द्र ने कहा, "कुत्ता स्वर्ग नहीं जा सकता। सच तो यह है कि कुत्ता पालने वाला भी स्वर्ग नहीं जा सकता। उससे देवता रुष्ट हो जाते हैं और उसके सुकर्मों के फल को नष्ट कर देते हैं।" युधिष्ठिर बोले, "चाहे कुछ भी हो। मैं इस स्वामिभक्त कुत्ते का परित्याग नहीं कर सकता।" युधिष्ठिर के इस कथन से इन्द्र प्रसन्न हुए और कुत्ते ने अपना रूप त्याग कर धर्म का स्वरूप ग्रहण कर कहा, "युधिष्ठिर! मैं कुत्ता नहीं, धर्म हूँ और तुम्हें आदेश देता हूँ कि तुम रथ पर बैठकर स्वर्ग जाओ।"

पिता की आज्ञा मानकर युधिष्ठिर स्वर्ग में पहुँचे, परन्तु वहाँ अपने भाइयों और द्रौपदी को न पाकर उनके पास जाने का आग्रह करने लगे।

॥ इति महाप्रस्थानिक पर्व सम्पूर्ण ॥

॥ ओ३म् ॥

महाभारत भाषा

१८. स्वर्गारोहण पर्व

पहला अध्याय

युधिष्ठिर का नरक दर्शन, फिर दिव्य शरीर धारण कर स्वर्ग में आना

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय! अपने भाइयों के पास जाने के लिए व्यग्र युधिष्ठिर ने जब इधर-उधर दृष्टि घुमाई तो देवताओं के मध्य में दुर्योधन को बैठा देखकर उन्हें बड़ा क्रोध आया। वे कहने लगे, "मैं इस लोभी एवं भ्रातृ-द्रोही दुर्योधन के साथ एक क्षण भी स्वर्ग में रहना नहीं चाहता। मुझे मेरे भाइयों के पास पहुँचा दो।" यह सुनकर नारदजी ने समझाया, ''हे युधिष्ठिर! यह स्वर्ग है। यहाँ मृत्यु लोक



युधिष्ठिर का नरक दर्शन

जैसी शत्रुता नहीं चलती। यह ठीक है कि दुर्योधन ने आपको कष्ट दिये हैं, परन्तु उसने क्षात्रधर्म का पालन करके स्वर्ग प्राप्त किया है। इसलिए तुम इससे स्नेहपूर्वक मिलो।"

युधिष्ठिर कहने लगे, "मेरे भाइयों ने भी तो क्षात्रधर्म

का पालन किया था। फिर वे यहाँ दिखाई क्यों नहीं दे रहे हैं? मैं तत्काल उनके पास जाना चाहता हूँ।" युधिष्ठिर का भारी आग्रह देख देवदूत उन्हें ऐसे अंधकारपूर्ण महाभयंकर स्थान में ले गये जहाँ माँस, हड्डी आदि की दुर्गन्ध के कारण साँस लेना भी दुष्कर हो रहा था।

तभी उन्होंने कुछ लोगों की हाहाकार ध्वनि सुनी। "देखिये मैं भीम हूँ, मैं अर्जुन हूँ, मैं कर्ण हूँ, मैं सहदेव हूँ, मैं धृष्टद्युम्न हूँ, मैं द्रौपदी हूँ।" इस प्रकार सब अपना-अपना परिचय देने लगे। इससे रुष्ट होकर युधिष्ठिर ने देवदूत से कहा, "यह कैसा विधान है कि मेरे धर्मात्मा बंधु-बान्धव नरक की भयानक यातनाएँ भोगें और पापी दुर्योधनादि स्वर्ग का आनन्द भोगें। जाओ, तुम देवराज इन्द्र से कह दो, मैं भी अपने भाइयों के साथ इसी नरक में रहूँगा। स्वर्ग में नहीं जाऊँगा।"

तभी इन्द्र वहाँ आकर प्रगट हुए। नरक का सम्पूर्ण दृश्य मनोरम एवं प्रकाशमय हो गया। देवराज ने उन्हें समझाते हुए कहा, "हे तात! आप रुष्ट न हों। मेरी बात ध्यान से सुनें। पुण्यात्मा लोगों को भी अपने अल्प पापों के कारण कुछ समय के लिए नरक देखना पड़ता है। जिनके पाप अधिक और पुण्य कम होते हैं, वे पहले कुछ समय के लिए स्वर्ग में जाते हैं और फिर नरक भोगते हैं। आपके भाइयों के पुण्य अधिक हैं इसलिए वे और दानवीर कर्ण भी नरक भोगकर दीर्घकाल तक स्वर्ग में निवास करेंगे। इसी प्रकार दुर्योधन को शीघ्र नरक प्राप्त होगा। आपको भी अपने पाप कर्म के कारण नरक देखना पड़ा। आपका पाप यह था कि आपने द्रोणाचार्य के वध के समय

अश्वत्थामा के विषय में मिथ्याभाषण किया था।"

दूसरा अध्याय

महाभारत माहात्म्य

वैशंपायनजी बोले—हे राजन् ! इस परम पवित्र ऐतिहासिक ग्रंथ की रचना महर्षि वेदव्यासजी ने तीन वर्ष में की थी। वेदविद्या के महासिन्धु एवं अठारह पुराणों के रचयिता महर्षि वेदव्यास का यह सिंहनाद सुनो। वे कहते हैं--'अठारह पुराण, सम्पूर्ण धर्म-शास्त्र और छहों अंगों सहित चारों वेद एक ओर तथा अकेला महाभारत दूसरी ओर; यह अकेला ही उन सबके बराबर है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के विषय में जो कुछ महाभारत में कहा गया है, वही अन्यत्र है। जो इसमें नहीं है, वह कहीं नहीं है।'

महाभारत का सार चार श्लोकों में कहा गया है। उनका अर्थ इस प्रकार है—जीवात्मा के बारंबार जन्म मरण के कारण संसार में सहस्रों माता-पिता हुए हैं, हो रहे हैं और भविष्य में भी होंगे। अज्ञानी व्यक्तियों को सहस्रों बार हर्ष और शोक के अवसर प्राप्त होते हैं, किन्तु ज्ञानीजन हर्ष अथवा शोक नहीं करते। धर्म का अनुसरण करो। वही अर्थ और काम का देने वाला है। काम, लोभ, भय तथा जीवन के कारण धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए क्योंकि धर्म और सुख दुःख नाशवान हैं। जीव नित्य है, किन्तु जीव कारण शरीरादि अनित्य है।

अतएव प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक महाभारत का नियम बना कर पाठ करना चाहिए।

॥ इति स्वर्गारोहण पर्व सम्पूर्ण ॥

महाभारत ग्रन्थ सर्व शास्त्रों का सारसंग्रह

महाभारत को भारतीय ज्ञान का विश्वकोश कहा जा सकता है, क्योंकि इसमें उस समय तक के सम्पूर्ण ग्रन्थों का सार विद्यमान है। महाभारत के आदि पर्व में कहा गया है।

भूतस्थानानि सर्वाणि रहस्यं त्रिविधं च यत्।
वेदा योगः सविज्ञानो धर्मार्थः काम एव च ।।४८।।
धर्मार्थकामयुक्तानि शास्त्राणि विविधानि च।
लोकयात्रा विधानं च सर्वं तद् दृष्टवानृषिः ।।४६।।
इतिहासाः सवैयाख्या विविधाः श्रुतयोऽपि च।
इह सर्वमनुक्रांत मुक्तं ग्रंथस्य लक्षणम् ।।५०।।
(महाभारत. आदि. अ. १)

"सम्पूर्ण भूतों के स्थान, सब विविध रहस्य, वेद, योगशास्त्र, विज्ञान, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, लोकयात्रा सम्बन्धी विविध शास्त्र, इतिहास, कथा आदि सब ज्ञान इस महाभारत में संगृहित है।"

यह सब ज्ञान यहां होना ही इस महाभारत का लक्षण है। लेखक ने स्वयं कहा है—

(१) मैंने यह भारत रूपी एक अपूर्व काव्य निर्माण किया है। इसमें ये विषय हैं—(२) वेदों का रहस्य, (३) उपनिषदों का तत्व, (४) अङ्ग उपाङ्गों की व्याख्या (५) इतिहास और पुराण का विकास, (६) भूत, भविष्य, वर्तमान इन तीनों कालों का निरूपण, (७) बुढ़ापा, मृत्यु, भय, व्याधि, भाव, अभाव आदि का विचार, (८) त्रिविध धर्म और आश्रम के लक्षण (९) चार वर्णों के धर्म, (१०) पुराणों में कथित आचार, (११) तपस्या और ब्रह्मचर्य का वर्णन, (१२) पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारा तथा चारों युगों का प्रमाण, (१३) ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अध्यात्म आदि का विचार (१४) न्याय, शिक्षा, (१५) चिकित्सा, (१६) दान, (१७) पाशुपत आदि मतों का विचार, (१८) दिव्य जन्म और मानुष जन्म का विचार, (१९) पुण्य तीर्थ, दिशा, नदी, पर्वत, वन, सागर, दिव्य नगर आदिका वर्णन, (२०) युद्ध कौशल का वर्णन, (२१) भिन्न-भिन्न जातियों के आचार विशेष, (२२) विविध लोक व्यवहार आदि का पूर्ण वर्णन तथा (२३) सर्व व्यापक आत्मा का वर्णन किया है।

हम कह सकते हैं कि, कौरव पाण्डवों के काव्यमय इतिहास के कथन के बहाने इस महाभारत में विविध शास्त्र ही कहे गये हैं। यदि पाठक महाभारत का अभ्यास करने के समय इस मुख्य बात को ठीक प्रकार स्मरण रखेंगे तो ही वे महाभारत के अभ्यास से अधिक से अधिक लाभ उठा सकते हैं। अर्थात्—

१. महाभारत एक अपूर्व काव्य ग्रंथ है,

२. कौरव-पाण्डवों के इतिहास के मिष से उसमें विविध शास्त्रों का वर्णन है।

३. पूर्वोक्त वेदादि शास्त्रों का संग्रह करना यह इस ग्रंथ का मुख्य उद्देश्य है। और—

४. इस उद्देश्य के अनुसार इसमें वेदादि शास्त्रों से लेकर अन्य सम्पूर्ण शास्त्र—जो इस महाभारत काल में विद्यमान थे, उनका संग्रह किया गया है।

अर्थात् यह ग्रंथ वास्तव में एक काव्यरूप सारग्रंथ, विश्वकोश (Encyclopidia), सारसंग्रह, सर्वशास्त्रसार-संग्रह ग्रंथ है। इसमें अन्य शास्त्रों के साथ-साथ इतिहास भी है। यह महाभारत ग्रंथ की विशेषता है। महामुनि व्यास की अन्य प्रतिज्ञा भी यहाँ देखने योग्य है—

भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः।
(श्री. भागवत. १।४।२८)

"भारत के मिष से वेद का ही अर्थ प्रदर्शित किया है।" तथा और देखिये—

स्त्रीशूद्रद्विजबंधूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा।
कर्मश्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह ।।
इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम् ।।
(श्री. भागवत. १।४।२५)

"स्त्री, शूद्र और द्विजबंधु अर्थात् मूढ द्विज ये लोग श्रुति का अर्थ समझ नहीं सकते, इसलिये इन मूढों को श्रेयः प्राप्ति का उपाय ज्ञात हो जाय, इस हेतु से व्यास मुनि ने भारत नामक आख्यान रचा है।" अर्थात् जो मूढ लोग प्रत्यक्ष वेद मंत्र पढ़कर अर्थ नहीं समझ सकते, उनको वेदोक्त सनातन धर्म का ज्ञान देने के लिये महाभारत की रचना की गई है।

पाठक यदि महाभारत मनन के साथ पढ़ेंगे तो उनको यहां सैकड़ों विद्याओं और शास्त्रों का सार स्थान-स्थान

पर दिखाई देगा। किसी न किसी कथा का मिष दिखला कर उसमें किसी शास्त्र का सार बताया गया है। इस प्रकार काव्यमय इतिहास और इतने विविध शास्त्रों का संग्रह जिसमें इकट्ठा किया गया है, ऐसा यही एक अपूर्व ग्रन्थ है। इसकी तुलना किसी अन्य मनुष्य निर्मित ग्रंथ के साथ हो ही नहीं सकती। जिस समय यह अपूर्व ग्रंथ निर्माण हुआ उस समय इसकी अपूर्वता का अनुभव विद्वानों ने भी किया था।

महाभारत में लिखा है—

"अज्ञानी लोगों के अज्ञान को दूर करके इस भारत रूपी अन्जन से जनता के ज्ञान नेत्र खोल दिए गए हैं? इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का वर्णन विस्तार से और संक्षेप से होने के कारण इस भारत सूर्य ने मानवों का अन्धेरा दूर किया है। पुराण पूर्ण चन्द्र के उदय होने से ही अर्थात् भारत ग्रंथरूपी चन्द्रोदय होने से ही श्रुति रूपी चांदनी प्रकट होकर मनुष्यों के बुद्धि-रूप कमलों की प्रसन्नता हो गई है! मोहरूपी आवरण का नाश करने वाले इस महाभारत रूपी इतिहास-प्रदीप से मनुष्यों के आंतरिक हृदय मन्दिर में अत्यन्त उत्तम प्रकाश हो चुका है।"

यह महाभारत का वर्णन कोई अत्युक्तिका नहीं है। महाभारत में सम्पूर्ण शास्त्रों का सार होने से ही अनेक शास्त्रों के अध्ययन का कार्य इस एक के अध्ययन से होने के कारण उक्त वर्णन बिल्कुल यथार्थ है, इसमें किसी को सन्देह नहीं हो सकता। महाभारत में ही लिखा है—

"पूर्व काल में सब देवताओं ने मिलकर तराजू की एक ओर चारों वेद और दूसरी ओर इस महाभारत को चढ़ाकर तोल किया था, इससे रहस्य सहित चारों वेदों से यही भारी निकला! उस दिन से लोग इसको महाभारत कहने लगे, क्योंकि बड़ाई और गुरुआई में यह बढ़कर है।"

इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि तत्वज्ञान की दृष्टि से वेदों की अपेक्षा महाभारत श्रेष्ठ है। उक्त वर्णन का यह तात्पर्य नहीं है। वेद और उपनिषद् तत्वज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त श्रेष्ठ ग्रंथ हैं, परन्तु उनको यथार्थ रीति से समझने वाले सहस्रों में एक दो विद्वान होंगे, परन्तु महाभारत की कथाओं से बोध लेकर समझने वाले मनुष्य अनेक मिल सकते हैं; क्योंकि इसमें जो धर्मशास्त्र का विषय प्रतिपादन किया गया है, वह अज्ञानी जनों के समझने में आने योग्य सुगम रीति से किया गया है, तथा इतिहास के साथ धर्म तत्वों का बोध सम्मिलित होने के कारण महाभारत के पढ़ने से निःसन्देह पाठकों के अन्दर "व्यवहार—चातुर्य" आ सकता है। महाभारतकार लिखता है—

"जो विद्वान अङ्गों सहित चार वेद और सम्पूर्ण उपनिषद् जानता है, परन्तु महाभारत का जिसने अध्ययत नहीं किया वह विचक्षण अर्थात् चतुर नहीं कहा जा सकता। अपार बुद्धिमान् व्यास देव जी ने यह महाभारत अर्थशास्त्र, कामशास्त्र और धर्म शास्त्र करके बनाया है जिस प्रकार कोकिल का मधुर शब्द सुनने के पश्चात् कौवे का शब्द सुनना कोई नहीं चाहता, उसी प्रकार महाभारत कथा का श्रवण करने के पश्चात् अन्य कथा श्रवण करने की इच्छा ही नहीं होती। जिस प्रकार अन्न भक्षण करने के बिना शरीर धारण का कोई उपाय नहीं है, उसी प्रकार इस महाभारत के आश्रय के बिना कोई भी उपाख्यान नहीं है।"

यह वर्णन देखने से भी महाभारत का महत्व ध्यान में आ सकता है। वेद और उपनिषद् निःसन्देह तत्वज्ञान के ग्रंथ हैं, उन के पढ़ने से मनुष्य ज्ञान सम्पन्न हो सकता है; परन्तु चतुरता प्राप्त करने के लिए ऐसे पुरुषों के इतिहास पढ़ने चाहियें कि, जिन्होंने वेदों और उपनिषदों का तत्वज्ञान अपने जीवन में ढाला है और उस तत्वज्ञान का जीवन व्यतीत करने के लिये विरोधियों के साथ विविध प्रकार के युद्ध किये हैं।

"सत्य धर्म का पालन करना चाहिए" यह वेदों ओर उपनिषदों की आज्ञा है, इसका पालन धर्मराज और हरिश्चन्द्र ने किया, विरोधियों के साथ सत्याग्रह करके अपना और सत्य का विजय जगत् में उद्घोषित किया (१) वेद की आज्ञा और (२) उसका पालन करने वाले सत्पुरुषों का जीवन चरित्र इन दोनों का ठीक-ठीक बोध होने से मनुष्य चातुर्य सम्पन्न हो सकता है।

मनुष्य के लिये चार पुरुषार्थ करना आवश्यक हैं, और उन चारों पुरुषार्थों के साधक उपदेश इस महाभारत में व्यासदेवजी ने दिये हैं, यथा उक्त श्लोकों में और भी स्पष्ट रूप से यह कहा है कि महाभारत में जो कथा है वही अन्यत्र है और दूसरे किसी मनुष्य कृत ग्रन्थ में ऐसी कोई कथा नहीं है कि, जो महाभारत की कथा के आश्रय से रची नहीं हैं। इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि यह महाभारत ग्रन्थ उस समय के सम्पूर्ण शास्त्रों और विविध ग्रंथों का एक प्रकार का "सार संग्रह ग्रन्थ" है। और इसकी रचना में संपादक अथवा लेखक ने ऐसी योजना की है कि, अपने समय के सम्पूर्ण ग्रंथों का सारभूत तत्वज्ञान इसमें संगृहित हो जाय और ऐसा कोई भी ग्रंथ न रहे कि जिसका सारभूत तत्वज्ञान इसमें न आया हो। इस प्रकार की योजना महाभारत में होने और इसमें उस समय के

सम्पूर्ण ग्रन्थों का सार होने के कारण ही कहते हैं कि—

"व्यासोच्छिष्टं जगत् सर्वम्।"

"सम्पूर्ण जगत् व्यास का उच्छिष्ट ही है।" अर्थात् सब ग्रंथ व्यास के उच्छिष्ट ही हैं। ऐसा एक भी ग्रंथ नहीं था कि जो व्यास ने नही चखा और उसका रस अपने ग्रंथ में नहीं लिया। अस्तु, इस रीति से विचार करने पर पाठकों को पता लग जायगा कि, कौरवों के इतिहास के अतिरिक्त भी महाभारत की विशेष योग्यता है और वह योग्यता इस ग्रंथ के सार संग्रहरूप होने से ही है। आज कल के सार संग्रह ग्रंथों में और महाभारत में भेद यह है, कि आजकल के सार संग्रह आद्योपांत पढ़े नहीं जा सकते और यह ग्रन्थ रसपूर्ण होने से पढ़ा जाता है।

कौरव पाण्डवों का इतिहास देते हुए विविध शास्त्रों और ग्रन्थों के सार ऐसी युक्ती से इसमें दिये है, कि ग्रंथ पढ़ते-पढ़ते अन्य विविध शास्त्रों का विचार भी मन में न लाते हुए, पाठक उन शास्त्रों के तत्वों के साथ परिचित हो जाते हैं! पाठक इस बात का विचार मन में लावें और महाभारत की योग्यता जानने का यत्न करें।

यह ग्रंथ "सार संग्रह ग्रंथ" होने के अतिरिक्त इतिहास की दृष्टि से भी इसका अत्यन्त महत्व है। पाण्डव कालीन आर्यों की सामाजिक, राष्ट्रीय तथा आर्थिक अवस्था किस प्रकार थी, इसका निश्चित ज्ञान इस ग्रंथ के पढ़ने से हो जाता है। जिस समय मनुष्यों में कुटुम्ब के बन्धन नहीं थे, उस समय से पाण्डवों के समय तक का सामाजिक उन्नति का इतिहास महाभारत में है। अर्थात् कम से कम बीस हजार वर्षों का सामाजिक उत्क्रांति का इतिहास इसमें है। इतने विस्तृत समय का इतिहास किसी अन्य ग्रन्थ में निश्चय से नहीं है।

इसके अतिरिक्त धर्मराज की धर्मनिष्ठा और सत्य-निष्ठा, भीमसेन की शक्ति और सरल वृत्ति, अर्जुन का अद्भुत पराक्रम, नकुल सहदेवों की बंधुप्रीति, द्रौपदी गांधारी आदि आर्य स्त्रियों का अद्भुत चारित्र्य, श्रीकृष्ण भगवान का राजनीतिपटुत्व, भीष्म का अखंड ब्रह्मचर्य और धर्म ज्ञान, धृतराष्ट्र का पुत्र प्रेम, दुर्योधन की साम्राज्यवर्धन की प्रबल इच्छा, कर्ण का औदार्य और स्वाभिमान, इत्यादि महाभारतीय पुरुषों के स्वभाव गुणों का परिणाम जो पाठकों के मन के ऊपर हो सकता है, और उससे जो मनुष्यों के स्वभाव में अद्भुत उच्चता आ सकती है वह विलक्षण ही महत्व रखती है।

तात्पर्य अनेक दृष्टि से देखने पर भी महाभारत के पढ़ने से अत्यन्त लाभ होना स्वाभाविक है, इसलिए पाठकों से निवेदन है कि, वे इस ग्रंथ का पूर्ण निष्ठा से पठन और मनन करें और स्वयं बोध लें, तथा अपने बाल-बच्चों के मनों पर भी उसका संस्कार डाल दें।

—:o:—

महाभारत में श्रीकृष्ण

श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में आजकल अनेकों प्रकार की मनमानी कल्पनाएँ की जाती हैं। कोई कहते हैं कि श्रीकृष्ण ऐतिहासिक पुरुष नहीं थे। कोई कहते हैं कि श्रीकृष्ण नाम के व्यक्ति कुछ हजार वर्ष पूर्व हुए तो हैं, वे केवल एक लोकोत्तर मानव थे। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण का जो स्वरूप मिलता है, वह तो विशुद्ध ज्ञान है। वैसे कोई व्यक्ति जगत् में नहीं हुए। कुछ लोगों का कहना है कि श्रीकृष्ण नाम के अनेक व्यक्ति हो चुके हैं—भागवत के श्रीकृष्ण अलग थे और महाभारत के अलग। यही नहीं, कुछ तो यहाँ तक कह बैठते हैं कि वृन्दावन के श्रीकृष्ण और थे, मथुरा के और तथा द्वारिका के श्रीकृष्ण तीसरे ही थे। प्रस्तुत लेख में महाभारत के आधार पर यह दिखलाने की चेष्टा की जायगी कि महाभारत और भागवत के श्रीकृष्ण एक ही थे और वे पूर्णतम पुरुषोत्तम थे। गीता में उन्होंने जो अपना स्वरूप बतलाया है, वह उनका वास्तविक स्वरूप है और महाभारत के विभिन्न स्थलों से इसी बात की पुष्टि होती है।

× × ×

जगन्नियन्ता, देवाधिदेव, अखिललोकपति भगवान् नारायण वासुदेव ही श्रीकृष्ण के रूप में अवतीर्ण हुए थे, भागवत की भाँति महाभारत ने भी इस बात को स्वीकार किया है। धर्मराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में

बड़े-बड़े महर्षियों के साथ देवर्षि नारद भी यज्ञ की शोभा को देखने के लिये पधारते हैं। अन्यान्य राजाओं के साथ भगवान् श्रीकृष्ण को सभामण्डप में उपस्थित देखकर उन्हें भगवान् नारायण के भूमण्डल पर अवतीर्ण होने की बात स्मरण हो आती है और वे मन-ही-मन पुण्डरीकाक्ष श्री हरि का चिन्तन करने लगते हैं। इसके बाद सभा में जब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि आगन्तुक महानुभावों में सर्वप्रथम किसकी पूजा की जाय, उस समय कुरुकुल वृद्ध वीर शिरोमणि महात्मा भीष्म यह कहते हुए कि 'मैं तो भूमण्डलभर में श्रीकृष्ण को ही प्रथम पूजने के योग्य समझता हूँ' भरी सभा में उनकी महिमा का बखान करने लगते हैं। वे कहते हैं—

'वासुदेव ही इस चराचर विश्व के उत्पत्ति एवं प्रलय-स्वरूप हैं और इस चराचर प्राणि-जगत् का अस्तित्व उन्हीं के लिये है। वासुदेव ही अव्यक्त प्रकृति, सनातन कर्ता और समस्त प्राणियों के अधीश्वर हैं, अतएव परम पूजनीय हैं।'

देवर्षि नारदजी भी इस प्रस्ताव का अनुमोदन करते हैं। यही नहीं, इस प्रस्ताव का अनुमोदन करने वाले सहदेव पर देवता लोग आकाश से पुष्पवृष्टि करते हैं और आकाशवाणी भी 'साधु-साधु' कहकर उनकी सराहना करती है।

श्रीकृष्ण के बालचरित्रों का वर्णन साक्षात्‌रूप से महाभारत में नहीं मिलता। इसका कारण यही है कि उन चरित्रों का महाभारत के मुख्य कथानक से कोई सम्बन्ध नहीं है। अवश्य ही हरिवंशपर्व में, जो महाभारत का ही परिशिष्ट भाग है, इस कमी को पूरा किया गया है। फिर भी प्रसङ्गवश महाभारत के विभिन्न पात्रों द्वारा श्रीकृष्ण की बाललीलाओं का यत्र-तत्र उल्लेख हुआ है। भीष्मपितामह के उपर्युक्त प्रस्ताव का विरोध करते हुए चेदिराज शिशुपाल, जो श्रीकृष्ण का जन्म से ही विरोधी था और रुक्मिणी-हरण के बाद से तो उनसे और भी अधिक जलता था, बालकपन में क्रमशः उनके द्वारा पूतना, बकासुर, केशी, वृषासुर और कंस के मारे जाने, शकट के गिराये जाने तथा गोवर्धन पर्वत के उठाये जाने आदि का उल्लेख करता है। यद्यपि इन सब घटनाओं का उल्लेख उसने श्रीकृष्ण की निन्दा के तात्पर्य से ही किया है, फिर भी उसने इन सबकी सचाई को स्वीकार किया है। शत्रुओं के द्वारा वर्णन किये हुए इन अलौकिक चित्रों से श्रीकृष्ण की लोकोत्तरता तो प्रकट होती ही है; साथ ही जो लोग भागवत के श्रीकृष्ण को महाभारत के श्रीकृष्ण से भिन्न मानते हैं, उन्हें अपने मत पर पुनर्विचार करने के लिये पर्याप्त कारण भी मिल जाता है। अस्तु, इस प्रसङ्ग पर शिशुपाल ने श्रीकृष्ण को तथा उनकी प्रशंसा करने वाले भीष्मपितामह को बहुत-कुछ खोटी-खरी सुनायी। किन्तु श्रीकृष्ण वीरतापूर्वक उसके सारे अपराधों को सहते रहे। अन्त में जब उन्होंने देखा कि अन्य सभासदों के समझाने पर भी वह किसी प्रकार शान्त नहीं होता, तब उन्होंने अपने सुदर्शनचक्र का स्मरण किया और सबके देखते-देखते उस तीखी धार वाले चक्र से उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। उस समय सभा में उपस्थित सब लोगों ने देखा कि शिशुपाल के शरीर से एक बड़ा भारी तेज का पुञ्ज निकला और जगद्वन्द्य श्रीकृष्ण को प्रणाम कर उन्हीं के शरीर में प्रवेश कर गया। इस अलौकिक घटना से श्रीकृष्ण की भगवत्ता तो प्रमाणित होती ही है, साथ ही जो लोग वहाँ उपस्थित थे, उन्हें इस बात का भी प्रत्यक्ष प्रमाण मिल गया कि चाहे कोई कैसा भी पापी क्यों न हो, भगवान् के हाथ से मारे जाने पर उसकी सायुज्य-मुक्ति हो जाती है, वह भगवान् के स्वरूप में लीन हो जाता है। यही उनकी अनुपम दयालुता है। वे मारकर जीव का भी उद्धार ही करते हैं। फिर पाण्डवों की भाँति जो उनसे प्रेम करते हैं, उनके हाथों वे अपने को बेच दें—इसमें आश्चर्य ही क्या है।

× × ×

दुष्ट दुःशासन के द्वारा अपमानित द्रौपदी जिस समय असहाय होकर श्रीकृष्ण को पुकारती है, उस समय वह उन्हें 'गोपीजनवल्लभ', 'व्रजनाथ' आदि नामों से स्मरण करती है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि वृन्दावन के श्रीकृष्ण और द्वारिका के श्रीकृष्ण अलग-अलग व्यक्ति नहीं थे। अस्तु, द्रौपदी की उस करुण पुकार को सुनते ही करुणामय केशव द्वारिका से दौड़े आते हैं और धर्मरूप से उसके वस्त्र में छिपकर द्रौपदी की लाज बचाते हैं क्या किसी मानव के द्वारा दूरस्थित अपने भक्त की इस प्रकार अलौकिक ढंग से रक्षा सम्भव है?

× × ×

धर्मात्मा पाण्डव जुए में अपना सब कुछ गँवाकर वनवास का कष्ट उठा रहे थे। श्रीकृष्ण भी वहाँ पधारे हुए थे। उस समय महातपस्वी चिरजीवी मार्कण्डेय मुनि स्वतः पाण्डवों के पास आते हैं और बातों-ही-बातों में उन्हें श्रीकृष्ण की महिमा सुनाने लगते हैं। प्रलयकाल का अपना अनुभव सुनाकर वे कहते हैं कि 'अनन्त जलराशि के बीच वटपत्र पर शयन करने वाले अद्भुत शिशु के रूप

में मैंने जिन परमात्मा का दर्शन किया था, वे ये ही तुम्हारे सम्बन्धी श्रीकृष्ण हैं। इन्हीं के वरदान के प्रभाव से मेरी अखंड स्मृति बनी हुई है और मैंने हजारों वर्षों की आयु पायी है।'

एक बार पाण्डवों की अहितकामना से दुर्योधन के भेजे हुए सुलभकोप महर्षि दुर्वासा अपने दस हजार शिष्यों के साथ वनवासी पाण्डवों के अतिथि बनकर आये। भगवान् भास्कर से महाराज युधिष्ठिर को एक ऐसा चमत्कारी वर्तन प्राप्त हुआ था, जिसमें पकाये हुए अन्न से वे चाहे जितने अतिथियों को भरपेट भोजन करा सकते थे। परन्तु ऐसा तभी तक सम्भव था, जब तक कि द्रौपदी भोजन नहा कर लेती थी। दुर्योधन के कुचक्र से दुर्वासा ऐसे समय में ही पहुँचे जबकि द्रौपदी सबको भोजन करा कर स्वयं खा चुकी थी। अतिथिवत्सल धर्मात्मा युधिष्ठिर ने मुनि मण्डली को भोजन के लिये आमन्त्रित किया और मुनि स्नान एवं नित्य कर्म से निवृत्त होने के लिये गङ्गा तीर पर गये। ऐसे विकट समय में हजारों ब्राह्मणों को भोजन कराने का कोई साधन न देखकर द्रौपदी के मन में बड़ी चिन्ता हुई। उसने मन-ही-मन अपने परम हितू तथा आत्मीय श्रीकृष्ण का स्मरण किया और वे तुरन्त दौड़े हुए वहाँ आये। आते ही उन्होंने कहा—'बहिन! मुझे बड़ी भूख लगी है; जल्दी कुछ खाने को दे।' द्रौपदी ने उन्हें सारी बात कह सुनाई। वह बोली कि मैं अभी-अभी भोजन करके उठी हूँ, उस पात्र में अब कुछ भी नहीं बचा है। श्रीकृष्ण ने इसको बात को टालते हुए कहा कि 'लाओ वह पात्र कहाँ है? मैं देखूँ तो।' द्रौपदी ने पात्र लाकर भगवान् के सामने उपस्थित कर दिया! श्रीकृष्ण ने देखा कि उसके गले में कहीं एक साग का पत्ता चिपका रह गया है, उसी को मुँह में डालकर उन्होंने कहा कि 'इस साग के पत्ते से यज्ञभोक्ता विश्वात्मा भगवान् श्रीहरि तृप्त हो जाएँ।' इसके बाद उन्होंने सहदेव से कहा कि 'जाओ, मुनि मण्डली को भोजन के लिये बुला लाओ।' सहदेव गङ्गातीर पर जाकर देखते हैं कि वहाँ कोई नहीं है। बात यह हुई कि जिस समय भगवान् ने साग का पत्ता मुंह में डालकर वह संकल्प पढ़ा, उस समय मुनि जल में खड़े होकर अघमर्षण कर रहे थे। उन सबको ऐसा अनुभव हुआ कि मानो उनका पेट गले तक अन्न से भर गया है। तब तो वे बहुत डरे और यह सोचकर कि पाण्डवों के यहाँ जो रसोई बनी होगी वह व्यर्थ जायगी, पाण्डवों के क्रोध की आशंका से चुपचाप भाग निकले। वे यह जानते थे कि पाण्डव भगवद्भक्त हैं और अम्बरीष के यहाँ उन पर जो कुछ बीती थी, उसके बाद से उन्हें भगवान् के भक्तों से बड़ा डर लगने लगा था। सहदेव उन्हें गंगातीर पर न देखकर लौट आये। इस प्रकार शरणागतवत्सल श्रीहरि ने अपने अतिथियों की रक्षा की। धन्य भक्तवत्सलता! इस प्रकार के चरित्रों से स्पष्ट ही श्रीकृष्ण की भगवत्ता और सर्वव्यापकता सूचित होती है।

× × ×

संजय धृतराष्ट्र के मन्त्री और कृपापात्र थे। कौरवों के दूत बनकर उपप्लव्य में पाण्डवों के पास जाते हैं और वहाँ से लौटकर धृतराष्ट्र को उनका सन्देश सुनाते हैं। उसी प्रसंग में श्रीकृष्ण की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं—'श्रीकृष्ण यदि चाहें तो संकल्पमात्र से इस सम्पूर्ण जगत् को जलाकर भस्म कर डालें; परन्तु सारा जगत् श्रीकृष्ण को जलाकर भस्म नहीं कर सकता। जहाँ सत्य है, जहाँ धर्म है, जहाँ लज्जा-संकोच है और जहाँ सरलता है, वहीं श्रीकृष्ण हैं; और जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहीं विजय है। भगवान् श्रीकृष्ण अपनी योगशक्ति से कालचक्र, जगत्-चक्र और युगचक्र को रात-दिन चलाया करते हैं। वे ही काल के, मृत्यु के एवं चराचर जगत् के स्वामी हैं।' महाभारत के रचयिता महर्षि वेदव्यास भी उस समय वहाँ उपस्थित थे। वे भी संजय की उक्ति का समर्थन करते हुए कहते हैं—'राजन्! संजय बिल्कुल ठीक कह रहा है। यह माया को वश में रखने वाले, पुराणपुरुष, सबके अन्तर्यामी श्रीकृष्ण के स्वरूप को जानता है। यदि तुम एकाग्र मन से इसकी बात सुनोगे तो यह तुम्हें संसार-भय से छुड़ा देगा।'

जिस समय श्रीकृष्ण पाण्डवों की ओर से सन्धि का प्रस्ताव लेकर कौरवों की सभा में जाते हैं, उस समय परशुराम, कण्व, नारद आदि अनेकों महर्षि एवं देवर्षि उनका दिव्य एवं नीतिपूर्ण भाषण सुनने के लिए वहाँ उपस्थित होते हैं और मन्त्रमुग्ध की भाँति श्रीकृष्ण की दिव्य वाणी सुनते हैं। जब श्रीकृष्ण अपना धर्ममय सन्देश कह चुकते हैं, उस समय ये महर्षिगण भी क्रमशः उनके प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए दुर्योधन को समझाते हैं और साथ ही उसे श्रीकृष्ण की महिमा भी सुनाते हैं। वे उसे बतलाते हैं कि सम्पूर्ण जगत् के रचने वाले, सबके प्रभु एवं सबके शुभाशुभ कर्मों के साक्षी भगवान् नारायण ही श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट हैं; किन्तु दुर्योधन के सिर पर तो काल नाच रहा था, इसीलिये उसने इन महात्माओं की हित भरी वाणी पर ध्यान नहीं दिया और उल्टे श्रीकृष्ण पर खीझकर वह उन्हें कैद करने का उपाय सोचने

लगा। श्रीकृष्ण को उसकी इस कपटभरी चाल का पता लग गया। उन्होंने सबके सामने उसे फटकारते हुए कहा—'अरे दुष्ट! तू यह समझ रहा है कि मैं अकेला हूँ और इसीलिये मेरा पराभव करके मुझे कैद करना चाहता है? परन्तु तुझे यह नहीं मालूम है कि सारे पाण्डव, सारे अंधक और सारे वृष्णि यहीं हैं तथा आदित्य, रुद्र, वसु एवं सम्पूर्ण महर्षि भी यहीं हैं।' यों कहकर श्रीकृष्ण जोर से हँसे। उसी समय उनके अंगों में बिजली के समान कान्ति वाले ब्रह्मादिक देवता दीखने लगे। उन सबके शरीर अँगूठे के परिमाण के थे। और वे अपने अंगों से अग्नि की चिनगारियाँ छोड़ रहे थे। श्रीकृष्ण के ललाट में ब्रह्मा, वक्षःस्थल में रुद्र तथा भुजाओं में इन्द्रादि लोकपाल विराजमान थे। यही नहीं—अग्नि, आदित्य, साध्य, वसु, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, विश्वेदेव तथा यक्ष, किन्नर, गन्धर्व आदि सभी वहाँ मौजूद थे। श्रीकृष्ण की दाहिनी भुजा से गाण्डीवधारी अर्जुन और बायीं भुजा से हलायुध बलराम प्रकट हो गये। युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल, सहदेव तथा प्रद्युम्न आदि अन्धक एवं वृष्णिवंशी यादव उनकी पीठ में से प्रकट हुए तथा अपने अस्त्र-शस्त्रादि से सुसज्जित होकर श्रीकृष्ण के आगे खड़े हो गये। शङ्ख, चक्र, गदा, शक्ति, शार्ङ्ग धनुष एवं खड्ग आदि सब दमकते हुए आयुध भी श्रीकृष्ण की भुजाओं में सुशोभित हो गए। उनके नेत्रों, नथुनों तथा कान के छिद्रों में से भीषण अग्नि की लपटें निकलने लगीं तथा रोमकूपों में से सूर्य की-सी किरणें फूटने लगीं।

श्रीकृष्ण के ऐसे भयानक रूप को देखकर उपस्थित सभी राजा लोग भय के मारे काँपने लगे और उन्होंने अपनी-अपनी आँखें मूंद लीं। केवल आचार्य द्रोण, भीष्म-पितामह, महात्मा विदुर एवं संजय तथा तपोधन ऋषि ज्यों-के-त्यों बैठे रहे। उनको भगवान् ने दिव्यदृष्टि दे दी थी। उस समय देवता दुन्दुभि बजाने और आकाश से फूल बरसाने लगे। धृतराष्ट्र की प्रार्थना पर भगवान् ने उन्हें भी दिव्यदृष्टि-सम्पन्न कर दिया और वे भगवान् के उस चमत्कारी विग्रह को देखकर चकित हो गये। थोड़ी ही देर में भगवान् ने अपने उस दिव्य विग्रह को समेट लिया और तत्काल सभाभवन में से उठकर चल दिये। श्रीकृष्ण की भगवत्ता का इससे बड़ा प्रमाण और क्या होगा?

× × ×

भीष्म पर्व के अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीता में तो भगवान् श्रीकृष्ण की महिमा कूट-कूटकर भरी हुई है। वहाँ वे अर्जुन को खुले शब्दों में अपने श्रीमुख से समझाते हैं कि 'मैं अजन्मा, अविनाशी ईश्वर हूँ। साधुओं की रक्षा, दुष्टों के विनाश तथा धर्म की स्थापना के लिए मैं समय-समय पर अवतार लेता हूँ' यही नहीं, वे यह भी बतलाते हैं कि 'जो मेरे जन्म कर्मों की दिव्यता को तत्व से जान लेता है, वह जन्म-मरण के चक्कर से सदा के लिए छूट जाता है'। इसी से यह मालूम होता है कि श्रीकृष्ण हम लोगों की भाँति जन्मने-मरने वाले साधारण मनुष्य नहीं थे। जो स्वयं बार-बार जन्मता और मरता है, उसके जन्म का रहस्य जानकर कोई जन्म-मरण से कैसे छूटेगा। आगे चलकर वे बतलाते हैं कि 'सारा जगत् मुझी से उत्पन्न होता है और मुझी में विलीन हो जाता है, मेरे सिवा और कुछ नहीं है' स्पष्ट शब्दों में वे अर्जुन को समझाते हैं कि 'मैं अपनी योगमाया से अपनी भगवत्ता छिपाये रहता हूँ, इसी से अज्ञानी लोग मुझे पहचान नहीं पाते और मुझ अजन्मा एवं अविनाशी को जन्मने-मरने वाला मनुष्य मान बैठते हैं'। श्रीकृष्ण जब अपने दिव्य विग्रह से इस भूतल पर विद्यमान थे, उस समय भी कंस, जरासंध, शिशुपाल, दुर्योधन आदि अनेकों ऐसे व्यक्ति मौजूद थे, जो उन्हें साधारण मनुष्य समझकर उनकी अवहेलना कर बैठते थे। ऐसी दशा में आजकल के लोग उनकी अनुपस्थिति में उनके विषय में अनेक प्रकार की ऊँची-नीची कल्पनाएँ अथवा कुतर्क करें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है।

इतना ही नहीं, अपनी अतुल महिमा का प्रत्यक्ष कराने के लिये श्रीकृष्ण अर्जुन को कृपापूर्वक अपने विश्वरूप का दर्शन कराते हैं। अर्जुन ने देखा कि शरीर से हजारों सूर्यों की आभा निकल रही है; सारे देवता, ऋषि एवं अन्यान्य भूत समुदाय उनके शरीर में मौजूद हैं; उनके अनेक भुजाएँ, पेट, मुख और नेत्र हैं; वे सब ओर से अनन्त हैं; उनका आदि, मध्य, अन्त-कुछ भी नहीं दिखाई देता। अर्जुन ने यह भी देखा कि भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि कौरव-पक्ष के बड़े-बड़े योद्धा उनकी भयानक दाढ़ों में पीसे जा रहे हैं। और सारे लोक उनके मुंह में समा रहे हैं। श्रीकृष्ण के इस विकराल रूप को देखकर अर्जुन भयभीत होकर उनकी स्तुति करने लगते हैं और मित्र के नाते अब तक जो उनके साथ समानता का बर्ताव करते आये थे, उसके लिए उनसे क्षमा माँगते हैं। अर्जुन को भयभीत देखकर भगवान् अपने उस कालरूप को समेट लेते हैं और पुनः श्यामसुन्दर रूप में उनके सामने प्रकट हो जाते हैं। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने अर्जुन को यह प्रत्यक्ष करके दिखा दिया कि जो उनके सामने त्रिभुवन मोहन श्यामसुन्दर के रूप में सदा प्रकट रहते थे, जगत् भी वे ही बने हुए हैं और वे ही जगत् से परे रहकर उसे बनाते-बिगाड़ते रहते हैं। उन्हें इस प्रकार यथार्थ रूप

में जानना, देखना और पाना—उनकी भक्ति से ही संभव है अतएव भगवान् अन्त में अर्जुन को यही उपदेश देते हैं कि 'तू मेरा ही चिन्तन कर, मुझसे ही प्रेम कर, मेरा ही भजन-पूजन कर तथा और सबका भरोसा छोड़कर मेरी ही शरण में आ जा'।

यही भगवद्गीता का अन्तिम उपदेश है। श्रीकृष्ण का भी वास्तविक स्वरूप वही है, जो भगवद्गीता में व्यक्त हुआ है। वे जगत् से अतीत, कूटस्थ आत्मा से भी श्रेष्ठ, पूर्णतम पुरुषोत्तम हैं। उनका यह रूप अनन्य भाव से उनके शरण होने से ही समझ में आता है अत: श्रीकृष्ण क्या हैं, यह समझने के लिए हमें अपनी बुद्धि का अभिमान छोड़-कर उनकी शरण ग्रहण करनी पड़ेगी। उनके शरणापन्न होने पर अर्जुन की भाँति वे अपना स्वरूप स्वयं समझा देंगे। तब अर्जुन के ही स्वर में स्वर मिलाकर हम कह उठेंगे—'प्रभो! तुम्हारी कृपा से मेरा अज्ञान दूर हो गया, तुम्हारा वास्तविक स्वरूप मेरी समझ में आ गया। अब मैं सन्देहरहित होकर जो तुम कहोगे, वही आँखें मूंद कर करूँगा'। इसके बाद हमारे द्वारा जो कुछ भी चेष्टा होगी, वह प्रभुप्रेरित ही होगी। हम सब कुछ करते हुए भी कुछ नहीं करेंगे। यही गीता की परम नैष्कर्म्यसिद्धि है। ऐसे लोगों के लिए ही भगवान् ने कहा है कि वे सारे जगत् का संहार करके भी कुछ नहीं करते। वे भगवान् के हाथ के यन्त्र बन जाते हैं।

× × ×

कुरुवृद्ध पितामह भीष्म भी भगवान् के ऐसे ही यन्त्र थे। अर्जुन के बाणों से मर्माहत होकर शरशैय्या पर पड़े हुए वे इच्छानुसार शरीर छोड़ने के लिये उत्तरायण सूर्य की बाट देख रहे थे। युद्ध समाप्त होने के बाद जब युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हो गया, तब एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण समस्त पाण्डवों को साथ में लेकर भीष्म के मुख से सबको धर्म का उपदेश सुनाने के लिये कुरुक्षेत्र के मैदान में गये। श्रीकृष्ण को आया देखकर भीष्म हर्ष से गद्गद् हो गये और बड़े प्रेम से उनकी स्तुति करने लगे। श्रीकृष्ण ने भी भीष्म की बड़ी प्रशंसा की और यह कहते हुए कि 'तुम्हारे शरीर छोड़कर इस लोक से जाने के साथ ही सारा ज्ञान भी यहाँ से विदा हो जायगा' पाण्डवों को ज्ञानोपदेश देने की प्रार्थना की।

भीष्म ने कहा—'प्रभो! मेरा मन तो बाणों की पीड़ा से खिन्न हो रहा है, अंग-अंग में वेदना हो रही है तथा प्रतिभाशक्ति लुप्त हो गई है। मेरे मर्मस्थानों में आग-सी लग रही है, मेरी वाणी रुकी-सी जाती है। ऐसी दशा में मैं उपदेश कैसे दे सकूंगा। मुझे तो दिशाओं का ज्ञान भी नहीं रह गया है। मैं तो केवल आपकी शक्ति से जी रहा हूँ। इसीलिये नाथ! आप मुझे क्षमा करें और पाण्डवों को स्वयं उपदेश देने की कृपा करें; क्योंकि सारे शास्त्रों के उद्‌गम स्थान तो आप ही हैं। आपके सामने बोलता हुआ तो बृहस्पति भी हिचकेगा, औरों की बात ही क्या है। जैसे गुरु की उपस्थिति में शिष्य उपदेश नहीं दे सकता है'। इस पर श्रीकृष्ण ने भीष्म को वरदान दिया कि 'अब तुम्हें न ग्लानि होगी, न मूर्च्छा होगी, न दाह होगा, न पीड़ा होगी और न भूख-प्यास ही सतायेगी। तुम्हें मेरी कृपा से सब ज्ञान अपने-आप भासने लगेंगे और तुम्हारी बुद्धि निरन्तर सत्त्वगुण में स्थित रहेगी।' उस समय व्यास आदि अनेकों महर्षि भी वहाँ उपस्थित थे। उन सबने वेद मन्त्रों एवं स्तोत्रों के द्वारा श्रीकृष्ण की पूजा की, आकाश से पुष्पवृष्टि हुई।

दूसरे दिन से भीष्म ने अपना उपदेश आरम्भ किया। श्रीकृष्ण की कृपा से उनका दाह, मोह, थकावट, ग्लानि और पीड़ा सब एक साथ नष्ट हो गए। उनकी वाणी और मन में बल आ गया फिर तो उन्होंने वर्णाश्रमधर्म, राजधर्म, आपद्धर्म, मोक्षधर्म, श्राद्धधर्म, दानधर्म, स्त्री-धर्म आदि अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों पर लगातार कई दिनों तक उपदेश दिया। अन्त में सूर्य जब उत्तरायण में आ गये तब महात्मा भीष्म ने भगवान् श्रीकृष्ण के सामने योग-धारणा से शरीर त्याग दिया और दिव्यलोक में चले गये। उस समय देवताओं ने दुन्दुभियाँ बजायीं और आकाश से पुष्पवृष्टि हुई। पाण्डवों ने विधिवत् उनके और्ध्वदैहिक संस्कार किये।

× × ×

इस प्रकार धर्मराज को हस्तिनापुर के राज्य में प्रतिष्ठित कर भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका लौट आये। रास्ते में उन्हें महातेजस्वी उत्तङ्क ऋषि मिले। श्रीकृष्ण के मुख से कौरवों के विनाश की बात सुनकर उत्तङ्क को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कहा—'श्रीकृष्ण! कौरव तुम्हारे सम्बन्धी और प्रिय थे। तुमने शक्ति रहते भी उनकी रक्षा नहीं की, उन्हें बलपूर्वक युद्ध से रोका नहीं; इसलिये मैं तुम्हें शाप दूंगा।' श्रीकृष्ण ने कहा—'कोई भी पुरुष तप के बल से मेरा तिरस्कार नहीं कर सकता, अत: आप अपने क्रोध को सँभालिये। मैं जानता हूँ कि आप तपस्वी एवं गुरु-भक्त हैं, अतएव मैं आपका नाश नहीं करना चाहता।' इसके अनन्तर श्रीकृष्ण ने दयापूर्वक उन्हें बतलाया कि समस्त भूतों का रचने वाला और संहार करने वाला 'मैं ही हूँ। जब-जब युग-परिवर्तन होता है, तब-तब मैं प्रजा की हितकामना से भिन्न-भिन्न योनियों में जन्म लेकर धर्म

की स्थापना करता हूँ, तब मैं उसी योनि के अनुरूप व्यवहार करता हूँ। इस समय मैं मनुष्य बना हूँ, अतएव मनुष्य का-सा व्यवहार करता हूँ। मैंने मनुष्य की भांति दीनतापूर्वक कौरवों से सन्धि के लिये प्रार्थना की तथा भय भी दिखलाया; परन्तु उन लोगों ने मोहवश मेरी बात नहीं सुनी, अतः वे सब मारे गये। परन्तु युद्ध में लड़कर मरने से उन सबों ने अच्छी गति प्राप्त की है' इसके बाद उत्तङ्क की प्रार्थना पर श्रीकृष्ण ने उन्हें अपने विश्वरूप का दर्शन कराया और फिर द्वारिका को लौट गये।

× × ×

उत्तङ्क की भाँति श्रीकृष्ण को एक बार गान्धारी के भी कोप का शिकार बनना पड़ा था। युद्ध-समाप्ति के बाद अपने मृत बान्धवों का अग्नि संस्कार करने तथा उन्हें जलाञ्जलि देने के लिए राजा धृतराष्ट्र पाण्डवों तथा गान्धारी, कुन्ती, द्रौपदी आदि समस्त कुरुवश की स्त्रियों को साथ लेकर कुरुक्षेत्र के मैदान में गये हुए थे। वहां इन लोगों ने देखा कि उनके पुत्र, भाई, पिता और पतियों की लाशें जमीन पर पड़ी हुई हैं और मांसाहारी पशु-पक्षी उनके मांस को नोच-नोचकर खा रहे हैं। उस भयानक दृश्य को देखकर कुरुवंश की सभी स्त्रियाँ पछाड़ खाकर गिर पड़ीं और आर्त्तनाद करने लगीं। पतिपरायणा गान्धारी भी शोक के वेग को न सँभाल सकने के कारण मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। थोड़ी देर बाद जब उसे होश आया तो वह श्रीकृष्ण की ओर रोषभरी दृष्टि से देखती हुई कहने लगी—'श्रीकृष्ण ! तुम चाहते तो इस भयानक नरसंहार को रोक सकते थे। परन्तु शक्ति रहते भी तुमने इसे रोका नहीं। अतः पति की सेवा करके मैंने जो कुछ तप का सञ्चय किया, उसके बल पर मैं तुम्हें शाप देती हूँ कि जिस प्रकार कौरवों के नाश की तुमने उपेक्षा की, उसी प्रकार तुम अपने ही सम्बन्धियों के नाश के कारण बनोगे। आज से छत्तीसवें वर्ष तुम्हारे सजातीय, मन्त्री एवं पुत्रों का नाश हो जायगा और तुम स्वयं वन में विचरते हुए साधारण से उपाय से अनाथ की भाँति मारे जाओगे और लोग इस बात को जान भी न पायेंगे।'

श्रीकृष्ण चाहते तो गान्धारी के शाप को भी व्यर्थ कर सकते थे। परन्तु उन्हें यादवों का विनाश अभीष्ट था। महाभारत युद्ध से उनके अवतार के उद्देश्य—भूभार-हरण—की अधिकांश में पूर्ति हो चुकी थी। यादवों का संहार कराकर उन्हें उस यज्ञ की पूर्णाहुति करनी थी। परन्तु उनके रहते और किसी की सामर्थ्य न थी कि वह यादवों का बाल भी बाँका कर सके। इसीलिए गान्धारी के शाप को निमित्त बनाकर उन्होंने परस्पर युद्ध के द्वारा अपने बान्धवों का नाश कराना ही ठीक समझा। इसीलिये उन्होंने गान्धारी के असाधारण पतिव्रत-बल का आदर करते हुए उसके शाप को सहर्ष अङ्गीकार किया और समय आने पर सारे यादव-कुल को आपस में ही लड़ाकर मरवा दिया।

× × ×

इस प्रकार अपने अवतार का प्रयोजन सिद्ध हो जाने पर भगवान् ने परमधाम में पधारने का निश्चय किया और गान्धारी के शाप को चरितार्थ करने के लिये वे इन्द्रिय, वाणी और मन को सर्वथा रोककर समाधि में स्थित हो गये। उसी समय उन्हीं की प्रेरणा से जरा नाम का एक उग्र शिकारी शिकार की खोज में उधर आ निकला। उसने मृग के धोखे से समाधि की दशा में निश्चेष्ट पड़े हुए श्रीकृष्ण के एक पैर के तलुए में बाण का प्रहार किया। पास आने पर जब उसे अपनी भूल मालूम हुई, तब तो उसने भयभीत होकर श्रीकृष्ण के दोनों चरण पकड़ लिये। श्रीकृष्ण उसे आश्वासन देते हुए अपने दिव्य धाम में चले गये।

इधर जब पाण्डवों ने यादवों के विनाश तथा श्रीकृष्ण के परमधाम गमन की बात सुनी तो इन्हें बड़ा दुःख हुआ। इन्होंने भी अपने पौत्र अभिमन्युकुमार परीक्षित को राजगद्दी पर बिठाकर तथा धृतराष्ट्र-पुत्र युयुत्सु को उसकी देखभाल के लिये नियुक्त कर हिमालय के लिये प्रस्थान किया। हिमालय को लाँघकर वे आगे मेरु पर्वत की ओर बढ़ने लगे। इसी बीच में क्रमशः द्रौपदी, सहदेव, नकुल, अर्जुन एवं भीम आयु शेष हो जाने के कारण रास्ते में ही गिर पड़े। अकेले धर्मराज एक कुत्ते को लेकर आगे बढ़े और सदेह स्वर्ग पहुंच गये। वहाँ उन्होंने देवनदी गङ्गा में स्नान किया और वहीं अपने मनुष्य शरीर को त्यागकर दिव्य शरीर धारण किया। उसी दिव्य शरीर से वे भगवान् के परमधाम में गये। वहाँ उन्होंने ब्रह्मरूप (चिन्मय) शरीर धारण किये श्रीकृष्ण को देखा। चक्रादि उनके आयुध दिव्य पुरुष-विग्रह धारण करके उनकी सेवा कर रहे थे। तेजस्वी वीर अर्जुन भी उनकी सेवा में मौजूद थे।

यही है श्रीकृष्ण का स्वरूप और यह है उनके शरणागत होकर उनके चरणों में निश्छल प्रीति करने का सुमधुर फल ! श्रीकृष्ण नित्य हैं, वे आज भी अपने भक्तों को दर्शन देकर उनके साथ क्रीड़ा कर उन्हें आनन्द देते हैं। हम भी चाहें तो उनके अभय चरणों की शरण ग्रहण कर सदा के लिये अभय हो सकते हैं। बोलो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की जय !!!



महाभारत के कुछ आदर्श पात्र

भीष्मपितामह

महात्मा भीष्म प्रसिद्ध कुरुवंशी महाराज शान्तनुके पुत्र थे। ये गङ्गादेवीसे उत्पन्न हुए थे। वसु नामक देवताओंमें 'द्यौ' नामके नवम वसु ही महर्षि वशिष्ठके शापसे भीष्मके रूपमें अवतीर्ण हुए थे। इन्होंने कुमारावस्थामें ही साङ्गोपाङ्ग वेदोंका अध्ययन तथा अस्त्रोंका अभ्यास कर लिया था। अस्त्रोंका अभ्यास करते हुए इन्होंने एक बार अपने बाणोंके प्रभावसे गङ्गाकी धाराको रोक ही दिया था। इन्हें बचपनमें लोग देवव्रत कहते थे।

एक दिन राजर्षि शान्तनु वनमें विचर रहे थे। उनकी दृष्टि एक सुन्दरी कैवर्तराजकी कन्यापर पड़ी, जिसका नाम सत्यवती था और उसपर वे आसक्त हो गये। उन्होंने उससे विवाह करना चाहा। सत्यवती थी तो एक राजकन्या, परंतु वह कैवर्तराजके घर पली थी! उसके पिता कैवर्तराजने उसके विवाहके लिये राजाके सामने यह शर्त रक्खी कि उसके गर्भसे जो पुत्र हो, वही राजका अधिकारी हो। राजाने उसकी यह शर्त मंजूर नहीं की; परंतु वे उस कन्याको भी न भुला सके। वे उसीकी पानेकी चिन्तामें उदास रहने लगे। देवव्रतको जब उनकी उदासीका कारण ज्ञात हुआ तो वे स्वयं कैवर्तराजके पास गये और उससे अपने पिताके लिये कन्याकी याचना की। उन्होंने उसकी शर्त मंजूर करते हुए सबके सामने यह प्रतिज्ञा की कि 'इसके गर्भसे जो पुत्र होगा, वही हमारा राजा होगा।' परन्तु कैवर्तराजको इतनेपर भी संतोष नहीं हुआ। उसने सोचा कि देवव्रतका वचन तो कभी अन्यथा नहीं होनेका, परंतु इनका पुत्र राज्यका अधिकारी हो सकता है। बुद्धिमान् देवव्रत उसका अभिप्राय समझ गये। उन्होंने उसी समय यह दूसरी कठिन प्रतिज्ञा की कि 'मैं आजीवन ब्रह्मचर्यका पालन करूँगा।' कुमार देवव्रतकी इस भीषण-प्रतिज्ञाको सुनकर देवताओंने पुष्पवर्षा की और तभीसे इन्हें लोग 'भीष्म' कहने लगे। भीष्मने सत्यवतीको ले जाकर अपने पिताको सौंप दिया। भीष्मका यह दुष्कर कार्य सुनकर राजा शान्तनु बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने पुत्रको इच्छा-मृत्युका वरदान दिया। इस प्रकार भीष्मने जीवनके आरम्भमें ही पिताकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये संसारके सामने अलौकिक त्यागका आदर्श स्थापित किया। जिस राज्यके लिये उनकी दो ही पीढ़ी बाद उन्हींके बेटों-पोतोंमें तथा उन्हींकी मौजूदगीमें भीषण संहारकारी महायुद्ध हुआ, उसी राज्यको उन्होंने बात-की-बातमें अपने पिताकी एक मामूली-सी इच्छापर न्यौछावर कर दिया। जिन कामिनी-काञ्चनके लिये संसारके इतिहासमें न जाने कितनी बार खून-खराबा हुआ है और राज्य-के-राज्य ध्वंस हो गये हैं, उनका सदाके लिये तृणवत् परित्याग कर उन्होंने एक विरक्त महात्माका-सा आचरण किया। धन्य पितृभक्ति!

सत्यवतीके गर्भसे महाराज शान्तनुके दो पुत्र हुए। बड़ेका नाम था चित्राङ्गद और छोटेका विचित्रवीर्य। अभी चित्राङ्गद जवान नहीं हो पाये थे कि राजा शान्तनु इस लोकसे चल बसे। चित्राङ्गद राजा हुए, परंतु वे कुछ ही दिन बाद गन्धर्वोंके साथ युद्धमें मारे गये। विचित्रवीर्य भी अभी बालक ही थे, अतः वे भीष्मकी देख-रेखमें राज्यका शासन करने लगे। कुछ दिन बाद भीष्मको विचित्रवीर्यके विवाहकी चिन्ता हुई। उन्हीं दिनों काशीनरेशकी तीन कन्याओंका स्वयंवर होने जा रहा था। भीष्म अकेले ही रथपर सवार हो काशी पहुँचे। इन्होंने अपने भाईके लिये बलपूर्वक कन्याओंको हरकर अपने रथपर बिठा लिया और उन्हें हस्तिनापुर ले चले। इसपर स्वयंवरके लिये एकत्र हुए सभी राजालोग इनपर टूट पड़े, परंतु उनकी एक भी न चली। इन्होंने अकेले ही सबको परास्त कर दिया और कन्याओंको लाकर विचित्रवीर्यके सुपुर्द कर दिया। उस समय संसारको इनके अलौकिक पराक्रम तथा अस्त्रकौशलका प्रथम बार परिचय मिला।

भीष्म काशिराजकी तीन कन्याओंको हरकर ले आये थे। उनमें सबसे बड़ी कन्या अम्बा मन-ही-मन राजा शाल्वको वर चुकी थी। भीष्मको जब यह मालूम हुआ, तो उन्होंने अम्बाको वहाँसे विदा कर दिया और शेष दो कन्याओंका विचित्रवीर्यसे विवाह कर दिया। परंतु विचित्रवीर्य अधिक दिन जीवित न रहे। विवाहके कुछ ही वर्ष बाद वे क्षयरोगके शिकार हो इस संसारसे चल बसे। उनके कोई संतान न थी। फलतः कुरुवंशके उच्छेदका प्रसङ्ग उपस्थित हो गया। भीष्म चाहते तो वे आसानीसे राज्यपर अधिकार कर सकते थे। प्रजा उनके अनुकूल थी ही। वंशरक्षाके लिये विवाह करनेमें भी अब उनके सामने कोई अड़चन नहीं थी। परन्तु बड़े-से-बड़ा प्रलोभन तथा आवश्यकता भी भीष्मको अपने

वचनसे नहीं डिगा सकती थी। सत्यवतीके पिताके की हुई प्रतिज्ञाको दुहराते हुए एक समय उन्होंने कहा था—'मैं त्रिलोकीका राज्य, ब्रह्माका पद और इन दोनोंसे अधिक मोक्षका भी परित्याग कर सकता हूँ, पर सत्यका त्याग नहीं कर सकता। पाँचों भूत अपने-अपने गुणोंको त्याग दें, चन्द्रमा शीतलता छोड़ दे; और तो क्या, स्वयं धर्मराज भले ही अपना धर्म छोड़ दें; परंतु मैं अपनी सत्यप्रतिज्ञा छोड़नेका विचार भी नहीं कर सकता।' प्रतिज्ञाका पालन हो तो ऐसा हो।

इधर, अम्बाको शाल्वने स्वीकार नहीं किया। वह न इधरकी रही, न उधरकी। लज्जाके मारे वह पिताके घर भी न जा सकी। अपनी इस दुर्दशाका कारण भीष्मको समझकर वह उन्हें मन-ही-मन कोसने लगी और उनसे बदला लेनेका उपाय सोचने लगी। अपने नाना राजर्षि होत्रवाहनकी सलाहसे वह जमदग्निनन्दन परशुरामकी शरणमें गयी और उनसे अपने दुःखका कारण निवेदन किया। भीष्मने परशुरामसे अस्त्रविद्या सीखी थी। उन्होंने भीष्मको कुरुक्षेत्रमें बुलाकर कहा कि 'इस कन्याका बलपूर्वक स्पर्श करके तुमने इसे दूषित कर दिया है; इसीलिये शाल्वने इसे स्वीकार नहीं किया। अतः अब तुम्हींको इसका विधिपूर्वक पाणिग्रहण करना होगा।' भीष्मने उनकी बात स्वीकार नहीं की। उन्होंने कहा कि 'इस कन्याने ही मुझसे कहा था कि मैं शाल्वकी हो चुकी हूँ। ऐसी हालतमें मैं उसे कैसे रख सकता था। जिसका दूसरे पुरुषपर प्रेम है, उसे कोई धार्मिक पुरुष कैसे रख सकता है। अब तो परशुराम आगबबूला हो गये। उन्होंने कहा—'भीष्म! तुम जानते नहीं कि मैंने इक्कीस बार इस पृथ्वीको क्षत्रियोंसे हीन कर दिया था!' भीष्मने कहा—'गुरुजी! उस समय भीष्म पैदा नहीं हुए थे।' यह सुनकर उन्होंने भीष्मको युद्धके लिये ललकारा। भीष्मने उनकी चुनौती स्वीकार कर ली। फिर तो गुरु-शिष्यमें भयङ्कर युद्ध छिड़ गया। तेईस दिनतक लगातार युद्ध होता रहा। परंतु किसीने भी हार नहीं मानी। अन्तमें देवताओंने तथा मुनियोंने बीचमें पड़कर युद्ध बंद करा दिया। इस प्रकार भीष्मने परशुरामकी बात भी न मानकर अपने सत्यकी रक्षा की तथा अपने अद्भुत पराक्रमसे परशुराम-जैसे अद्वितीय धनुर्धरके भी छक्के छुड़ा दिये। सत्यप्रतिज्ञा और वीरताकी पराकाष्ठा हो गयी।

भगवान् वासुदेव जब कौरवसभामें सन्धिका प्रस्ताव लेकर गये और सभामें अपना वक्तव्य सुनाया तो भीष्मजीने दुर्योधनको समझाते हुए कहा था कि, 'श्रीकृष्ण हम सबके सुहृद् हैं, हमारा कल्याण चाहते हैं, अतएव अभिमान छोड़कर इनकी बात माननी चाहिये। हे तात! यदि महापुरुष श्रीकृष्णकी बात नहीं मानोगे तो कदापि तुम्हारा कल्याण न होगा और न तुम सुख प्राप्त कर सकोगे।' * यही नहीं भीष्मने दुर्योधनको बारंबार सत्यका उपदेश दिया, बराबर पाण्डवोंसे मिल-जुलकर रहनेके लिये कहा; परन्तु दुर्योधनने उनकी एक न मानी और अन्तमें दुर्योधनकी हठधर्मीसे महाभारतका युद्ध आरम्भ हुआ।

महाभारत-युद्धमें कौरवपक्षके सर्वश्रेष्ठ योद्धा भीष्म ही थे। अतएव कौरवदलके प्रथम सेनानायक होनेका गौरव इन्हींको प्राप्त हुआ। पाण्डव एवं कौरव दोनोंके पितामह होनेके नाते इनका दोनोंसे ही समान प्रेम एवं सहानुभूति थी तथा ये दोनोंका ही समानरूपमें हित चाहते थे। फिर भी, यह जानकर कि धर्म एवं न्याय पाण्डवोंके ही पक्षमें है, ये पाण्डवोंके साथ विशेष सहानुभूति रखते थे और हृदयसे उनकी विजय चाहते थे; परन्तु हृदयसे पाण्डवोंके पक्षपाती होनेपर भी इन्होंने युद्धमें कभी पाण्डवोंके साथ रियायत नहीं की, और प्राणपणसे उन्हें जीतनेकी चेष्टा की।

भीष्मका यह ढंग महाभारतकारको नहीं रुचा। इसलिये भीष्मके मुखसे कहलाया—

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः॥

---

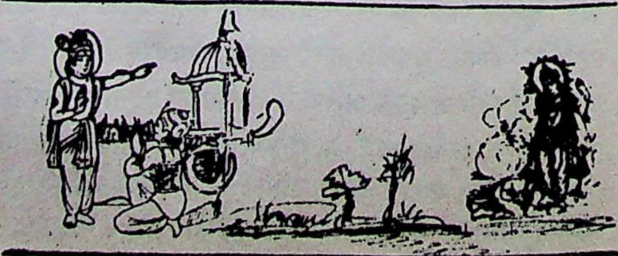
* अकृत्वा वचनं तात केशवस्य महात्मनः।
श्रेयो न जातु न सुखं न कल्याणमवाप्स्यसि॥
(उद्योग० १२५। ३)

भगवान् श्रीकृष्णने जब सन्धिका प्रस्ताव किया, तो भीष्मने उसे स्वीकार करनेके लिये दुर्योधनको बहुतेरा समझाया, पर वह न माना। तब पितामह अत्यन्त खिन्न होकर बोले—

शुश्रूषमनसूयं च ब्रह्मण्यं सत्यवादिनम्।
प्रतियोत्स्यामहे पार्थमतो दुःखतरं नु किम्॥
(उद्योग० १३९। ३)

'सदा सेवा करनेवाले, किसीसे द्वेष न करनेवाले, सत्यवादी, धर्मात्मा युधिष्ठिरके विरुद्ध मुझे युद्ध करना पड़ेगा, इससे बढ़कर दुःखकी बात और क्या हो सकती है।'

भीष्म जानते थे कि वासुदेव श्रीकृष्ण स्वयं नारायण ही हैं, और वे सन्धिका प्रयास करने आये हैं। दुर्योधन उनकी बातोंकी उपेक्षा कर रहा है, अतः इसका सर्वनाश निश्चित है।



'पुरुष अर्थका दास हैं, पर अर्थ किसीका दास नहीं है। हे महाराज! यह सत्य है। कौरवोंने मुझे अर्थसे बाँध लिया है।'

युद्धके अठारह दिनोंमेंसे दस दिनोंतक अकेले भीष्मने कौरवोंका सेनानायकत्व किया और इस बीचमें पाण्डव-पक्षकी बहुत-सी सेनाका संहार कर डाला। वृद्ध होते हुए भी युद्धमें इन्होंने ऐसा अद्भुत पराक्रम दिखाया कि दो बार स्वयं भगवान् श्रीकृष्णको अर्जुनकी रक्षाके लिये शस्त्र न लेनेकी प्रतिज्ञा होते हुए भी इनके मुकाबलेमें खड़ा होना पड़ा। अर्जुनका बल क्षीण होते देख एक बार तो वे चक्र लेकर इसके सामने दौड़े और दूसरी बार चाबुक लेकर उन्होंने भीष्मको ललकारा और इस प्रकार एक भक्तके प्राणोंकी रक्षा करते हुए दूसरे भक्तके गौरवको बढ़ाकर अपनी उभयतोमुखी भक्तवत्सलताका परिचय दिया। पश्चात् भीष्म रणकर्कश होकर पाण्डव सेनाका संहार करने लगे। उस समयका वर्णन करते हुए सञ्जय कहते हैं कि, 'अन्तमें पाण्डवोंने जब देखा कि भीष्मके रहते कौरवोंपर विजय पाना असम्भव-सा है, तब उन्होंने स्वयं पितामहसे उनकी मृत्युका उपाय पूछा और उन्होंने दया करके बताया कि 'द्रुपदकुमार शिखण्डी स्त्रीरूपमें जन्मा था; इसलिये यद्यपि वह अब पुरुषके रूपमें बदल गया है, फिर भी मेरी दृष्टिमें वह स्त्री ही है। ऐसी दशामें उसपर मैं शस्त्र नहीं उठा सकता। वह यदि मेरे सामने युद्ध करने आयेगा तो मैं शस्त्र नहीं चलाऊँगा। उस समय मुझे अर्जुन मार सकता है।' क्षत्रिय-धर्मके पालन और वीरताका उदाहरण इससे बढ़कर क्या होगा?

जिस समय युद्धमें मर्माहत होकर भीष्म धराशायी हुए, उस समय उनका रोम-रोम बाणोंसे बिंध गया था। उन्हीं बाणोंपर वे सो गये, धरतीसे उनका स्पर्श नहीं हुआ। उस समय सूर्य दक्षिणायनमें थे। दक्षिणायनको देहत्यागके लिये उपयुक्त काल न समझकर वे अयन-परिवर्तनके समयतक उसी शरशय्यापर पड़े रहे; क्योंकि पिताके वरदानसे मृत्यु उनके अधीन थी। भीष्मजीके गिरते ही उस दिन युद्ध बंद हो गया। कौरव तथा पाण्डव वीर भीष्मजीको घेरकर उनके चारों ओर खड़े हो गये। भीष्मजीका सारा शरीर बाणोंपर तुला हुआ था, केवल उनका सिर नीचे लटक रहा था। उसके लिये उन्होंने कोई सहारा माँगा। लोगोंने उत्तमोत्तम तकिये लाकर उनके सामने रख दिये, परंतु उन्हें वे पसंद नहीं आये। तब उन्होंने अर्जुनसे कहा—'बेटा! तुम क्षत्रियधर्मको जानते हो, तुम मेरे अनुरूप तकिया लाकर दो।' अर्जुन उन वीरशिरोमणिके अभिप्रायको समझ गये। वीरोंके इशारे वीर ही समझ सकते हैं। उन्होंने बाण मारकर भीष्मजीके मस्तकको ऊँचा कर दिया, उन बाणोंपर उनका मस्तक टिक गया। इधर दुर्योधनने बाण निकालनेमें कुशल वैद्योंको भीष्मजीकी चिकित्साके लिये बुलवाया, परन्तु पितामहने उन सबको सम्मानपूर्वक लौटा दिया। उस वीरगतिको पाकर उन्होंने चिकित्सा कराना अपना अपमान समझा। सब लोग उनकी असाधारण धर्मनिष्ठा और साहस देखकर दंग रह गये। उस समय भी युद्ध बंद कराने तथा दोनों पक्षोंमें शान्ति स्थापन करानेकी इन्होंने पूरी चेष्टा की; परंतु उसमें ये सफल नहीं हुए। दैवका ऐसा ही विधान था। उसे कौन टाल सकता था।'

बाणोंकी असह्य वेदनासे भीष्मजीका गला सूख रहा था, उनका सारा शरीर जल रहा था। उन्होंने पीनेके लिये पानी माँगा। लोगोंने झारियोंमें भरकर शीतल और सुगन्धित जल उनके सामने उपस्थित किया। भीष्मने उसे लौटा दिया। उन्होंने कहा कि 'पहले भोगे हुए मानवीय भोगोंको अब मैं स्वीकार नहीं कर सकता; क्योंकि इस समय मैं शरशय्यापर पड़ा हूँ।' तब उन्होंने अर्जुनको बुलाकर कहा—'बेटा! तुम्हीं मुझे विधिवत् जल पिला सकते हो।' अर्जुनने 'जो आज्ञा' कहकर अपने भाथेमेंसे एक दमकता हुआ बाण निकाला और उसे पर्जन्यास्त्रसे संयोजितकर भीष्मके बगल-वाली जमीनपर मारा। उसी समय सबके देखते-देखते पृथ्वीमेंसे दिव्य जलकी एक धारा निकली और वह ठीक भीष्मजीके मुखपर गिरने लगी। उस अमृतके समान जलको पीकर भीष्मजी तृप्त हो गये और अर्जुनके उस कर्मकी उन्होंने भूरि-भूरि प्रशंसा की। उसी समयसे भीष्मजीने अन्न-जलका त्याग कर दिया और फिर जितने दिन वे जीवित रहे, बाणोंकी मर्मान्तक पीड़ाके साथ-साथ भूख-प्यासकी असह्य वेदना भी सहते रहे। इस प्रकार उन्होंने वीरताके साथ-साथ धैर्य एवं सहन-शक्तिकी पराकाष्ठा दिखा दी।

महामना भीष्म अखण्ड ब्रह्मचारी, आदर्श पितृभक्त, आदर्श सत्यप्रतिज्ञ एवं आदर्श वीर ही नहीं थे, वे शास्त्रोंके महान् ज्ञाता, धर्म एवं ईश्वरके तत्त्वको जाननेवाले एवं महान् भगवद्भक्त भी थे। उनके अगाध ज्ञानकी स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने प्रशंसा की और यहाँतक कह दिया कि 'आपके इस लोकसे चले जानेपर सारे ज्ञान लुप्त हो जायँगे; संसारमें जो संदेहग्रस्त विषय हैं, उनका समाधान करनेवाला आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है' इत्यादि। भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणा एवं शक्तिसे इन्होंने युधिष्ठिरको लगातार कई दिनोंतक वर्णाश्रमधर्म, राजधर्म, आपद्धर्म, मोक्षधर्म, श्राद्धधर्म, दान-धर्म, स्त्रीधर्म आदि अनेक महत्त्वपूर्ण विषयोंपर उपदेश दिया, जो महाभारतके शान्तिपर्व तथा अनुशासनपर्वमें संगृहीत है। साक्षात् धर्मके अंशसे उत्पन्न हुए तथा धर्मकी प्रत्यक्ष मूर्ति महाराज युधिष्ठिरकी धर्म-विषयक शङ्काओंका निवारण करना भीष्मका ही काम था। इनका उपदेश सुननेके लिये व्यास आदि महर्षि भी उपस्थित हुए थे।

भगवान् श्रीकृष्णके माहात्म्य एवं प्रभावका ज्ञान जैसा भीष्मको था, वैसा उस समय बहुत कम लोगोंको था। धृतराष्ट्र एवं दुर्योधनको इन्होंने कई बार श्रीकृष्णकी महिमा सुनायी थी। राजसूय यज्ञमें जब महाराज युधिष्ठिरने पितामहसे पूछा कि यहाँ सबसे पहले किसको अर्घ्य निवेदन करना चाहिये, तब भीष्मजीने उत्तर दिया—

एष ह्येषां समस्तानां तेजोबलपराक्रमैः।
मध्ये तपन्निवाभाति ज्योतिषामिव भास्करः॥
असूर्यमिव सूर्येण निर्वातमिव वायुना।
भासितं ह्लादितं चैव कृष्णेनेदं सदो हि नः॥

(सभा० ३६। २८, २९)

ये भगवान् श्रीकृष्ण इन सब राजाओंके बीचमें अपने तेज, बल और पराक्रमके द्वारा इस प्रकार देदीप्यमान हो रहे हैं, जैसे ग्रह-नक्षत्रोंमें सूर्यनारायण। जैसे अन्धकारपूर्ण स्थान सूर्यके उदयसे आभासित होता है, जैसे निर्वात स्थान पवनके झोंकेसे आह्लादित हो उठता है, उसी प्रकार श्रीकृष्णके द्वारा हमारी यह सभा आभासित और आह्लादित हो रही है।

भीष्मजीके इस कथनके उपरान्त श्रीकृष्णकी सर्वप्रथम पूजा की गयी। इसपर शिशुपाल बिगड़ गया, तब भीष्मजीने उसको फटकारते हुए कहा—

नास्मै देयो ह्यनुनयो नायमर्हति सान्त्वनम्।
लोकवृद्धतमे कृष्णे योऽर्हणां नाभिमन्यते॥
अस्यां हि समितौ राज्ञामेकमप्यजितं युधि।
न पश्यामि महीपालं सात्वतीपुत्रतेजसा॥
न हि केवलमस्माकमयमर्च्यतमोऽच्युतः।
त्रयाणामपि लोकानामर्चनीयो महाभुजः॥
तस्मात्सत्स्वपि वृद्धेषु कृष्णमर्चाम नेतरान्।
एवं वक्तुं न चार्हसि त्वं मा ते भूद्बुद्धिरीदृशी॥

(सभा० ३८। ६, ८, ९, ११)

'इस शिशुपालको सान्त्वना देना या समझाना-बुझाना ठीक नहीं है, जो सम्पूर्ण जगत्में सर्वश्रेष्ठ श्रीकृष्णकी अग्रपूजामें असम्मति प्रकट करता है। राजाओंकी इस सभामें एक भी राजा ऐसा नहीं दिखलायी देता जो युद्धमें देवकीनन्दन श्रीकृष्णके तेजसे परास्त न हुआ हो। महाबाहु श्रीकृष्ण केवल हमारे ही लिये परम पूजनीय नहीं हैं। ये तो तीनों लोकोंमें अभिवन्दनीय हैं। श्रीकृष्णने संग्राममें अनेकों क्षत्रियशिरोमणि राजाओंको परास्त किया है। यह सम्पूर्ण जगत् पूर्णतः वासुदेव श्रीकृष्णमें प्रतिष्ठित है।' बाणशय्या-पर पड़े-पड़े भीष्म भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते रहते थे। इन्होंने भरी सभामें श्रीकृष्णकी महिमा गायी थी और उन्हें साक्षात् ईश्वर बतलाया था।

श्रीकृष्ण जब अर्जुनकी ओरसे चक्र लेकर इनके सामने दौड़े तो इन्होंने उनके हाथसे मरनेमें अपना गौरव समझकर शस्त्रोंके द्वारा ही उनकी पूजा करनेके लिये उनका आवाहन किया। इन्होंने युधिष्ठिरको भगवान् विष्णुका जो सहस्रनाम-स्तोत्र सुनाया, उससे इनकी भगवद्भक्ति तथा भगवत्तत्त्वका ज्ञान टपका पड़ता है।* इनकी भक्तिका ही यह फल था कि साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने अन्त समयमें इन्हें दर्शन देकर कृतार्थ किया। इस प्रकार भक्ति, ज्ञान, सदाचार—जिस ओरसे भी हम भीष्मके चरित्रपर दृष्टि डालते हैं, उसी ओरसे हम उसे आदर्श पाते हैं। भीष्मकी कोटिके महापुरुष संसारके इतिहासमें विरले ही पाये जाते हैं। यद्यपि भीष्म अपुत्र ही मरे, फिर भी सारे त्रैवर्णिक हिंदू आजतक पितरोंका तर्पण करते समय इन्हें जल देते हैं। यह गौरव भारतके इतिहासमें और किसी भी मनुष्यको प्राप्त नहीं है। इसीलिये सारा जगत् आज भी इन्हें पितामहके नामसे पुकारता है। भीष्मकी-सी अपुत्रता बड़े-बड़े पुत्रवानोंके लिये भी ईर्ष्याकी वस्तु है।

धर्मराज युधिष्ठिर

महाराज युधिष्ठिर भी भीष्मकी ही भाँति अत्यन्त उच्च कोटिके महापुरुष थे। ये साक्षात् धर्मके अंशसे उत्पन्न हुए थे। ये धर्मके मूर्तिमान् स्वरूप थे। इसीसे लोग इन्हें धर्मराजके नामसे पुकारते थे। इनमें धैर्य, स्थिरता, सहिष्णुता, नम्रता, दयालुता और अविचल प्रेम आदि अनेकों लोकोत्तर गुण थे। ये अपने शील, सदाचार तथा विचारशीलताके कारण बचपनमें ही अत्यधिक लोकप्रिय हो गये थे। जब ये बहुत छोटे थे, तभी इनके पिता महात्मा पाण्डु स्वर्गवासी हो गये। तभीसे ये अपने ताऊ धृतराष्ट्रको ही पिताके तुल्य मानकर उनका बड़ा आदर करते थे और उनकी किसी भी आज्ञाको टालते न थे। परंतु धृतराष्ट्र अपने कुटिल स्वभावके कारण इनके गुणोंकी प्रशंसा सुन-सुनकर मन-ही-मन इनसे कुढ़ने लगे। उनका पुत्र दुर्योधन चाहता था कि किसी तरह पाण्डव कुछ दिनके लिये हस्तिनापुरसे हट जायँ तो उनकी अनुपस्थितिमें उनके पैतृक अधिकारको छीनकर स्वयं राजा बन बैठूँ। उसने अपने अंधे एवं प्रज्ञाहीन पिताको पट्टी पढ़ाकर इसके लिये राजी कर लिया। धृतराष्ट्रने पाण्डवोंको बुलाकर उन्हें मेला देखनेके बहाने वारणावत भेजनेका प्रस्ताव रक्खा। उन्होंने उनकी आज्ञा समझकर उसपर कोई आपत्ति नहीं की और चुपचाप अपनी माता कुन्तीके साथ पाँचों भाई वारणावत चले गये। इन्हें जला डालनेके लिये वहाँ दुर्योधनने

* आज भी इस विष्णुसहस्रनामका भक्तोंमें बड़ा आदर है। भगवान् शंकराचार्यने गीता, उपनिषद् एवं ब्रह्मसूत्रोंकी भाँति उसपर भी विस्तृत भाष्य लिखा है।

एक लाक्षाभवन तैयार कराया था। उसीमें इन्हें रहनेकी आज्ञा हुई। परंतु पाण्डवोंको इसका सुराग लग गया और—चाचा विदुरकी सहायतासे ये लोग वहाँसे किसी प्रकार अपने प्राण बचाकर भागे और जंगलकी शरण ली। पीछेसे धृतराष्ट्रके पुत्रोंने इन्हें मरा समझकर हस्तिनापुरके राज्यपर चुपचाप अधिकार कर लिया।

कुछ दिनोंके बाद द्रौपदीके स्वयंवरमें जब पाण्डवोंका रहस्य खुला,तब धृतराष्ट्रके पुत्रोंको यह पता लगा कि पाण्डव अभी जीवित हैं। तब तो धृतराष्ट्रने विदुरको भेजकर पाण्डवोंको हस्तिनापुर बुलवा लिया और अपने पुत्रोंके साथ उनका झगड़ा मिटा देनेके लिये आधा राज्य लेकर खाण्डवप्रस्थमें रहनेका प्रस्ताव उनके सामने रक्खा। युधिष्ठिरने उनकी यह आज्ञा भी स्वीकार कर ली और वे अपने भाइयोंके साथ खाण्डवप्रस्थमें रहने लगे। वहाँ इन्होंने अपनी एक अलग राजधानी बसा ली, जिसका नाम इन्द्रप्रस्थ रक्खा गया। वहाँ इन्होंने एक राजसूय यज्ञ किया, जिसमें बड़े-बड़े राजाओंने आकर इन्हें बहुमूल्य उपहार दिये और इन्हें अपना सम्राट् स्वीकार किया।

परंतु धृतराष्ट्रके पुत्रोंने वहाँ भी इन्हें नहीं रहने दिया। दुर्योधन इनके वैभवको देखकर जलने लगा। उसने एक विशाल सभाभवन तैयार कराके पाण्डवोंको जुएके लिये आमन्त्रित किया। जुएको बुरा समझते हुए भी धृतराष्ट्रकी आज्ञा मानकर युधिष्ठिरने उसका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और वहाँ दुर्योधनके मामा शकुनिकी कपटभरी चालोंसे अपना सर्वस्व हार बैठे। यहाँतक कि भरी सभामें राजरानी द्रौपदीकी बड़ी भारी फजीहत की गयी। फिर भी धृतराष्ट्रके प्रति युधिष्ठिरका यही भाव बना रहा। धृतराष्ट्रने भी उन्हें उनका सारा धन और राज्य लौटा दिया और उन्हें वापस इन्द्रप्रस्थ भेज दिया। परंतु दुर्योधनको यह सहन नहीं हुआ। उसने धृतराष्ट्रको समझा-बुझाकर इस बातके लिये राजी कर लिया कि पाण्डवोंको दूत भेजकर फिरसे बुलाया जाय और उनसे वनवासकी शर्तपर पुनः जुआ खेला जाय। युधिष्ठिर जुएका दुष्परिणाम एक बार देख चुके थे तथा कौरवोंकी नीयतका भी पता उन्हें चल गया था। फिर भी अपने ताऊकी आज्ञाको वे टाल नहीं सके और बीचमेंसे ही लौट आये। अबकी बार भी युधिष्ठिर ही हारे और फलतः उन्हें सब कुछ छोड़कर अपने भाइयों तथा राजरानी द्रौपदीके साथ बारह वर्षके वनवास तथा एक वर्षके अज्ञातवासके लिये जाना पड़ा। ताऊके आज्ञापालनरूप धर्मके निर्वाहके लिये उन्होंने सब कुछ चुपचाप सह लिया!

महाराज युधिष्ठिर बड़े ही धर्मभीरु एवं सहनशील थे। वे सब प्रकारकी हानि सह सकते थे, परंतु धर्मकी हानि उन्हें सह्य नहीं थी। प्रथम बार जुएमें जब वे अपने चारों भाइयोंको तथा अपने-आपको एवं द्रौपदीतकको हार गये और कौरवलोग भरी सभामें द्रौपदीका तिरस्कार करने लगे, उस समय भी धर्मपाशसे बँधे रहनेके कारण उन्होंने चूँतक नहीं किया और चुपचाप सब कुछ सह लिया। कोई सामान्य मनुष्य भी अपनी आँखोंके सामने अपनी स्त्रीकी इस प्रकार दुर्दशा होते नहीं देख सकता। उन्हींके भयसे उनके भाई भी कुछ नहीं बोले और मन मसोसकर रह गये। ये लोग चाहते तो बलपूर्वक उस अमानुषी अत्याचारको रोक सकते थे। परंतु यही सोचकर कि धर्मराज द्रौपदीको स्वेच्छासे दाँवपर रखकर हार गये हैं, ये लोग चुप रहे। जिस द्रौपदीको इनके सामने कोई आँख उठाकर भी देख लेता तो उसे अपने प्राणोंसे हाथ धोने पड़ते, उसी द्रौपदीकी दुर्दशा इन्होंने अपनी आँखोंसे देखकर भी उसका प्रतिकार नहीं किया। युधिष्ठिर यह भी जानते थे कि शकुनिने उन्हें कपटपूर्वक जीता है, फिर भी उन्होंने अपनी ओरसे धर्मका त्याग करना उचित नहीं समझा। उन्होंने सब कुछ सहकर भी सत्य और धर्मकी रक्षा की। धर्मप्रेम और सहनशीलताका इससे बड़ा उदाहरण जगत्‌में शायद ही कहीं मिले।

जब पाण्डवलोग दूसरी बार भी जुएमें हार गये और वनमें जाने लगे, उस समय हस्तिनापुरकी प्रजाको बड़ा दुःख हुआ। सब लोग कौरवोंको कोसने लगे और नगरवासी बहुत बड़ी संख्यामें अपने घर-परिवारको छोड़कर इनके साथ चलनेके लिये इनके पीछे हो लिये। उस समय भी धर्मराजने कौरवोंके विरुद्ध एक शब्द भी नहीं कहा और सब लोगोंको किसी प्रकार समझा-बुझाकर लौटाया। फिर भी बहुत-से ब्राह्मण जबर्दस्ती इनके साथ हो लिये। उस समय धर्मराजको यह चिन्ता हुई कि 'इतने ब्राह्मण मेरे साथ चल रहे हैं, इनके भोजनकी क्या व्यवस्था होगी?' इन्हें अपने कष्टोंकी तनिक भी परवा नहीं थी; परंतु ये दूसरोंका कष्ट नहीं देख सकते थे। अन्तमें इन्होंने भगवान् सूर्यकी आराधना करके उनसे एक ऐसा पात्र प्राप्त किया, जिसमें पकाया हुआ थोड़ा-सा भी भोजन अक्षय हो जाता। उसीसे ये वनमें रहते हुए भी अतिथि-ब्राह्मणको भोजन कराकर पीछे स्वयं भोजन करते। वनवासके कष्ट भोगते हुए भी इन्होंने आतिथ्य-धर्मका यथोचित पालन किया। महाराज युधिष्ठिरके इसी धर्मप्रेमसे आकर्षित होकर बड़े-बड़े महर्षि इनके वनवासके समय इनके पास आकर रहते और यज्ञादि नाना प्रकारके धर्मानुष्ठान करते।

महाराज युधिष्ठिर अजातशत्रुके नामसे प्रसिद्ध थे। उनका वास्तवमें किसीके साथ वैर नहीं था। शत्रुओंके प्रति भी उनके हृदयमें सदा सद्भाव ही रहता था। शत्रु भी उनकी दृष्टिमें सेवा और सहानुभूतिके ही पात्र थे। अपकार

करनेवालेका भी उपकार करना—यही तो संतका सबसे बड़ा लक्षण है। 'उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई॥'—गोस्वामी तुलसीदासजीकी यह उक्ति महाराज युधिष्ठिरमें पूरी तरह चरितार्थ होती थी। एक बारकी बात है—जब पाण्डव द्वैतवनमें थे; घोषयात्राके बहाने राजा दुर्योधन अपने मन्त्रियों, भाइयों, रनिवासकी स्त्रियों तथा बहुत बड़ी सेनाको साथ लेकर वनवासी पाण्डवोंको अपने वैभवसे जलानेके पापपूर्ण उद्देश्यसे उस वनमें पहुँचा, वहाँ जलक्रीडाके विचारसे वह उस सरोवरके तटपर पहुँचा, जहाँ महाराज युधिष्ठिर कुटी बनाकर रहते थे। सरोवरको गन्धर्वोंने पहलेसे ही घेर रक्खा था। उनके साथ दुर्योधनकी मुठभेड़ हो गयी। बस, दोनों ओरसे बड़ा भीषण और रोमाञ्चकारी युद्ध छिड़ गया। विजय गन्धर्वोंकी ओर रही। उन लोगोंने रानियोंसहित दुर्योधनको कैद कर लिया। जब महाराज युधिष्ठिरको यह समाचार मिला तो उन्होंने अपने भाइयोंको आज्ञा दी कि 'तुम सब लोग जाकर बलपूर्वक राजा दुर्योधनको छुड़ा लाओ। माना कि ये लोग हमारे शत्रु हैं, परंतु इस समय विपत्तिमें हैं। इस समय इनके अपराधोंको भुलाकर इनकी सहायता करना ही हमारा धर्म है। शत्रु हैं तो क्या आखिर हैं तो हमारे भाई ही। हमारे रहते दूसरे लोग इनकी दुर्दशा करें, यह हमलोग कैसे देख सकते हैं।' भीमसेनको समझाते हुए उन्होंने कहा कि 'भाई-बन्धुओंमें मतभेद और झगड़े होते ही रहते हैं इससे आत्मीयता नहीं चली जाती।' बस, फिर क्या था। अर्जुनने अपनी बाणवर्षासे गन्धर्वोंके छक्के छुड़ा दिये और दुर्योधनको भाइयों तथा रानियोंसहित उनके चंगुलसे छुड़ा लिया। दुर्योधनकी दुरभिसन्धिको जानकर देवराज इन्द्रने ही दुर्योधनको बाँध ले आनेके लिये गन्धर्वोंको भेजा था। महाराज युधिष्ठिरके विशाल हृदयको देखकर वे सब दंग रह गये। धन्य अजातशत्रुता!

एक समयकी बात है, द्रौपदीको आश्रममें अकेली छोड़कर पाण्डव वनमें चले गये थे। पीछेसे दुर्योधनका बहनोई सिन्धुराज जयद्रथ उधर आ निकला। द्रौपदीके अनुपम रूपलावण्यको देखकर उसका मन बिगड़ गया। उसने द्रौपदीके सामने अपना पापपूर्ण प्रस्ताव रक्खा, किंतु द्रौपदीने उसे तिरस्कारपूर्वक ठुकरा दिया। तब तो उसने द्रौपदीको खींचकर जबर्दस्ती अपने रथपर बिठा लिया और उन्हें ले भागा। पीछेसे पाण्डवोंको जब जयद्रथकी शैतानीका पता लगा तो उन्होंने उसका पीछा किया और थोड़ी ही देरमें उसे जा दबाया। पाण्डवोंने बात-की-बातमें उसकी सारी सेनाओंको तहस-नहस कर डाला। पापी जयद्रथने भयभीत होकर द्रौपदीको रथसे नीचे उतार दिया और स्वयं प्राण बचाकर भागा। भीमसेनने उसका पीछा किया और थोड़ी ही देरमें उसे पकड़कर धर्मराजके सामने ला उपस्थित किया। धर्मराजने उसे सम्बन्धी समझकर दयापूर्वक छोड़ दिया और इस प्रकार अपनी अद्भुत क्षमाशीलता एवं दयालुताका परिचय दिया।

महाराज युधिष्ठिर बड़े भारी बुद्धिमान्, नीतिज्ञ और धर्मज्ञ तो थे ही; उनमें समता भी अद्भुत थी। एक समयकी बात है—जिस वनमें पाण्डवलोग रहते थे, वहाँ एक ब्राह्मणके अरणिसहित मन्थनकाष्ठसे, जो किसी वृक्षकी शाखापर टँगा हुआ था, एक हरिन अपना सींग खुजलाने लगा। वह काष्ठ उसके सींगमें फँस गया। हिरन उसे लेकर भागा। मन्थनकाष्ठके न रहनेसे अग्निहोत्रमें बाधा आती देख ब्राह्मण पाण्डवोंके पास आया और उनसे वह मन्थनकाष्ठ ला देनेकी प्रार्थना की। धर्मराज युधिष्ठिर अपने चारों भाइयोंको साथ लेकर मृगके पीछे भागे, परंतु वह देखते-देखते उनकी आँखोंसे ओझल हो गया। पाण्डव बहुत थक गये थे। प्यास उन्हें अलग सता रही थी। धर्मराजकी आज्ञा पाकर नकुल पानीकी तलाशमें गये। थोड़ी ही दूरपर उन्हें एक सुन्दर जलाशय मिला। उसके समीप जाकर ज्यों ही वे जल लेनेके लिये झुके कि उन्हें यह आकाशवाणी सुनायी दी—'पहले मेरे प्रश्नोंका उत्तर दो तब जल पीना।' परंतु नकुलको बड़ी प्यास लगी थी। उन्होंने आकाशवाणीकी कोई परवा नहीं की। फलतः पानी पीते ही वे निर्जीव होकर जमीनपर लोट गये। पीछेसे धर्मराजने क्रमशः सहदेव, अर्जुन और भीमसेनको भेजा; परंतु उन तीनोंकी भी वही दशा हुई। अन्तमें धर्मराज स्वयं उस तालाबपर पहुँचे। उन्होंने भी वही आवाज सुनी और साथ ही अपने चारों भाइयोंको निश्चेष्ट होकर जमीनपर पड़े देखा। इतनेमें ही उन्हें एक विशालकाय यक्ष दीख पड़ा। उसने युधिष्ठिरको बतलाया कि 'मेरे प्रश्नोंका उत्तर दिये बिना ही जल पीनेके कारण तुम्हारे भाइयोंकी यह दशा हुई है। यदि तुम भी ऐसी अनधिकार चेष्टा करोगे तो मारे जाओगे।' युधिष्ठिर उसके प्रश्नोंका उत्तर देनेको तैयार हो गये। यक्षने जो-जो प्रश्न युधिष्ठिरसे किये, उन सबका समुचित उत्तर देकर युधिष्ठिरने यक्षका अच्छी तरह समाधान कर दिया। इनके उत्तरोंसे प्रसन्न होकर यक्ष बोला—'राजन्! अपने भाइयोंमेंसे जिस-किसीको तुम जिलाना चाहो, उसे मैं जीवित कर दूँ।' धर्मराजने नकुलको जीवित देखना चाहा। कारण पूछनेपर उन्होंने बताया कि 'मेरे पिताके दो भार्याएँ थीं—कुन्ती और माद्री। मेरी दृष्टिमें वे दोनों समान हैं। मैं चाहता हूँ कि वे दोनों पुत्रवती बनी रहें। कुन्तीका पुत्र तो मैं मौजूद हूँ ही। मैं चाहता हूँ कि माद्रीका भी एक पुत्र बना रहे। इसीलिये मैंने भीम और अर्जुनको छोड़कर उसे जिलानेकी प्रार्थना

की है ।' युधिष्ठिरकी बुद्धिमत्ता तथा धर्ममत्ताकी परीक्षाके लिये स्वयं धर्मने ही यह लीला की थी । उनकी इस अद्भुत समताको देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अपना परिचय देकर चारों भाइयोंको जीवित कर दिया । धर्मने उन्हें यह भी कहा कि 'मैं ही मृग बनकर उस ब्राह्मणके मन्थनकाष्ठको ले गया था; लो, यह मन्थनकाष्ठ तुम्हारे सामने है ।' युधिष्ठिरने वह मन्थनकाष्ठ उस ब्राह्मणको ले जाकर दे दिया ।

युधिष्ठिरको भगवान् श्रीकृष्णमें बड़ी आस्था थी । श्रीकृष्ण उनके ममेरे भाई थे और उम्रमें छोटे थे । अतएव उनमें पारस्परिक आत्मीयता और प्रेमका होना स्वाभाविक था । परंतु युधिष्ठिर श्रीकृष्णपर बड़ा भरोसा रखते थे । जब भगवान् वासुदेव दूत बनकर कौरव-सभामें जा रहे थे, उस समय महाराज युधिष्ठिरने कहा था—

प्रियश्च प्रियकामश्च गतिज्ञः सर्वकर्मणाम् ।
को हि कृष्णास्ति नस्त्वादृक् सर्वनिश्चयवित् सुहृत् ॥
(उद्योग० ७२ । ७८)

'श्रीकृष्ण ! तुम्हारे समान हमारा प्रिय, हितचिन्तक, सब कर्मोंकी गतिको जाननेवाला तथा सब प्रकारके निश्चय-का ज्ञाता दूसरा सुहृद् कौन है ?'

अस्मान् वेत्थ परान् वेत्थ वेत्थार्थान् वेत्थ भाषितुम् ।
यद् यदस्मद्धितं कृष्ण तत् तद् वाच्यः सुयोधनः॥
(उद्योग० ७२ । ९२)

'श्रीकृष्ण ! तुम हमको जानते हो, कौरवोंको जानते हो, हम दोनोंके स्वार्थको जानते हो, बातचीत करना भी जानते हो । अतएव जिस बातसे हमारा हित हो, वह दुर्योधनको समझाओ ।'

यहाँ यह विशेष द्रष्टव्य है कि 'दुर्योधन' के स्थानमें 'सुयोधन' शब्दका प्रयोग करना सौजन्यको अभिव्यक्त करता है । 'अस्मत्' शब्द कौरव और पाण्डव दोनोंका बोधक है तथा इससे महाराज युधिष्ठिरकी सदाशयताका पता लगता है ।

महाराज युधिष्ठिर दुर्गाके भक्त थे । विराटपर्वके छठे अध्यायमें उनके द्वारा की गयी दुर्गाकी स्तुति है । दुर्गाजीने प्रकट होकर उनको वरदान दिया था कि अज्ञातवासमें विराटनगरमें रहते हुए कोई उनको पहचान न सकेगा ।

युधिष्ठिर जैसे सदाचारसम्पन्न थे वैसे ही विनयी भी थे । वे समयोचित व्यवहारमें बड़े कुशल थे, गुरुजनोंकी मान-मर्यादाका सदा ध्यान रखते थे । कठिन-से-कठिन समयमें भी वे शिष्टाचारकी मर्यादाको नहीं भूलते थे । महाभारत-युद्धके आरम्भमें जब दोनों ओरकी सेनाएँ युद्धके लिये संनद्ध खड़ी थीं, उस समय इन्होंने सबसे पहले शत्रुसेनाके बीचमें जाकर पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण एवं कृप तथा मामा शल्यके चरणोंमें प्रणाम किया और आशीर्वाद माँगा । उनके इस विनयपूर्ण एवं शिष्टजनोचित व्यवहारसे वे सभी गुरुजन बड़े प्रसन्न हुए और उनकी हृदयसे विजय-कामना की । स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने युधिष्ठिरके इस आदर्श व्यवहारका अनुमोदन किया ।

युधिष्ठिरकी सत्यवादिता तो जगद्विख्यात थी । सब कोई जानते थे कि युधिष्ठिर भय अथवा लोभवश कभी असत्य नहीं बोलते । उनकी सत्यवादिताका ही फल था कि उनके रथके पहिये सदा पृथ्वीसे चार अंगुल ऊँचे रहा करते थे । जीवनमें केवल एक बार इन्होंने असत्य भाषण किया । इन्होंने द्रोणाचार्यके सामने अश्वत्थामा हाथीके मारे जानेके बहाने झूठ-मूठ यह कह दिया कि 'अश्वत्थामा मारा गया ।' इसी एक बारकी सत्यच्युतिके फलस्वरूप इनके रथके पहिये पृथ्वीसे सटकर चलने लगे और इन्हें मुहूर्तभरके लिये कल्पित नरकका दृश्य भी देखना पड़ा ।

युधिष्ठिरकी उदारता भी अलौकिक थी । जब कौरवोंने किसी प्रकार भी इनका राज्य लौटाना मंजूर नहीं किया तो इन्होंने केवल पाँच गाँव लेकर संतोष करना स्वीकार कर लिया और भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा दुर्योधनको यह कहला भेजा कि 'यदि वह हमें हमारे इच्छानुसार केवल पाँच गाँव देना मंजूर कर ले तो हम युद्ध नहीं करेंगे ।' परंतु दुर्योधनने इन्हें सूईकी नोकके बराबर जमीन देना भी स्वीकार नहीं किया । तब इन्हें बाध्य होकर युद्ध छेड़ना पड़ा । इतना ही नहीं, जब दुर्योधनकी सारी सेना मर-खप गयी और वह स्वयं एक तालाबमें जाकर छिप रहा, उस समय इन्होंने उसके पास जाकर उसे अन्तिम बार युद्धके लिये ललकारते हुए यहाँतक कह दिया कि 'हममेंसे जिस-किसीके साथ तुम युद्ध कर सकते हो । हममेंसे किसी एकपर भी तुम द्वन्द्वयुद्धमें विजय पा लोगे तो सारा राज्य तुम्हारा हो जायगा ।' भला, इस प्रकारकी शर्त कोई दूसरा कर सकता है । जिस दुर्योधनका गदायुद्धमें भीमसेन भी, जो पाण्डवोंमें सबसे अधिक बलवान् एवं गदायुद्धमें प्रवीण थे, मुकाबला करते हिचकते थे, उसके साथ यह शर्त कर लेना कि 'हममेंसे किसी एकको तुम हरा दोगे तो राज्य तुम्हारा हो जायगा' युधिष्ठिर-जैसे महानुभावका ही काम था । अन्त-में भीमसेनके साथ उसका युद्ध होना निश्चित हुआ और भीमसेनके द्वारा वह मारा गया ।

इतना ही नहीं, युद्ध-समाप्तिके बाद जब युधिष्ठिरका राज्याभिषेक हो गया और धृतराष्ट्र-गान्धारी इन्हींके पास रहने लगे, उस समय इन्होंने उनके साथ ऐसा सुन्दर बर्ताव किया कि उन्हें अपने पुत्रोंकी मृत्युका दुःख भूल गया । इन्होंने दोनोंको इतना सुख पहुँचाया, जितना उन्हें अपने

पुत्रोंसे भी नहीं मिला था। ये सारा राज-काज उन्हींसे पूछ-पूछकर करते थे और राज-काज करते हुए भी इनकी सेवाके लिये बराबर समय निकाला करते थे। तथा इनकी माता कुन्ती सखाजी द्रौपदी तथा अपनी अन्य बहुओंके साथ देवी गान्धारी-की सेवा किया करती थीं। ये इस बातका सदा ध्यान रखते थे कि उनके सामने कभी कोई ऐसी बात न हो, जिससे उनका पुत्र-शोक उमड़ पड़े। अन्तमें जब धृतराष्ट्र और गान्धारीने अपनी शेष आयु वनमें बितानेका निश्चय किया, उस समय युधिष्ठिरको बड़ा दुःख हुआ और ये स्वयं उनके साथ वन जानेको तैयार हो गये। बड़ी कठिनतासे व्यासजी-ने आकर इन्हें समझाया, तब कहीं ये धृतराष्ट्र-गान्धारीको वन भेजनेपर राजी हुए। फिर भी कुन्तीदेवी तो अपनी जेठ-जेठानीके साथ ही गयीं और अन्त समयतक उनकी सेवा-में रहीं और उनके साथ ही प्राण-त्याग भी किया। वन जाने-से पहले धृतराष्ट्रने अपने मृत पुत्रों तथा अन्य सम्बन्धियोंका विधिपूर्वक अन्तिम बार श्राद्ध करना चाहा और उन्हींके कल्याणके लिये ब्राह्मणोंको अपरिमित दान देना चाहा। युधिष्ठिरको जब इनकी इच्छा मालूम हुई तो इन्होंने विदुर-जीके द्वारा यह कहलाया कि 'अर्जुनसहित मेरा प्राणपर्यन्त सर्वस्व आपके अर्पण है।' एवं उनकी इच्छासे भी अधिक खुले हाथों खर्च करनेका प्रबन्ध कर दिया। फिर तो धृतराष्ट्र-ने बड़े विधि-विधानसे अपने सम्बन्धियोंका श्राद्ध किया और ब्राह्मणोंको भरपूर दान दिया। उस समय महाराज युधिष्ठिर-ने धृतराष्ट्रके आज्ञानुसार धन और रत्नोंकी नदी-सी बहा दी। जिसके लिये सौकी आज्ञा हुई, उसे हजार दिया गया। जब धृतराष्ट्र-गान्धारी वनको जाने लगे, उस समय पाण्डवलोग अपनी रानियोंके साथ पैदल ही बड़ी दूरतक उन्हें पहुँचाने गये। जिन धृतराष्ट्रकी बदौलत पाण्डवोंको भारी-भारी विपत्तियोंका सामना करना पड़ा, जिनके कारण उन्हें अपने पैतृक अधिकारसे वञ्चित रहना पड़ा और कितनी बार वनवासके कष्ट उठाने पड़े, जिनकी उपस्थितिमें उनके पुत्रों-ने सती-शिरोमणि द्रौपदीका भरी सभामें घोर अपमान किया और जिन्होंने उन्हें दर-दरका भिखारी बना दिया और पाँच गाँवतक देना मंजूर नहीं किया—जिसके फलस्वरूप दोनों ओरसे इतना भीषण नरसंहार हुआ—उन्हीं धृतराष्ट्रके प्रति इतना निश्छल प्रेम-भाव रखना और अन्ततक उन्हें सुख पहुँचानेकी पूरी चेष्टा करना युधिष्ठिर-जैसी महान् आत्माका ही काम था। वैरीके प्रति ऐसा सद्व्यवहार जगत्के इतिहास-में कम ही देखनेको मिलेगा।

महाराज युधिष्ठिरकी शरणागतवत्सलता तथा प्रेम तो और भी विलक्षण था। भगवान् श्रीकृष्णके परमधामगमन तथा यादवोंके संहारकी बात जब इन्होंने सुनी तो इन्हें बड़ा दुःख हुआ। इन्होंने सोचा कि 'जब हमारे परम आत्मीय तथा हितू श्रीकृष्ण ही इस धरातलपर न रहे, जिनकी बदौलत हमने सब कुछ पाया था, तो फिर हमारे लिये यह राज्य-सुख किस कामका और इस जीवनको ही रखनेसे क्या प्रयोजन। श्रीकृष्णकी बात तो अलग रही, वे तो पाण्डवोंके जीवन-प्राण एवं सर्वस्व ही थे। उनके ऊपर तो उनका सब कुछ निर्भर था। कौरवोंके विनाशपर ही उन्हें इतना दुःख हुआ था कि विजय तथा राज्यप्राप्तिके उपलक्ष्यमें हर्ष मनानेके बदले वे सब कुछ छोड़कर वन जानेको तैयार हो गये थे। बड़ी कठिनतासे भगवान् श्रीकृष्ण तथा महर्षि व्यास आदिने उन्हें समझा-बुझाकर राज्याभिषेकके लिये तैयार किया था। भीष्मपितामहने भी धर्मका उपदेश देकर इनका शोक दूर करनेकी चेष्टा की, तथा भीष्मजीकी आज्ञा मानकर इन्होंने राज्य भी किया; परंतु स्वजनवधसे होनेवाली ग्लानि इनके चित्तसे सर्वथा दूर नहीं हुई। अब श्रीकृष्णके परमधाम-गमनकी बात सुनकर तो इन्होंने वन जानेका दृढ़ निश्चय कर लिया और अर्जुनके पौत्र कुमार परीक्षित्को राजगद्दीपर बिठाकर तथा कृपाचार्य एवं धृतराष्ट्रपुत्र युयुत्सुको उनकी देखभालमें नियुक्त कर वे अपने चारों भाई तथा द्रौपदीको साथ लेकर हस्तिनापुरसे चल पड़े। पृथ्वी-प्रदक्षिणाके उद्देश्यसे कई देशोंमें घूमते हुए वे हिमालयको पारकर मेरुपर्वतकी ओर बढ़ रहे थे। रास्तेमें देवी द्रौपदी तथा इनके चारों भाई एक-एक करके क्रमशः गिरते गये। इनके गिरनेकी भी परवा न कर युधिष्ठिर आगे बढ़ते ही गये। इतनेमें ही स्वयं देवराज इन्द्र रथपर चढ़कर इन्हें लेनेके लिये आये और इन्हें रथपर चढ़ जानेको कहा। युधिष्ठिरने अपने भाइयों तथा पतिप्राणा देवी द्रौपदीके बिना अकेले रथपर बैठना स्वीकार नहीं किया। इन्द्रके यह विश्वास दिलानेपर कि 'वे लोग तुमसे पहले ही स्वर्गमें पहुँच चुके हैं,' इन्होंने रथपर चढ़ना स्वीकार किया। परंतु इनके साथ एक कुत्ता भी था, जो शुरूसे ही इनके साथ चल रहा था। युधिष्ठिरने चाहा कि वह कुत्ता भी उनके साथ चले। इन्द्रके आपत्ति करनेपर इन्होंने उनसे साफ कह दिया कि 'इस स्वामिभक्त कुत्तेको छोड़कर मैं अकेला स्वर्ग जानेके लिये तैयार नहीं हूँ।' यह कुत्ता और कोई नहीं था, स्वयं धर्म ही युधिष्ठिरकी परीक्षाके लिये उनके साथ हो लिये थे। युधिष्ठिरकी इस अनुपम शरणागतवत्सलताको देखकर वे अपने असली रूपमें प्रकट हो गये और युधिष्ठिरको रथमें बिठाकर इन्द्र एवं अन्य देवताओं तथा देवर्षियोंके साथ ऊपरके लोकोंमें चले गये। उस समय देवर्षि नारदने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा कि महाराज युधिष्ठिरसे पहले कोई भौतिक शरीरसे स्वर्ग गया हो ऐसा सुननेमें नहीं आया। ऊपर जाते हुए युधिष्ठिरने नक्षत्रों एवं तारोंको देवताओंके लोकोंके रूपमें देखा। फिर भी देवराज इन्द्रसे उन्होंने यही कहा कि 'जहाँ मेरे भाई-बन्धु

तथा देवी द्रौपदी हों, वहीं मुझे ले चलिये; वहीं जानेपर मुझे शान्ति मिलेगी, अन्यत्र नहीं । जहाँ मेरे भाई नहीं हैं, वह स्वर्ग भी मेरे किस कामका !' धन्य बन्धु-प्रेम !

आगे जाकर जब देवराज इन्द्रकी मायासे इन्हें नरकका दृश्य दिखायी पड़ा और वहाँ इन्होंने अपने भाइयोंके कराहने एवं रोनेकी आवाज सुनी, साथ ही इन्होंने लोगोंको यह कहते भी सुना कि 'महाराज ! थोड़ा रुक जाइये, आपके यहाँ रहनेसे हमें नरककी पीड़ा नहीं सताती', तब तो ये वहीं रुक गये और जो देवदूत उन्हें वहाँ ले आया था, उससे इन्होंने कहा कि 'हम तो यहीं रहेंगे; जब हमारे रहनेसे यहाँके जीवोंको सुख मिलता है तो यह नरक ही हमारे लिये स्वर्गसे बढ़कर है ।' धन्य दयालुता !

थोड़ी ही देर बाद वह दृश्य गायब हो गया और वहाँ इन्द्र, धर्म आदि देवता आ पहुँचे । वे सब इनके इस सुन्दर भावसे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने बतलाया कि 'तुमने छलसे गुरु द्रोणाचार्यको उनके पुत्रकी मृत्युका विश्वास दिलाया था, इसीलिये तुम्हें छलसे नरकका दृश्य दिखाया गया । तुम्हारे सब भाई दिव्यलोकमें पहुँच गये हैं ।' इसके बाद युधिष्ठिर भगवान्के परमधाममें गये और वहाँ इन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके उसी रूपमें दर्शन किये, जिस रूपमें वे पहले उन्हें मर्त्यलोकमें देखते आये थे । वहीं उन्होंने श्रीकृष्णकी परिचर्या करते हुए अर्जुनको भी देखा । अपने भाइयों तथा देवी द्रौपदीको भी उन्होंने दूसरे-दूसरे स्थानोंमें देखा । अन्तमें वे अपने पिता धर्मके शरीरमें प्रविष्ट हो गये । इस प्रकार युधिष्ठिरने अपने धर्मके बलसे दुर्लभ गति पायी ।

युधिष्ठिरकी पवित्रताका ऐसा अद्भुत प्रभाव था कि वे जहाँ जाते, वहाँका वातावरण अत्यन्त पवित्र हो जाता था । जिस समय पाण्डव अज्ञातरूपसे राजा विराटके यहाँ रह रहे थे, उस समय कौरवोंने इनका पता लगाना चाहा । उसी प्रसङ्गमें भीष्मपितामहने, जो पाण्डवोंके प्रभावको भलीभाँति जानते थे, उन्हें बतलाया कि 'राजा युधिष्ठिर जिस नगर या राष्ट्रमें होंगे, वहाँकी जनता भी दानशील, प्रियवादिनी, जितेन्द्रिय और लज्जाशील होगी । जहाँ वे रहते होंगे, वहाँके लोग संयमी, सत्यपरायण तथा धर्ममें तत्पर होंगे; उनमें ईर्ष्या, अभिमान, मत्सर आदि दोष नहीं होंगे । वहाँ हर समय वेदध्वनि होती होगी, यज्ञ होते होंगे, ठीक समयपर वर्षा होती होगी, वहाँकी भूमि धन-धान्यपूर्ण तथा सब प्रकारके भयों एवं उपद्रवोंसे शून्य होगी, वहाँ गायें अधिक एवं हृष्ट-पुष्ट होंगी' इत्यादि । यही नहीं, हम ऊपर देख ही चुके हैं कि उनकी संनिधिसे नरकके प्राणियोंतकको सुख-शान्ति मिलती थी । राजा नहुषने, जिन्हें महर्षि अगस्त्यके शापसे अजगरकी योनि प्राप्त हुई थी और जिन्होंने उसी रूपमें भीमसेनको अपने चंगुलमें फँसा लिया था, युधिष्ठिरके दर्शन तथा उनके साथ सम्भाषण करने मात्रसे अजगरकी योनिसे छूटकर पुनः स्वर्ग प्राप्त किया । ऐसे पुण्यश्लोक युधिष्ठिरके पावन चरित्रका जितना ही मनन किया जायगा, उतनी ही पवित्रता प्राप्त होगी ।

'धर्मो विवर्धति युधिष्ठिरकीर्तनेन ।'

महाबली भीमसेन

महाभारतके प्रमुख पात्रोंमें भीमसेन भी अपने ढंगके अद्वितीय योद्धा थे । परम पराक्रमी भीमसेनका जन्म वायुदेवसे हुआ था । अतएव वे देवपुत्र थे । वायुदेवके अवतार थे । उनके जन्मके समय आकाशवाणी हुई थी कि यह कुमार समस्त बलवानोंमें श्रेष्ठ होगा । वस्तुतः शारीरिक बलमें भीमसेन अपने युगके सर्वश्रेष्ठ योद्धा हुए । बचपनमें वे दौड़ने, खेल-कूद करने, खान-पान तथा नाना प्रकारकी बालक्रीडाओंमें धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंका मानमर्दन किया करते थे । परंतु ऐसा वह बालस्वभावके कारण ही करते थे, धृतराष्ट्रके पुत्रोंसे उन्हें द्वेष न था । किंतु उनकी ये बालक्रीडाएँ दुर्योधनको बहुत खलतीं । वे बराबर भीमसेनका अनिष्ट सोचा करते थे । एक दिन दुर्योधनने सोचा कि भीमको किसी प्रकार धोखेसे गङ्गामें डुबो दें और युधिष्ठिर तथा अर्जुनको कैद करके निष्कण्टक राज्य करें । इस दुरभिसन्धिको पूरा करनेकी उन्होंने सारी योजना बना डाली, तथा जलक्रीडाके लिये पाण्डवोंको साथ लेकर गङ्गा-तटपर गये । उन्होंने भोजनमें कालकूट विष मिलाकर पर्याप्त मात्रामें भीमसेनको खिला दिया । भीमसेनपर धीरे-धीरे विषका प्रभाव बढ़ने लगा और वे अचेत होने लगे । तब दुर्योधनने उनको वृक्षकी लताओंसे बाँधा, और गङ्गाजीके ऊँचे तटसे जलमें ढकेल दिया । भीमसेन बेहोशीकी दशामें जलमें डूबकर नागलोकमें जा पहुँचे । वहाँ नागोंने उनको खूब डँसा, जिससे कालकूट विषका प्रभाव नष्ट हो गया । तब भीमसेन होशमें आ गये और अपने बन्धनको तोड़कर सर्पोंको मारने लगे । सर्प भयके मारे नागराज वासुकिके पास गये और उनसे भीमसेनकी शिकायत की । तब नागराज वासुकि और नागराज आर्यक दोनों भीमसेनको देखनेके लिये चले । आर्यक पृथाके पिता शूरसेनके नाना थे । उन्होंने अपने दौहित्रके दौहित्र भीमसेनको पहचानकर छातीसे लगा लिया । नागराज वासुकि भी भीमसेनपर बहुत प्रसन्न हुए और बोले कि 'इनका कौन-सा प्रिय कार्य किया जाय ?' आर्यकने कहा—'नागराज ! यदि आप संतुष्ट हैं तो इस बालकको उस कुण्डका अमृत-रस पिलाइये, जिससे एक हजार हाथियोंका बल प्राप्त होता है ।'

तब नागोंने भीमसेनके लिये स्वस्तिवाचन किया। उसके बाद वे उस कुण्डका रस पीने लगे और एक-एक करके आठ कुण्डोंका रस पी लिया और तत्पश्चात् नागोंकी दी हुई दिव्य शय्यापर सो गये। आठ दिनके बाद जब वह रस पच गया, तब वे जगे। उस समय उनको अपरिमित बल प्राप्त हो गया था। उनको जगा हुआ देखकर नागोंने आश्वासन देते हुए कहा—

यत् ते पीतो महाबाहो रसोऽयं वीर्यसम्भृतः।
तस्मान्नागायुतबलो रणेऽधृष्यो भविष्यति॥

'हे महाबाहो! तुमने जो यह शक्तिपूर्ण रस पीया है, इसके कारण तुम्हारा बल दस हजार हाथियोंके बराबर होगा, और तुम युद्धमें अजेय हो जाओगे।'

× × ×

भीमसेनमें अपरिमित बल हो जानेके पश्चात् गर्वका बढ़ जाना स्वाभाविक था। अब वे और अधिक धृतराष्ट्रके पुत्रोंके लिये दुःखदायी बन गये। जब दुर्योधनने कर्णको अङ्गराजका राजा बनाया और उसी अवसरपर उसके पिता अधिरथने वहाँ पहुँचकर 'बेटा, बेटा' पुकारते हुए आनन्दसे कर्णको हृदयसे लगाया, तो भीमसेनसे रहा न गया। वे अर्जुनके साथ युद्धके लिये तैयार कर्णसे कह उठे—'अरे सूतपुत्र! तू तो अर्जुनके हाथसे मरने योग्य भी नहीं है। तुझे तो शीघ्र ही चाबुक हाथमें लेनी चाहिये; क्योंकि यही तेरे कुलके अनुरूप है।'

भीमसेनकी यह विशेषता थी कि ये जहाँ कहीं अन्याय होता देखते, वहाँ उसके प्रतिकारके लिये तुरंत तैयार हो जाते थे। परंतु वे अपने बड़े भाई युधिष्ठिरके बड़े आज्ञाकारी थे। कोई भी काम उनकी मर्जीके बिना नहीं करते। दस हजार हाथियोंका बल रखते हुए भी भीमसेन अपने बड़े भाईके इशारेपर नाचते थे। जब कोई बड़ा काम आ जाता, जिसको पूरा करनेके लिये बलकी आवश्यकता होती, वहाँ भीमसेन तैयार रहते थे। कौरवोंके अत्याचारोंको ये इसलिये सह लेते थे कि ऐसी ही उनके बड़े भाईकी मर्जी थी। महाबलवान् होनेके कारण भीमसेन अपनी माता और भाइयोंके बहुत काम आते थे। वारणावतके लाक्षागृहसे निकलनेके बाद घने जंगलमें इनकी जब हिडिम्ब राक्षससे मुठभेड़ हुई तो भीमसेनने ही उसे पछाड़कर मार डाला।

इसी प्रकार एकचक्रा नगरीमें जब पाण्डवलोग एक ब्राह्मणके घर रहते थे, उस समय पाँचों भाई भिक्षाटन करके भिक्षान्न लाकर माताको समर्पित करके उनकी आज्ञासे बाँटकर भोजन करते थे। एक दिन चारों भाई भीमसेनको माताके पास छोड़कर भिक्षाके लिये चले गये। उस दिन उस ब्राह्मणके घरमें रोना-पीटना मच गया। यह सुनकर भीमसेनने माता कुन्तीसे कहा—

ज्ञायतामस्य यद्दुःखं यतश्चैव समुत्थितम्।
विदित्वा व्यवसिष्यामि यद्यपि स्यात् सुदुष्करम्॥
(आदिपर्व १५६।१६)

'माँ! पहले यह पता लगाओ कि इस ब्राह्मणको क्या दुःख है, और वह कैसे प्राप्त हुआ है। जान लेनेपर अत्यन्त दुष्कर होनेपर भी उसको दूर करनेकी चेष्टा करूँगा।' भीमसेनके इस वाक्यसे उनकी पर-दुःखकातरता, ब्राह्मणके प्रति भक्ति-भावना आदिका उज्ज्वल प्रमाण मिलता है। पश्चात् माताकी आज्ञासे भीमसेनने वनमें जाकर बकासुरका वध करके उस ब्राह्मण-परिवारकी विपत्ति दूर की, तथा साथ ही उस राज्यके निवासियोंके कष्टको सदाके लिये दूर कर दिया। इस प्रकार अपने जीवनको खतरेमें डालकर भी दूसरोंका कल्याण करना भीमसेनका सहज स्वभाव था। बकासुरके मरनेके बाद वहाँ राक्षसोंकी बाधा सदाके लिये दूर हो गयी।

भीमसेनमें युद्धप्रियता पहले दर्जेकी थी। ये सीधे युद्धके द्वारा न्यायका समर्थन करना चाहते थे, अन्यायके विरुद्ध तत्काल कमर कसकर तैयार हो जाते थे। क्षात्रधर्मकी मूर्ति थे। अकारण किसीको संताप देनेवाले नहीं थे, और न किसीका वध ही करते थे। द्रौपदीके स्वयंवरके अवसरपर ब्राह्मणवेषधारी भीमसेनने मल्लयुद्धमें जब शल्यको पछाड़ दिया और जानसे नहीं मारा तो दर्शकगण देखकर आश्चर्य करने लगे।

तत्राश्चर्यं भीमसेनश्चकार पुरुषर्षभः।
यच्छल्यं पातितं भूमौ नावधीद् बलिनं बली॥
(आदि० १८९।२९)

वहाँ ब्राह्मणलोग भीमसेनके इस अपूर्व पराक्रम और शल्यके ऊपर प्रदर्शित उनकी उदारताको देखकर हँसने लगे।

द्रौपदीके साथ छेड़खानी करनेवाले कीचक तथा उसके परिवारके एक सौ महाबली कीचकोंका वध करके भीमसेनने विराटकी प्रजाको उनके अत्याचारसे मुक्त किया था।

भीमसेन वीरताकी प्रतिमूर्ति थे। जब उनसे कभी यह कहा जाता कि इस दुष्कर कार्यको भीम ही कर सकते हैं तो उनके उत्साहका ठिकाना नहीं रहता। उनके इस अपूर्व उत्साहको देखकर बहुधा युधिष्ठिरको आशङ्का हो जाती थी। इसी कारण जब जरासंधका वध भीमसेन करेंगे, यह प्रस्ताव भगवान् श्रीकृष्णने किया तो युधिष्ठिर जरासंधकी अजेय सैन्यशक्तिका विचार करके शङ्कित हो उठे। तब भीमसेन उत्साहप्रद तथा नीतिगर्भित वचन बोले—

अनारम्भपरो राजा वल्मीक इव सीदति।
दुर्बलश्चानुपायेन बलिनं योऽधितिष्ठति॥
(सभापर्व १५। ११)

अतन्द्रितश्च प्रायेण दुर्बलो बलिनं रिपुम्।
जयेत्सम्यक् प्रयोगेण नीत्यार्थानात्मनो हितान्॥
(१५। १२)

'महाराज! जो राजा उद्योग नहीं करता तथा दुर्बल होकर भी बिना उपाय किये बलवान्‌से भिड़ जाता है, वे दोनों वल्मीकके समान सहज ही नष्ट हो जाते हैं। परंतु जो आलस्य छोड़कर उत्तम युक्ति और नीतिसे काम लेता है, वह दुर्बल होनेपर भी बलवान् शत्रुको जीत लेता है, और अपना कल्याणसाधन करता है।' भीमसेनकी इस युक्तिसे यह सिद्ध होता है कि वे केवल अद्भुत वीर और योद्धा ही नहीं थे, बल्कि नीतिशास्त्रके भी अच्छे ज्ञाता थे। अतएव भगवान् श्रीकृष्णके परामर्शसे मगधमें भीमसेन और जरासंधका मल्लयुद्ध शुरू हो गया। अन्तमें भगवान्‌ने एक सरकंडा लेकर उसे चीरकर दोनों ओर फेंकते हुए भीमसेनको उसी प्रकार करनेका संकेत दिया। भीमसेनने संकेत पा जरासंधकी दोनों टाँगें पकड़ लीं और उसे दो हिस्सोंमें चीरकर विपरीत दिशाओंमें फेंककर मार डाला। इस प्रकार भारतके उस कालके सबसे शक्तिशाली राजा जरासंधका नाश भीमसेनके ही द्वारा हुआ।

भीमसेनकी नीतिज्ञताका पता उस समय चलता है, जब भगवान् श्रीकृष्ण संधिका प्रस्ताव लेकर कौरव-सभाके लिये प्रस्थान करते हैं। भीमसेन कहते हैं, 'हे मधुसूदन! कौरवोंके बीचमें आप ऐसी बातें करें जिनसे शान्ति स्थापित हो जाय। दुर्योधन स्वभावसे ही दुरात्मा है, दुराग्रही है। वह मर जायगा, पर झुकेगा नहीं। अतएव आप उससे जो कुछ भी कहें, कोमल और मधुर वाणीमें धीरे-धीरे कहें। आपका कथन धर्म और अर्थसे युक्त तथा कल्याणकारी हो। उसमें तनिक भी उग्रता न आने पावे। साथ ही यह भी ध्यान रक्खें कि आपकी अधिकांश बातें उसकी रुचिके अनुकूल हों। श्रीकृष्ण! आप वहाँ बूढ़े पितामह भीष्मजी तथा अन्य सभासदोंको ऐसा करनेके लिये कहें, जिससे हम सब भाइयोंमें सौहार्द बना रहे, और दुर्योधन भी शान्त हो जाय।'—शान्तिप्रियताके भावोंसे भरे हुए इन शब्दोंसे भीमसेनके हृदयकी विशालताका सहज ही अनुमान हो जाता है। अन्तमें अपने कथनको समाप्त करते हुए वे कहते हैं—

अहमेतद् ब्रवीम्येवं राजा चैव प्रशंसति।
अर्जुनो नैव युद्धार्थी भूयसी हि दयार्जुने॥
(उद्योग० ७४। २३)

'मैं इस प्रकार शान्ति-स्थापनकी बात कह रहा हूँ। युधिष्ठिर भी शान्तिकी ही प्रशंसा करते हैं, और अर्जुन भी युद्धके इच्छुक नहीं हैं; क्योंकि अर्जुनके हृदयमें बड़ी दया भरी हुई है।' इस वचनसे स्पष्ट हो जाता है कि भीमसेन जितने अधिक शक्तिसम्पन्न पुरुष थे, उतनी ही अधिक उनके हृदयमें दया भरी थी।

द्रौपदीके चीरहरणके प्रसङ्गमें कौरव-सभामें दुःशासनके दुष्कृत्यको देखकर महाराज युधिष्ठिरके वहाँ रहते ही आपेसे बाहर होकर भीमसेनने सब कौरवोंको युद्धमें मार डालने तथा दुःशासनको मारकर उसके वक्षःस्थलको फाड़कर रक्त पान करनेकी प्रतिज्ञा कर डाली। और इस प्रतिज्ञाको उन्होंने पूरा किया।

भीमसेनमें वीरत्वका गर्व था। इसलिये कभी-कभी वे उद्धत भी हो जाते थे। महाभारतके युद्धमें जब अश्वत्थामाने नारायणास्त्रका प्रयोग किया तो भगवान् श्रीकृष्णने सबको कह दिया कि इस दिव्यास्त्रसे बचनेका एकमात्र यही उपाय है कि हाथसे हथियार डालकर अपने वाहनोंसे नीचे उतर जाओ। भगवान् वासुदेवकी इस बातको सुन सब लोगोंने तदनुसार आचरण किया, परंतु भीमसेन न माने। वे अर्जुन और श्रीकृष्णकी अवहेलना करके आगे बढ़े। नारायणास्त्रके सामने धृष्टता करना महा अनर्थप्रद है, यह सोचकर भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनने उनको बलपूर्वक रथसे उतारा।

धृतराष्ट्रके मुखसे भीमसेनके गुणोंका वर्णन ध्यान देने योग्य है—

नहि तस्य महाबाहो शक्रप्रतिमतेजसः।
सैन्येऽस्मिन् प्रतिपश्यामि य एनं विषहेद् युधि॥
अस्त्रे द्रोणार्जुनसमं वायुवेगसमं जवे।
महेश्वरसमं क्रोधे को हन्याद् भीममाहवे॥
येन भीमबला यक्षा राक्षसाश्च पुरा हताः।
कथं तस्य रणे वेगं मानुषः प्रसहिष्यसि॥
(उद्योगपर्व अ० ५१)

'महाबाहु भीम इन्द्रके समान तेजस्वी हैं। मैं अपनी सेनामें किसीको नहीं देखता, जो युद्धमें उसका सामना कर सके। वह अस्त्रविद्यामें द्रोण और अर्जुनके समान, वेगमें वायुके समान और क्रोधमें महेश्वरके तुल्य है। ऐसे भीमको युद्धमें कौन मार सकता है? जिसने पूर्वकालमें भयङ्कर बलशाली यक्ष-राक्षसोंका वध किया है, युद्धमें उसका वेग कोई मनुष्य कैसे सहन कर सकता है।' धृतराष्ट्रका कथन सर्वथा सत्य है। भीमसेन अद्वितीय योद्धा थे, और महाभारतके युद्धमें उन्होंने खूब पराक्रम दिखलाया। अन्तमें दुर्योधनको मल्लयुद्धमें पछाड़कर पाण्डवोंके लिये उन्होंने विजयश्री प्राप्त की।

श्रीकृष्णसखा अर्जुन

अर्जुन साक्षात् नर-ऋषिके अवतार थे। ये भगवान् श्रीकृष्णके परम भक्त, सखा एवं प्रेमी थे तथा उनके हाथके एक उत्तम यन्त्र थे। इनको निमित्त बनाकर भगवान्ने महाभारत-युद्धमें बड़े-बड़े योद्धाओंका संहार किया और इस प्रकार अपने अवतारके अन्यतम उद्देश्य भूभारहरणको सिद्ध किया। इस बातको स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने गीताके विश्व-रूपदर्शनके प्रसङ्गमें यह कहते हुए स्वीकार किया है कि 'ये सब तुम्हारे शत्रु मेरेद्वारा पहले ही मारे जा चुके हैं, तुम्हें इनके वधमें केवल निमित्त बनना होगा' (११। ३३)। इनकी भक्ति तथा मित्रताको भी भगवान्ने गीतामें ही 'भक्तोऽसि मे सखा चेति,' 'इष्टोऽसि मे दृढमिति' आदि शब्दोंमें स्वीकार किया है। जिसे स्वयं भगवान् अपना भक्त और प्यारा मानें और उद्घोषित करें, उसके भक्त होनेमें दूसरे किसी प्रमाणकी क्या आवश्यकता है। गीताके अन्तमें 'करिष्ये वचनं तव' यह कहकर अर्जुनने स्वयं भगवान्के हाथका यन्त्र बननेकी प्रतिज्ञा की है और महाभारतके अनुशीलनसे इस बातका पर्याप्त प्रमाण भी मिलता है कि उन्होंने अन्ततक इस प्रतिज्ञाका भलीभाँति निर्वाह किया। गीतासे ही इस बातका भी प्रमाण मिलता है कि ये भगवान्को अपना सखा मानते थे और उनके साथ बराबरीका नाता भी रखते थे। श्रीकृष्ण और अर्जुन अनेकों बार भिन्न-भिन्न अवसरोंपर एवं भिन्न-भिन्न स्थानोंमें महीनों साथ रहे थे और ऐसे अवसरोंपर स्वाभाविक ही उनका उठना-बैठना, खाना-पीना, घूमना-फिरना, सोना-लेटना साथ ही होता था और ऐसी स्थितिमें उनमें परस्पर किसी प्रकारका संकोच नहीं रह गया था। दोनोंका एक-दूसरेके साथ खुला व्यवहार था, अभिन्नहृदयता थी। दोनोंका एक-दूसरेके अन्तःपुरमें भी निःसंकोच आना-जाना, उठना-बैठना होता था, एक दूसरेसे किसी प्रकारका पर्दा नहीं था। इन दोनोंमें कैसा प्रेम था, इसका वर्णन संजयने धृतराष्ट्रको पाण्डवोंका संदेश कहते समय सुनाया था। युद्धके पूर्व जब संजय कौरवोंका संदेश लेकर उपप्लव्यमें पाण्डवोंके पास गये, उस समय श्रीकृष्ण और अर्जुनको उन्होंने किस अवस्थामें देखा, इसका वर्णन करते हुए संजय कहते हैं—'महाराज! आपका संदेश सुनानेके लिये मैं अर्जुनके अन्तःपुरमें गया। उस स्थानमें अभिमन्यु और नकुल-सहदेव भी नहीं जा सकते थे। वहाँ पहुँचनेपर मैंने देखा कि श्रीकृष्ण अपने दोनों चरण अर्जुनकी गोदमें रक्खे हुए हैं तथा अर्जुनके चरण द्रौपदी और सत्यभामाकी गोदमें हैं' इत्यादि।

× × ×

जब पाण्डव जुएकी शर्तके अनुसार वनमें चले जाते हैं, उस समय भगवान् श्रीकृष्ण उनसे मिलनेके लिये आते हैं। उस समय वे अर्जुनके साथ अपनी अभिन्नताका उल्लेख करते हुए कहते हैं—'अर्जुन! तुम एकमात्र मेरे हो और मैं एकमात्र तुम्हारा हूँ। जो मेरे हैं, वे तुम्हारे हैं और जो तुम्हारे हैं, वे मेरे हैं। जो तुमसे द्वेष करता है, वह मुझसे द्वेष करता है और जो तुम्हारा प्रेमी है, वह मेरा प्रेमी है। तुम नर हो और मैं नारायण। तुम मुझसे अभिन्न हो और मैं तुमसे। हम दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है, हम दोनों एक हैं।' अर्जुन श्रीकृष्णको कितने प्रिय थे तथा दोनोंमें कैसी अभिन्नता थी—इसका प्रमाण महाभारतकी कई घटनाओंसे मिलता है। जब अर्जुन अपने वनवासके समय तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे प्रभासक्षेत्रमें पहुँचते हैं तो भगवान् श्रीकृष्ण उनका समाचार पाते ही उनसे मिलनेके लिये द्वारकासे प्रभासक्षेत्रको जाते हैं और वहाँसे उन्हें रैवतक पर्वतपर ले आकर कई दिन उनके साथ वहीं बिताते हैं। रैवतक पर्वतसे दोनों द्वारका चले आते हैं और द्वारकामें अर्जुन श्रीकृष्णके ही महलोंमें कई दिनोंतक उनके प्रिय अतिथिके रूपमें रहते हैं और रातको दोनों साथ सोते हैं। वहाँ जब श्रीकृष्णको पता चलता है कि अर्जुन उनकी बहिन सुभद्रासे विवाह करना चाहते हैं तो वे उनके बिना पूछे ही इसके लिये अनुमति दे देते हैं और उसे हरकर ले जानेकी युक्ति भी बतला देते हैं। इतना ही नहीं, अपना रथ और हथियार भी उन्हें दे देते हैं। एवं सुभद्राहरण हो जानेके बाद जब बलरामजी इसका विरोध करते हैं तो वे उन्हें समझा-बुझाकर मना लेते हैं और वहीं द्वारकामें सुभद्राका पाणिग्रहण हो जाता है। यही नहीं, खाण्डवदाहके प्रसङ्गमें भगवान् श्रीकृष्ण इन्द्रसे यह वरदान माँगते हैं कि उनकी अर्जुनके साथ मित्रता उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाय। खाण्डव-दाहके प्रसङ्गमें ही अर्जुन और श्रीकृष्णकी अभिन्नताका एक और प्रमाण मिलता है। खाण्डववनके भयङ्कर अग्निकाण्डमेंसे मय दानव निकल भागनेकी चेष्टा कर रहा था। अग्निदेव मूर्तिमान् होकर उसे जला डालनेके लिये उसके पीछे दौड़ रहे थे। उनकी सहायताके लिये भगवान् श्रीकृष्ण भी अपना चक्र लिये उसे मारनेको प्रस्तुत थे। मय दानवने अपने बचनेका कोई उपाय न देखकर अर्जुनकी शरण ली और अर्जुनने उसे अभयदान दे दिया। अब तो श्रीकृष्णने भी अपना चक्र वापस ले लिया और अग्निदेवने भी उसका पीछा करना छोड़ दिया। मय दानवके प्राण बच गये। मय दानवने इस उपकारके बदलेमें अर्जुनकी कुछ सेवा करनी चाही। अर्जुनने कहा—'तुम श्रीकृष्णकी सेवा कर दो, इसीसे मेरी सेवा हो जायगी।' मय दानव बड़ा निपुण शिल्पी था। श्रीकृष्णने उससे महाराज युधिष्ठिरके लिये एक बड़ा सुन्दर सभाभवन तैयार करवाया। इस प्रकार अर्जुन और श्रीकृष्ण सदा एक दूसरेका प्रिय करते रहते थे।

जिस प्रकार श्रीकृष्ण अर्जुनको प्यार करते थे, उसी प्रकार अर्जुन भी श्रीकृष्णको अपना परम आत्मीय एवं हितू समझते थे। यही कारण था कि उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णकी एक

अरब नारायणी सेनाको न लेकर अकेले और निहत्थे श्रीकृष्ण-को ही सहायकके रूपमें वरण किया। जहाँ भगवान् एवं उनके ऐश्वर्यका मुकाबला होता है, वहाँ सच्चे भक्त ऐश्वर्यको त्यागकर भगवान्का ही वरण करते हैं। श्रीकृष्णने भी उनके प्रेमके वशीभूत होकर युद्धमें उनका सारथ्य करना स्वीकार किया। अर्जुन साथ-ही-साथ अपने जीवनरूप रथकी बागडोर भी उन्हींके हाथोंमें सौंपकर सदाके लिये निश्चिन्त हो गये। फिर तो अर्जुनकी विजय और रक्षा—योग और क्षेम—दोनोंकी चिन्ता सर्वसमर्थ श्रीकृष्णके कंधोंपर चली गयी। उनकी तो यह प्रतिज्ञा ही ठहरी कि जो कोई अनन्यभावसे उनका चिन्तन करते हुए अपनी सारी चिन्ताएँ उन्हींपर डाल देते हैं, उनके योगक्षेमका भार वे अपने कंधोंपर ले लेते हैं। कोई भी अपना भार उनके ऊपर डालकर देख ले।

बस, फिर क्या था। अब तो अर्जुनको जिताने और भीष्म-जैसे दुर्दान्त पराक्रमी वीरोंसे उनकी रक्षा करनेका सारा भार श्रीकृष्णपर आ गया। वैसे विजय तो पाण्डवोंकी पहलेसे ही निश्चित थी; क्योंकि धर्म उनके साथ था। जिस ओर धर्म, उस ओर श्रीकृष्ण और जिस ओर श्रीकृष्ण उस ओर विजय—यह तो सदाका नियम है। फिर तो युद्धके प्रारम्भमें शत्रुओंको पराजित करनेके लिये अर्जुनसे रणचण्डीका आवाहन एवं स्तवन कराना तथा प्रत्यक्ष दर्शन कराके विजयके लिये उनका आशीर्वाद प्राप्त कराना, भगवद्गीताके उपदेश तथा विश्वरूपदर्शनके द्वारा उनके मोहका निरास करना, युद्धमें शस्त्र न लेनेकी प्रतिज्ञाकी परवा न कर भीष्मकी प्रचण्ड बाणवर्षाको रोकनेमें असमर्थ अर्जुनकी प्राणरक्षाके लिये एक बार चक्र लेकर तथा दूसरी बार चाबुक लेकर भीष्मके सामने दौड़ना; भगदत्तके छोड़े हुए सर्वसंहारक वैष्णवास्त्रको अपनी छातीपर ले लेना, रथको पैरोंसे दबाकर कर्णके छोड़े हुए सर्पमुख बाणसे अर्जुनकी रक्षा करना तथा अस्त्रोंसे जले हुए अर्जुनके रथको अपने संकल्पके द्वारा कायम रखना आदि अनेकों लीलाएँ श्रीकृष्णने अर्जुनके योगक्षेमके निर्वाहके लिये कीं।

× × ×

भीष्मको पाण्डवोंसे लड़ते-लड़ते नौ दिन हो गये थे। फिर भी उनके पराक्रममें किसी प्रकारकी शिथिलता नहीं आ पायी थी। प्रतिदिन वे पाण्डव-पक्षके हजारों वीरोंका संहार कर रहे थे। उनपर विजय पानेका पाण्डवोंको कोई मार्ग नहीं सूझ रहा था। महाराज युधिष्ठिरने बड़े ही करुणापूर्ण शब्दोंमें सारी परिस्थिति अपनी नौकाके कर्णधार श्रीकृष्णके सामने रक्खी। श्रीकृष्णने उन्हें सान्त्वना देते हुए जो कुछ कहा, उससे उनका अर्जुनके प्रति असाधारण प्रेम प्रकट होता है। साथ ही अर्जुनके सम्बन्धमें उनकी कैसी ऊँची धारणा थी, इसका भी पता लगता है। श्रीकृष्ण बोले—'धर्मराज! आप बिल्कुल चिन्ता न करें। भीष्मके मारे जानेपर ही यदि आपको विजय दिखायी देती हो तो मैं अकेले ही उन्हें मार सकता हूँ। आपके भाई अर्जुन मेरे सखा, सम्बन्धी तथा शिष्य हैं; आवश्यकता हो तो मैं इनके लिये अपने शरीरका मांस भी काटकर दे सकता हूँ और ये भी मेरे लिये प्राण त्याग सकते हैं। अर्जुनने उपप्लव्यमें सबके सामने भीष्मको मारनेकी प्रतिज्ञा की थी, उसकी मुझे हर तरहसे रक्षा करनी है। जिस कामके लिये अर्जुन मुझे आज्ञा दें, उसे मुझे अवश्य करना चाहिये। अथवा भीष्मको मारना अर्जुनके लिये कौन बड़ी बात है। राजन्! यदि अर्जुन तैयार हो जायँ तो वे असम्भव कार्य भी कर सकते हैं। दैत्य एवं दानवोंके साथ सम्पूर्ण देवता भी युद्ध करने आ जायँ तो अर्जुन उन्हें भी परास्त कर सकते हैं; फिर भीष्मकी तो बात ही क्या है।' सच है, 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्' समर्थ भगवान् जिसके रक्षक एवं सहायक हों, वह क्या नहीं कर सकता।

× × ×

पुत्रशोकसे पीड़ित अर्जुन अभिमन्युकी मृत्युका प्रधान कारण जयद्रथको समझकर दूसरे दिन सूर्यास्तसे पहले-पहले जयद्रथको मार डालनेकी प्रतिज्ञा कर बैठते हैं और साथ ही यह भी प्रतिज्ञा कर लेते हैं कि 'ऐसा न कर सका तो मैं स्वयं जलती हुई आगमें कूद पड़ूँगा।' 'योगक्षेमं वहाम्यहम्' इस वचनके अनुसार अर्जुनकी इस प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेका भार भी श्रीकृष्णपर आ पड़ा था। अर्जुन तो उनके भरोसे निश्चिन्त थे। इधर कौरवोंकी ओरसे जयद्रथको बचानेकी पूरी चेष्टा हो रही थी। उसी दिन श्रीकृष्ण आधी रातके समय ही जाग पड़े और सारथि दारुकको बुलाकर कहने लगे—'दारुक! मेरे लिये स्त्री, मित्र अथवा भाई-बन्धु—कोई भी अर्जुनसे बढ़कर प्रिय नहीं है। इस संसारको अर्जुनके बिना मैं एक क्षण भी नहीं देख सकता। ऐसा हो ही नहीं सकता। कल सारी दुनिया इस बातका परिचय पा जायगी कि मैं अर्जुनका मित्र हूँ। जो उनसे द्वेष रखता है, वह मेरा भी द्वेषी है; जो उनके अनुकूल है, वह मेरे भी अनुकूल है। तुम अपनी बुद्धिमें इस बातका निश्चय कर लो कि अर्जुन मेरा आधा शरीर है। मेरा विश्वास है कि अर्जुन कल जिस-जिस वीरको मारनेका प्रयत्न करेंगे, वहाँ-वहाँ अवश्य उनकी विजय होगी।' भला, ऐसे मित्रवत्सल प्रभु जिसके लिये इस प्रकार उद्यत हों, उसकी विजयमें क्या संदेह हो सकता है। दूसरे दिन श्रीकृष्णकी बतायी हुई युक्तिसे जयद्रथको मारकर अर्जुनने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की और सारे संसारने देखा कि श्रीकृष्णकी कृपासे अर्जुनका बाल भी बाँका नहीं हुआ।

× × ×

कर्ण अर्जुनके साथ शुरूसे ही ईर्ष्या रखता था। दोनों एक दूसरेके प्राणोंके ग्राहक थे। भीष्मके मरणके बाद भगवान् श्रीकृष्णको अर्जुनके लिये सबसे अधिक भय कर्णसे ही था।

उसके पास इन्द्रकी दी हुई एक अमोघ शक्ति थी, जिसे उसने अर्जुनको मारनेके लिये ही रख छोड़ा था। उस शक्तिके बलपर वह अर्जुनको मरा हुआ ही समझता था। उसका प्रयोग एक ही बार हो सकता था। कर्णको उस शक्तिसे हीन करनेके लिये भगवान्‌ने उसे भीमसेनके पुत्र घटोत्कचसे भिड़ा दिया। उसने ऐसा अद्भुत पराक्रम दिखाया कि कर्णके प्राणोंपर बन आयी। वह उसके प्रहारोंको नहीं सह सका। उसने बाध्य होकर वह इन्द्रदत्त शक्ति घटोत्कचपर छोड़ दी और उसने घटोत्कचका काम तमाम कर दिया। घटोत्कचके मारे जानेसे पाण्डवोंके शिबिरमें शोक छा गया। सबकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। परंतु इस घटनासे श्रीकृष्ण बड़े प्रसन्न हुए। वे हर्षसे झूमकर नाचने लगे। उन्होंने अर्जुनको गले लगाकर उनकी पीठ ठोंकी और बारंबार गर्जना की। अर्जुनने उनके बेमौके इस प्रकार आनन्द मनानेका रहस्य जानना चाहा; क्योंकि वे जानते थे कि भगवान्‌की कोई भी क्रिया अकारण नहीं होती। इसके उत्तरमें श्रीकृष्णने जो कुछ कहा, उससे उनका अर्जुनके प्रति अगाध प्रेम झलकता है। उन्होंने कहा—'अर्जुन! आज सचमुच मेरे लिये बड़े ही आनन्दका अवसर है। कारण जानना चाहते हो? सुनो। तुम समझते हो कर्णने घटोत्कचको मारा है; पर मैं कहता हूँ कि इन्द्रकी दी हुई शक्तिको निष्फल करके घटोत्कचने ही कर्णको मार डाला है; अब तुम कर्णको मरा हुआ ही समझो। कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है, जो कर्णके हाथमें शक्ति रहते उसके मुकाबलेमें ठहर सकता।' उन्होंने यह भी बतलाया कि 'मैंने तुम्हारे ही हितके लिये जरासंध, शिशुपाल आदिको एक-एक करके मरवा डाला। वे लोग यदि पहले न मारे गये होते, तो इस समय बड़े भयंकर सिद्ध होते। हमलोगोंसे द्वेष रखनेके कारण वे लोग अवश्य ही कौरवोंका पक्ष लेते और दुर्योधनका सहारा पाकर वे समस्त भूमण्डलको जीत लेते। उनके समान देव-द्रोहियोंका नाश करनेके लिये ही मेरा अवतार हुआ है।' इसी प्रसङ्गपर उन्होंने सात्यकिसे यह भी कहा कि 'कौरवपक्षके सब लोग कर्णको यही सलाह दिया करते थे कि वह अर्जुनके सिवा किसी दूसरेपर शक्तिका प्रयोग न करे और वह भी इसी विचारमें रहता था; परंतु मैं ही उसे मोहमें डाल देता था। यही कारण है कि उसने अर्जुनपर शक्तिका प्रहार नहीं किया। सात्यके! अर्जुनके लिये वह शक्ति मृत्युरूप है—यह सोच-सोचकर मुझे रातों नींद नहीं आती थी। आज वह घटोत्कचपर पड़नेसे व्यर्थ हो गयी—यह देखकर मैं ऐसा समझता हूँ कि अर्जुन मौतके मुँहसे छूट गये। मैं अर्जुनकी रक्षा करना जितना आवश्यक समझता हूँ, उतनी अपने माता-पिता, तुम-जैसे भाइयों तथा अपने प्राणोंकी भी रक्षा आवश्यक नहीं समझता। तीनों लोकोंके राज्यकी अपेक्षा भी यदि कोई दुर्लभ वस्तु हो, तो उसे भी मैं अर्जुनके बिना नहीं चाहता। इसीलिये आज अर्जुन मानो मरकर जी उठे हैं, ऐसा समझकर मुझे बड़ा आनन्द हो रहा है। इसीलिये इस रात्रिमें मैंने राक्षस घटोत्कचको ही कर्णसे लड़नेके लिये भेजा था; उसके सिवा दूसरा कोई कर्णको नहीं दबा सकता था।' भगवान्‌के इन वाक्योंसे स्पष्ट हो जाता है कि अर्जुन भगवान्‌को कितने प्रिय थे और उनकी वे कितनी सँभाल रखते थे। जो अपनेको भगवान्‌के हाथका यन्त्र बना देता है, उसकी भगवान् इसी प्रकार सँभाल रखते हैं और उसका बाल भी बाँका नहीं होने देते। ऐसे भक्तवत्सल प्रभुकी शरणको छोड़कर जो और-और सहारे ढूँढ़ते रहते हैं, उनके समान मूर्ख कौन होगा।

× × ×

द्रोणाचार्यके वधसे अमर्षित होकर वीर अश्वत्थामाने पाण्डवोंके प्रति आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया। उसके छूटते ही आकाशसे बाणोंकी वर्षा होने लगी और सेनामें चारों ओर आग फैल गयी। अर्जुन अकेले एक अक्षौहिणी सेना लेकर अश्वत्थामाका मुकाबला कर रहे थे। उस अस्त्रके प्रभावसे उनकी सारी सेना इस प्रकार दग्ध हो गयी कि उसका नाम-निशानतक मिट गया; परंतु श्रीकृष्ण और अर्जुनके शरीरपर आँचतक नहीं आयी। इन दोनों महापुरुषोंको अस्त्रके प्रभावसे मुक्त देखकर अश्वत्थामा चकित और चिन्तित हो गया, अपने हाथका धनुष फेंककर वह रथसे कूद पड़ा और 'धिक्कार है, धिक्कार है' कहता हुआ रणभूमिसे भाग चला। इतनेमें ही उसे व्यासजी दिखायी दिये। उसने उन्हें प्रणाम किया और उस सर्वसंहारी अस्त्रका श्रीकृष्ण और अर्जुनपर कुछ भी प्रभाव न पड़नेका कारण पूछा। तब व्यासजीने उसे बताया कि 'श्रीकृष्ण नारायण ऋषिके अवतार हैं और अर्जुन नरके अवतार हैं। इनका प्रभाव भी नारायणके ही समान है। ये दोनों ऋषि संसारको धर्म-मर्यादामें रखनेके लिये प्रत्येक युगमें अवतार लेते हैं।' व्यासजीकी इन बातोंको सुनकर अश्वत्थामाकी शङ्का दूर हो गयी और उसकी अर्जुन और श्रीकृष्णमें महत्त्व-बुद्धि हो गयी। व्यासजीके इन वचनोंसे भी श्रीकृष्ण और अर्जुनकी अभिन्नता सिद्ध होती है।

अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णके तो कृपापात्र थे ही, भगवान् शङ्करकी भी उनपर बड़ी कृपा थी। युद्धमें शत्रु-सेनाका संहार करते समय वे देखते थे कि एक अग्निके समान तेजस्वी महापुरुष उनके आगे-आगे चल रहे हैं। वे ही उनके शत्रुओंका नाश करते थे, किंतु लोग समझते थे कि यह अर्जुनका कार्य है। वे त्रिशूल धारण किये रहते थे और सूर्यके समान तेजस्वी थे। वेदव्यासजीसे बात होनेपर उन्होंने अर्जुनको बताया कि वे भगवान् शङ्कर ही थे। जिसपर श्रीकृष्णकी कृपा हो, उसपर और सब लोग भी कृपा करें—

इसमें आश्चर्य ही क्या है। 'जापर कृपा राम कै होई। तापर कृपा करहिं सब कोई ॥' अस्तु;

भगवान्‌के परम भक्त एवं कृपापात्र होनेके साथ-साथ अर्जुनमें और भी बहुत गुण थे। क्यों न हो, सूर्यके साथ सूर्यरश्मियोंकी तरह भक्तिके साथ-साथ दैवी गुण तो आनुषङ्गिकरूपसे रहते ही हैं। ये बड़े धीर, वीर, इन्द्रिय-जयी, दयालु, कोमलस्वभाव एवं सत्य-प्रतिज्ञ थे। इनमें दैवीगुण जन्मसे ही मौजूद थे, इस बातको गीतामें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने 'सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि' कहकर स्वीकार किया है। इनके जन्मके समय आकाशवाणीने इनकी माताको सम्बोधन करके कहा था—'कुन्ती! यह बालक कार्तवीर्य अर्जुन एवं भगवान् शङ्करके समान पराक्रमी एवं इन्द्रके समान अजेय होकर तुम्हारा यश बढ़ायेगा। जैसे विष्णुने अपनी माता अदितिको प्रसन्न किया था, वैसे ही यह तुम्हें प्रसन्न करेगा।' यह आकाशवाणी केवल कुन्तीने ही नहीं, सब लोगोंने सुनी थी। इससे ऋषि-मुनि, देवता और समस्त प्राणी बहुत प्रसन्न हुए। आकाशमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं, पुष्पवर्षा होने लगी। इस प्रकार इनके जन्मके समयसे ही इनकी अलौकिकता प्रकट होने लगी थी। जब ये कुछ बड़े हुए तो इनके भाइयों तथा दुर्योधनादि धृतराष्ट्र-कुमारोंके साथ-साथ इनकी शिक्षा-दीक्षाका भार पहले कृपाचार्य-को, और पीछे द्रोणाचार्यको सौंपा गया। सूतपुत्रके नामसे प्रसिद्ध कर्ण भी इन्हींके साथ शिक्षा पाते थे। द्रोणाचार्यके सभी शिष्योंमें रण शिक्षा, बाहुबल और उद्योग की दृष्टिसे तथा समस्त शस्त्रोंके प्रयोग, लाघवता और सफाईमें अर्जुन ही सबसे बढ़े-चढ़े थे। ये द्रोणाचार्यकी सेवा भी बहुत करते थे। इनकी सेवा, लगन और बुद्धिसे प्रसन्न होकर द्रोणाचार्यने एक दिन इनसे कहा था कि 'बेटा! मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा कि संसारमें तुम्हारे समान और कोई धनुर्धर न हो।' द्रोणाचार्य-जैसे सिद्ध गुरुकी प्रतिज्ञा क्या कभी असत्य हो सकती है? अर्जुन वास्तवमें संसारके अद्वितीय धनुर्धर निकले।

जब पाण्डव एवं कौरव-राजकुमार अस्त्रविद्याका अभ्यास पूरा कर चुके और गुरुदक्षिणा देनेका अवसर आया, उस समय गुरु द्रोणाचार्यने अपने शिष्योंसे कहा—'तुमलोग पाञ्चालराज द्रुपदको युद्धमें पकड़कर ला दो, यही मेरे लिये सबसे बड़ी गुरुदक्षिणा होगी।' सबने प्रसन्नतासे गुरुदेवकी आज्ञा स्वीकार की और उनके साथ अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित हो रथपर सवार होकर द्रुपद-नगरपर चढ़ाई कर दी। वहाँ पहुँचनेपर पाञ्चालराजने अपने भाइयोंके साथ इनका मुकाबला किया। पहले अकेले कौरवोंने ही इनपर धावा किया था। परंतु उन्हें पाञ्चालराजसे हारकर लौटना पड़ा। अन्तमें अर्जुनने भीम और नकुल-सहदेवको साथ लेकर द्रुपदपर आक्रमण किया। बात-की-बातमें अर्जुनने द्रुपदको धर दबाया और उन्हें पकड़कर द्रोणाचार्यके सामने खड़ा कर दिया। इस प्रकार अर्जुनके पराक्रमकी सर्वत्र धाक जम गयी।

पाण्डव द्रौपदीके स्वयंवरका समाचार पाकर एकचक्रा नगरीसे द्रुपदनगरकी ओर जा रहे थे। रास्तेमें उनकी गन्धर्वोंसे मुठभेड़ हो गयी। अर्जुनने अपने अस्त्रकौशलसे गन्धर्वोंके छक्के छुड़ा दिये और उनके राजा अङ्गारपर्ण (चित्ररथ) को पकड़ लिया। अन्तमें दोनोंमें मित्रता हो गयी। द्रौपदीके स्वयंवरमें अर्जुनने वह काम करके दिखला दिया, जिसे उपस्थित राजाओंमेंसे कोई भी नहीं कर सका था। दुर्योधन, शाल्व, शिशुपाल, जरासंध एवं शल्य आदि अनेकों महाबली राजाओं तथा राजकुमारोंने वहाँपर रक्खे हुए धनुषको उठाकर चढ़ानेकी चेष्टा की, परंतु सभी असफल रहे। अर्जुनने बात-की-बातमें उसे उठाकर उसपर रोंदा चढ़ा दिया और लोगोंके देखते-देखते लक्ष्यको भी बेध दिया। उस समय अर्जुन ब्राह्मणोंके वेषमें अपनेको छिपाये हुए थे। अतः उन्हें ब्राह्मण समझकर समस्त राजाओंने मिलकर उनका पराभव करना चाहा। परंतु वे अर्जुन और भीमका बाल भी बाँका न कर सके। उस समय अर्जुन और कर्णका बाणयुद्ध और भीम एवं शल्यका गदायुद्ध हुआ। परंतु अर्जुन और भीमके सामने उनके दोनों ही प्रतिद्वन्द्वियोंको नीचा देखना पड़ा।

खाण्डवदाहके समय भी अर्जुनने अद्भुत पराक्रम दिखलाया था। जब अग्निदेवताने श्रीकृष्ण और अर्जुनकी सहायतासे खाण्डववनको जलाना प्रारम्भ किया, उस समय उसकी गरमीसे सारे देवता त्रस्त हो देवराज इन्द्रके पास गये। तब इन्द्रकी आज्ञासे दल-के-दल मेघ उस प्रचण्ड अग्निको शान्त करनेके लिये जलकी मोटी-मोटी धाराएँ बरसाने लगे। अर्जुनने अपने अस्त्रबलसे बाणोंके द्वारा जलकी धाराओंको आकाशमें ही रोक दिया और पृथ्वीपर नहीं गिरने दिया। इन्द्रने भी अपने तीक्ष्ण अस्त्रोंकी वर्षासे अर्जुनको उत्तर दिया। दोनों ओरसे घमासान युद्ध छिड़ गया। श्रीकृष्ण और अर्जुनने मिलकर अपने चक्र और तीखे बाणोंके द्वारा देवताओंकी सारी सेनाको तहस-नहस कर डाला। भगवान् श्रीकृष्णने उस समय अपना कालरूप प्रकट कर दिया था। देवता और दानव सभी उनके पौरुषको देखकर दंग रह गये। अन्तमें इन्द्रको सम्बोधन करके यह आकाशवाणी हुई कि 'तुम अर्जुन और श्रीकृष्णको युद्धमें किसी प्रकार भी नहीं जीत सकोगे। ये साक्षात् नर-नारायण हैं। इनकी शक्ति और पराक्रम असीम है। ये सबके लिये अजेय हैं। तुम देवताओंको लेकर यहाँसे चले जाओ, इसीमें तुम्हारी शोभा है।' आकाशवाणी सुनकर देवराज अपनी सेनाके साथ लौट पड़े और अग्निने देखते-देखते उस विशाल

वनको भस्म कर दिया। अर्जुनकी सेवासे प्रसन्न होकर अग्निने उन्हें दिव्य अस्त्र दिये। इन्द्रने भी उनके अस्त्र-कौशलसे प्रसन्न होकर उन्हें समय आनेपर अस्त्र देनेकी प्रतिज्ञा की तथा अग्निकी प्रार्थनापर वरुणदेवने उन्हें अक्षय तरकस, गाण्डीव धनुष और वानर-चिह्नयुक्त ध्वजासे मण्डित रथ युद्धसे पहले ही दे दिया था।

जब पाण्डवलोग दूसरी बार जुएमें हारकर वनमें रहने लगे, उस समय एक दिन महर्षि वेदव्यासजी उनके पास आये और युधिष्ठिरको एकान्तमें ले जाकर उन्होंने समझाया कि 'अर्जुन नारायणका सहचर महातपस्वी नर है। इसे कोई जीत नहीं सकता, यह अच्युतस्वरूप है। यह तपस्या एवं पराक्रमके द्वारा देवताओंके दर्शनकी योग्यता रखता है। इसलिये तुम इसको अस्त्रविद्या प्राप्त करनेके लिये भगवान् शङ्कर, देवराज इन्द्र, वरुण, कुबेर और धर्मराजके पास भेजो। यह उनसे अस्त्र प्राप्त करके बड़ा पराक्रम करेगा और तुम्हारा खोया हुआ राज्य वापस ला देगा।' युधिष्ठिरने वेदव्यासजीकी आज्ञा मानकर अर्जुनको उन्हीं महर्षिकी दी हुई मन्त्र-विद्या सिखाकर इन्द्रके दर्शनके लिये इन्द्रकील पर्वतपर भेज दिया। वहाँ पहुँचनेपर एक तपस्वीके रूपमें इन्हें इन्द्रके दर्शन हुए। इन्द्रने इन्हें स्वर्गके भोगों एवं ऐश्वर्यका प्रलोभन दिया, परंतु इन्होंने सब कुछ छोड़कर उनसे अस्त्रविद्या सीखनेका ही आग्रह किया। इन्द्रने कहा—'पहले तुम तपद्वारा भगवान् शङ्करके दर्शन प्राप्त करो। उनके दर्शनसे सिद्ध होकर तुम स्वर्गमें आना, तब मैं तुम्हें सारे दिव्य अस्त्र दे दूँगा।' अर्जुन मनस्वी तो थे ही। वे तुरंत ही कठोर तपस्यामें लग गये। इनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् शङ्कर एक भीलके रूपमें इनके सामने प्रकट हुए। एक जंगली सूअरको लेकर दोनोंमें विवाद खड़ा हो गया और फिर दोनोंमें युद्ध छिड़ गया। अर्जुनने अपने अस्त्रकौशलसे भगवान् शङ्करको प्रसन्न कर लिया। वे बोले—'अर्जुन! तुम्हारे अनुपम कर्मसे मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारे-जैसा धीर-वीर क्षत्रिय दूसरा नहीं है। तुम तेज और बलमें मेरे ही समान हो। तुम सनातन ऋषि हो। तुम्हें मैं दिव्य ज्ञान देता हूँ, तुम देवताओं-को भी जीत सकोगे।' इसके बाद भगवान् शङ्करने अर्जुनको देवी पार्वतीके सहित अपने असली रूपमें दर्शन देकर विधिपूर्वक पाशुपतास्त्रकी शिक्षा दी। इस प्रकार देवाधिदेव महादेवकी कृपा प्राप्तकर वे स्वर्ग जानेकी बात सोच रहे थे कि इतनेमें ही वरुण, कुबेर, यम एवं देवराज—ये चारों लोकपाल वहाँ आकर उपस्थित हुए। यम, वरुण और कुबेरने क्रमशः उन्हें दण्ड, पाश एवं अन्तर्धान नामक अस्त्र दिये और इन्द्र उन्हें स्वर्गमें आनेपर अस्त्र देनेको कह गये। इसके बाद इन्द्रके भेजे हुए रथपर बैठकर अर्जुन स्वर्गलोकमें गये और वहाँ पाँच वर्ष रहकर इन्होंने अस्त्रज्ञान प्राप्त किया और साथ-ही-साथ चित्रसेन गन्धर्वसे गान्धर्वविद्या सीखी। इन्द्रसे अस्त्रविद्या सीखकर जब अर्जुन सब प्रकारके अस्त्रोंके चलानेमें निपुण हो गये, तब देवराजने उनसे निवातकवच नामक दानवोंका वध करनेके लिये कहा। ये समुद्रके भीतर एक दुर्गम स्थानमें रहते थे। इनकी संख्या तीन करोड़ बतायी जाती थी। इन्हें देवता भी नहीं जीत सकते थे। अर्जुनने अकेले ही जाकर उन सबका संहार कर डाला। इतना ही नहीं, निवातकवचोंको मारकर लौटते समय उनका कालिकेय एवं पौलोम नामक दैत्योंसे युद्ध हुआ और उनका भी अर्जुनने सफाया कर डाला। इस प्रकार इन्द्रका प्रिय कार्य करके तथा इन्द्रपुरीमें कुछ दिन और रहकर अर्जुन वापस अपने भाइयोंके पास चले आये।

स्वर्गसे लौटकर वनमें तथा एक वर्ष अज्ञातरूपसे विराट-नगरमें रहते हुए भी अर्जुनने अद्भुत पराक्रम दिखाया। वनमें इन्होंने दुर्योधनादिको छुड़ानेके लिये गन्धर्वोंसे युद्ध किया, जिसका उल्लेख युधिष्ठिरके प्रसङ्गमें किया जा चुका है। इसके बाद जब वनवासके बारह वर्ष पूरे हो गये और पाण्डवलोग एक वर्षके अज्ञातवासकी शर्त पूरी करनेके लिये विराटके यहाँ रहने लगे, उस समय इन लोगोंका पता लगानेके लिये दुर्योधनने विराटनगरपर चढ़ाई की। भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृप, अश्वत्थामा आदि सभी प्रधान-प्रधान वीर उनके साथ थे। ये लोग राजा विराटकी साठ हजार गौओंको घेरकर ले चले। तब विराट-कुमार उत्तर बृहन्नला बने हुए अर्जुनको सारथि बनाकर उन्हें रोकनेके लिये गये। कौरवोंकी विशाल सेनाको देखते ही उत्तरके रोंगटे खड़े हो गये, वह रथसे उतरकर भागने लगा। बृहन्नला (अर्जुन) ने उसे पकड़कर समझाया और उसे सारथि बनाकर स्वयं युद्ध करने चले। इन्होंने बारी-बारीसे कर्ण, कृप, द्रोण, अश्वत्थामा और दुर्योधनको पराजित किया और भीष्मको भी मूर्छित कर दिया। इसके बाद भीष्म, दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन, विविंशति, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और कृपाचार्य—ये सभी महारथी एक साथ अर्जुनपर टूट पड़े और उन्होंने इन्हें चारों ओरसे घेर लिया; परंतु अर्जुनने अपने बाणोंकी झड़ीसे सबके छक्के छुड़ा दिये। अन्तमें उन्होंने सम्मोहन नामके अस्त्रको प्रकट किया, जिससे सारे-के-सारे कौरव वीर अचेतन हो गये, उनके हाथोंसे शस्त्र गिर पड़े। उस समय अर्जुन चाहते तो इन सबको आसानीसे मार सकते थे, परंतु वे इन सब बातोंसे ऊपर थे। होशमें आनेपर भीष्मकी सलाहसे कौरवोंने गौओंको छोड़कर लौट जाना ही श्रेयस्कर समझा। अर्जुन विजयघोष करते हुए नगरमें चले आये। इस प्रकार अर्जुनने विराटकी गौओंके साथ-साथ उनकी मान-मर्यादाकी भी रक्षा करके अपने आश्रयदाताका ऋण कई गुने रूपमें चुका दिया। धन्य स्वामिभक्ति!

महाभारत-युद्धके तो अर्जुन एक प्रधान पात्र थे ही। पाण्डवोंकी सेनाके प्रधान सेनानायक यही थे। भगवान् श्रीकृष्णने इन्हींका सारथि बनना स्वीकार किया था तथा भीष्म, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा आदि अजेय योद्धाओंसे टक्कर लेना इन्हींका काम था। ये लोग सभी इनका लोहा मानते थे। इन्होंने जयद्रथ-वधके दिन जो अद्भुत पराक्रम एवं अस्त्रकौसल दिखलाया, वह तो इन्हींके योग्य था। इनकी भयंकर प्रतिज्ञाको सुनकर उस दिन कौरवोंने जयद्रथको सारी सेनाके पीछे खड़ा किया था। कई अक्षौहिणी सेनाके बीचमेंसे रास्ता काटते हुए अर्जुन बड़ी मुस्तैदी एवं अदम्य उत्साहके साथ अपने लक्ष्यकी ओर बढ़े चले जा रहे थे। शत्रु-सेनाके हजारों वीर और हाथी-घोड़े उनके अमोघ बाणोंके शिकार बन चुके थे। वे रथसे एक कोसतकके शत्रुओंका सफाया करते जाते थे। इतनेमें शाम होनेको आ गयी। इनके घोड़े बाणोंके लगनेसे बहुत व्यथित हो गये थे और अधिक परिश्रमके कारण थक भी गये थे। भूख-प्यास उन्हें अलग सता रही थी। अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा—'आप घोड़ोंको खोलकर इनके बाण निकाल दीजिये। तबतक मैं कौरवोंकी सारी सेनाको रोके रहूँगा।' ऐसा कहकर अर्जुन रथसे उतर पड़े और बड़ी सावधानीसे धनुष लेकर अविचल भावसे खड़े हो गये, उस समय इन्हें पराजित करनेका अच्छा मौका देखकर शत्रुसेनाके वीरोंने एक साथ इन्हें घेर लिया और तरह-तरहके बाणों एवं शस्त्रोंसे ढक दिया; किंतु वीर अर्जुनने उनके अस्त्रोंको अपने अस्त्रोंसे रोककर बदलेमें उन सभीको बाणोंसे आच्छादित कर दिया। इधर श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा कि 'घोड़े प्याससे व्याकुल हो रहे हैं; किंतु पासमें कोई जलाशय नहीं है।' इसपर अर्जुनने तुरंत ही अस्त्रद्वारा पृथ्वीको फोड़कर घोड़ोंके पानी पीने योग्य एक सुन्दर सरोवर बना दिया। इतना ही नहीं, उस सरोवरके ऊपर उन्होंने एक बाणोंका घर बना दिया। अर्जुनका यह अभूतपूर्व पराक्रम देखकर सिद्ध, चारण और सैनिकलोग दाँतोंतले अँगुली दबाने और वाह-वाह करने लगे। सबसे बढ़कर आश्चर्यकी बात तो यह हुई कि बड़े-बड़े महारथी भी पैदल अर्जुनको पीछे नहीं हटा सके। इस बीचमें श्रीकृष्णने फुर्तीसे घोड़ोंके बाण निकालकर उन्हें नहलाया, मालिश की, जल पिलाया और घास खिलाकर तथा जमीनपर लिटाकर उन्हें फिरसे रथमें जोत लिया। अर्जुन जब जयद्रथके पास पहुँचे तो इनपर आठ महारथियोंने एक साथ आक्रमण किया और दुर्योधनने अपने बहनोईकी रक्षाके उद्देश्यसे उन्हें चारों ओरसे घेर लिया; परंतु अर्जुन उन सबका मुकाबला करते हुए आगे बढ़ते ही गये। इनके वेगको कोई रोक नहीं सका। इन्होंने श्रीकृष्णकी कृपासे सूर्यास्त होते-होते जयद्रथको अपने वज्रतुल्य बाणोंका शिकार बना लिया और श्रीकृष्णके कथनानुसार इस कौशलसे उसके मस्तकको काटा कि वह कुरुक्षेत्रसे बाहर जाकर उसके पिताकी गोदमें गिरा। इस प्रकार श्रीकृष्णकी सहायतासे सूर्यास्तसे पहले-पहले अर्जुनने जयद्रथको मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

× × ×

अर्जुन जगद्विजयी वीर और अद्वितीय धनुर्धर तो थे ही; वे बड़े भारी सत्यप्रतिज्ञ, सदाचारी, धर्मात्मा एवं इन्द्रियजयी भी थे। पाण्डव जब इन्द्रप्रस्थमें राज्य करते थे, उन दिनों एक दिन लुटेरे किसी ब्राह्मणकी गौएँ लेकर भाग गये। ब्राह्मणने आकर पाण्डवके सामने पुकार की। अर्जुनने ब्राह्मणकी करुण पुकार सुनी और उन्हें गौओंको छुड़ाकर लानेका वचन दिया। परंतु उनके शस्त्र उस घरमें थे, जहाँ उनके बड़े भाई महाराज युधिष्ठिर द्रौपदीके साथ एकान्तमें बैठे हुए थे। पाँचों भाइयोंमें पहलेसे ही यह शर्त हो चुकी थी कि 'जिस समय द्रौपदी एक भाईके पास एकान्तमें रहे, उस समय दूसरा कोई भाई यदि उनके कमरेमें चला जाय तो वह बारह वर्षके लिये निर्वासित कर दिया जाय।' अर्जुन बड़े असमंजसमें पड़ गये। यदि ब्राह्मणकी गौओंकी रक्षा नहीं की जाती तो क्षत्रिय-धर्मसे च्युत होते हैं और उसके लिये शस्त्र लेने कमरेमें जाते हैं तो नियमभंग होता है। अन्तमें अर्जुनने नियमभंग करके भी ब्राह्मणकी गौओंकी रक्षा करनेका ही निश्चय किया। उन्होंने सोचा—'नियमभंगके कारण मुझे कितना भी कठिन प्रायश्चित्त क्यों न करना पड़े, चाहे प्राण ही क्यों न चले जायँ, ब्राह्मणके गोधनकी रक्षा करके अपराधियोंको दण्ड देना मेरा धर्म है और वह मेरे जीवनकी रक्षासे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है।' धन्य धर्मप्रेम !

अर्जुन चुपचाप युधिष्ठिरके कमरेमें जाकर शस्त्र ले आये और उसी समय लुटेरोंका पीछा करके ब्राह्मणकी गौएँ छुड़ा लाये। वहाँसे लौटकर उन्होंने अपने बड़े भाईसे नियमभंगके प्रायश्चित्तरूपमें वन जानेकी आज्ञा माँगी। युधिष्ठिरने उन्हें समझाया कि 'बड़ा भाई अपनी स्त्रीके पास बैठा हो, उस समय छोटे भाईका उसके पास चला जाना अपराध नहीं है। यदि कोई अपराध हुआ भी हो तो वह मेरे प्रति हुआ है और मैं उसे स्वेच्छासे क्षमा करता हूँ। फिर तुमने धर्मके लिये ही तो नियमभंग किया है, इसलिये भी तुम्हें वन जानेकी आवश्यकता नहीं है।' अर्जुनके लिये नियमभंगके प्रायश्चित्तसे बचनेका यह अच्छा मौका था। और कोई होता तो इस मौकेको हाथसे नहीं जाने देता। आजकल तो कानूनके शिकंजेसे बचनेके लिये कानूनका ही आश्रय लेना बिल्कुल जायज समझा जाता है, परंतु अर्जुन बहाना लेकर दण्डसे बचना नहीं जानते थे। उन्होंने युधिष्ठिरके समझानेपर भी सत्यकी रक्षाके लिये नियमका पालन आवश्यक समझा और

वनवासकी दीक्षा लेकर वहाँसे चल पड़े ! धन्य सत्यप्रतिज्ञता और नियम-पालनकी तत्परता !

जिस समय अर्जुन इन्द्रपुरीमें रहकर अस्त्रविद्या तथा गान्धर्व-विद्या सीख रहे थे, एक दिन इन्द्रने रात्रिके समय उनकी सेवाके लिये वहाँकी सर्वश्रेष्ठ अप्सरा उर्वशीको उनके पास भेजा। उस दिन सभामें इन्द्रने अर्जुनको उर्वशीकी ओर निर्निमेष नेत्रोंसे देखते हुए पाया था। उर्वशी अर्जुनके रूप और गुणोंपर पहलेसे ही मुग्ध थी। वह इन्द्रकी आज्ञासे खूब सज-धजकर अर्जुनके पास गयी। अर्जुन उर्वशीको रात्रिमें अकेले इस प्रकार निःसंकोचभावसे अपने पास आयी देख सहम गये। उन्होंने शीलवश अपने नेत्र बंद कर लिये और उर्वशीको माताकी भाँति प्रणाम किया। उर्वशी यह देखकर दंग रह गयी। उसे अर्जुनसे इस प्रकारके व्यवहारकी आशा नहीं थी। उसने खुल्लमखुल्ला अर्जुनके प्रति कामभाव प्रकट किया। अब तो अर्जुन मारे संकोचके धरतीमें गड़-से गये। उन्होंने अपने हाथोंसे दोनों कान मूँद लिये और बोले—'माता! यह क्या कह रही हो ? देवि! निस्संदेह तुम मेरी गुरुपत्नीके समान हो। देवसभामें मैंने तुम्हें निर्निमेष नेत्रोंसे देखा अवश्य था; परंतु मेरे मनमें कोई बुरा भाव नहीं था। मैं यही सोच रहा था कि पूरुवंशकी यही माता हैं। इसीसे मैं तुमको देख रहा था। देवि! मेरे सम्बन्धमें और कोई बात तुम्हें सोचनी ही नहीं चाहिये। तुम मेरे लिये बड़ोंकी बड़ी और मेरे पूर्वजोंकी जननी हो। जैसे कुन्ती, माद्री और इन्द्रपत्नी शची मेरी माताएँ हैं, वैसे ही तुम भी पूरुवंशकी जननी होनेके नाते मेरी पूजनीया माता हो। मैं तुम्हारे चरणोंमें सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ।'* अब तो उर्वशी क्रोधके मारे आगबबूला हो गयी। उसने अर्जुनको शाप दिया—'मैं इन्द्रकी आज्ञासे कामातुर होकर तुम्हारे पास आयी थी; परंतु तुमने मेरे प्रेमको ठुकरा दिया। इसलिये जाओ, तुम्हें स्त्रियोंके बीचमें नचनियाँ होकर रहना पड़ेगा और लोग तुम्हें हिजड़ा कहकर पुकारेंगे।' अर्जुनने उर्वशीके शापको सहर्ष स्वीकार कर लिया, परंतु धर्मका त्याग नहीं किया। एकान्तमें स्वेच्छासे आयी हुई उर्वशी-जैसी अनुपम सुन्दरीका परित्याग करना अर्जुनका ही काम था। धन्य इन्द्रियजय! जब इन्द्रको यह बात मालूम हुई तो उन्होंने अर्जुनको बुलाकर उनकी पीठ ठोंकी और कहा—'बेटा! तुम्हारे-जैसा पुत्र पाकर तुम्हारी माता धन्य हुई। तुमने अपने धैर्यसे ऋषियोंको भी जीत लिया। अब तुम किसी प्रकारकी चिन्ता न करो। उर्वशीने जो शाप तुम्हें दिया है, वह तुम्हारे लिये वरदानका काम करेगा। तेरहवें वर्षमें जब तुम अज्ञातवास करोगे, उस समय यह शाप तुम्हारे छिपनेमें सहायक होगा। इसके बाद तुम्हें पुरुषत्वकी प्राप्ति हो जायगी।' सच है—'धर्मो रक्षति रक्षितः।'

× × ×

विराटनगरमें अज्ञातवासकी अवधि पूरी हो जानेपर जब पाण्डवोंने अपनेको राजा विराटके सामने प्रकट किया, उस समय राजा विराटने कृतज्ञतावश अपनी कन्या उत्तराकुमारीका अर्जुनसे विवाह करना चाहा। परंतु अर्जुनने उनके इस प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा—'राजन्! मैं बहुत कालतक आपके रनिवासमें रहा हूँ और आपकी कन्याको एकान्तमें तथा सबके सामने भी पुत्रीके रूपमें ही देखता आया हूँ। उसने भी मुझपर पिताकी भाँति ही विश्वास किया है। मैं उसके सामने नाचता था और संगीतका जानकार भी हूँ। इसलिये वह मुझसे प्रेम तो बहुत करती है परंतु सदा मुझे गुरु ही मानती आयी है। वह वयस्का हो गयी है और उसके साथ एक वर्षतक मुझे रहना पड़ा है। अतः आपको या किसी औरको हम दोनोंके प्रति अनुचित संदेह न हो, इसलिये उसे मैं अपनी पुत्रवधूके रूपमें ही वरण करता हूँ। ऐसा करनेसे ही हम दोनोंका चरित्र शुद्ध समझा जायगा।' अर्जुनके इस पवित्र भावकी सब लोगोंने प्रशंसा की और उत्तरा अभिमन्युको ब्याह दी गयी। अर्जुन-जैसे महान् इन्द्रियजयी ही इस प्रकार युवती कन्याके साथ एक वर्षतक घनिष्ठ सम्पर्कमें रहकर भी अपनेको अछूता रख सके और उसका भाव भी इनके प्रति बिगड़ा नहीं। वयस्क छात्रों तथा छात्राओंके शिक्षकोंको इससे शिक्षा लेनी चाहिये।

× × ×

जब अश्वत्थामा रात्रिमें सोये हुए पाण्डवोंके पुत्रों तथा धृष्टद्युम्न आदिको मारकर स्वयं गङ्गातटपर जा बैठा, तब पीछेसे उसके क्रूर कर्मका संवाद पाकर भीमसेन और अर्जुन उससे बदला लेनेके लिये उसकी तलाशमें गये। भीम और अर्जुनको आते देख अश्वत्थामा बहुत डर गया और इनके हाथोंसे बचनेका और कोई उपाय न देख उसने ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। देखते-देखते वहाँ प्रलयकालकी-सी अग्नि उत्पन्न हो गयी और वह चारों ओर फैलने लगी। उसे शान्त करनेके लिये अर्जुनने भी ब्रह्मास्त्रको प्रकट किया; क्योंकि ब्रह्मास्त्रको ब्रह्मास्त्रके द्वारा ही शान्त किया जा सकता था। दोनों अस्त्रोंके आपसमें टकरानेसे बड़ी भारी गर्जना होने लगी, हजारों उल्काएँ गिरने लगीं और सभी प्राणियोंको बड़ा भय मालूम होने लगा। यह भयंकर काण्ड देखकर देवर्षि नारद और महर्षि व्यास दोनों वहाँ एक साथ पधारे और दोनों वीरोंको शान्त करने लगे। इन दोनों महापुरुषोंके कहनेसे अर्जुनने तो तुरंत अपना दिव्य अस्त्र लौटा लिया। उन्होंने उसे छोड़ा

* यथा कुन्ती च माद्री च शची चैव ममानघे।
तथा च वंशजननी त्वं हि मेऽद्य गरीयसी॥
गच्छ मूर्ध्ना प्रपन्नोऽस्मि पादौ ते वरवर्णिनि।
त्वं हि मे मातृवत् पूज्या रक्ष्योऽहं पुत्रवत्त्वया॥
(महा० वन० ४६। ४६-४७)

ही था अश्वत्थामाके अस्त्रको शान्त करनेके लिये ही । उस अस्त्रका ऐसा प्रभाव था कि उसे एक बार छोड़ देनेपर सहसा उसे लौटाना अत्यन्त कठिन था । केवल ब्रह्मचारी ही उसे लौटा सकता था । अश्वत्थामाने भी उन दोनों महापुरुषोंको देखकर उसे लौटानेका बहुत प्रयत्न किया, पर वह संयमी न होनेके कारण उसे लौटा न सका । अन्तमें व्यासजीके कहनेसे उसने उस अस्त्रको उत्तराके गर्भपर छोड़ दिया और वह बालक मरा हुआ निकला; किंतु भगवान् श्रीकृष्णने उसे फिरसे जिला दिया । इस प्रकार अर्जुनमें शूरवीरता, अस्त्रज्ञान और इन्द्रियजय—इन तीनों गुणोंका अद्भुत सम्मिश्रण था ।

अर्जुनका जीवन एक दिव्य जीवन था । उनके चरित्रपर हम जितना ही विचार करते हैं, उतना ही हमें वह आदर्श एवं शिक्षाओंसे पूर्ण प्रतीत होता है ।

महावीर युवक अभिमन्यु

अर्जुनका पुत्र सुभद्राकुमार अभिमन्यु महाभारत महाकाव्यका एक अपूर्व पात्र है । यह भगवान् श्रीकृष्णका भानजा अर्जुनके समान ही महान् धनुर्धर था । वह श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंको समान प्रिय था । महाराज युधिष्ठिरके साथ अन्य चारों भाई भी उसको बहुत अधिक प्यार करते थे । पाण्डवोंके अज्ञातवासके पश्चात् ही अभिमन्युका ब्याह महाराजा विराटकी पुत्री उत्तराके साथ बड़ी धूम-धामसे हुआ था । अर्जुनने उत्तराको पुत्रवधूके रूपमें स्वीकार करते समय महाराजा विराटसे कहा था—

स्नुषार्थमुत्तरां राजन् प्रतिगृह्णामि ते सुताम् ॥
स्वस्रीयो वासुदेवस्य साक्षात् देवशिशुर्यथा ।
दयितश्चक्रहस्तस्य सर्वास्त्रेषु च कोविदः ॥

(विराट ०७२ । ७ । ८)

अभिमन्युर्महाबाहुः पुत्रो मम विशाम्पते ।
जामाता तव युक्तो वै भर्त्ता च दुहितुस्तव ॥

(७२ । ९)

'राजन् ! आपकी पुत्री उत्तराको मैं पुत्रवधूके रूपमें ग्रहण करता हूँ । मेरा पुत्र अभिमन्यु भगवान् वासुदेवका भानजा और देखनेमें साक्षात् देवकुमार-सा है । चक्रधारी श्रीकृष्णको वह अति प्रिय है । तथा वह सब प्रकारकी अस्त्रविद्यामें कुशल है । महाराज ! मेरा वह महाबली पुत्र अभिमन्यु आपकी पुत्रीका उपयुक्त पति तथा आपका सुयोग्य जामाता बनने योग्य है ।'

इस सम्बन्धसे महाराज विराट कृतकृत्य हो गये । परंतु इसके बाद ही विराटकी सभामें महाभारतके युद्धकी भूमिका शुरू हो गयी ।

महायुद्धमें जब द्रोणाचार्य कौरवसेनाके सेनाध्यक्ष बने और अपनी सेनाकी व्यूह-रचना करके व्यूहके द्वारपर स्वयं डट गये तो पाण्डवोंके सामने एक विकट प्रश्न आ उपस्थित हो गया । उस समय अर्जुन संशप्तकोंसे युद्ध कर रहे थे, और द्रोणके व्यूहको तोड़नेवाला अर्जुनकुमार अभिमन्युके सिवा कोई दूसरा न था । वह व्यूह तोड़कर भीतर तो घुस सकता था, परंतु शत्रुसैन्यके भीतरसे बाहर आनेकी कला उसे मालूम न थी । भीमसेन उसका अनुगमन करनेवाले थे और उनके पीछे धृष्टद्युम्न और सात्यकि तथा पाञ्चाल, कैकय, मत्स्यादि सैनिकोंका दल घुसनेवाला था । परंतु भगवान् शङ्करका वर प्राप्त करनेके कारण जयद्रथ उस दिन अजेय बन गया था, उसने किसीको भी अभिमन्युके पीछे नहीं जाने दिया । अभिमन्यु अकेला ही कौरवोंकी महासेनामें घुसकर वहाँ प्रलयका दृश्य उपस्थित कर बड़े-बड़े महारथियोंके छक्के छुड़ाने लगा ।

द्रोणपर्वके ३४ वें अध्यायमें संजयने श्रीकृष्ण और पाण्डवोंकी प्रशंसा करते हुए अन्तमें धृतराष्ट्रसे कहा था कि—

ये च कृष्णे गुणाः स्फीताः पाण्डवेषु च ये गुणाः ।
अभिमन्यौ किलैकस्था दृश्यन्ते गुणसंचयाः ॥

(द्रोण० ३४ । ८)

युधिष्ठिरस्य वीर्येण कृष्णस्य चरितेन च ।
कर्मभिर्भीमसेनस्य सदृशो भीमकर्मणः ॥
धनंजयस्य रूपेण विक्रमेण श्रुतेन च ।
विनयात् सहदेवस्य सदृशो नकुलस्य च ॥

(द्रोण० ३४ । ९-१०)

महात्मा संजयने संक्षेपमें अभिमन्युके गुणोंका दिग्दर्शन कराया है । 'श्रीकृष्णमें तथा पाण्डवोंमें जो श्रेष्ठ गुण हैं, वे सारे गुण संचित होकर एकत्र अभिमन्युमें देखे जाते हैं । वह वीर्यमें युधिष्ठिरके समान है, आचारमें श्रीकृष्णके समान है, भयंकर कर्म करनेवाले भीमसेनके समान कर्मठ है, विद्या, पराक्रम और रूपमें अर्जुनके समान है, तथा विनयमें सहदेव और नकुलके समान है ।'

इस प्रकारके सर्व गुणोंसे युक्त वीर बालक अभिमन्युने कौरवोंकी महती सेनामें रथ, गज और पैदल—सेनाके तीनों अङ्गोंको इस प्रकार मथ डाला मानो स्वयं विष्णु भगवान् असुर सैन्यका संहार करनेपर तुल गये हों । अभिमन्युके शस्त्रसंघातसे कौरवसेनामें हाहाकार मच गया । धृतराष्ट्रने अभिमन्युके पराक्रमका संवाद सुनकर कहा था—

द्वैधीभवति मे चित्तं ह्रिया तुष्ट्या च संजय ।
मम पुत्रस्य यत् सैन्यं सौभद्रः समवारयत् ॥

(द्रोण ३९ । १)

'हे संजय ! मेरे पुत्र दुर्योधनकी महती सेनाको वीर बालक सुभद्राकुमार अभिमन्युने तहस-नहस करके तितर-बितर कर दिया, यह सुनकर मेरा हृदय लज्जा और आनन्दसे द्विविधामें पड़ जाता है।' धन्य है महाभाग धृतराष्ट्र ! अपने पौत्र अर्जुनकुमार अभिमन्युकी वीरताको सुनकर आप हर्षित हो उठते हैं, यह आपके उत्कृष्ट क्षात्र-धर्म और विशुद्ध आत्मीयताका द्योतक है, और लज्जित इसलिये होते हैं कि इतनी बड़ी और शक्तिशाली हमारे पुत्रोंकी कौरवसेना, एक बालकके सामने नहीं टिक सकी !

उस युद्धमें अभिमन्युके अद्भुत पराक्रमको देखकर गुरु द्रोणसे नहीं रहा गया, वे बोल उठे—

एष गच्छति सौभद्रः पार्थानां प्रथितो युवा ।
नन्दयन् सुहृदः सर्वान् राजानं च युधिष्ठिरम् ॥
नास्य युद्धे समं मन्ये कंचिदन्यं धनुर्धरम् ।
इच्छन् हन्यादिमां सेनां किमर्थमपि नेच्छति ॥

(द्रोण० ३९ । ११, १३)

'यह पृथापुत्रोंका प्रसिद्ध युवक सुभद्राकुमार अभिमन्यु अपने सब सुहृज्जनोंको तथा राजा युधिष्ठिरको आनन्दित करता हुआ कौरव-सेनाके भीतर घुसता जा रहा है। इस युद्धमें इसके समान धनुर्धर मैं किसी दूसरेको नहीं मानता। यह चाहे तो इस सेनाका संहार कर सकता है। पर यह ऐसा चाहता क्यों नहीं है ?'

दुर्योधन अभिमन्युके पराक्रमको देखकर दंग हो गया, परंतु करता क्या ? आचार्य द्रोणकी आलोचना करते हुए कहने लगा। कर्ण ! यह अर्जुनका मूढ़ पुत्र द्रोणके द्वारा रक्षित होकर अपनेको बड़ा पराक्रमशाली समझ रहा है। ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ आचार्य द्रोण तो उच्चकोटिके धनुर्धरोंके आचार्य हैं, अपने शिष्यका पुत्र समझकर इसे छोड़ रहे हैं।' परंतु दुर्योधनके उकसानेपर भी कौरवसेनाके महारथी एक-एक करके अभिमन्युसे हार खाने लगे। उसकी युद्ध-कलाकी कुशलताका वर्णन गुरु द्रोणने द्रोणपर्वके ४८ वें अध्यायमें किया है। जिसे सुनकर कौरवोंका पक्षपाती कर्ण भी बोल उठा—

स्थातव्यमिति तिष्ठामि पीड्यमानोऽभिमन्युना ।
तेजस्विनः कुमारस्य शराः परमदारुणा ॥
क्षिण्वन्ति हृदयं मेऽद्य घोराः पावकतेजसः ।

(द्रोण० ४८ । २५)

'अभिमन्युके द्वारा पीड़ित होकर, मुझे युद्धभूमिसे भागना नहीं चाहिये, इसी विचारसे मैं ठहरा हूँ। तेजस्वी सुभद्राकुमारके बाण परम दारुण हैं, आज उसके अग्निके समान तेज और भयंकर बाण मेरे हृदयको छलनी कर रहे हैं।'

द्रोणाचार्यने कर्णकी इस बातका समर्थन करते हुए कहा कि 'जबतक इसके हाथमें धनुषबाण है, तबतक इसको देवता और असुरोंके समूह भी नहीं जीत सकते। इसलिये इसको रथ और धनुषसे रहित कर दो।

सधनुष्को न शक्योऽयमपि जेतुं सुरासुरैः ।
विरथं विधनुष्कं च कुरुष्वैनं यदीच्छसि ॥

(द्रोण० ४८ । ३०-३१)

तत्पश्चात् महाभारतके युद्धका सबसे बड़ा अन्याय सामने आया। एक वीर बालकके विरुद्ध छः महारथी योद्धाओंने चारों ओरसे बाण-वर्षा करके उसको धनुर्विहीन कर दिया, रथविहीन कर दिया। उसे निहत्था करके आघात करते गये, और अन्तमें उसे मार डाला।

महात्मा संजय कहते हैं कि—

द्रोणकर्णमुखैः षड्भिर्धार्तराष्ट्रैर्महारथैः ।
एकोऽयं निहतः शेते नैष धर्मो मतो हि नः ॥

(द्रोण० ४९ । २२)

'द्रोण, कर्ण आदि छः कौरव महारथियोंने अकेले अभिमन्युको मार डाला, मेरे विचारसे यह धर्मविरुद्ध है।' परंतु वे कौरव महारथी युद्धमें अभिमन्युसे संत्रस्त होकर ही इस धर्मविरुद्ध कार्यपर उतारू हुए थे। अभिमन्युकी अद्भुत वीरताका यह एक स्पष्ट प्रमाण है। अभिमन्युके इस युद्धकी विशिष्टताके कारण द्रोणपर्वके अन्तर्गत ३३ वें अध्यायसे लेकर ७० वें अध्यायतकका अवान्तर भाग अभिमन्यु-वधके नामसे अभिहित हुआ है, इस पर्वमें अभिमन्युकी वीरताका विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है, जो महाभारतके युद्धमें विशेषरूपसे दर्शनीय है। इसीसे भगवान् श्रीकृष्णने अपनी बहिन सुभद्राको सान्त्वना देते हुए कहा था—

क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य गतः शूरः सतां गतिम् ।
यां गतिं प्राप्नुयामेह ये चान्ये शस्त्रजीविनः ॥

(द्रोण० ७७ । २१)

'बहिन ! 'शूरवीर अभिमन्युने क्षत्रिय-धर्मकी शोभा बढ़ाकर सत्पुरुषोंको प्राप्त होनेवाली वह गति पायी है, जिसको हमलोग तथा इस संसारके सभी शस्त्रधारी क्षत्रिय प्राप्त करना चाहते हैं।'

भगवान् वेदव्यास

भगवान् वेदव्यास महर्षि पराशरके पुत्र थे। ये कैवर्तराजकी पोष्यपुत्री सत्यवतीके गर्भसे जन्मे थे। व्यासजी एक अलौकिक शक्तिसम्पन्न महापुरुष थे। ये एक महान् कारक पुरुष थे। इन्होंने लोगोंकी धारणाशक्तिको क्षीण होते देख वेदोंके ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—ये चार विभाग किये और एक-एक संहिता अपने एक-एक शिष्यको पढ़ा दी। एक-एक संहिताकी फिर अनेकों शाखा-प्रशाखाएँ हुईं। इस प्रकार इन्हींके प्रयत्नसे वैदिक वाङ्मयका बहुविध

विस्तार हुआ। व्यास कहते हैं विस्तारको; क्योंकि वेदोंका विस्तार इन्हींसे हुआ, इसलिये ये वेदव्यासके नामसे प्रसिद्ध हुए। इनका जन्म एक द्वीपके अंदर हुआ था और इनका वर्ण श्याम था, इसलिये इन्हें लोग कृष्णद्वैपायन भी कहते हैं। बदरीवनमें रहनेके कारण इनका एक नाम बादरायण भी है। अठारह पुराण एवं महाभारतकी रचना इन्हींके द्वारा हुई और संक्षेपमें उपनिषदोंका तत्त्व समझानेके लिये इन्होंने ब्रह्मसूत्रोंका निर्माण किया, जिसपर भिन्न-भिन्न आचार्योंने भिन्न-भिन्न भाष्योंकी रचना कर अपना-अपना अलग मत स्थापित किया। व्यासस्मृतिके नामसे इनका रचा हुआ एक स्मृतिग्रन्थ भी उपलब्ध होता है। इस प्रकार भारतीय वाङ्मय एवं हिंदू-संस्कृतिपर व्यासजीका बहुत बड़ा ऋण है। श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त सनातन धर्मके व्यासजी एक प्रधान व्याख्याता कहे जा सकते हैं। इनके उपकारसे हिंदू-जाति कदापि उऋण नहीं हो सकती। जबतक हिंदू-जाति और भारतीय संस्कृति जीवित है, तबतक इतिहासमें व्यासजीका नाम अमर रहेगा। ये जगत्‌के एक महान् पथप्रदर्शक और शिक्षक कहे जा सकते हैं। इसीसे इन्हें जगद्गुरु कहलानेका गौरव प्राप्त है। गुरुपूर्णिमा (अषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा) के दिन प्रत्येक आस्तिक हिंदू गृहस्थ इनकी पूजा करता है। भगवद्गीता-जैसा अनुपम रत्न भी संसारको व्यासजीकी कृपासे ही प्राप्त हुआ। इन्होंने ही भगवान् श्रीकृष्णके उस अमर उपदेशको अपनी महाभारतसंहितामें ग्रथितकर उसे संसारके लिये सुलभ बना दिया।

महर्षि वेदव्यास त्रिकालदर्शी एवं इच्छागति हैं। वे प्रत्येकके मनकी बात जान लेते हैं और इच्छा करते ही जहाँ जाना चाहें वहीं पहुँच जाते हैं। ये जन्मते ही अपनी माताकी आज्ञा लेकर वनमें तपस्या करने चल दिये। जाते समय ये मातासे कह गये कि 'जब कभी तुम्हें मेरी आवश्यकता जान पड़े, तुम मुझे याद कर लेना। मैं उसी समय तुम्हारे पास चला आऊँगा।'

जब पाण्डव विदुरजीकी बतायी हुई युक्तिका अनुसरण कर लाक्षाभवनसे निकल भागे और एकचक्रा नगरीमें जाकर रहने लगे, उन दिनों व्यासजी उनके पास उनसे मिलनेके लिये आये और प्रसङ्गवश उन्होंने उन्हें द्रौपदीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनाकर यह बताया कि 'वह कन्या तुम्हीं लोगोंके लिये पहलेसे निश्चित है।' इस बातको सुनकर पाण्डवोंको बड़ी प्रसन्नता एवं उत्सुकता हुई। और वे द्रुपदकुमारीके स्वयंवरमें सम्मिलित होनेके लिये पाञ्चालनगरकी ओर चल पड़े। वहाँ जाकर जब अर्जुनने स्वयंवरकी शर्त पूरी करके द्रौपदीको जीत लिया और माता कुन्तीकी आज्ञासे पाँचों भाइयोंने उससे विवाह करना चाहा, तब राजा द्रुपदने इसपर आपत्ति की। उसी समय व्यासजी वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने द्रुपदको द्रौपदीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनाकर पाँचों भाइयोंके साथ अपनी कन्याका विवाह करनेके लिये राजी कर लिया।

महाराज युधिष्ठिरने जब इन्द्रप्रस्थमें राजसूय यज्ञ किया, उस समय भी वेदव्यासजी यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये अपनी शिष्यमण्डलीके साथ पधारे थे। यज्ञ समाप्त होनेपर वे विदा होनेके लिये युधिष्ठिरके पास आये और बातों-ही-बातोंमें उन्होंने युधिष्ठिरको बतलाया कि 'आजसे तेरह वर्ष बाद क्षत्रियोंका महासंहार होगा, जिसमें दुर्योधनके अपराधसे तुम्हीं निमित्त बनोगे।'

× × ×

पाण्डवोंका सर्वस्व छीनकर तथा उन्हें बारह वर्षोंकी लंबी अवधिके लिये वन भेजकर भी दुर्योधनको संतोष नहीं हुआ। वह पाण्डवोंको वनमें ही मार डालनेकी बात सोचने लगा। अपने मामा शकुनि, कर्ण तथा दुःशासनसे सलाह करके उसने चुपचाप पाण्डवोंपर आक्रमण करनेका निश्चय किया और सब लोग शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित रथोंपर सवार होकर वनकी ओर चल पड़े। व्यासजीको अपनी दिव्य दृष्टिसे उनकी इस दुरभिसन्धिका पता लग गया। वे तुरंत उनके पास आये और उन्हें इस घोर दुष्कर्मसे निवृत्त किया। इसके बाद उन्होंने धृतराष्ट्रके पास जाकर उन्हें समझाया कि 'तुमने जुएमें हराकर पाण्डवोंको वनमें भेज दिया, यह अच्छा नहीं किया, इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा। तुम यदि अपना तथा अपने पुत्रोंका हित चाहते हो तो अब भी सँभल जाओ, भला! यह कैसी बात है कि दुरात्मा दुर्योधन राज्यके लोभसे पाण्डवोंको मार डालना चाहता है। मैं कहे देता हूँ कि अपने इस लाड़ले बेटेको इस कामसे रोक दो। वह चुपचाप घर बैठा रहे। यदि उसने पाण्डवोंको मार डालनेकी चेष्टा की, तो वह स्वयं अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठेगा। यदि तुम अपने पुत्रकी द्वेष-बुद्धि मिटानेकी चेष्टा नहीं करोगे तो बड़ा अनर्थ होगा। मेरी सम्मति तो यह है कि दुर्योधन अकेला ही वनमें जाकर पाण्डवोंके पास रहे। सम्भव है पाण्डवोंके सत्सङ्गसे उसका द्वेषभाव दूर होकर प्रेमभाव जाग्रत् हो जाय। परंतु यह बात है बहुत कठिन; क्योंकि जन्मगत स्वभावका बदल जाना सहज नहीं है। यदि तुम कुरुवंशियोंकी रक्षा और उनका जीवन चाहते हो तो अपने पुत्रसे कहो कि वह पाण्डवोंके साथ मेल कर ले।' व्यासजीने धृतराष्ट्रसे यह भी कहा कि 'थोड़ी ही देरमें महर्षि मैत्रेयजी यहाँ आनेवाले हैं। वे तुम्हारे पुत्रको पाण्डवोंसे मेल कर लेनेका उपदेश देंगे। वे जैसा कहें, बिना सोचे-विचारे तुम लोगोंको वैसा ही करना चाहिये। यदि उनकी बात नहीं मानोगे तो वे क्रोधवश शाप दे देंगे।' परंतु दुष्ट दुर्योधनने उनकी बात नहीं मानी और फलतः उसे महर्षि मैत्रेयका कोपभाजन बनना पड़ा।

× × ×

व्यासजी त्रिकालदर्शी तो थे ही, उनका सामर्थ्य भी

अद्भुत था। जब पाण्डव लोग वनमें रहते थे, उस समय इन्होंने एक दिन उनके पास जाकर युधिष्ठिरके द्वारा अर्जुनको प्रतिस्मृति-विद्याका उपदेश दिया, जिससे उनमें देवदर्शनकी योग्यता आ गयी। इतना ही नहीं, इन्होंने संजयको दिव्य दृष्टि दे दी, जिसके प्रभावसे उन्हें युद्धकी सारी बातोंका ही ज्ञान ही नहीं हुआ; उनमें भगवान्‌के विश्वरूप एवं दिव्य चतुर्भुजरूपके देवदुर्लभ दर्शनकी योग्यता भी आ गयी और वे साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके मुखारविन्दसे भगवद्गीताके दिव्य उपदेशका भी श्रवण कर सके, जिसे अर्जुनके सिवा और कोई भी नहीं सुन पाया था। जिस दिव्य-दृष्टिके प्रभावसे संजयमें इतनी बड़ी योग्यता आ गयी, उस दिव्यदृष्टिके प्रदान करनेवाले महर्षि वेदव्यासमें कितना सामर्थ्य होगा—हमलोग इसका ठीक-ठीक अनुमान भी नहीं लगा सकते। वे साक्षात् भगवान् नारायणकी कला ही जो ठहरे।

× × ×

एक बार, जब धृतराष्ट्र और गान्धारी वनमें रहते थे और महाराज युधिष्ठिर भी अपने परिवारके साथ उनसे मिलनेके लिये गये थे, व्यासजी वहाँ आये और यह देखकर कि धृतराष्ट्र और गान्धारीका पुत्रशोक अभीतक दूर नहीं हुआ है और कुन्ती भी अपने पुत्रोंके वियोगसे दुखी है, इन्होंने धृतराष्ट्रसे वर माँगनेको कहा। राजा धृतराष्ट्रने उनसे यह जानना चाहा कि 'महाभारत-युद्धमें उनके जिन कुटुम्बियों और मित्रोंका नाश हुआ है, उनकी क्या गति हुई होगी? साथ ही उन्होंने व्यासजीसे उन्हें एक बार दिखला देनेकी प्रार्थना की। व्यासजीने उनकी प्रार्थना स्वीकार करते हुए गान्धारीसे कहा कि 'आज रातको ही तुम सब लोग अपने मृत बन्धुओंको उसी प्रकार देखोगे, जैसे कोई सोकर उठे हुए मनुष्योंको देखे। सायंकालका नित्यकृत्य करके व्यासजीकी आज्ञासे सब लोग गङ्गातटपर एकत्रित हुए। व्यासजीने गङ्गाजीके पवित्र जलमें घुसकर पाण्डव एवं कौरवपक्षके योद्धाओंको, जो युद्धमें मर गये थे, आवाज दी। उसी समय जलमें वैसा ही कोलाहल सुनायी दिया, जैसा कौरव-पाण्डवोंकी सेनाओंके एकत्र होनेपर कुरुक्षेत्रके मैदानमें सुन पड़ा था। इसके बाद भीष्म और द्रोणको आगे करके वे सब राजा और राजकुमार, जिन्होंने युद्धमें वीरगति प्राप्त की थी, सहसा जलमेंसे बाहर निकल आये। युद्धके समय जिस वीरका जैसा वेष था, जैसी ध्वजा थी, जो वाहन थे, वे सब ज्यों-के-त्यों वहाँ दिखायी दिये। वे दिव्य वस्त्र और दिव्य मालाएँ धारण किये हुए थे, सबने चमकते हुए कुण्डल पहन रक्खे थे और सबके शरीर दिव्य प्रभासे चम-चम कर रहे थे। सब-के-सब निर्वैर, निरभिमान, क्रोधरहित और डाहसे शून्य प्रतीत हुए थे। गन्धर्व उनका यश गा रहे थे और बंदीजन स्तुति कर रहे थे। उस समय व्यासजीने धृतराष्ट्रको दिव्य नेत्र दे दिये, जिनसे वे उन सारे योद्धाओंको अच्छी तरह देख सके। वह दृश्य अद्भुत, अचिन्त्य और रोमाञ्चकारी था। सब लोगोंने निर्निमेष नेत्रोंसे उस दृश्यको देखा। इसके बाद सब आये हुए योद्धा अपने-अपने सम्बन्धियोंसे क्रोध और वैर छोड़कर मिले। इस प्रकार रातभर प्रेमियोंका वह समागम जारी रहा। इसके बाद वे सब लोग जिस प्रकार आये थे, उसी प्रकार भागीरथीके जलमें प्रवेश करके अपने-अपने लोकोंमें चले गये। उस समय वेदव्यासजीने जिन स्त्रियोंके पति वीरगतिको प्राप्त हुए थे, उनको सम्बोधन करके कहा कि 'आपमेंसे जो कोई अपने पतिके लोकमें जाना चाहती हों, उन्हें गङ्गाजीके जलमें गोता लगाना चाहिये।' उनके इस वचनको सुनकर बहुत-सी स्त्रियाँ जलमें घुस गयीं और मनुष्यदेहको छोड़कर अपने-अपने पतिके लोकमें चली गयीं। उनके पति जिस प्रकारके दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर आये थे, उसी प्रकारके दिव्य वस्त्राभूषणोंको धारणकर तथा विमानोंमें बैठकर वे अपने-अपने अभीष्ट स्थानोंमें पहुँच गयीं।

इधर राजा जनमेजयने वैशम्पायनजीके मुखसे जब यह अद्भुत वृत्तान्त सुना तो उनके मनमें बड़ा कौतूहल हुआ और उन्होंने भी अपने स्वर्गवासी पिता महाराज परीक्षित्‌के दर्शन करने चाहे। व्यासजी वहाँ मौजूद ही थे। उन्होंने राजाकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये उसी समय राजा परीक्षित्‌को वहाँ बुला दिया। जनमेजयने यज्ञान्त-स्नानके अवसरपर अपने साथ अपने पिताको भी स्नान कराया और इसके बाद परीक्षित् वहाँसे चले गये। इस प्रकार महर्षि वेदव्यासजीने अपने अलौकिक सामर्थ्यका प्रकाश किया। महर्षि वेदव्यास वास्तवमें एक अद्भुत शक्तिशाली महापुरुष थे।

गुरु द्रोणाचार्य

आचार्य द्रोण भरद्वाज मुनिके पुत्र थे। महर्षि भरद्वाज अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ थे। उन्होंने महर्षि अग्निवेशको आग्नेय अस्त्रकी शिक्षा दी थी। अग्निवेश मुनिने अपने गुरुपुत्र द्रोणको आग्नेय नामक महान् अस्त्रकी शिक्षा दी थी। पाञ्चाल देशके राजाका पुत्र द्रुपद भी द्रोणके साथ भरद्वाज मुनिके आश्रममें विद्याध्ययन करता था।

कुछ दिनोंके बाद जब भरद्वाज मुनिका शरीरान्त हो गया तो द्रोण उसी आश्रममें रहकर तपस्या करने लगे। वे वेद-वेदाङ्गोंमें पारङ्गत तो थे ही, तपस्याके द्वारा अतितेजस्वी हो गये और उनका यश चारों ओर फैल गया। द्रोणाचार्यका ब्याह शरद्वान् मुनिकी पुत्री कृपीसे हुआ था, जो कृपाचार्यकी बहिन थी। कृपीसे द्रोणको एक पुत्र

उत्पन्न हुआ, जो अश्वत्थामाके नामसे अमर हो गया है।

उस समय सर्वज्ञ तथा समस्त शास्त्रास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ परशुरामजी महेन्द्र पर्वतपर तप करते थे। द्रोणने यह सुनकर कि, परशुरामजीके पास सम्पूर्ण धनुर्वेद तथा दिव्यास्त्रोंका ज्ञान है और वे ब्राह्मणोंको सर्वस्व दान करना चाहते हैं, अपनी शिष्यमण्डलीके साथ वहाँ गये और उनके चरणोंकी वन्दना करके उनसे प्रयोग, रहस्य तथा संहारविधिसहित सारे अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञान प्राप्त किया। साथ ही रहस्य और व्रतके साथ समस्त धनुर्वेदका उपदेश भी प्राप्त किया।

तत्पश्चात् द्रोण अपने मित्र द्रुपदके पास गये। द्रुपद उस समय पाञ्चाल-नरेश थे। द्रोणने द्रुपदसे कहा—''राजन्! मैं आपका बालसखा हूँ, आपसे मिलने आया हूँ।'' मित्र द्रोणके इस प्रकार प्रेमपूर्वक कहनेपर भी द्रुपदको यह बात सह्य न हुई। ऐश्वर्यके मदमें उन्मत्त होकर द्रुपद कहने लगे—''तुम मूढ़ हो। उन पुरानी लड़कपनकी बातोंको अब भी ढो रहे हो। अब उसको मनसे निकाल दो—

न दरिद्रो वसुमतो नाविद्वान् विदुषः सखा।
न शूरस्य सखा क्लीबः सखिपूर्वं किमिष्यते॥

'सच तो यह है कि दरिद्र मनुष्य धनवान्का, मूर्ख विद्वान्का तथा कायर शूरवीरका सखा नहीं हो सकता। अतएव पहलेकी मित्रताका क्या भरोसा करते हो?'

द्रुपदकी यह बात सुनकर द्रोण क्रोधसे जल उठे और बिना कुछ कहे, वहाँसे उठकर हस्तिनापुरकी ओर चल दिये।* वहाँ जाकर कृपाचार्यके घर ठहरे। द्रोणको वहाँ कोई दूसरा नहीं जानता था।

एक दिन कौरव-पाण्डव, सभी वीरकुमार हस्तिनापुरके बाहर गुल्ली-डंडा खेल रहे थे। दैवात् गुल्ली कुएँमें गिर गयी। राजकुमारोंका खेल बंद हो गया। उनकी समझमें नहीं आ रहा था कि क्या करें? इतनेमें एक ब्राह्मणको उधरसे जाते देखकर राजकुमारोंने उनको पकड़ा और गुल्ली कुएँसे निकाल देनेका आग्रह करने लगे। वह ब्राह्मण स्वयं द्रोण थे।

द्रोणने मुट्ठीभर सींकोंको लेकर अभिमन्त्रित करके उसमें बलका संचार किया और एक सींकसे गुल्लीको बींध दिया; उसके बाद उस सींकको दूसरी सींकसे, दूसरीको तीसरीसे—इस प्रकार करते हुए सींकोंकी रस्सी बना दी, और उन लड़कोंने उसे पकड़कर गुल्ली निकाल ली। यह अद्भुत कर्म देखकर राजकुमारोंके नेत्र आनन्दसे खिल उठे। इसके बाद राजकुमारोंने एक अँगूठी कुएँमें डाल दी और द्रोणाचार्यको उसे निकालनेके लिये कहा। द्रोणने उस अँगूठीको भी उसी प्रकार सींकके बाणोंसे बींधकर कुएँसे बाहर निकाल दिया और उन आश्चर्यचकित कुमारोंके हाथमें उसे दे दिया, परंतु वह स्वयं तनिक भी विस्मित न हुए। तब राजकुमार बोले—

अभिवादयामहे ब्रह्मन् नैतदन्येषु विद्यते।
कोऽसि कस्यासि जानीमो वयं किं करवामहे॥

(आदि० १३०। ३४)

'ब्रह्मन्! हम आपको प्रणाम करते हैं। यह अद्भुत अस्त्रकौशल और किसीमें नहीं है। आप कौन हैं, किसके पुत्र हैं, हम जानना चाहते हैं, बताइये—हम आपकी क्या सेवा करें?'

द्रोणने उत्तर दिया—'मेरे रूप और गुणोंकी बात भीष्मसे जाकर कहो, वही तुमलोगोंको मेरा परिचय बता देंगे।'

राजकुमारोंने जाकर भीष्मजीसे सब बातें कह सुनायीं। भीष्मजीने तुरंत समझ लिया कि द्रोणाचार्यके सिवा यह कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है। राजकुमारोंके साथ आकर भीष्मने द्रोणका स्वागत किया और उनको आचार्यके पदपर प्रतिष्ठित करके राजकुमारोंकी शिक्षा-दीक्षाका कार्य सौंप दिया। उस समय भीष्मने द्रोणकी अभ्यर्थना जिन शब्दोंमें की थी उससे उस युगके वीर क्षत्रियोंकी ब्राह्मणोंके प्रति भक्तिभावनाका अच्छा निदर्शन प्राप्त होता है—

कुरूणामस्ति यद्वित्तं राज्यं चेदं सराष्ट्रकम्।
त्वमेव परमो राजा सर्वे च कुरवस्तव॥
यच्च ते प्रार्थितं ब्रह्मन्कृतं तदिति चिन्त्यताम्।
दिष्ट्या प्राप्तोऽसि विप्रर्षे महान्मेऽनुग्रहः कृतः॥

(आदि० १३०। ७८-७९)

'हे ब्रह्मन्! कुरुवंशका जो धन है तथा राष्ट्रोंके सहित जो यह राज्य है, इसके आप ही परम राजा हैं, और सभी कुरुवंशी आपके सेवक हैं। आपको जिस वस्तुकी इच्छा होगी, उसको आप प्राप्त हुआ ही समझिये। हे विप्रर्षे! आपने बड़ी कृपा की, बड़े भाग्यसे प्राप्त हुए।' उस समय कुरुवंशके राजकुमारोंके लिये गुरुरूपमें वरण करके भीष्मने द्रोणको बहुत धन प्रदान किया,

---

* इस अपमानसे द्रोणके मनमें वैर बँध गया। और आगे चलकर जब कौरव-पाण्डव-कुमारोंको धनुर्वेदकी शिक्षा दे चुके तब गुरुदक्षिणामें द्रुपदको पराजित करके पकड़ लानेके लिये कुमारोंसे कहा, और स्वयं सब शिष्योंको सेनासहित लेकर पाञ्चाल देशपर चढ़ाई कर दी। कर्णसहित कौरवोंको तो हार खानी पड़ी, परंतु अर्जुनने भीम तथा सहदेव और नकुलको साथ लेकर युद्ध करके पाञ्चालोंको पराजित करके द्रुपदको पकड़कर द्रोणके सामने उपस्थित कर दिया। द्रोणने द्रुपदके साथ मित्रवत् व्यवहार किया, और कहा कि भागीरथीके दक्षिण आप राज्य करें और उत्तरमें मैं राज्य करूँगा। मुझे आप अपना पूर्ववत् सखा समझें।

और रहनेके लिये धन-धान्यसे भरपूर सुन्दर गृहकी व्यवस्था कर दी।

तत्पश्चात् द्रोणाचार्य राजकुमारोंको शिक्षा देने लगे। द्रुपदद्वारा किये गये अपमानको वे नहीं भूले। एक दिन उन्होंने राजकुमारोंसे कहा कि, "मेरे हृदयमें एक आकाङ्क्षा है, जो मुझे सदा चिन्तित रखती है, उसकी पूर्ति शस्त्रास्त्रके द्वारा हो सकती है। क्या तुममें कोई मेरे इस कार्यको सिद्ध कर सकता है?"—यह सुनकर सब राजकुमार चुप हो गये। केवल अर्जुनने आगे बढ़कर कहा—'गुरुदेव! मैं आपको उस आकाङ्क्षाको पूरा करनेकी प्रतिज्ञा करता हूँ।'—द्रोणाचार्य अर्जुनके इस उत्तरको सुनकर हर्षित हो उठे। उन्होंने अर्जुनको हृदयसे लगा लिया। तत्पश्चात् अर्जुनके प्रति आचार्यकी विशेष प्रीति हो गयी और वह आजीवन बनी रही। अर्जुन भी आचार्यके प्रति सबसे अधिक भक्तिभावपूर्ण थे। आचार्यने प्रीतिपूर्वक नाना प्रकारके दिव्य और मानुष शस्त्रास्त्रोंकी शिक्षा राजकुमारोंको दी। गुरु द्रोणकी ख्याति चारों ओर फैल गयी। धीरे-धीरे वृष्णि, अन्धक तथा अन्यान्य देशोंके युवक उनकी सेवामें शस्त्रास्त्र-ज्ञान प्राप्त करने आये। गुरु द्रोणकी कृपा तथा अपनी सेवा और लगनके कारण अर्जुन सब राजकुमारोंमें अग्रगण्य हो गये।

एक बार गुरु द्रोण अपने शिष्योंके साथ वनमें जा रहे थे। राजकुमारोंके साथ एक कुत्ता भी था। राजकुमार मृगयाके लिये वनमें आगे बढ़े, कुत्ता आगे-आगे जा रहा था। अचानक कुत्ता वापस आता दिखायी दिया। राजकुमारोंने देखा कि उसका मुँह बाणोंसे भर गया है। यह देखकर उनको बड़ा आश्चर्य हुआ कि भला यह दूसरा कौन धनुर्धर है जो इतना लघुहस्त है। आचार्य द्रोणके साथ-साथ सब राजकुमार कुत्तेके पीछे-पीछे आगे बढ़े। कुछ दूर जानेपर देखते क्या हैं कि एक भीलकुमार आचार्य द्रोणकी प्रतिमा खड़ी करके उसकी विधिवत् पुष्पादिके द्वारा पूजा कर रहा है। आचार्यने उसे देखते ही पहचान लिया कि वह भीलकुमार एकलव्य है, जिसको भील होनेके कारण आचार्यने शिष्य बनानेसे इन्कार कर दिया था।

आचार्यको देखते ही एकलव्य दौड़कर उनके चरणोंमें गिर पड़ा। द्रोणाचार्य नहीं चाहते थे कि उनके प्रिय शिष्य अर्जुनसे बढ़कर कोई दूसरा धनुर्धर हो, इसलिये जब एकलव्यने कहा कि, 'भगवन्! मैं आपका शिष्य एकलव्य हूँ'—तब द्रोणाचार्यने उससे गुरुदक्षिणामें दाहिने हाथका अँगूठा माँगा। और एकलव्यने प्रसन्नचित्तसे अँगूठा काटकर गुरुके चरणोंमें रख दिया तथा विश्वमें अक्षय कीर्ति प्राप्त की।

द्रोणाचार्य स्वभावतः अपने शिष्यों—कौरवों और पाण्डवों, दोनोंका हित चाहते थे। अतएव पाण्डवोंके साथ किये जानेवाले कौरवोंके अत्याचारको वे पसंद नहीं करते थे। लाक्षागृहकी दुर्घटनाके बाद जब पाण्डवोंका द्रुपदकी राजसभामें द्रौपदीकी प्राप्तिका समाचार हस्तिनापुरमें पहुँचा, तब भीष्मने कहा कि, 'मेरे लिये जैसे पाण्डुके पुत्र हैं, वैसे कौरव हैं। उनको बुलाकर आधा राज्य प्रदान कर देना चाहिये।" इसपर द्रोणाचार्यने कहा था कि—

ममाप्येषा मतिस्तात या भीष्मस्य महात्मनः।
संविभज्यास्तु कौन्तेया धर्म एष सनातनः॥

(आदि० २०३। २)

'हे राजन्! मेरा भी यही विचार है जो महात्मा भीष्मका है। और सनातन धर्म भी यही है कि पाण्डवोंको आधा राज्य दे देना चाहिये।'

द्रोणाचार्य अपने प्रिय शिष्य अर्जुनकी, जब अवसर आता, प्रशंसा किये बिना नहीं चूकते थे। आचार्यके मुखसे अर्जुनकी प्रशंसा कर्णको प्रायः असह्य हो उठती थी। पाण्डवोंके अज्ञातवासके बाद गोहरणपर्वमें जब विराटकी गायोंको हाँक ले जानेके लिये कौरव-सेना पहुँची तो आचार्य द्रोण 'एष वीरः महेष्वासः सर्व-शस्त्रभृतां वरः' इत्यादि वाक्योंसे अर्जुनकी प्रशंसा करने लगे, तब कर्ण बोला—

सदा भवान् फाल्गुनस्य गुणैरस्मान् विकत्थसे।
न चार्जुनः कलापूर्णो मम दुर्योधनस्य च॥

(विराट० ३९। १४)

'आप तो सदा अर्जुनके गुणोंका वर्णन करके हमारा अनादर करते रहते हैं, और अर्जुन मेरी और दुर्योधनकी बराबरी नहीं कर सकता।'

इस अवसरपर अर्जुनने विराटकुमार उत्तरसे इस प्रकार आचार्य द्रोणका परिचय दिया है—

दीर्घबाहुर्महातेजा बलरूपसमन्वितः।
सर्वलोकेषु विक्रान्तो भारद्वाजः प्रतापवान्॥
बुद्ध्या तुल्यो ह्युशनसा बृहस्पतिसमो नये।
वेदास्तथैव चत्वारो ब्रह्मचर्यं तथैव च॥
ससंहाराणि सर्वाणि दिव्यान्यस्त्राणि मारिष।
धनुर्वेदश्च कार्त्स्न्येन यस्मिन् नित्यं प्रतिष्ठितः॥
क्षमा दमश्च सत्यं च आनृशंस्यमथार्जवम्।
एते चान्ये च बहवो यस्मिन् नित्यं द्विजे गुणाः॥
तेनाहं योद्धुमिच्छामि महाभागेन संयुगे॥

(विराट० ५८। ५—८½)

"भरद्वाज ऋषिके पुत्र आचार्य द्रोण दीर्घबाहु हैं; महातेजस्वी हैं, बलवान् और रूपवान् हैं, सब लोकोंमें विक्रान्त और प्रतापी हैं, बुद्धिमें शुक्राचार्य और नीतिमें बृहस्पतिके तुल्य हैं, चारों वेदोंके ज्ञाता हैं, ब्रह्मचर्य-व्रती हैं, संहार सहित

सारे दिव्य अस्त्रोंके ज्ञाता हैं, सारा धनुर्वेद उनके भीतर प्रतिष्ठित है। क्षमा, दम, सत्य, सौजन्य, सरलता—तथा इसी प्रकारके बहुतसे गुण जिस ब्राह्मणमें नित्य विद्यमान रहते हैं, उस महाभाग आचार्य द्रोणसे मैं युद्ध करना चाहता हूँ।'—अर्जुनकी इस उक्तिसे स्पष्ट हो जाता है कि गुरु द्रोण गुणोंके सिन्धु थे। उन्होंने जब रथपर अर्जुनको युद्धके लिये उद्यत देखा तो भीष्मसे कहा कि 'पाण्डव राज्यसे वञ्चित कर दिये गये हैं, इसलिये आज तपस्याके द्वारा दुर्धर्ष अर्जुन दुर्योधनको क्षमा नहीं कर सकता। अतः हमलोगोंको ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि वह दुर्योधनके पास न पहुँच सके।' अर्जुन उनका प्रिय शिष्य था तथापि आचार्य द्रोण दुर्योधनका अनिष्ट नहीं देख सकते थे। यह उनकी हृदयकी विशालताका द्योतक है।

आचार्य द्रोण भीष्मपितामहकी बातोंका सदा ही समर्थन करते थे; क्योंकि भीष्मकी नीति कौरव और पाण्डवोंमें मेल करानेकी थी, वह गृहयुद्ध पसंद नहीं करते थे। आचार्य द्रोणकी भी यही नीति थी; क्योंकि कौरव और पाण्डव, दोनों ही उनके शिष्य थे। और वे दोनोंका ही कल्याण चाहते थे। कर्ण जब डींग हाँककर पाण्डवोंके विरुद्ध दुर्योधनको बढ़ावा देता था तो भीष्म उसको फटकारते और पाण्डवोंकी शक्तिका बखान करके उनसे संधि करनेका परामर्श कौरवोंको देते। ऐसे अवसरोंपर आचार्य द्रोण बराबर भीष्मका समर्थन करते थे। इसका फल यह हुआ कि दुर्योधन कर्णको तो अपना पक्षपाती, पर भीष्म और द्रोणको पाण्डवोंका पक्षपाती समझता था; परंतु पक्षपातका दोषारोपण मिथ्या था। वे तो दोनोंका ही कल्याण चाहते थे।

वासुदेव भगवान् श्रीकृष्ण जब संधिकार्यमें सफल न हुए, दुरात्मा दुर्योधनने उनकी शुभ सम्मतिकी पूर्ण उपेक्षा कर दी, और युद्ध होना निश्चय हो गया तो बड़े दुःखसे आचार्य द्रोणने कहा—

अश्वत्थाम्नि यथापुत्रे भूयो मम धनंजये।
बहुमानः परो राजन् संनतिश्च कपिध्वजे॥
तं च पुत्रात् प्रियतमं प्रतियोत्स्ये धनंजयम्।
क्षात्रं धर्ममनुष्ठाय धिगस्तु क्षत्रजीविकाम्॥
(उद्योग० १३९। ४-५)

'हे राजन्! अश्वत्थामाके समान ही अर्जुनमें मेरी अतिशय प्रीति है। अर्जुन मेरा बड़ा सत्कार करता है और अत्यन्त नम्र रहता है। वह अर्जुन मुझे पुत्रसे भी प्रिय है। क्षात्र धर्मका पालन करनेके लिये उसके विरुद्ध भी मैं युद्ध करूँगा, धिक्कार है इस क्षत्रजीविकाको!'

पश्चात् महाभारतके युद्धमें अद्भुत पराक्रम प्रदर्शित कर आचार्य द्रोण द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्नके द्वारा मारे गये।

महात्मा विदुर

महात्मा विदुर साक्षात् धर्मके अवतार थे। माण्डव्य ऋषिके शापसे इन्हें शूद्रयोनिमें जन्म ग्रहण करना पड़ा। ये महाराज विचित्रवीर्यकी दासीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। इस प्रकार ये धृतराष्ट्र और पाण्डुके एक प्रकारसे सगे भाई ही थे। ये बड़े ही बुद्धिमान्, नीतिज्ञ, धर्मज्ञ, विद्वान्, सदाचारी एवं भगवद्भक्त थे। इन्हीं गुणोंके कारण सब लोग इनका बड़ा सम्मान करते थे। ये बड़े निर्भीक एवं सत्यवादी थे तथा धृतराष्ट्र आदिको बड़ी नेक सलाह दिया करते थे। ये धृतराष्ट्रके मन्त्री भी थे। दुर्योधन जन्मते ही गधेकी भाँति रेंकने लगा था और उसके जन्मके समय अनेक असङ्गलसूचक उत्पात भी हुए। यह सब देखकर इन्होंने ब्राह्मणोंके साथ राजा धृतराष्ट्रसे कहा कि 'आपका यह पुत्र कुलनाशक होगा, इसलिये इसे त्याग देना ही श्रेयस्कर है। इसके जीवित रहनेपर आपको दुःख उठाना पड़ेगा। शास्त्रोंकी आज्ञा है कि कुलके लिये एक मनुष्यका, ग्रामके लिये कुलका, देशके लिये एक ग्रामका और आत्माके लिये सारी पृथ्वीका परित्याग कर देना चाहिये।' धृतराष्ट्रने मोहवश विदुरकी बात नहीं मानी। फलतः उन्हें दुर्योधनके कारण जीवनभर दुःख उठाना पड़ा और अपने जीते-जी कुलका नाश देखना पड़ा। महात्माओंकी हितभरी वाणीपर ध्यान न देनेसे दुःख ही उठाना पड़ता है!

जब दुर्योधन पाण्डवोंपर अत्याचार करने लगा तो इनकी सहानुभूति स्वाभाविक ही पाण्डवोंके प्रति हो गयी; क्योंकि एक तो वे पितृहीन थे और दूसरे धर्मात्मा थे। ये प्रत्यक्षरूपमें तथा गुप्तरूपसे भी बराबर उनकी रक्षा एवं सहायता करते रहते थे। धर्मात्माओंके प्रति धर्मकी सहानुभूति होनी ही चाहिये और विदुर सक्षात् धर्मके अवतार थे। ये जानते थे कि पाण्डवोंपर चाहे कितनी ही विपत्तियाँ क्यों न आवें, अन्तमें विजय उनकी ही होगी—'यतो धर्मस्ततो जयः।' इन्हें यह भी मालूम था कि पाण्डव सब दीर्घायु हैं, अतः उन्हें कोई मार नहीं सकता। इसीलिये जब दुर्योधनने खेल-ही-खेलमें भीमसेनको विष खिलाकर गङ्गाजीमें बहा दिया और उनके घर न लौटनेपर माता कुन्तीको चिन्ताके साथ-साथ दुर्योधनकी ओरसे अनिष्टकी भी आशङ्का हुई तो इन्होंने जाकर उन्हें समझाया कि 'इस समय चुप साध लेना ही अच्छा है। दुर्योधनके प्रति आशङ्का प्रकट करना खतरेसे खाली नहीं है। इससे वह और चिढ़ जायगा, जिससे तुम्हारे दूसरे पुत्रोंपर भी आपत्ति आ सकती है। भीमसेन मर नहीं सकता, वह शीघ्र ही लौट आयेगा।' कुन्तीने विदुरजीकी

नीतिपूर्ण सलाह मान ली । उनकी बात बिल्कुल यथार्थ निकली । भीमसेन कुछ ही दिनों बाद जीते-जागते लौट आये ।

लाक्षाभवनसे बेदाग बचकर निकल भागनेकी युक्ति भी पाण्डवोंको विदुरने ही बतायी थी। ये नीतिज्ञ होने-के साथ-साथ कई भाषाओंके भी जानकार थे। जिस समय पाण्डव लोग वारणावत जा रहे थे, उसी समय इन्होंने म्लेच्छ-भाषामें युधिष्ठिरको उनपर आनेवाली विपत्तिकी सूचना दे दी और साथ ही उससे बचनेका उपाय भी समझा दिया। इतना ही नहीं, इन्होंने पहलेसे ही एक सुरंग खोदनेवालेको लाक्षाभवनमेंसे निकल भागनेके लिये सुरंग खोदनेको कह दिया था। उसने गुप्तरूपसे जमीनके भीतर-ही-भीतर जंगलमें जानेका एक रास्ता बना दिया। लाक्षा-भवनमें आग लगाकर पाण्डवलोग माता कुन्तीके साथ उसी रास्तेसे निरापद बाहर निकल आये। गङ्गातटपर इनके पार होनेके लिये विदुरजीने नाविकके साथ एक नौका भी पहलेसे ही तैयार रख छोड़ी थी। उसीसे ये लोग गङ्गापार हो गये। इस प्रकार विदुरजीने बुद्धिमानी एवं नीतिमत्तासे पाण्डवोंके प्राण बचा लिये, दुर्योधन आदि-को पता भी न लगने दिया। उन लोगोंने यही समझा कि पाण्डव अपनी माताके साथ लाक्षाभवनमें जलकर मर गये। सर्वत्र केवल शारीरिक बल अथवा अस्त्रबल ही काम नहीं देता। आत्मरक्षाके लिये नीतिबलकी भी आवश्यकता होती है। महात्मा विदुर धर्म एवं शास्त्रज्ञानके साथ-साथ नीतिके भी खजाने थे।

विदुरजी जिस प्रकार पाण्डवोंके प्रति सहानुभूति और प्रेम रखते थे, उसी प्रकार अपने बड़े भाई राजा धृत-राष्ट्र एवं उनके पुत्रोंके प्रति भी स्नेह और आत्मीयता रखते थे। उनके हितका ये सदा ध्यान रखते थे और उन्हें बराबर अच्छी सलाह दिया करते थे। 'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः' इस सिद्धान्तके अनुसार अवश्य ही इनकी बातें सत्य एवं हितपूर्ण होनेपर भी दुर्योधनादिको कड़वी लगती थीं। इसीलिये दुर्योधन एवं उसके साथी सदा ही इनसे असंतुष्ट रहते थे। परंतु ये उनकी अप्रसन्नताकी कुछ भी परवा न कर सदा ही उसकी मङ्गल-कामना किया करते थे। और उसे कुमार्गसे हटानेकी अनवरत चेष्टा करते रहते थे। धृतराष्ट्र भी अपने दुरात्मा पुत्रके प्रभावमें होनेके कारण यद्यपि हर समय इनकी बातपर अमल नहीं कर पाते थे और इसीलिये कष्ट भी पाते थे, फिर भी उनका इनपर बहुत अधिक विश्वास था। वे इन्हें बुद्धिमान्, दूरदर्शी एवं अपना परम हितचिन्तक मानते थे और बहुधा इनसे सलाह लिये बिना कोई काम नहीं करते थे। पाण्डवोंके साथ व्यवहार करते समय तो वे खास तौरपर इनकी सलाह लिया करते थे। वे जानते थे कि पाण्डवोंके सम्बन्धमें इनकी सलाह पक्षपातशून्य होगी। अस्तु।

जब मामा शकुनिकी सलाहसे दुष्टबुद्धि दुर्योधन पाण्डवोंके साथ जुआ खेलनेका प्रस्ताव लेकर अपने पिताके पास पहुँचा तो उन्होंने नियमानुसार विदुरजीको सलाहके लिये बुलाया। उसकी बात न माननेपर दुर्योधनने उन्हें प्राण त्याग देनेका भय दिखलाया; परंतु उन्होंने उसे स्पष्ट कह दिया कि 'विदुरजीसे सलाह लिये बिना मैं तुम्हें जुआ खेलनेकी आज्ञा कदापि नहीं दे सकता।' दुर्योधनका पापपूर्ण प्रस्ताव सुनकर विदुरजीने समझ लिया कि अब कलियुग आनेवाला है। इन्होंने उस प्रस्तावका घोर विरोध किया और अपने बड़े भाईको समझाया कि 'जुआ खेलनेसे आपके पुत्रों और भतीजोंमें वैर-विरोध ही बढ़ेगा, उनमेंसे किसीका भी हित नहीं होगा। इसलिये द्यूतका आयोजन न करना ही अच्छा है। इसीमें दोनों ओरका मङ्गल है।' धृतराष्ट्रने विदुरजी एवं उनके मतकी प्रशंसा करते हुए दुर्योधनको बहुत समझाया, परंतु उसने इनकी एक न मानी। वह तो जुएमें हराकर पाण्डवोंको नीचा दिखानेपर तुला हुआ था। उससे पाण्डवोंका अतुल वैभव देखा नहीं जाता था। दुर्योधनको किसी तरह न मानते देखकर अन्तमें धृतराष्ट्रने उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और विदुरजीके द्वारा ही पाण्डवोंको इन्द्रप्रस्थसे बुलवा भेजा। यद्यपि विदुरजीको यह बात अच्छी नहीं लगी, फिर भी बड़े भाईकी आज्ञाका उलङ्घन करना इन्होंने ठीक नहीं समझा।

पाण्डवोंके पास जाकर विदुरजीने उन्हें सारी बात कह सुनायी। महाराज युधिष्ठिरने भी जुएको अच्छा न समझते हुए भी अपने ताऊकी आज्ञा मानकर दुर्योधनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। जुएके समय भी इन्होंने जुएकी बुराइयाँ बताते हुए राजा धृतराष्ट्रसे कहा कि 'आप अब भी सँभल जाइये, दुर्योधनकी 'हाँ' में 'हाँ' मिलाना छोड़ दीजिये और कुलको सर्वनाशसे बचाइये। पाण्डवोंसे विरोध करके उन्हें अपना शत्रु न बनाइये।' पाण्डवोंके वनमें चले जानेपर धृतराष्ट्रके मनमें बड़ी चिन्ता और जलन हुई। उन्होंने विदुरजीको बुलाकर अपने मनकी व्यथा सुनायी और उनसे यह जानना चाहा कि 'अब हमें किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये कि जिससे प्रजा हमपर संतुष्ट रहे और पाण्डव भी क्रोधित होकर हमारी कोई हानि न कर सकें।' इसपर विदुरजीने उन्हें समझाया कि 'राजन्! अर्थ, धर्म और काम—इन तीनों फलोंकी प्राप्ति धर्मसे ही होती है। राज्यकी जड़ है धर्म; अतः आप धर्ममें स्थित होकर पाण्डवोंकी और अपने पुत्रोंकी रक्षा कीजिये। आपके पुत्रोंने शकुनिकी सलाहसे

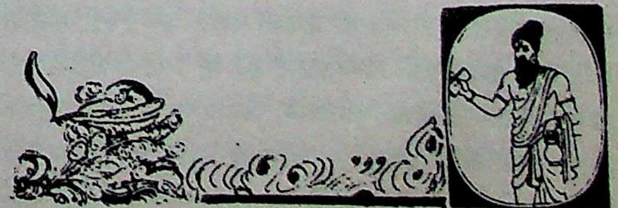
भरी सभामें धर्मका तिरस्कार किया है; क्योंकि सत्यसन्ध युधिष्ठिरको कपटद्यूतमें हराकर उन्होंने उनका सर्वस्व छीन लिया है, यह बड़ा अधर्म हुआ है। इसके निवारणका मेरी दृष्टिमें एक ही उपाय है, वैसा करनेसे आपका पुत्र पाप और कलङ्कसे छूटकर प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा। वह उपाय यह है कि आपने पाण्डवोंका जो कुछ छीन लिया है, वह सब उन्हें लौटा दिया जाय। राजाका यह परम धर्म है कि वह अपने ही हकमें संतुष्ट रहे, दूसरेका हक न चाहे। जो उपाय मैंने बतलाया है, उससे आपका लाञ्छन छूट जायगा, भाई-भाईमें फूट नहीं पड़ेगी और अधर्म भी न होगा। यदि आपके पुत्रोंका तनिक भी सौभाग्य शेष रह गया हो तो शीघ्र-से-शीघ्र यह काम कर डालना चाहिये। यदि आप मोहवश ऐसा नहीं करेंगे तो सारे कुरुवंशका नाश हो जायगा। यदि आपका पुत्र दुर्योधन प्रसन्नतासे यह बात स्वीकार कर ले, तब तो ठीक है; अन्यथा परिवार और प्रजाके सुखके लिये उस कुलकलङ्क और दुरात्माको कैद करके युधिष्ठिरको राज-सिंहासनपर बैठा दीजिये। युधिष्ठिरके चित्तमें किसीके प्रति राग-द्वेष नहीं है, इसलिये वे ही धर्मपूर्वक पृथ्वीका शासन करें। दुःशासन भरी सभामें भीमसेन और द्रौपदीसे क्षमा-याचना करे। और तो क्या कहूँ; बस, इतना करनेसे आप कृतकृत्य हो जायँगे।'

विदुरजीकी यह मन्त्रणा कितनी सच्ची, हितपूर्ण, धर्मयुक्त और निर्भीक थी। परंतु जिस प्रकार मरणासन्नको ओषधि अच्छी नहीं लगती, उसी प्रकार धृतराष्ट्रको विदुरजीकी यह सलाह पसंद नहीं आयी। वे विदुरजीपर खीझ गये और बोले—'विदुर! अब मुझे तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं है; तुम्हारी इच्छा हो तो यहाँ रहो अथवा चले जाओ। मैं देखता हूँ कि तुम बार-बार पाण्डवोंका ही पक्ष लेते हो। भला, मैं उनके लिये अपने पुत्रोंको कैसे छोड़ दूँ?' विदुरजीने देखा, अब कौरव-कुलका नाश अवश्यम्भावी है; इसलिये ये चुपचाप उठकर वहाँसे चल दिये और तुरंत रथपर सवार होकर पाण्डवोंके पास काम्यकवनमें चले गये। वहाँ पहुँचकर इन्होंने पाण्डवोंको हस्तिनापुरसे चले आनेका कारण बतलाया और उन्हें प्रसङ्गवश बड़े कामकी बातें कहीं। इधर जब धृतराष्ट्रको विदुरजीके पाण्डवोंके पास चले जानेकी बात मालूम हुई तो उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने सोचा कि विदुरकी सहायता और सलाह पाकर तो पाण्डव और भी बलवान् हो जायँगे! तब तो उन्होंने तुरंत संजयको भेजकर विदुरजीको बुलवा भेजा। विदुरजी तो सर्वथा राग-द्वेषशून्य थे। उनके मनमें धृतराष्ट्रके प्रति तनिक भी रोष नहीं था। बड़े भाईकी आज्ञा पाकर जिस प्रकार वे हस्तिनापुरसे चले आये थे, उसी प्रकार इस बार लौट जानेकी आज्ञा पाकर वे वापस उनके पास लौट गये। वहाँ जाकर इन्होंने धृतराष्ट्रसे कहा कि 'मेरे लिये पाण्डव और आपके पुत्र एक-से हैं; फिर भी पाण्डवोंको असहाय देखकर मेरे मनमें स्वाभाविक ही उनकी सहायता करनेकी बात आ जाती है। मेरे चित्तमें आपके पुत्रोंके प्रति कोई द्वेषभाव नहीं है।' बात सचमुच ऐसी ही थी। धृतराष्ट्रने भी इनसे अपने अनुचित व्यवहार-के लिये क्षमा माँगी। विदुरजी पूर्ववत् ही धृतराष्ट्रके पास रहकर उनकी सेवा करने लगे।

एक समय धृतराष्ट्रको रातमें नींद नहीं आयी। तब उन्होंने रातमें ही विदुरजीको बुलाकर उनसे शान्तिका उपाय पूछा। उस समय विदुरजीने धृतराष्ट्रको धर्म और नीतिका जो सुन्दर उपदेश दिया, वह विदुरनीतिके नामसे प्रसिद्ध है।



विदुरजीके भाषणको सुनकर धृतराष्ट्रकी तृप्ति नहीं हुई। उन्होंने उनके मुखसे और भी कुछ सुनना चाहा। उन्होंने कहा—'राजन्! मुझे जो कुछ सुनाना था, वह मैं आपको सुना चुका, अब ब्रह्माजीके पुत्र सनत्सुजात नामक जो सनातन ऋषि हैं, वे ही आपको तत्त्वविषयक उपदेश करेंगे। तत्त्वोपदेश करनेका मुझे अधिकार नहीं है; क्योंकि मेरा जन्म शूद्राके गर्भसे हुआ है।' यह कहकर उन्होंने उसी समय महर्षि सनत्सुजातका स्मरण किया और वे तुरंत वहाँ उपस्थित हो गये। सनत्सुजातजीने राजा धृतराष्ट्रके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए परमात्माके स्वरूप तथा उनके साक्षात्कारके विषयमें बड़ा सुन्दर विवेचन किया। इस प्रकार विदुरजीने स्वयं तो धृतराष्ट्रको धर्म और नीतिकी बात सुनायी ही, सनत्सुजात जैसे सिद्ध-योगी एवं परमर्षिद्वारा उन्हें तत्त्वका उपदेश कराकर उनके कल्याणका मार्ग प्रशस्त किया। विदुरजीके द्वारा धृतराष्ट्र एवं उनके पुत्रोंके लिये जो कुछ भी चेष्टा होती थी, वह उनके कल्याणके लिये ही होती थी। महात्माओंका जीवन ही दूसरोंके कल्याणके लिये ही होता है। यद्यपि विदुरजी तत्त्वज्ञानी थे, फिर भी शूद्र होनेके नाते उन्होंने स्वयं उपदेश न देकर सनातन मर्यादाकी रक्षा की और इस प्रकार जगत्को अपने आचरणके द्वारा यह उपदेश दिया कि ज्ञानीके लिये भी शास्त्रमर्यादाकी रक्षा आवश्यक है।



विदुरजी ज्ञानी एवं तत्त्वदर्शी होनेके साथ-साथ अनन्य भगवद्भक्त भी थे। इनकी भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें

निश्छल प्रीति थी। भगवान् श्रीकृष्ण भी इन्हें बहुत मानते थे। वे जब पाण्डवोंके दूत बनकर हस्तिनापुर गये, उस समय वे राजा धृतराष्ट्र एवं उनके सभासदोंसे मिलकर सीधे विदुरजीके यहाँ पहुँचे और उनका आतिथ्य स्वीकार किया। इसके बाद वे अपनी बूआ कुन्तीसे मिले। इतना ही नहीं, दुर्योधनके यहाँ जानेपर जब दुर्योधनने सम्बन्धी होनेके नाते श्रीकृष्णसे भोजनके लिये प्रार्थना की तो उन्होंने साफ इनकार कर दिया और पुनः विदुरके यहाँ चले आये। वहाँ भीष्म, द्रोण, कृप, बाह्लीक आदि कई सम्भावित लोग उनसे मिलने आये और उन सबने श्रीकृष्णसे अपने यहाँ चलकर आतिथ्य ग्रहण करनेकी प्रार्थना की; परन्तु श्रीकृष्णने सम्मानपूर्वक सबको विदा कर दिया और उस दिन विदुरके यहाँ ही पहले ब्राह्मणोंको भोजन कराके स्वयं भोजन किया। इस घटनासे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि विदुरका श्रीकृष्णके प्रति कैसा अनुराग था। श्रीकृष्णका तो विरद ही ठहरा—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

(गीता ९। २६)

—प्रेमशून्य बड़ी-बड़ी तैयारियाँ और राजसी ठाट-बाट उन्हें आकर्षित नहीं कर सकते, किन्तु प्रेमके रससे परिप्लुत रूखा-सूखा भोजन भी उनकी तृप्तिके लिये पर्याप्त होता है।

भोजनके बाद रात्रिमें भी श्रीकृष्ण विदुरके यहाँ ही रहे और सारी रात उन्हें बातें करते बीत गयी। सबेरे नित्यकर्मसे निवृत्त होकर श्रीकृष्ण कौरवोंकी सभामें चले गये। वहाँ जब दुर्योधनने श्रीकृष्णको पकड़कर कैद करनेका दुःसाहसपूर्ण विचार किया, उस समय विदुरजीने श्रीकृष्णके बल एवं महिमाका वर्णन करते हुए उसे यह बतलाया कि 'ये साक्षात् सर्वतन्त्रस्वतन्त्र ईश्वर हैं; यदि तुम इनका तिरस्कार करनेका साहस करोगे तो उसी प्रकार नष्ट हो जाओगे, जैसे अग्निमें गिरकर पतंगा नष्ट हो जाता है।' इसके बाद जब भगवान् श्रीकृष्णने अपना विश्वरूप प्रकट किया, उस समय सब लोगोंने भयभीत होकर अपने-अपने नेत्र मूँद लिये। केवल द्रोणाचार्य, भीष्म, विदुर, सञ्जय और उपस्थित ऋषिलोग ही उनका दर्शन कर सके; क्योंकि भगवान्ने इन सबको दिव्यदृष्टि दे दी थी। थोड़ी ही देर बाद अपनी इस लीलाको समेटकर भगवान् श्रीकृष्ण वापस उपप्लव्यकी ओर चले गये, जहाँसे वे आये थे। विदुरजी भी और लोगोंके साथ कुछ दूरतक उन्हें पहुँचानेके लिये गये और फिर उनसे विदा लेकर वापस चले आये।

श्रीकृष्णके असफल लौट जानेपर दोनों ओरसे युद्धकी तैयारियाँ होने लगीं। अठारह अक्षौहिणी सेना लेकर दोनों दल कुरुक्षेत्रके मैदानपर एकत्रित हुए और अठारह दिनोंमें ही अठारह अक्षौहिणी सेना घासकी तरह कट गयी। राजा धृतराष्ट्र अपने सौ-के-सौ पुत्रों तथा पौत्रोंका विनाश हो जानेसे बड़े दुखी हुए। उस समय विदुरजीने मृत्युकी अनिवार्यताका निरूपण करते हुए यह बतलाया कि युद्धमें मारे जानेवालोंकी तो बड़ी उत्तम गति होती है; अतः उनके लिये तो शोक करना ही नहीं चाहिये।' उन्होंने यह भी बतलाया कि 'जितनी बार प्राणी जन्म लेता है, उतनी ही बार वह अलग-अलग व्यक्तियोंसे सम्बन्ध जोड़ता है और मृत्युके बाद वे सारे सम्बन्ध स्वप्नकी भाँति विलीन हो जाते हैं। इसलिये भी मरे हुए सम्बन्धियोंके लिये शोक करना बुद्धिमानी नहीं है। फिर सुख-दुःखसे सम्बन्ध रखनेवाली संयोग-वियोग आदि जितनी भी घटनाएँ होती हैं, वे सब अपने ही द्वारा किये हुए शुभाशुभ कर्मोंके फलरूपमें प्राप्त होती हैं और कर्मफल सभी प्राणियोंको भोगना ही पड़ता है।' इसके बाद विदुरजीने संसारकी अनित्यता, निःसारता और परिवर्तनशीलता, जन्म और मृत्युके क्लेश, जीवका अविवेक, मृत्युकी दृष्टिसे सबकी समानता तथा धर्मके आचरणका महत्त्व बतलाते हुए संसारके दुःखोंसे छूटनेके उपायोंका दिग्दर्शन कराया।

युधिष्ठिरका राज्याभिषेक हो जानेके बाद जब धृतराष्ट्र पाण्डवोंके पास रहने लगे, तब विदुरजी भी धृतराष्ट्रके समीप रहकर उन्हें धर्मचर्चा सुनाया करते थे। वहाँसे जब धृतराष्ट्र और गान्धारीने वन जानेका निश्चय किया तो ये भी उनके साथ हो लिये। वहाँ जाकर विदुरजीने घोर तपस्याका व्रत ले लिया। वे निराहार रहकर निर्जन वनमें एकान्तवास करने लगे। शून्य वनमें कभी-कभी लोगोंको दर्शन हो जाया करता था। कुछ दिनों बाद जब महाराज युधिष्ठिर अपने समस्त परिवार एवं सेनाको साथ लेकर वनमें अपने ताऊ-ताई तथा माता कुन्तीसे मिलने आये और वहाँ विदुरजीको न देखकर उनके विषयमें राजा धृतराष्ट्रसे पूछने लगे, उसी समय उन्हें विदुरजी दूरपर दिखायी दिये। वे सिरपर जटा धारण किये हुए थे, मुखमें पत्थर दबाये थे और दिगम्बर वेष बनाये हुए थे। उनके धूलिधूसरित दुर्बल शरीरपर नसें उभर आयी थीं, मैल जम गया था। वे आश्रमकी ओर देखकर लौटे जा रहे थे। युधिष्ठिर उनसे मिलनेके लिये उनके पीछे दौड़े और जोर-जोरसे अपना नाम बताकर उन्हें पुकारने लगे। घोर जंगलमें पहुँचकर विदुरजी एक वृक्षका सहारा लेकर स्थिर भावसे खड़े हो गये। राजा युधिष्ठिरने देखा कि विदुरजीका शरीर अस्थिपञ्जरमात्र रह गया है, वे बड़ी कठिनतासे पहचाने जाते थे। युधिष्ठिरने उनके सामने जाकर उनकी पूजा की, विदुरजी समाधिस्थ होकर निर्निमेष

दृष्टिसे युधिष्ठिरकी ओर देखने लगे। इसके बाद वे योगबलसे अपने अङ्गोंको युधिष्ठिरके अङ्गोंमें, इन्द्रियोंको उनकी इन्द्रियोंमें तथा प्राणोंको प्राणोंमें मिलाकर उनके शरीरमें प्रवेश कर गये। उनका शरीर निर्जीव होकर उसी भाँति वृक्षके सहारे खड़ा रह गया। इस प्रकार साक्षात् धर्मके अवतार महात्मा विदुर धर्ममय जीवन बिताकर अन्तमें धर्ममूर्ति महाराज युधिष्ठिरके ही शरीरमें प्रवेश कर गये। बोलो धर्मकी जय!

दिव्यदृष्टि संजय

संजय महाराज धृतराष्ट्रके मन्त्री थे। ये जातिके सूत थे। ये बड़े स्वामिभक्त, बुद्धिमान्, नीतिज्ञ एवं धर्मज्ञ थे। ये सत्यवादी एवं निर्भीक भी थे। ये धृतराष्ट्रको बड़ी अच्छी सलाह देते थे। और उनके हितकी दृष्टिसे कभी-कभी कड़ी बातें भी कह दिया करते थे। इन्होंने अन्ततक धृतराष्ट्रका साथ दिया। ये महर्षि वेदव्यासके कृपापात्र तथा अर्जुन एवं भगवान् श्रीकृष्णके प्रेमी थे। ये दुर्योधनके अत्याचारोंका बड़े जोरोंसे प्रतिवाद करते थे और उनका समर्थन होनेपर धृतराष्ट्रको भी फटकार दिया करते थे। जब पाण्डव दूसरी बार जुएमें हारकर वनमें रहने लगे थे, उस समय इन्होंने पाण्डवोंके साथ दुर्योधनके अनुचित बर्तावकी बड़ी कड़ी आलोचना करते हुए राजा धृतराष्ट्रसे कहा—'महाराज! अब यह निश्चित है कि आपके कुलका तो नाश होगा ही, निरीह प्रजा भी न बचेगी। भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य और विदुरजीने आपके पुत्रको बहुत मना किया; फिर भी उस निर्लज्जने पाण्डवोंकी प्रिय पत्नी धर्मपरायणा द्रौपदीको सभामें बुलवाकर अपमानित किया। विनाशकाल समीप आनेपर बुद्धि मलिन हो जाती है, अन्याय भी न्यायके समान दीखने लगता है। आपके पुत्रोंने अयोनिजा, पतिपरायणा, अग्निवेदीसे उत्पन्न सुन्दरी द्रौपदीको भरी सभामें अपमानित कर भयङ्कर युद्धको न्योता दिया है। ऐसा निन्दनीय कर्म दुष्ट दुर्योधनके अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता।' क्या कोई निर्भीक-से-निर्भीक मन्त्री राजाके सामने युवराजके प्रति इतनी कड़ी किन्तु सच्ची बात कह सकता है? शास्त्रोंमें भी कहा है—'अप्रियस्य च पथ्यस्य श्रोता वक्ता च दुर्लभः।' धृतराष्ट्रने संजयकी बातका अनुमोदन करते हुए अपनी कमजोरीको स्वीकार किया, जिसके कारण वे दुर्योधनके उस अत्याचारको रोक नहीं सके थे।

संजय सामनीतिके बड़े पक्षपाती थे। इन्होंने युद्धको रोकनेकी बहुत चेष्टा की और दोनों ही पक्षोंको युद्धकी बुराइयाँ बतलाकर तथा आपसकी फूटके दुष्परिणामकी ओर ध्यान आकर्षित करते हुए बहुत समझाया। पाण्डवोंने तो इनकी बात मान ली; परन्तु दुर्योधनने इनके सन्धिके प्रस्तावको तिरस्कारपूर्वक ठुकरा दिया, जिससे युद्ध करना अनिवार्य हो गया। दैवका विधान ऐसा ही था। कौरवोंके पक्षमें भीष्म, द्रोण, विदुर और संजयका मत प्रायः एक होता था, क्योंकि ये चारों ही धर्मके पक्षपाती थे और हृदयसे पाण्डवोंके साथ सहानुभूति रखते थे। ये चारों ही राजा धृतराष्ट्र एवं उनके पुत्रोंकी अप्रसन्नताकी तनिक भी परवा न कर उन्हें सच्ची बात कहनेमें कभी नहीं हिचकते थे और सच्ची बात प्रायः कड़वी होती ही है।

जब धृतराष्ट्रने अपनी ओरसे पाण्डवोंके साथ बात-चीत करनेके लिये संजयको उपप्लव्यमें भेजा, तब संजयने जाकर पाण्डवोंकी सच्ची प्रशंसा करते हुए उन्हें युद्धसे विरत होनेकी ही सलाह दी। उन्होंने कहा कि 'युद्धसे अर्थ और धर्म कुछ भी नहीं सधनेका। सन्धि ही शान्तिका सर्वोत्तम उपाय है और राजा धृतराष्ट्र भी शान्ति ही चाहते हैं, युद्ध नहीं।' श्रीकृष्ण और अर्जुनके विशेष कृपापात्र होनेके नाते इन्हें यह पूरा विश्वास था कि ये लोग मेरी बातको कभी नहीं टालेंगे। अर्जुनके सम्बन्धमें तो इन्होंने यहाँतक कह दिया कि 'अर्जुन तो मेरे माँगनेपर अपने प्राणतक दे सकते हैं।' इससे यह बात सिद्ध होती है कि संजय अर्जुन और श्रीकृष्णके अनन्य प्रेमी थे। युधिष्ठिरने बड़े प्रेमसे संजयकी बातका समर्थन किया, परन्तु उन्होंने सन्धिकी यही शर्त रक्खी कि उन्हें इन्द्रप्रस्थका राज्य लौटा दिया जाय। भगवान् श्रीकृष्णने भी धर्मराजका समर्थन किया और संजय युधिष्ठिरका सन्देश लेकर वापस हस्तिनापुर चले आये। धृतराष्ट्रके पास जाकर पहले तो इन्होंने एकान्तमें उन्हें खूब फटकारा और पीछे सबके सामने पाण्डवोंका धर्मयुक्त सन्देश सुनाकर उनकी युद्धकी तैयारी तथा पाण्डव-पक्षके वीरोंके बलका विशदरूपसे वर्णन किया। साथ ही इन्होंने अर्जुन और श्रीकृष्णकी अभिन्नता सिद्ध करते हुए उन्हें बतलाया कि दोनों एक दूसरेके साथ कैसे घुले-मिले हैं। इन्होंने कहा कि 'जिस समय मैं श्रीकृष्ण और अर्जुनसे मिलने गया, उस समय वे दोनों अन्तःपुरमें थे। वे जिस महलमें थे, वहाँ अभिमन्यु और नकुल-सहदेवतकका प्रवेश नहीं था। वहाँ पहुँचनेपर मैंने देखा कि श्रीकृष्ण अपने दोनों चरण अर्जुनकी गोदमें रक्खे हुए हैं तथा अर्जुनके पैर द्रौपदी और सत्यभामाकी गोदमें हैं।' संजयके इस वर्णनसे श्रीकृष्ण और अर्जुनकी अभिन्नता तो सिद्ध होती ही है, साथ ही यह भी प्रमाणित होता है कि संजय श्रीकृष्ण और अर्जुनके अनन्य प्रेमी थे। जिस स्थानमें अभिमन्यु और नकुल-सहदेवका भी प्रवेश नहीं था और जहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुन अपनी पटरानियोंके साथ एकान्तमें बिल्कुल निःसंकोचभावसे बैठे थे, वहाँ संजयका बेरोक-टोक चले जाना और उनकी एकान्त-

गोष्ठीमें सम्मिलित होना इस बातको सिद्ध करता है कि इनका भी श्रीकृष्ण और अर्जुनके साथ बहुत खुला व्यवहार था।

संजय भगवान्के प्रेमी तो थे ही, इन्हें भगवान्के स्वरूपका भी पूरा ज्ञान था। इन्होंने आगे चलकर महर्षि वेदव्यास, देवी गान्धारी तथा महात्मा विदुरके सामने राजा धृतराष्ट्रको श्रीकृष्णकी महिमा सुनायी और उन्हें सारे लोकोंका स्वामी बतलाया। इसपर धृतराष्ट्रने उनसे पूछा कि 'श्रीकृष्ण साक्षात् ईश्वर हैं—इस बातको तुमने कैसे जान लिया और मैं उन्हें इस रूपमें क्यों नहीं पहचान सका?' इसके उत्तरमें संजयने वेदव्यासजीके सामने इस बातको स्वीकार किया कि 'मैंने ज्ञानदृष्टिसे ही श्रीकृष्णको पहचाना है, बिना ज्ञानके कोई उनके वास्तविक स्वरूपको नहीं जान सकता। इतना ही नहीं, उन्होंने यह भी बतलाया कि 'मैं कभी कपटका आश्रय नहीं लेता, किसी मिथ्या धर्मका आचरण नहीं करता तथा ध्यानयोगके द्वारा मेरा अन्तःकरण शुद्ध हो गया है। इसीलिये मुझे श्रीकृष्णके स्वरूपका ज्ञान हो गया है।' इसके बाद स्वयं वेदव्यासजीने संजयकी प्रशंसा करते हुए धृतराष्ट्रसे कहा कि 'इसे पुराणपुरुष श्रीकृष्णके स्वरूपका पूरा ज्ञान है; अतः यदि तुम इसकी बात सुनोगे तो यह तुम्हें जन्म-मरणके महान् भयसे मुक्त कर देगा।' संजयके ज्ञानी होनेका इससे बढ़कर प्रमाण और क्या होगा। इसके बाद धृतराष्ट्रने संजयसे पूछा—'भैया! मुझे कोई ऐसा निर्भय मार्ग बताओ, जिसपर चलकर मैं भी भगवान् श्रीकृष्णको जान सकूँ और उनका परमपद पा सकूँ।' संजयने उन्हें बताया कि 'इन्द्रियोंको जीते बिना कोई श्रीकृष्णको नहीं पा सकता और इन्द्रियाँ भोगोंके त्यागसे ही जीती जा सकती हैं। प्रमाद, हिंसा और भोग—इन तीनोंका त्याग ही ज्ञानका साधन है। इन्हींके त्यागसे परम पदकी प्राप्ति सम्भव है।' अन्तमें संजयने भगवान् श्रीकृष्णके कुछ नामोंकी बड़ी सुन्दर व्याख्या करके धृतराष्ट्रको सुनायी। इससे संजयके शास्त्रज्ञानका भी पता लगता है।

जब दोनों ओरसे युद्धकी तैयारियाँ पूरी हो चुकीं और दोनों पक्षोंकी सेनाएँ कुरुक्षेत्रमें जा डटीं, उस समय महर्षि वेदव्यासजीने संजयको दिव्यदृष्टिका वरदान देते हुए धृतराष्ट्रसे कहा—'राजन्! यह संजय तुम्हें युद्धका वृत्तान्त सुनायेगा। सम्पूर्ण युद्धक्षेत्रमें कोई भी ऐसी बात न होगी, जो इससे छिपी रहे। यह दिव्यदृष्टिसे सम्पन्न और सर्वज्ञ हो जायगा। सामनेकी अथवा परोक्षकी, दिनमें होनेवाली या रातमें होनेवाली तथा मनमें सोची हुई बात भी इसे मालूम हो जायगी। इतना ही नहीं, शस्त्र इसे काट नहीं सकेंगे, परिश्रमसे इसे थकान नहीं मालूम होगी और युद्धसे यह जीता-जागता निकल आयेगा।'

बस, उसी समयसे भगवान् वेदव्यासकी कृपासे संजयकी दिव्यदृष्टि हो गयी। वे वहीं बैठे युद्धकी सारी बातें प्रत्यक्षकी भाँति जान लेते थे और उन्हें ज्यों-की-त्यों महाराज धृतराष्ट्रको सुना देते थे। कोसोंके विस्तारवाले कुरुक्षेत्रके मैदानमें जहाँ अठारह अक्षौहिणियाँ आपसमें जूझ रही थीं। कौन वीर कहाँ किस समय किससे लड़ रहा है, वह किस समय किसपर कितने और कौन-कौन-से अस्त्रोंका प्रयोग करता है, कितनी बार कितने पैंतरे बदलता है और किस प्रकार किस कौशलसे शत्रुका वार बचाता है, उसका कैसा रूप है और कैसा वाहन है—ये सब बातें वे एक ही जगह बैठे जान लेते थे। भगवद्गीताका उपदेश भी जिस प्रकार श्रीकृष्णने अर्जुनको दिया, वह सब इन्होंने अपने कानोंसे सुना (गीता १८। ७४-७५)। केवल सुना ही नहीं, उपदेश देते समय श्रीकृष्णकी जैसी मुखमुद्रा थी, जो भावभंगी थी तथा जो उनका रूप था, वह इन्हें प्रत्यक्षकी भाँति ही दिखायी देता था। इतना ही नहीं, जिस समय भगवान्ने अर्जुनको अपना विश्वरूप दिखलाया, जिसे अर्जुनके सिवा और किसीने पहले नहीं देखा था और जिसके सम्बन्धमें स्वयं भगवान्ने उनसे कहा कि 'वेद और यज्ञोंके अध्ययनसे, दानसे, क्रियाओंसे तथा उग्र तपस्याओंसे भी कोई दूसरा इस रूपका दर्शन नहीं कर सकता' (गीता ११। ४८), उस समय संजयने भी उस रूपको उसी प्रकार देखा जिस प्रकार अर्जुन देख रहे थे। इसके बाद जब भगवान्ने अपने विश्वरूपको समेटकर अर्जुनको चतुर्भुजरूपमें दर्शन दिया, जिसका दर्शन भगवान्ने देवताओंके लिये भी दुर्लभ बताया है तथा जिसके सम्बन्धमें उन्होंने बताया कि तप, दान और यज्ञसे भी उसका दर्शन नहीं प्राप्त किया जा सकता (गीता ११। ५३), तब उसी दिव्य झाँकीका दर्शन महाभाग संजयको भी हस्तिनापुरमें बैठे ही प्राप्त हो गया। उसी प्रसङ्गमें भगवान्ने अर्जुनको यह भी बताया कि 'केवल अनन्यभक्तिसे ही मेरे इस रूपका दर्शन सम्भव है।' (गीता ११। ५४), इससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि संजयको भी भगवान्की वह अनन्यभक्ति प्राप्त थी, जिसके कारण उन्हें भगवान्की उस दिव्य झाँकीका दर्शन हो सका। गीता सुननेके बाद भी उस रूपकी स्मृति संजयके लिये एक अलौकिक आनन्दकी सामग्री हो गयी। उन्होंने स्वयं अपनी उस उल्लासपूर्ण स्थितिका वर्णन करते हुए कहा है—

राजन् संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम्।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः॥
तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः।
विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनः पुनः॥

(गीता १८। ७६-७७)

इससे यह सिद्ध होता है कि उनका श्रीकृष्ण और अर्जुनमें जो श्रद्धा-प्रेम था वह विवेकपूर्वक था; क्योंकि वे उनके यथार्थ प्रभावको भी जानते थे। उन्होंने युद्धके पूर्व ही उनकी विजय घोषित करते हुए कह दिया था कि—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥
(गीता १८। ७८)

युद्ध-समाप्तिके बाद कुछ दिन महाराज युधिष्ठिरके पास रहकर जब धृतराष्ट्र-गान्धारी वनकी ओर जाने लगे तो संजय भी उनके साथ हो लिये। वहाँ भी इन्होंने अपने स्वामीकी सब प्रकारसे सेवा की। और जब उन्हें देवी गान्धारी और कुन्तीके सहित दावाग्निने घेर लिया तो ये उन्हींकी आज्ञासे वनवासी मुनियोंको उनके शरीर-त्यागकी बात कहनेके लिये उन्हें छोड़कर आश्रममें चले आये और वहाँसे हिमालयकी ओर चले गये। इस प्रकार संजयका जीवन भी एक महान् जीवन था। उनके जीवनसे हमें यह शिक्षा मिलती है कि मनुष्य चाहे किसी भी वर्ण अथवा जातिका क्यों न हो, भगवान्की कृपासे वह कुछ-का-कुछ बन सकता है।

वीर सात्यकि

जिस वृष्णिकुलमें भगवान् श्रीकृष्णका जन्म हुआ था, सात्यकि उसी कुलके एक रत्न थे। महाभारतके युद्धके अन्तमें जीवित रहनेवाले पाण्डवपक्षके आठ वीरोंमें एक सात्यकि भी थे। सात्यकिने अर्जुनसे युद्धविद्याकी शिक्षा ग्रहणकी थी, ये भगवान् श्रीकृष्णके समान ही पाण्डवोंके प्रिय तथा हित-चिन्तक थे। ये बड़े ही स्पष्ट वक्ता थे। पाण्डवोंके अज्ञात वनवासके बाद जब विराटकी राजसभामें युद्ध या शान्तिके प्रश्नपर भाषण चल रहे थे, उस समय सात्यकिने जो व्याख्यान दिया था, उससे उनके व्यक्तित्वपर अच्छा प्रकाश पड़ता है। ये कहते हैं कि, 'यदि भाइयोंसहित कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर अपने घरपर जूआ खेलते होते और कौरव वहाँ जाकर हरा देते तो उनकी धर्मपूर्वक जीत कही जाती। परन्तु उन्होंने क्षत्रिय-धर्ममें लीन रहनेवाले युधिष्ठिरको बुलाकर छल और कपटसे हराया है। वे भीष्म, द्रोण और विदुरके बहुत अनुनय-विनय करनेपर भी पाण्डवोंको उनका पैतृक धन वापस नहीं कर रहे हैं। मैं तो रणभूमिमें तेज बाणोंसे पछाड़कर उनको बलात् रास्तेपर लाकर श्रीमान् युधिष्ठिरके चरणोंमें नत कराऊँगा, अन्यथा मन्त्रियोंके सहित उनको यमलोककी यात्रा करनी पड़ेगी।'

सात्यकि भगवान् श्रीकृष्णके समान ही सर्वतोभावेन पाण्डवोंके थे, और उनकी वाणी वीरता और ओजसे पूर्ण होती थी। वे बड़े ही नीतिज्ञ थे। उपर्युक्त प्रसङ्गमें ही वे आगे कहते हैं—

नाधर्मो विद्यते कश्चिच्छत्रून् हत्वाऽऽततायिनः।
अधर्म्यमयशस्यं च शात्रवाणां प्रयाचनम्॥
(उद्योग० ४। २०)

'आततायी शत्रुको मारनेसे कुछ भी अधर्म नहीं होगा। शत्रुसे याचना करना अधर्म है और अपमानजनक है। तथा—

गर्दभे मार्दवं कुर्याद् गोषु तीक्ष्णं समाचरेत्।
मृदु दुर्योधने वाक्यं यो ब्रूयात् पापचेतसि॥
(उद्योग० ४। ५)

'पापात्मा दुर्योधनके प्रति जो मृदु वचन बोलता है, वह मानो गधेके प्रति कोमलतापूर्ण व्यवहार करता है और गायोंके प्रति कठोर।'—इससे स्पष्ट हो जाता है कि सात्यकि सच्चे अर्थमें वीर थे, उनकी वीरतापूर्ण वाणी उनके अनुरूप ही थी। वे बड़े ही चतुर तथा गूढ़ इङ्गितज्ञ थे। इसी कारण जान पड़ता है, भगवान् श्रीकृष्णने कौरवसभामें सन्धि-दूतके रूपमें जाते समय इनको अपने साथ ले लिया था। सात्यकिकी गणना महाभारतकालीन श्रेष्ठ वीरोंमें होती थी। वे असाधारण पुरुष थे। विदुरने धृतराष्ट्रको चेतावनी देते हुए कहा था—

येषां पक्षधरो रामो येषां मन्त्री जनार्दनः।
किं नु तैरजितं संख्ये येषां पक्षे च सात्यकिः॥
(आदि० २०४। ८०)

'जिनके पक्षमें बलराम हैं, जिनके मन्त्री श्रीकृष्ण हैं, तथा वीरप्रवर सात्यकि जिनकी ओर हैं, उन पाण्डवोंके लिये युद्धमें क्या अजेय है?'—जान पड़ता है कि इस कारणसे भी भगवान् श्रीकृष्णके साथ सात्यकि गये थे। जब कौरव-सभामें कर्ण, शकुनि तथा दुर्योधनने श्रीकृष्णको पकड़नेकी मन्त्रणा की तो—

तेषां पापमभिप्रायं पापानां दुष्टचेतसाम्।
इङ्गितज्ञः कविः क्षिप्रमन्वबुद्ध्यत सात्यकिः॥
(उद्योग० १३०। ९)

उन पापियों, दुरात्माओंकी उस पापचेष्टाको इङ्गितज्ञ, कवि, सात्यकि शीघ्र ही ताड़ गये। और कृतवर्मासे बोले कि, 'शीघ्र ही सेनाको सभाद्वारके सामने व्यूहाकारमें सन्नद्ध करो, तबतक मैं श्रीकृष्णसे इनके अभिप्रायको व्यक्त करता हूँ।' व्यासजीने सात्यकिकी उस समयकी गतिविधिका अत्यन्त स्वाभाविक चित्र खींचा है। कहते हैं—

स प्रविष्टः सभां वीरः सिंहो गिरिगुहामिव।
आचष्टे तमभिप्रायं केशवाय महात्मने॥
धृतराष्ट्रं ततश्चैव विदुरं चान्वभाषत॥१३॥
तेषामेतमभिप्रायमाचचक्षे स्मयन्निव।
धर्मादर्थाच्च कामाच्च कर्म साधुविगर्हितम्॥१४॥

मन्दाः कर्तुमिहेच्छन्ति न चावाप्यं कथंचन ।
पुरा विकुर्वते मूढाः पापात्मानः समागताः ॥१५॥
धर्षिता काममन्युभ्यां क्रोधलोभवशानुगाः ।
इमं हि पुण्डरीकाक्षं जिघृक्षन्त्यल्पचेतसः ॥
पटेनाग्निं प्रज्वलितं यथा बाला तथा जडाः ॥१६॥

'जैसे गिरि-गुफामें सिंह निधड़क प्रवेश करता है, उसी प्रकार निर्भयतापूर्वक सात्यकिने सभामें प्रवेश करके उनका अभिप्राय श्रीकृष्णको बतलाया, और मुसकराते हुए, धृतराष्ट्र तथा विदुरसे उनके आश्रयको प्रकट करते हुए कहा कि ये अल्प बुद्धिवाले लोग धर्म, अर्थ और कामकी दृष्टिसे सज्जनोंके लिये निन्दनीय कर्म करनेकी इच्छा कर रहे हैं, परंतु इसमें ये कदापि सफल न होंगे। काम, क्रोध, लोभ और मोहके वशमें होकर ये पापात्मा लोग पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्णको पकड़ना चाहते हैं। वस्त्रसे प्रज्वलित अग्निको पकड़नेकी इच्छा करनेवाले मूर्खके समान जड़ हैं, इनको समझ नहीं है।' वीरश्रेष्ठ सात्यकिने दुर्योधन और उसके सारे मित्रोंकी कुमन्त्रणाका भण्डाफोड़ कर उन्हें समयसे पहले ही विफल कर दिया।

महाभारतके युद्धमें वीरप्रवर सात्यकिके पाण्डवपक्षमें आ जानेपर पाण्डवोंकी सैन्य-शक्तिमें अपूर्व वृद्धि हो गयी। वीराग्रगण्य सात्यकि भय क्या वस्तु है—यह जानते ही नहीं थे। द्रोणपर्वके ११० वें अध्यायमें धर्मराज युधिष्ठिरने सात्यकिसे कहा है कि, 'हे तात ! द्वैतवनमें अर्जुनने मुझसे कहा था—'महान् स्कन्धवाले विशाल वक्षःस्थल, बड़ी-बड़ी भुजाएँ, महाबली, महावीर्यवान्, महारथी सात्यकि मेरे शिष्य और मेरे सखा हैं। मैं उनके लिये प्रिय हूँ, और वे मेरे प्रिय हैं। वे मेरे सहायक हैं, वे कौरवोंको मथ देंगे। हे राजेन्द्र ! मेरे हितार्थ यदि स्वयं केशव तैयार हों, बलरामजी, अनिरुद्ध, महारथी प्रद्युम्न वृष्णिसेनाके साथ गद, सारण और साम्ब सहायताके लिये सन्नद्ध हों तो भी मैं सत्यपराक्रम, नरव्याघ्र सात्यकिको सहायक बनाऊँगा; क्योंकि उनके समान मेरा कोई दूसरा नहीं है—

तथाप्यहं नरव्याघ्रं शैनेयं सत्यविक्रमम् ।
साहाय्ये विनियोक्ष्यामि नास्ति मेऽन्यो हि तत्समः॥
(द्रो० ११० । ६१)

—यह तो सात्यकिके विषयमें अर्जुनका अभिप्राय है। स्वयं धर्मराज इसी अध्यायमें अपने श्रीमुखसे कहते हैं—

सर्वेष्वपि च योधेषु चिन्तयञ्छिनिपुङ्गव ।
त्वत्तः सुहृत्तमं कञ्चिन्नाभिजानामि सात्यके ॥
यथा च केशवो नित्यं पाण्डवानां परायणम् ।
तथा त्वमपि वार्ष्णेय कृष्णतुल्यपराक्रमः ॥
त्वं हि सत्यव्रतः शूरो मित्राणामभयङ्करः ।
लोके विख्यायसे वीर कर्मभिः सत्यवागिति ॥
(द्रो० ११० । ४३, ४५, ४८)

'हे शिनिपुङ्गव सात्यकि ! खूब विचारनेपर भी सब योद्धाओंमें तुमसे अधिक सुहृद् मैं किसीको नहीं पाता। जैसे श्रीकृष्ण सदा पाण्डवोंके हितमें लगे रहते हैं, उसी प्रकार हे वृष्णिकुलश्रेष्ठ ! तुम भी पाण्डवोंके हितमें सदा लगे रहते हो। तुम सत्यव्रती, शूरवीर, मित्रोंके भयको दूर करनेवाले हो तथा हे वीर ! तुम अपने कर्मोंके द्वारा सत्यवक्ताके रूपमें संसारमें प्रसिद्ध हो।'

पाण्डवपक्षमें सात्यकिका क्या स्थान है, अर्जुन तथा धर्मराजके उपर्युक्त वाक्योंसे इसका पता चल जाता है। वस्तुतः महाभारतमें सात्यकिका चरित्र बड़ा ही उज्ज्वल है। द्रोणपर्वके १४७ वें अध्यायमें युद्धमें सात्यकिके पराक्रमका वर्णन करते हुए अन्तमें सञ्जयने धृतराष्ट्रसे कहा है—

कृष्णयोः सदृशो वीर्ये सात्यकिः शत्रुतापनः ।
जितवान् सर्वसैन्यानि तावकानि हसन्निव ॥
कृष्णो वापि भवेल्लोके पार्थो वापि धनुर्धरः ।
शैनेयो वा नरव्याघ्र चतुर्थस्तु न विद्यते ॥
(१४७ । ७६।७७)

'हे राजन् ! श्रीकृष्ण और अर्जुनके समान ही सात्यकि भी शत्रुओंके लिये सन्तापकारक है। उसने हँसते-हँसते आपकी सारी सेनाको परास्त कर दिया है। मेरे विचारसे संसारमें श्रीकृष्ण और अर्जुनके बाद तीसरा वीर पुरुष सात्यकि ही है। इनके कोटिका कोई चौथा धनुर्धर नहीं है।'

सात्यकिकी युद्धकलाका निदर्शन महाभारतमें अनेकों स्थलोंपर प्राप्त होता है। वे भीमसेनके समान निर्भयतापूर्वक युद्ध करते हैं, कभी युद्धसे व्याकुल होकर पीठ नहीं दिखलाते और अपने बाणोंके आघातसे कौरवसेनाके बड़े-बड़े महारथियोंको निश्चेष्ट कर देते हैं। जयद्रथवधके अवसर-पर जब वे कौरवसेनाको परास्त करते हुए, अर्जुनके समीप पहुँचते हैं, तब भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे प्रसन्न होकर सात्यकिकी प्रशंसा करते हुए द्रोणपर्वके १४१ वें अध्यायमें उनका अभिनन्दन करते हैं। वहाँ १५ से २६ वें श्लोकतक 'आयाति सात्यकिः, अभ्येति सात्यकि' प्रत्येक श्लोकोंमें प्रयोग करके अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हैं। उस समय कौरव-सेनासे भयानक युद्ध करते-करते सात्यकि थकसे गये थे, उसी अवस्थामें भूरिश्रवाने अपनी सारी शक्तिसे आक्रमण कर दिया। पश्चात् भूरिश्रवाने हाथमें तलवार लेकर श्रान्त सात्यकिकी शिखा पकड़ ली। तब भगवान् वासुदेवने कहा—'अर्जुन ! देखो, सात्यकिको युद्धमें थका देखकर

भूरिश्रवा तलवारसे उसका सिर काटनेके लिये उद्यत है, बचाओ ।' भगवान्‌के मुँहसे यह शब्द निकलते ही अर्जुनने एक बाणसे भूरिश्रवाका वह हाथ काट डाला और इस प्रकार अपने शिष्यकी रक्षा की । सात्यकिके ऊपर सारी महाभारतमें यही एक विपद् आयी थी । वह सर्वत्र वीरता-पूर्वक लड़ते हुए अन्ततक जीवित रहे ।

कुरुराज धृतराष्ट्र

धृतराष्ट्र जन्मान्ध थे । उनको कर्तव्याकर्तव्यका ज्ञान था, परंतु वे कानके कच्चे थे । राज्यकार्यमें भीष्म, द्रोणाचार्य, विदुर और कृपाचार्यसे सलाह लेते थे तथा पाण्डवोंके सम्बन्धमें भी उसी प्रकार सलाह लेते थे । कभी-कभी वे पाण्डवोंके लिये भी अनुकूल हो जाते थे, परंतु जब वे दुर्योधनको कोई दुष्कृत्य करनेपर तुला हुआ देखते, तो उनका हृदय पुत्रमोहसे अन्धा हो जाता था और वे कर्तव्याकर्तव्यको भूल जाते थे । ऐसी हालतमें विदुर आदि-के सलाहकी उपेक्षा करके दुर्योधनका ही समर्थन करते थे । ऊपर-ऊपरसे तो पाण्डवोंके सम्बन्धमें वे ठीक-ठीक बोलते थे, परंतु उनके हृदयसे सारे राज्यको आत्मसात् करनेकी वासना दूर नहीं होती थी । अतएव वे न्यायकी परवा न करके दुर्योधन-के अनुकूल वर्तने लगते थे । कभी-कभी मोहके वश होकर दुर्योधनके दुष्कर्ममें भी सम्मति दे देते थे । और जब उसका कुफल उनको भोगना पड़ता तो वे अपने तटस्थ होनेका दिखावा करते थे । उदाहरणार्थ, जब पाण्डव लोग तेरह वर्षके वनवासमें द्वैतवनमें ठहरे हुए थे, उस समय उनको परेशान करनेके उद्देश्यसे कर्ण-शकुनि आदिकी सम्मतिसे दुर्योधन वहाँ जानेके लिये प्रस्तुत हुए । परंतु जब वह धृतराष्ट्रसे आज्ञा माँगनेके लिये गये तो उन्होंने वहाँ जानेकी अनुमति न दी और कहा, 'वहाँ पाण्डव ठहरे हुए हैं और वे छलपूर्वक हराये गये हैं तथा वनमें रहकर महान् कष्ट भोग रहे हैं । वे तपःशक्तिसम्पन्न हो रहे हैं । ऐसी अवस्थामें तुम लोग वहाँ जाकर अहंकार और दर्पके वशीभूत होकर कोई अपराध कर बैठोगे तो वे तुमको नष्ट किये बिना न छोड़ेंगे ।' परंतु जब शकुनिने उनको उलटा-सीधा समझाया तो उनकी बुद्धि बदल गयी और वे राजी हो गये । यदि सर्वसंहारक महान् अनर्थका हेतु धृतराष्ट्रको मानें तो इसमें कोई गलती न होगी; क्योंकि भीष्म, विदुर आदिका उपदेश मानकर यदि पहलेसे ही वे दुर्योधनको काबूमें रखते, तो पाण्डवोंके साथ अन्याय न हो पाता और महायुद्धकी नौबत न आती । परंतु पुत्र-स्नेह तथा राजलोभके वशवर्ती होकर वे ऐसा नहीं कर सके । वे विवेक-शून्य हो जाते थे । बीच-बीचमें ऐसे प्रसङ्ग भी आते थे जब उनके हृदयमें पाण्डवोंके प्रति ममता उत्पन्न होती थी; परंतु वह ममत्व देरतक नहीं टिकता था ।

गुण-अवगुणका विचार छोड़कर पुत्रके ऊपर अन्ध-वात्सल्यभाव रखनेवाले पिताकी जो गति होती है, वही गति धृतराष्ट्रकी हुई । उन्होंने अपने सामने ही सौ पुत्रोंकी अति भयंकर मृत्यु देखी । सौ पुत्रोंके पिता होकर भी मरते समय अपुत्र ही मरे ।

दुर्योधन प्रत्यक्ष ही पाण्डवोंके प्रति ईर्ष्याका भाव रखते थे, परंतु धृतराष्ट्र परोक्षतः पाण्डवोंसे जलते रहते थे । पाण्डवोंके बढ़ते हुए बल और ऐश्वर्यको वे सह नहीं सकते थे । परंतु साथ ही पाण्डवोंसे वे डरते भी थे; क्योंकि पाण्डव बलशाली थे । पाण्डवोंकी कीर्ति बढ़ती देखकर दुर्योधनने अपने मामा शकुनिकी रायसे पाण्डवोंको जुआ खेलनेके लिये बुलाना चाहा और धृतराष्ट्रसे इसके लिये आज्ञा माँगी तो धृतराष्ट्रने बिना कुछ सोचे-समझे अपनी राय दे दी । उस समय विदुरने जुआ खेलनेके दोषोंको जब बतलाया तो धृतराष्ट्रने कहा, 'विदुर ! यहाँ मैं, भीष्म तथा ये सब लोग हैं, और दैवने ही द्यूतका निर्माण किया है, इसलिये हम इसमें कुछ नहीं कर सकते । इस व्यवसायकी निन्दा करनेकी आवश्यकता नहीं है । इसलिये इसमें मैं दैवको ही बलवान् मानता हूँ, उसीके द्वारा यह सब कुछ हो रहा है ।' धृतराष्ट्र अधिकतर दैवका ही अवलम्बन करते थे । उनकी मान्यता थी कि जो कुछ अनिष्ट होता है, वह दैवसे ही होता है । और इस मान्यताके कारण वे दुर्योधनको अनिष्ट कार्यों-से रोक नहीं सकते थे । द्यूतके समय जब युधिष्ठिरने द्रौपदी-को दावपर रक्खा, तब सारी सभा स्तब्ध हो गयी । राजा लोग बड़े शोकमें पड़ गये । भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य पसीने-पसीने हो गये । विदुर दोनों हाथोंसे सिर थामकर बैठ गये । परंतु धृतराष्ट्र बहुत प्रसन्न हुए और बार-बार पूछने लगे, 'कौन जीता, कौन जीता ?' धृतराष्ट्रके लिये इससे बढ़कर निन्दनीय बात और क्या हो सकती थी ?

धृतराष्ट्रमें अपार बल था । वृद्धावस्था होनेपर भी भीमसेनकी लोहेकी मूर्तिको कुचल डालनेकी शक्ति धृतराष्ट्रमें थी । संजय उनको जैसे-जैसे युद्धकी बात सुनाते थे, वैसे-वैसे युवक योद्धाके समान धृतराष्ट्रका वीररक्त उछलता था । वे पाण्डवोंका अनिष्ट सुनकर मन-ही-मन प्रसन्न होते थे तथा कौरव-पक्षका अनिष्ट सुनकर उद्विग्न हो जाते थे । धृतराष्ट्र यदि अन्धे न होते तो शायद महाभारतके युद्धमें वे पूरा-पूरा भाग लेते और भीष्मके समान धृतराष्ट्र भी पाण्डवोंके विरुद्ध पूर्णबलसे युद्ध करते । धृतराष्ट्र भीमसेनसे बहुत डरते थे । वे स्वयं संजयसे कहते हैं—

जागर्मि रात्रयः सर्वा दीर्घमुष्णञ्च निःश्वसन् ।
भीतो वृकोदरात् तात सिंहात् पशुरिवापरः ॥
(उद्योग० ५१ । ३)

'हे तात ! सिंहसे डरे हुए दूसरे पशुकी भाँति मैं भीमसेनसे भयभीत हो रातभर गरम-गरम लंबी साँसें लेता हुआ जागता रहता हूँ ।' इस भयका कारण निश्चय ही द्यूतसभामें भीमसेनकी वह प्रतिज्ञा थी, जिसमें उसने कहा था कि युद्धमें मैं धृतराष्ट्रके सब पुत्रोंको मार डालूँगा और दुःशासनका रक्त पान करूँगा और धृतराष्ट्रका वह भय सच निकला । भीमसेनने एक-एक करके उनके सभी पुत्रोंको मार डाला ।

परंतु यह सब कुछ होते हुए भी हम धृतराष्ट्रमें मानवताके उत्कृष्ट रूपका भी दर्शन करते हैं । जब दुर्योधन पाण्डवोंको वारणावत भेजनेके लिये धृतराष्ट्रसे कहते हैं और उनके अनिष्टके लिये मन्त्रणा करते हैं तो वे स्पष्ट कहते हैं—

दुर्योधन ममाप्येतद्धृदि सम्परिवर्तते ।
अभिप्रायस्य पापत्वान्नैवं तु विवृणोम्यहम् ॥
(आदि० १४१ । १६)

'दुर्योधन ! मेरे हृदयमें भी यही बात घूम रही है । परंतु हम लोगोंका यह अभिप्राय पापपूर्ण है, इसलिये मैं खुलकर नहीं कह सकता ।' अपने हृदयके गुण-दोषोंका निरीक्षण करके कर्तव्याकर्तव्यका निश्चय करना श्रेष्ठ पुरुषका लक्षण है । फिर उन्होंने युधिष्ठिरकी प्रशंसा करते हुए कहा, 'युधिष्ठिर अपने पिता पाण्डुके समान ही धर्मपरायण हैं, उत्तम गुणोंसे युक्त हैं, जगत्प्रसिद्ध हैं । फिर उनको बाप-दादोंके राज्यसे बलात् कैसे वञ्चित किया जा सकता है ?' इस प्रकार धृतराष्ट्रका प्रकृतितः पाण्डवोंके प्रति प्रेमभाव भी लक्षित होता है । द्रौपदीके साथ पाण्डवोंके विवाहका समाचार सुननेके बाद धृतराष्ट्रने 'अहोभाग्य ! अहोभाग्य !!' कहकर आनन्द प्रदर्शित किया और विदुरको भेजकर उनको हस्तिनापुर बुलवाया । पाण्डवोंके आनेपर उनकी आत्मीयता जाग्रत् हुई और उन्होंने कहा कि, 'युधिष्ठिर ! मेरे दुरात्मा पुत्र दम्भ और अहङ्कारसे भरे हैं, मेरा कहना नहीं मानते, सदा अपने स्वार्थसाधनकी बात सोचते रहते हैं । इन दुरात्माओंसे कहीं झगड़ा न हो जाय, इसलिये तुम आधा राज्य लेकर खाण्डवप्रस्थमें निवास करो ।' इस प्रकार महाराज धृतराष्ट्रने झगड़ेका अन्त कर दिया । उनका यह कार्य भगवान् श्रीवासुदेवको भी पसंद आ गया और वे बोल उठे—

युक्तमेतन्महाराज कौरवाणां यशस्करम् ।

'महाराज ! आपका यह विचार सर्वथा उत्तम तथा कौरवोंकी यशवृद्धि करनेवाला है ।'

जुआ खेलनेका प्रस्ताव करनेके पहले धृतराष्ट्रने दुर्योधनको बहुत समझाया और कहा, 'बेटा ! पाण्डवोंसे द्वेष मत करो, क्योंकि द्वेष करनेवाला मनुष्य मृत्युके समान कष्ट पाता है । युधिष्ठिर तुमसे द्वेष नहीं करते और जो उनके मित्र हैं, वे तुम्हारे भी मित्र हैं । दूसरेके धनकी स्पृहा करना अच्छे पुरुषोंका काम नहीं है ।

पाण्डोः पुत्रान् मा द्विषस्वेह राजं-
स्तथैव ते भ्रातृधनं समग्रम् ।
मित्रद्रोहे तात महानधर्मः
पितामहा ये तव तेऽपि तेषाम् ॥
(सभा० ५४ । १०)

'तुम पाण्डवोंसे द्वेष न करो । वे तुम्हारे भाई हैं; भाइयोंका सारा धन तुम्हारा ही है । मित्रद्रोहसे बड़ा अधर्म होता है, तुम्हारे दादे-परदादे जो हैं, उनके भी वे ही हैं ।' इस प्रकार महाराजकी शान्तिप्रियताका पता लगता है । परंतु शकुनिने अपनी दुरभिसन्धिके द्वारा इनकी बुद्धिपर पर्दा डालकर जुएके प्रस्तावका समर्थन करा लिया जो कौरवोंके सर्वनाशका कारण बना ।

जुएमें जब पाण्डव सर्वस्व हार गये और द्रौपदीको दावपर रखना न्यायसङ्गत है या नहीं, इसपर बहस चल रही थी तो धृतराष्ट्रने दुर्योधनको फटकारते हुए कहा था, 'रे मन्दबुद्धि दुर्योधन ! तू तो विनष्ट हो गया ! दुर्विनीत ! तू श्रेष्ठ कुरुवंशियोंकी सभामें अपने ही कुलकी स्त्री तथा विशेषतः पाण्डवोंकी धर्मपत्नी द्रौपदीको लाकर पापकी बातें कर रहा है ।' इस प्रकार बन्धु-बान्धवोंको विनाशसे बचाकर तत्त्वदर्शी महाराज धृतराष्ट्रने द्रौपदीको सान्त्वना देते हुए कहा—

वरं वृणीष्व पाञ्चालि मत्तो यदभिवाञ्छसि ।
वधूनां हि विशिष्टा मे त्वं धर्मपरमा सती ॥
(सभा० ७१ । २७)

'बहू द्रौपदी ! तुम मेरी पुत्रवधुओंमें सर्वश्रेष्ठ और धर्मपरायणा सती हो । तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे वर माँगो ।'—यह सुनकर द्रौपदीने युधिष्ठिरको दासभावसे मुक्त करनेका वर माँगा । पश्चात् नन्दिनी, धर्मचारिणी, कल्याणी आदि शब्दोंसे सम्बोधित करते हुए राजाने दो और वर माँगनेके लिये कहा, परंतु द्रौपदीने केवल एक वर माँगकर भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेवको अपने-अपने रथ और धनुष-बाणके साथ दास-भावसे मुक्त करा लिया । यहाँ महाराज धृतराष्ट्रके विवेक और दूरदर्शिताका सुन्दर उदाहरण प्राप्त होता है । वस्तुतः वे महाराज पाण्डुके बड़े भाई थे, इसलिये इस अवसरपर उन्होंने जो कुछ किया, उससे उनकी मर्यादाकी रक्षा हो गयी । परंतु होनी होकर रहती है, पुनः धृतराष्ट्रको उलटा-सीधा

समझाकर दुर्योधनने धर्मराजको जुआ खेलनेके लिये बुलानेको राजी कर लिया। धृतराष्ट्रकी बुद्धि मारी गयी, उनके आमन्त्रणपर धर्मराज जुआ खेलने आये, और वही जुआ सर्वनाशका कारण बना।

जब दूतके रूपमें भगवान् श्रीकृष्णके पधारनेकी बात विदुरके मुखसे महाराज धृतराष्ट्रने सुनी तो उनका गुणगान करने लगे—

चक्षुष्मतां वै स्पृहयामि संजय
द्रक्ष्यन्ति ये वासुदेवं समीपे।
विभ्राजमानं वपुषा परेण
प्रकाशयन्तं प्रदिशो दिशश्च॥
(उद्योग० ७१। १)

'संजय! मैं आँखवालोंके भाग्यका अभिलाषी हूँ, जो वासुदेव श्रीकृष्णको समीपमें देखते हैं, जो उत्तम श्रीसम्पन्न विग्रहसे दिशाओं, प्रदिशाओंको प्रकाशित करते हुए शोभायमान हैं।'

सहर्षशीर्षं पुरुषं पुराण-
मनादिमध्यान्तमनन्तकीर्तिम्।
शुक्रस्य धातारमजं च नित्यं
परं परेषां शरणं प्रपद्ये॥
(उद्योग० ७१। ६)

'जिनके सहस्रों सिर हैं, जो पुराणपुरुष हैं, जिनका आदि, मध्य और अन्त नहीं है। जो अनन्त कीर्तिमान् हैं, जो सृष्टिके बीजको धारण करते हैं, जो अज हैं, नित्य हैं, परात्पर हैं उन भगवान् श्रीकृष्णकी मैं शरण जाता हूँ।'

महाराज धृतराष्ट्रने द्रोणपर्वके ग्यारहवें अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाका संक्षेपमें वर्णन करके श्रीकृष्ण और अर्जुनकी महिमाका गुणगान किया है। सारी लीलाओंका स्मरण करते हुए राजसभामें भगवान् वासुदेवके रूपका वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

यच्च तन्महदाश्चर्यं सभायां मम संजय।
कृतवान् पुण्डरीकाक्षः कस्तदन्य इहार्हति॥
यच्च भक्त्या प्रसन्नोऽहमद्राक्षं कृष्णमीश्वरम्।
तन्मे सुविदितं सर्वं प्रत्यक्षमिव चागमम्॥
नान्तो विक्रमयुक्तस्य बुद्ध्या युक्तस्य वा पुनः।
कर्मणां शक्यते गन्तुं हृषीकेशस्य संजय॥
यस्य यन्ता हृषीकेशो योद्धा यस्य धनंजयः।
रथस्य तस्य कः संख्ये प्रत्यनीको भवेद् रथः॥
अर्जुनः केशवस्यात्मा कृष्णोऽप्यात्मा किरीटिनः।
अर्जुने विजयो नित्यं कृष्णे कीर्तिश्च शाश्वती॥
(द्रो० ११। २४–२६, ३६, ३८)

'हे संजय! भगवान् श्रीकृष्णने मेरी सभामें जो महान् आश्चर्य कर दिखाया था, वह दूसरा कौन कर सकता है? भक्तिसे प्रसन्न होकर मैंने भगवान् श्रीकृष्णके जिस स्वरूपको देखा था, वह आज भी प्रत्यक्षवत् स्मरण हो रहा है। संजय! कोई पराक्रमयुक्त या बुद्धियुक्त अथवा कर्मसे युक्त होकर हृषीकेश श्रीकृष्णका अन्त नहीं पा सकता। जिस रथके हाँकनेवाले श्रीकृष्ण हैं तथा योद्धा अर्जुन हैं, उस रथके सामने कोई शत्रु कैसे टिक सकता है? अर्जुन श्रीकृष्णकी आत्मा हैं और श्रीकृष्ण अर्जुनकी आत्मा हैं। अर्जुन नित्य विजयी हैं, और श्रीकृष्णमें शाश्वती कीर्ति है।' और मोहवश दुर्योधन श्रीकृष्णको नहीं पहचान रहा है और न अर्जुनको। ये दोनों पूर्वदेव महात्मा नर-नारायण हैं।

इस प्रकार भगवद्गुणोंके ज्ञाता धृतराष्ट्र पुत्रके मोहमें पड़कर दुर्योधनके अन्यायोंका निराकरण न करनेके कारण दोषके भागी बने। परंतु अंधे होते हुए भी उन्होंने भगवत्कृपासे राजसभामें भगवान्‌के दिव्यरूपका दर्शन किया था, जो सौभाग्य संसारमें बिरले ही प्राप्त करते हैं! भगवान्‌ने स्वयं उनको इसके लिये दिव्यदृष्टि प्रदान की थी। महाभारतके अन्तमें कुछ दिन हस्तिनापुरमें रहनेके बाद अन्तमें वनमें जाकर भगवान्‌की आराधनामें उन्होंने अपना जीवन व्यतीत किया।

राजा दुर्योधन

पाण्डवोंके कट्टर शत्रु तथा कलिके अंशावतार दुर्योधन अंधे धृतराष्ट्रके ज्येष्ठ पुत्र थे। वे राज्यलोभी, अहङ्कारी, ईर्ष्यालु, अयोग्य, महत्त्वाकांक्षासे युक्त, दम्भी, गुरुजनकी आज्ञाकी अवहेलना करनेवाले, अपनी बड़ाई आप करनेवाले और अपनी इच्छाके विरुद्ध वर्तनेवाले, शुभचिन्तकोंको भी शत्रुकी दृष्टिसे देखनेवाले थे। उनमें सद्गुण भी थे। परंतु वे गुण भी दुर्गुणोंका साम्राज्य बढ़ जानेके कारण दूसरोंके लिये संहारकारक ही सिद्ध हुए। वे राजनीतिमें निपुण थे, धन तथा सम्मान प्रदान करके दूसरोंको अपना बना लेनेकी उनमें क्षमता थी और इसी कारणसे उन्होंने भीष्म, द्रोणाचार्य आदि, जो पाण्डवोंको समभावसे देखते थे, उनको भी युद्धमें अपने पक्षमें कर लिया था। केवल साधुपुरुष धर्मावतार विदुरजी उनके धनके लोभमें नहीं फँसे थे। इसी कारण दुर्योधन सदा अपना रहस्य खोल देनेवाले शत्रुके रूपमें ही उनको देखते थे। वे युद्धकालमें भी तटस्थ ही रह गये थे। दुर्योधनने अपने राज्यकालमें प्रजाको तथा माण्डलिक राजाओंको प्रसन्न रक्खा था; परंतु इसका मुख्य हेतु यह था कि, किसी प्रकार असंतुष्ट होकर कोई पाण्डवोंकी ओर न चला जाय। वे भीमसेनको अपना कट्टर शत्रु समझते थे, परंतु उनकी शक्तिके आगे उसकी एक न चलती थी।

दुर्योधनने धनुर्वेदादि शस्त्र-विद्याकी शिक्षा द्रोणाचार्यके पास ग्रहण की थी, इसलिये वे अन्यान्य शस्त्रास्त्रोंके द्वारा भी युद्ध करते थे। परंतु गदायुद्धमें तो वे अत्यन्त ही कुशल थे। वे और भीम दोनोंने ही बलरामजीसे गदायुद्धकी शिक्षा ली थी; परंतु भीमसेनके शारीरिक बलके आगे वे निर्बल बन जाते थे, इसी कारण वे कर्तव्याकर्तव्य भूलकर नृशंस कर्म करने लगते थे। वे दूसरोंका छिद्रान्वेषण करते थे, परंतु अपने छिद्रोंको नहीं देखते थे और जब कोई उनका दोष दिखलाता था, तब वे उसकी अवज्ञा कर बैठते थे। इसी कारण वे आजन्म वैराग्निको शान्त न कर सके। जीवनभर वे पाण्डवोंको अपने सम्राट्पदमें विघ्नरूप मानकर उन्हींका स्वप्न देखते थे और उनका कैसे निर्मूल किया जाय, इसीकी कोशिशमें लगे रहते थे। इस वैरभावकी दीक्षा लेकर उन्होंने इस वैराग्निमें भारतमाताके रत्नरूप पुत्रोंका होम कर दिया और अन्तमें स्वयं भी वीरके समान युद्ध करके सौ भाइयोंके साथ होमे गये और भारतभूमिको निस्तेज कर डाला। दूसरोंका अनिष्ट चाहनेवाले वे अपना या दूसरे किसीका भी इष्ट साधन नहीं कर सके, उलटे आनेवाले युगोंके लिये अपना अपयश छोड़ गये।

दैव श्रेष्ठ है या पुरुषार्थ?—यह प्रश्न उपस्थित होनेपर दुर्योधनका दृष्टान्त लेना चाहिये। पुरुषार्थके ऊपर पूर्ण विश्वास रखनेवाले और दैवको लेशमात्र भी न माननेवाले दुर्योधनका दैवके द्वारा ही नाश हुआ। भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य-जैसे बलवान् महारथी, जो पाण्डवोंके पक्षपाती थे, उनको युद्धमें अपने पक्षमें लेनेका सफल प्रयास दुर्योधनने किया था। उसकी राजनीतिके कारण वृद्ध और सारासारका विवेक रखनेवाले भीष्म-जैसे योद्धा दुर्योधनके अन्यायी पक्षमें अन्ततक रहे और युद्ध करते हुए मरे। जैसे-जैसे दुर्योधन हारते गये, वैसे-वैसे उनको यह लगने लगा कि, 'पुरुषार्थ बेकार है, दैव सर्वथा बलवान् है।'—दुर्योधनके जीवनकी आलोचना करनेपर यह तथ्य सबके सामने आता है।

महाभारत पढ़नेवालोंका पाण्डवोंमें पक्षपात होता है, यदि महाभारतकारने ऐसा जोर न डाला होता तो दुर्योधन कुशल और श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ थे, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। पाण्डवोंको तो वे जन्मसे ही धिक्कारते थे। कर्ण और अर्जुन तथा दुर्योधन और भीम इन दोनोंके बीच बचपनसे ही ईर्ष्या, द्वेष और वैरभाव था। दुर्योधनका द्वेष इस सीमातक पहुँच गया था कि उन्होंने पाण्डवोंको सूईकी नोकके बराबर भी जमीन न देनेका सङ्कल्प कर लिया था।

भीष्म और द्रोणको उन्होंने अपने पक्षमें करके पाण्डवोंके विरुद्ध युद्धमें लगाया था तथापि दुर्योधनको इनके ऊपर विश्वास न था। उसने कई बार उनको खरी-खोटी सुनाते हुए कहा था कि, 'आपलोगोंका पोषण तो मैं करता हूँ, परंतु आपलोग पाण्डवोंका पक्षपात करके युद्ध करते हैं।' भीष्म और द्रोणाचार्यको दुर्योधनका यह स्वभाव अच्छा नहीं लगता था। दुर्योधन कभी-कभी कर्णकी प्रशंसा करते थे और यह भी कहते थे कि उसके द्वारा वे युद्ध जीतेंगे।

दुर्योधन सद्व्यवहारकी महिमा जाननेवाले तथा बड़े मृदुभाषी थे। उनके सद्व्यवहार तथा मृदुभाषितासे ही माद्रीके भाई शल्यने दुर्योधनके पक्षमें रहना और कर्णका सारथी बनना स्वीकार किया। अश्वत्थामा और कर्णके वाग्-युद्धको इन्होंने अपनी मृदुवाणीसे बंद किया था। उनकी अमृतमयी वाणीसे भूलकर धृतराष्ट्र उनके कार्यमें स्वीकृति दे देते थे। यह दुर्योधनकी राजनीति थी। इसी मृदु भाषणके बलसे उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णकी सारी नारायणी सेनाको अपने पक्षमें ले लिया था तथा प्रकारान्तरसे श्रीकृष्णसे युद्धमें शस्त्र ग्रहण न करनेका वचन भी ले लिया था।

दुर्योधनके जीवनमें सबसे जघन्य कृत्य था भरी सभामें पाञ्चालकुमारी द्रौपदीका घोर अपमान। द्रौपदी उस कालमें नारीजगत्का सर्वश्रेष्ठ रत्न थी, उसका अपमान करके दुर्योधनने अपनी मृत्युका—अपने सर्वनाशका बीज बोया था।

दुर्योधन महान् तेजस्वी और शक्तिशाली राजा थे। धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि उनके शासनमें थे। महाभारतके महायुद्धमें उनकी सेना भी सर्वथा सुव्यवस्थित और सुदृढ़ तथा महान् थी। यदि पाण्डव-पक्षमें भगवान् श्रीवासुदेव न होते तो पाण्डवोंकी विजय संशयास्पद थी। दुर्योधनमें कार्यक्षमता भी अपूर्व थी। उनका गुप्तचर-विभाग सुव्यवस्थित था, जहाँ-कहीं कौरवोंके विपक्षकी अथवा पाण्डवोंके पक्षकी कोई घटना घटती, दुर्योधनको गुप्तचरोंके द्वारा तुरंत उसकी सूचना मिल जाती थी। और वे चौकन्ने होकर प्रतिविधानके लिये तैयार हो जाते थे। उसके गुप्तचर प्रत्येक राज्योंमें थे। उनका शासन-तन्त्र भी सुव्यवस्थित था, वे प्रजा-पालनमें राजधर्मका अनुसरण करते थे। गो-ब्राह्मणके रक्षक थे। महाविष्णु यज्ञ करके उन्होंने ब्राह्मणोंको दान-दक्षिणासे परितुष्ट कर दिया था। यदि पाण्डवोंके प्रति किये गये उनके दुर्व्यवहारोंको अलग करके देखें तो दुर्योधन एक महत्त्वाकांक्षी क्षात्रधर्मके अनुसार प्रजारञ्जन करनेवाले प्रभावशाली सम्राट् थे। उनके राजदरबारमें ब्राह्मणोंकी, ऋषि-मुनियोंको यथोचित सत्कार प्राप्त होता था।

जब भगवान् वासुदेव दूतके रूपमें संधिका प्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर जाने लगे और इसका समाचार दुर्योधनको दूतोंके द्वारा प्राप्त हुआ, तो उन्होंने भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णके आगमनके अवसरपर अपूर्व स्वागत-सत्कारका प्रबन्ध किया। वृकस्थलमें भगवान् अपने सैन्यके साथ मार्गमें रात्रिके

समय विश्राम करनेवाले थे। अतएव वृकस्थलसे हस्तिनापुरतक स्थान-स्थानपर रम्य विश्रामस्थल, रत्नजटित सभास्थल, नाना प्रकारके विचित्र आसन, वसन, अन्न-पान, आहार-विहार तथा नाना प्रकारके बहुमूल्य रत्नोंकी योजना भगवान् श्रीवासुदेवकी प्रसन्नताके लिये की गयी थी। परंतु भगवान् संधि-दूतके रूपमें जा रहे थे, अतएव दुर्योधनके द्वारा आयोजित इन आयोजनोंका उपयोग उन्होंने नहीं किया।

राजा धृतराष्ट्रके सामने जब विदुरजीने श्रीकृष्णकी महिमा सुनाकर उनका सत्कारपूर्वक आतिथ्य करनेकी बात कही तो कूटनीतिज्ञ दुर्योधनने कहा कि 'श्रीकृष्णके विषयमें विदुरजीने जो कुछ कहा है उसे मैं ठीक मानता हूँ, परंतु जनार्दन पाण्डवोंके प्रति अति अनुरक्त हैं। हे राजन्! बुद्धिमान्को ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये कि क्षत्रियका अनादर हो। मैं जानता हूँ कि विशाललोचन श्रीकृष्ण तीनों लोकोंमें पूज्यतम हैं। तथापि पाण्डव-परायण होनेके कारण श्रीकृष्णको नियन्त्रित करना ही ठीक है। यदि वासुदेव पकड़ लिये गये तो सब कार्य सिद्ध हो जायगा।' दुर्योधनकी इस बातको सुन मन्त्रियोंके सहित धृतराष्ट्र काँप उठे और बोले—'अरे बेटा! ऐसी बात न कहो, यह सनातन धर्म नहीं है। एक तो हृषीकेश दूतके रूपमें आये हैं, दूसरे हमारे सम्बन्धी और प्रियजन हैं, तीसरे कौरवोंके विषयमें उनकी पापबुद्धि नहीं है। फिर भला उनको क्यों बन्धनमें डाला जाय?'

दूतश्च हि हृषीकेशः सम्बन्धी च प्रियश्च नः।
अपापः कौरवेयेषु स कथं बन्धमर्हति॥
(उद्योग० ८८। १८)

धृतराष्ट्रकी बात सुनकर भीष्मजी बिगड़ गये और बोले—'धृतराष्ट्र! तुम्हारा पुत्र मूर्ख है। सुहृद्जन इसे भला सुझाते हैं, और यह बुरा ही सोचता है। यह दुष्ट भगवान् वासुदेवको पकड़नेपर क्षणमात्रमें अपने मन्त्रियोंके साथ नाशको प्राप्त हो जायगा। इस पापी, अधर्मी और मूर्खकी बात मैं नहीं सुनना चाहता'—इतना कहकर असंतुष्ट होकर भीष्मजी वहाँसे उठ गये।

परंतु दुर्योधन महा अहङ्कारी थे, उनको अपने बलका बड़ा अभिमान था। दूसरे, कर्ण उनको सहायक मिल गये थे, जो अपनेको सबसे बड़ा धनुर्धर समझते थे। इन दोनों वीरोंकी विचित्र जोड़ी थी, इसी कारण भगवान् वासुदेवने कर्णको पाण्डवोंके पक्षमें लानेकी चेष्टा की थी। उद्योगपर्वके ६३वें अध्यायमें दुर्योधनने भीष्मपितामहसे रुष्ट होकर यहाँतक कह दिया था कि 'मैं युद्ध आपके भरोसे, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, बाह्लीक तथा दूसरे राजाओंके भरोसे नहीं करने जा रहा हूँ। मैं कर्ण और भाई दुःशासनको साथ लेकर युद्धमें पाँचों पाण्डवोंको मार डालूँगा, और तब भूरि-भूरि विविध दक्षिणाओंसे युक्त महान् यज्ञोंका अनुष्ठान करके गौओं, अश्वों तथा नाना प्रकारके धनोंसे ब्राह्मणोंको परितृप्त करूँगा।'

दुर्योधन महान् सम्राट् थे, इसमें संदेह नहीं है। परंतु वे बड़े भारी अन्यायी थे, उन्होंने पाण्डवोंको बहुत सताया। पाण्डव लोग धर्मात्मा थे, बलमें भी अद्वितीय थे, परंतु धर्मभीरु थे। युधिष्ठिर तो धर्मराज ही कहलाते थे, और शेष चारों भाई उनके आज्ञानुवर्ती थे। अपनी माता कुन्ती और धर्मपत्नी द्रौपदीके साथ पाँचों पाण्डव भगवान् श्रीवासुदेवके परम प्रियजन थे। भगवान् आर्तोंके—असहायोंके सहायक होते हैं। दुर्योधनने विष देकर भीमसेनको मार डालनेकी चेष्टा की, वारणावतके लाक्षागृहमें कुन्तीसहित पाँचों पाण्डवोंको जला डालनेकी चेष्टा की, जुएमें शकुनिकी सहायतासे छल करके पाण्डवोंका सर्वस्व छीनकर पतिव्रता द्रौपदीको भरी सभामें अपमानित किया, पाण्डवोंको वनवास देकर वन-वन भटकनेके लिये विवश किया। उनके सारे कर्म आततायीपनसे भरे थे। ऐसी अवस्थामें भगवान्का पाण्डव-पक्षमें रहना स्वाभाविक था। इन अत्याचारोंके होते हुए भी दुर्योधन असुर नहीं थे, अपनेको क्षात्रधर्मका अनुवर्तन करनेवाला विशुद्ध क्षत्रिय समझते थे। और तदनुसार वर्तनेकी चेष्टा करते थे, इसी कारण भगवान् श्रीवासुदेव दूत बनकर गये कि वह अपनी भूल सुधार ले, पाण्डवोंके प्रति भाईके समान व्यवहार करनेके लिये राजी हो जाय। लेकिन दुर्योधनको अपने बलका बड़ा घमंड था। वे न माने। फलतः महाभारतका महायुद्ध हुआ, जिसमें उनके पक्षके सब राजा अपनी सारी सेनाओंके साथ मारे गये और अन्तमें दुर्योधन गदायुद्धमें भीमके द्वारा मारे गये। कौरवपक्षके केवल कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कृतवर्मा और युयुत्सु बच रहे।

महावीर कर्ण

कुन्तीकी कुमारावस्थामें सूर्यदेवके द्वारा कर्णकी उत्पत्ति हुई। परंतु लोकापवादके भयसे कुन्तीने उन्हें काष्ठकी पेटीमें सुरक्षित रखकर गङ्गामें बहा दिया था। और अधिरथ नामके सूतकी स्त्री राधाने उन्हें पाल-पोसकर बड़ा बनाया था। इसी कारण उन्हें सूतपुत्र, राधेय आदि नामोंसे पुकारते थे। वे कौरव-पक्षमें अर्जुनके समान धनुर्धर थे। दुर्योधन अर्जुनके पराक्रमको देखकर बहुत घबराते थे, परंतु परीक्षाके समय जब कर्णने आकर अर्जुनके समान पराक्रम दिखला दिया तो तभीसे उन्होंने कर्णको अपना मित्र बना लिया तथा उनको अङ्गदेशका राजा बनाकर अपनेको निर्भय समझने लगे। कर्णकी सहायतापर पूर्णरूपेण निर्भर होनेके कारण ही दुर्योधनने पाण्डवोंके प्रति अपने वैरभावको अन्ततक शान्त न होने दिया। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और भीष्मपितामहपर उनको पूरा भरोसा न था। वे इनको उभय-

पक्षीय मानते थे। परंतु कर्णको सर्वथा अपना ही समझते थे; यही नहीं, उनको यह निश्चय हो गया था कि यह अवश्य ही अर्जुनको मार गिरावेगा। कर्ण शूर थे तथा साथ ही कुछ भीरु भी थे। वे गन्धर्वयुद्धमें, गोहरणके युद्धमें तथा महायुद्धमें पराङ्मुख होकर भागते हुए देखे गये थे। **'राधेये शौरभीरुते'**—कर्णमें शौर्य और भीरुता दोनों थी। शौर्य तो क्षत्रियोनिमें जन्म लेनेके कारण था और भीरुताका कारण था सूतके घरमें उनका पालन-पोषण। परीक्षाके समय कर्णका पराक्रम देखकर युधिष्ठिरके मनमें यह दृढ़ छाप पड़ गयी थी कि कर्णके समान कोई दूसरा धनुर्धर नहीं है। और यह छाप जबतक कर्ण मरे नहीं, तबतक बनी रही। उनको युद्धमें कर्णसे बहुत डर था, इसी कारण उन्होंने कर्णको बिना मारे आये हुए अर्जुनको बहुत कड़ी बातें सुनायी थीं। कर्ण तपस्वी, दाता और उदार थे। वे नित्य प्रातःकाल गङ्गामें खड़े होकर तबतक जप करते रहते थे जबतक सूर्य ढल न जाय। उस समय उनके पास आकर जो कोई जो कुछ माँगता, उसे वे देते थे। कर्णने कवच और कुण्डल पहने ही जन्म लिया था। वे जबतक उसके साथ रहते तबतक उसकी मृत्यु होनेवाली न थी। अतएव अपने पुत्र अर्जुनको बचानेके लिये साक्षात् इन्द्रने ब्राह्मणका वेष धारण करके कर्णके पास आकर कवच-कुण्डलकी याचना की थी। कर्णने उन्हें पहचान लिया, परंतु अपने व्रतकी रक्षाके लिये उन्होंने कवच और कुण्डल उतारकर इन्द्रको दे दिये। इसपर प्रसन्न होकर इन्द्रने उनको एक अमोघ शक्ति दी, जो एक आदमीको मारनेमें पूर्ण समर्थ थी। कर्णने उस शक्तिके प्रयोगसे घटोत्कचको मारा था। कर्ण कृतज्ञ तथा हठीले थे। श्रीकृष्णने संधिदूतका कार्य करके लौटते समय कर्णको अपने रथमें बैठाकर उन्हें बतलाया कि वे सूतपुत्र नहीं, बल्कि कुन्तीपुत्र हैं। और यह भी कहा कि, 'तुम पाण्डव-पक्षमें आ जाओ तो राज्य तुम्हें ही मिलेगा। परंतु कर्णने स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि, 'पाण्डव-पक्षमें आप हैं, इससे जय पाण्डवोंकी ही होगी; परंतु दुर्योधनने मुझको आजतक बहुत मान-सम्मानसे रक्खा है, तथा मेरे ही भरोसे युद्ध खड़ा किया है, ऐसी अवस्थामें यदि मैं उसे छोड़ता हूँ तो यह अन्याय माना जायगा। अतएव मैं ऐसा नहीं कर सकता।' फिर कुन्ती भी वहाँ गङ्गा-तटपर गयी जहाँ कर्ण जप करते थे। और उनके जन्मकी सत्य कथा सुनाकर उसे पाण्डवपक्षमें आनेके लिये कहा। कर्णने उसको भी मार्मिक शब्द सुनाकर अपनी असमर्थता प्रकट की, परंतु उदारतासे यह भी कहा कि 'माँ! या तो अर्जुनसहित तेरे पाँच पुत्र रहेंगे या अर्जुनरहित तेरे पाँच पुत्र रहेंगे। मैं अर्जुनके सिवा तेरे दूसरे पुत्रोंको नहीं मारूँगा।' इस वचनका पालन कर्णने अन्ततक किया। दुर्योधनको न छोड़ना, उनके अडिग व्रत तथा कृतज्ञताका उज्ज्वल दृष्टान्त है। युद्धकी समाप्ति हो जानेपर जलाञ्जलि देते समय कुन्तीने कर्ण किसका पुत्र था, यह रहस्य खोल दिया था। और यह जानकर युधिष्ठिरने जीते-जी ही नहीं, बल्कि स्वर्गमें भी शोक करते हुए उनकी खोज की थी। युधिष्ठिरने जल प्रदान करते समय शोकपूर्वक कहा था कि, 'कर्ण बहुत कुवचन कहते थे, परंतु मेरी माताके समान उनके पैर देखकर मेरा क्रोध शान्त हो जाता था तथा मैं विचारमग्न हो जाता था।' कैसा अदृष्ट बन्धु-प्रेम था! कर्ण दाता, शूर, युद्धकुशल, एकनिष्ठ और उदार थे। इसके साथ-साथ वे अनदेखे, बढ़ावा देनेवाले आत्मप्रशंसक धृष्ट तथा अभिमानी भी थे। इन्हीं दुर्गुणोंके कारण वे अर्जुनसे द्वेष करते थे, और इसीसे वे दुर्योधनके साथ दौड़ जाते थे तथा स्वयं अपकीर्तिके भागी बनते थे। उन्होंने जरासंधको हराया था तथा अकेले ही दिग्विजय किया था। उनका यह कार्य उसके अद्भुत शौर्य तथा शस्त्रास्त्रविद्याके नैपुण्यका सूचक है। महायुद्धमें उन्होंने दो दिन सेनापतिके पदपर रहकर उत्कृष्ट पराक्रम दिखलाया था। अन्तमें ब्राह्मणके शापसे उनका रथचक्र भूमिमें धँस गया और उसको उठानेके लिये वे नीचे उतरे, उसी समय श्रीकृष्णकी प्रेरणासे अर्जुनने उनका सिर काट डाला। वे गौरवर्ण, ऊँचे कदके, प्रचण्ड तेजस्वी तथा प्रभावशाली पुरुष थे। वे दाताके रूपमें अपने पीछे अमरकीर्ति छोड़ गये हैं। साथ ही दुर्योधनके पाप-सम्बन्धसे अपकीर्ति भी छोड़ गये हैं। उनके जीवनमें जो सबसे बड़ी कालिमा है, वह है राजसभामें द्रौपदीके प्रति उनकी अधम वाणी। वहाँ द्रौपदीको उन्होंने वेश्याकी उपमा देते हुए कहा है—

अस्या सभामानयनं न चित्रमिति मे मतिः।
एकाम्बरधरत्वं वाप्यथ वापि विवस्त्रता॥

(सभा० ६८। ३६)

'इसको सभामें लाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। यह एकवस्त्रा हो या नंगी हो तो भी यहाँ लायी जा सकती है।' यह निश्चयपूर्वक अधिरथके घरमें प्राप्त निम्नकोटिके संस्कारोंका ही परिणाम था। उच्चकुलमें उत्तम रजवीर्यसे उत्पन्न बुद्धिमान् पुरुष भी कुसङ्गसे कितना गिर जाता है—इसका यह प्रत्यक्ष उदाहरण है। कर्ण बड़े ही आत्माभिमानी थे। इसी कारण आत्मश्लाघामें वे इतने आगे बढ़ जाते थे कि भीष्म-द्रोण आदि गुरुजनोंके लिये भी असह्य हो जाते। गुरुजन तो पाण्डवोंको अजेय बतलाते थे और दुर्योधनको उनके साथ संधि करके चलनेकी सम्मति देते थे। निश्चय ही उनकी यह सम्मति निष्पक्ष होती थी। और कौरवोंके लिये कल्याणजनक थी। परंतु कर्णके लिये पाण्डवोंकी प्रशंसा असह्य थी। वे सदा उनका पराभव ही चाहते थे।

उनकी डींग हाँकनेकी आदत भी थी, और वह गुरुजनोंको प्रायः अप्रिय हो जाती थी। विराटकी गौओंके अपहरणके अवसरपर उनका डींग मारना सुनकर कृपाचार्यसे नहीं रहा गया। वे बोले—

सदैव तव राधेय युद्धे क्रूरतरा मतिः।
नार्थानां प्रकृतिं वेत्सि नानुबन्धमवेक्षसे ॥

(विराट० ४९। १)

'कर्ण! युद्धके विषयमें तुम्हारा विचार सदा ही अति क्रूर होता है। न तो तुम कार्यकी प्रकृतिको समझते हो, न परिणामको देखते हो।' यहाँ कृपाचार्यने कर्णकी प्रकृतिकी यथावत् आलोचना की है; फिर आगे वे कहते हैं कि 'अर्जुनको जीतना आसान नहीं है। उसने अकेले ही उत्तरकुरु देशपर विजय प्राप्त की, अकेले खाण्डववनको दग्ध कर डाला, अकेले ही पाँच वर्षतक तप करते हुए ब्रह्मचर्यका पालन किया, अकेले ही सुभद्राका अपहरण करके स्वयं श्रीकृष्णको द्वन्द्व-युद्धके लिये ललकारा, अकेले ही किरातवेषधारी शङ्करसे युद्ध किया इत्यादि अनेकों वीरतापूर्ण कार्य किये। और कर्ण! तुमने अकेले क्या किया?

अश्वत्थामाने भी कहा—

न च तावज्जिता गावो न च सीमान्तरं गताः।
न हास्तिनपुरं प्राप्तास्त्वं च कर्ण विकत्थसे ॥

(विराट० ५०। १)

'कर्ण! अभी तो हमने न गौओंको जीता, न मत्स्यदेशकी सीमाके बाहर गये और न हस्तिनापुर पहुँचे और तुम व्यर्थ डींग हाँकते हो।' सचमुच वीर पुरुषोंको अपेक्षाकृत अल्पशक्ति रखनेवालोंकी डींग असह्य हो जाती है। इसी कारण भीष्मने उनकी भर्त्सना की थी, और उससे रुष्ट होकर कर्णने प्रण किया था कि 'जबतक भीष्म सेनापति रहेंगे, मैं युद्ध नहीं करूँगा।'

परंतु जब शरशय्यापर भीष्मपितामह लेटे थे, उस समय कर्ण उनके पास गये और गद्गदस्वरसे बोले—'भीष्म! भीष्म! हे महाबाहो, हे महातेजस्विन्! मैं राधापुत्र कर्ण हूँ, जो सदा ही आपकी आँखोंका काँटा बना रहा।' यह सुनकर भीष्मने आँखें खोलीं और कर्णको एक हाथसे पकड़कर छातीसे लगा लिया, बोले—'कर्ण! तू मुझसे स्पर्धा करता रहा है! यदि तू आज मेरे पास नहीं आता तो निश्चय ही तेरा कल्याण नहीं होता। तू राधापुत्र नहीं, कुन्तीपुत्र है, सूर्यसे उत्पन्न हुआ है। और मैं सत्य कहता हूँ, बेटा! मेरे मनमें तेरे प्रति द्वेष नहीं है। तू जो अकारण ही पाण्डवोंकी निन्दा करता था, इसी कारण मैंने तुझको परुष वाक्य कहे थे। मैं जानता हूँ कि राजा दुर्योधनके द्वारा प्रेरित होकर ही तू ऐसा करता था।

'नीच-आश्रय और ईर्ष्याके कारण तेरी गुणवान् पाण्डवोंमें भी द्वेषबुद्धि देखकर मैंने कौरवसभामें तुझे खरी-खोटी सुनायी थी। मैं यह जानता हूँ कि संसारमें युद्धमें प्रकट हुआ तेरा पराक्रम शत्रुओंके लिये असह्य है। तू तेजस्वी है, शूरवीर है और दानियोंमें श्रेष्ठ है।' इस प्रकार कर्णकी प्रशंसा करते हुए भीष्मने कहा कि 'यदि तू मेरा प्रिय कार्य करना चाहता है तो पाण्डवोंसे मिल जा।' भीष्मके ऐसा कहनेपर भी कर्णने वही उत्तर दिया, जो वे वासुदेव श्रीकृष्णको दे चुके थे—

भुक्त्वा दुर्योधनैश्वर्यं न मिथ्याकर्तुमुत्सहे ॥
वसुदेवसुतो यद्वत् पाण्डवाय दृढव्रतः।
वसु चैव शरीरं च पुत्रदारं तथा यशः ॥
सर्वं दुर्योधनस्यार्थे त्यक्तं मे भूरिदक्षिणः।

'पितामह! दुर्योधनके दिये ऐश्वर्यका भोग करके मैं मिथ्या आचरण करनेका साहस नहीं कर सकता। जिस प्रकार पाण्डवोंके लिये वासुदेव दृढव्रती हैं, उसी प्रकार मैंने अपना तन-धन, स्त्री-पुत्र, यश—सब कुछ दुर्योधनके लिये त्याग दिया है।' अन्तमें चलते समय कर्णने क्षमा-प्रार्थना करते हुए भीष्मसे कहा—

दुरुक्तं विपरीतं वा रभसात् चापलात् तथा।
यन्मयेह कृतं किंचित् तन्मे त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥

'मैंने चपलतावश या उतावलीमें जो कुछ दुर्वचन या विपरीत वचन कहा हो, उसे आप क्षमा करेंगे।'

इस प्रकरणमें कर्णके चरित्रका बड़ा सुन्दर चित्रण प्राप्त होता है। वस्तुतः कर्ण स्वयं देवपुत्र होनेके कारण दिव्य गुणोंसे युक्त थे, परंतु कुसङ्गमें रहनेके कारण उसके दोष उनमें आ जाते थे।

पतिभक्ता गान्धारी

संसारकी पतिव्रता देवियोंमें गान्धारीका स्थान बहुत ऊँचा है। ये गन्धारराज सुबलकी पुत्री और शकुनिकी बहिन थीं। इन्होंने कुमारी-अवस्थामें ही भगवान् शङ्करकी बड़ी आराधना की और उनसे सौ पुत्रोंका वरदान प्राप्त किया। जब इन्हें मालूम हुआ कि इनका विवाह नेत्रहीन धृतराष्ट्रसे होनेवाला है, उसी समयसे इन्होंने अपनी दोनों आँखोंपर पट्टी बाँध ली। इन्होंने सोचा कि जब मेरे पति ही नेत्रसुखसे वञ्चित हैं, तब मुझे संसारको देखनेका क्या अधिकार है। उस समयसे जबतक ये जीवित रहीं, अपने उस दृढ़ निश्चयपर अटल रहीं। पतिके लिये इन्द्रियसुखके त्यागका ऐसा अनूठा उदाहरण संसारके इतिहासमें कहीं नहीं मिलता। इनका यह तप और त्याग अनुपम था, संसारके लिये एक अनोखी वस्तु थी।

ये सदा अपने पतिके अनुकूल रहीं। इन्होंने ससुरालमें आते ही अपने चरित्र और सद्गुणोंसे पति एवं उनके सारे परिवारको मुग्ध कर लिया। धन्य पतिप्रेम!

देवी गान्धारी जैसी पतिव्रता थीं, वैसी ही निर्भीक और न्यायप्रिय भी थीं। ये सदा सत्य, नीति और धर्मका ही पक्ष लेती थीं, अन्यायका कभी समर्थन नहीं करती थीं। इनके पुत्रोंने देवी द्रौपदीके साथ भरी सभामें जो अत्याचार किया था, उसका इनके मनमें बड़ा दुःख था। वे इस बातसे अपने पुत्रोंपर प्रसन्न नहीं हुईं। जब इनके पति राजा धृतराष्ट्रने अपने पुत्रकी बातोंमें आकर दुबारा पाण्डवोंको द्यूतके लिये बुला भेजा, उस समय वे बड़ी दुखी हुईं। इन्होंने जुएका विरोध करते हुए अपने पतिदेवसे कहा—'स्वामी! दुर्योधन जन्मते ही गीदड़के समान रोने-चिल्लाने लगा था, इसलिये उसी समय परम ज्ञानी विदुरने कहा था कि इस पुत्रका परित्याग कर दो। मुझे तो वह बात याद करके यही जान पड़ता है कि यह कुरुवंशका नाश करके छोड़ेगा। आर्यपुत्र! आप अपने दोषसे सबको विपत्तिमें न डालिये। इन ढीठ मूर्खोंकी हाँ-में-हाँ न मिलाइये। इस वंशके नाशका कारण मत बनिये। बँधे हुए पुलको मत तोड़िये। बुझी हुई आग फिर धधक उठेगी। पाण्डव शान्त हैं और वैर-विरोधसे विमुख हैं। उनको अब क्रोधित करना ठीक नहीं। यद्यपि यह बात आप जानते हैं, फिर भी मैं आपको याद दिलाती हूँ। दुर्बुद्धि पुरुषके चित्तपर शास्त्रके उपदेशका प्रभाव नहीं पड़ता। परंतु आप वृद्ध होकर बालकोंकी-सी बात करें—यह अनुचित है। इस समय आप अपने पुत्रतुल्य पाण्डवोंको अपनाये रक्खें। कहीं वे दुखी होकर आपसे विलग न हो जायँ। कुलकलङ्क दुर्योधनको त्यागना ही श्रेयस्कर है। मैंने मोहवश उस समय विदुरजीकी बात नहीं मानी, उसीका यह फल है। शान्ति, धर्म और मन्त्रियोंकी सम्मतिसे अपनी विचारशक्तिको सुरक्षित रखिये। प्रमाद मत कीजिये। बिना विचारे काम करना आपके लिये बड़ा दुःखदायी सिद्ध होगा, राजलक्ष्मी क्रूरके हाथमें पड़कर उसीका सत्यानाश कर देती है।' गान्धारीके इन वाक्योंसे धर्म, नीति और निष्पक्षता टपकी पड़ती है। ये दुर्योधनको भी उसकी अनुचित कार्रवाइयोंपर बराबर टोकती रहती थीं, उसकी उद्दण्डताके लिये उसे फटकारती थीं और उसकी अनीतिके भावी दुष्परिणामका भयंकर चित्र उसके सामने खींचा करती थीं। पर दुर्योधनके सिरपर काल नाच रहा था, वह उसे इन सबकी हितभरी बातोंपर ध्यान नहीं देने देता था।

पाण्डवोंकी ओरसे संधिका प्रस्ताव लेकर जब स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हस्तिनापुर गये और वे भी दुर्योधनको समझाकर हार गये, तब धृतराष्ट्रने देवी गान्धारीको बुलाकर उनसे कहा कि 'अब तुम्हीं अपने पुत्रको समझाओ, वह हमलोगोंमेंसे तो किसीकी भी बात नहीं सुनता।' पतिकी यह बात सुनकर गान्धारीने कहा—'राजन्! आप पुत्रके मोहमें फँसे हुए हैं, इसलिये इस विषयमें सबसे अधिक दोषी तो आप ही हैं। आप यह जानकर भी कि दुर्योधन बड़ा पापी है, उसीकी बुद्धिके पीछे चलते रहे हैं। दुर्योधनको तो काम, क्रोध और लोभने अपने चंगुलमें फँसा रक्खा है। अब आप बलात्कारसे भी उसे इस मार्गसे नहीं हटा सकेंगे। आपने इस मूर्ख, दुरात्मा, कुसङ्गी और लोभी पुत्रको बिना कुछ सोचे-समझे राज्यकी बागडोर सौंप दी; उसीका आप यह फल भोग रहे हैं। आप अपने घरमें जो फूट पड़ रही है, उसकी उपेक्षा किये चले जा रहे हैं। ऐसा करके तो आप पाण्डवोंकी दृष्टिमें अपने-आपको हास्यास्पद बना रहे हैं। देखिये, यदि साम या भेदसे ही विपत्ति टाली जा सकती हो तो कोई भी बुद्धिमान् स्वजनोंके प्रति दण्डका प्रयोग क्यों करेगा।' गान्धारीकी यह युक्ति कैसी निर्भीक, निष्पक्ष, हितभरी, नीतिपूर्ण और सच्ची थी!

इसके बाद गान्धारीने अपने पुत्रको भी बुलाकर उसे समझाना शुरू किया। वे बोलीं—'बेटा! मेरी बात सुनो। तुमसे तुम्हारे पिता, भीष्मजी, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और विदुरजीने जो बात कही है, उसे स्वीकार कर लो। यदि तुम पाण्डवोंसे संधि कर लोगे तो सच मानो, इससे पितामह भीष्मजीकी, तुम्हारे पिताजीकी, मेरी ओर द्रोणाचार्य आदि हितैषियोंकी तुम्हारे द्वारा बड़ी सेवा होगी। बेटा! राज्यको पाना, बचाना और भोगना अपने हाथकी बात नहीं है। जो पुरुष जितेन्द्रिय होता है, वही राज्यकी रक्षा कर सकता है। काम और क्रोध तो मनुष्यको अर्थसे च्युत कर देते हैं। इन दोनों शत्रुओंको जीतकर तो राजा सारी पृथ्वीको जीत सकता है। देखो—जिस प्रकार उद्दण्ड घोड़े मार्गमें ही मूर्ख सारथिको मार डालते हैं, उसी प्रकार यदि इन्द्रियोंको काबूमें न रक्खा जाय तो वे मनुष्यका नाश करनेके लिये पर्याप्त हैं। इस प्रकार इन्द्रियाँ जिसके वशमें हैं और जो सब काम सोच-समझकर करता है, उसके पास चिरकालतक लक्ष्मी बनी रहती है। तात! तुम्हारे दादा भीष्मजीने और गुरु द्रोणाचार्यजीने जो बात कही है, वह बिल्कुल ठीक है। वास्तवमें श्रीकृष्ण और अर्जुनको कोई नहीं जीत सकता। इसलिये तुम श्रीकृष्णकी शरण लो। यदि ये प्रसन्न रहेंगे तो दोनों ही पक्षोंका हित होगा। वत्स! युद्ध करनेमें कल्याण नहीं है। उसमें धर्म और अर्थ भी नहीं है तो सुख कहाँसे होगा। यदि तुम अपने मन्त्रियोंके सहित राज्य भोगना चाहते हो तो पाण्डवोंका जो न्यायोचित भाग है, वह उन्हें दे दो। पाण्डवोंको जो तेरह वर्षतक घरसे बाहर रक्खा गया, यह भी बड़ा अपराध हुआ है। अब संधि करके इसका मार्जन कर दो। तात! संसारमें लोभ करनेसे किसीको सम्पत्ति नहीं मिलती।

अतः तुम लोभ छोड़ दो और पाण्डवोंसे संधि कर लो।' कैसा हितपूर्ण और मार्मिक उपदेश था। इससे पता चलता है कि गान्धारी विदुषी थीं तथा वे श्रीकृष्ण और अर्जुनकी महिमा भी जानती थीं।

फिर भी दुष्ट दुर्योधनपर गान्धारीके इस उत्तम उपदेशका कोई असर नहीं हुआ। उसने अपनी जिद नहीं छोड़ी। परिणाम यह हुआ कि दोनों ओरसे युद्धकी तैयारियाँ होने लगीं और अठारह दिनोंतक कुरुक्षेत्रके मैदानमें भीषण मार-काट हुई। युद्धके दिनोंमें दुर्योधन प्रतिदिन इनसे प्रार्थना करता कि 'माँ! मैं शत्रुओंके साथ लोहा लेने जा रहा हूँ; आप मुझे आशीर्वाद दीजिये, जिससे युद्धमें मेरा कल्याण हो।' गान्धारीमें पातिव्रत्यका बड़ा तेज था। वे यदि पुत्रको विजयका आशीर्वाद दे देतीं तो वह अन्यथा न होता। परंतु वे देतीं कैसे? वे जानती थीं कि दुर्योधन अत्याचारी है। अत्याचारीके हाथोंमें कभी राज्यलक्ष्मी टिक नहीं सकती, इसीलिये वे हर बार यही उत्तर देतीं—'बेटा! जहाँ धर्म है, वहीं विजय है। विजय चाहते हो तो धर्मका आश्रय लो, अधर्मका परित्याग करो।' उन्होंने दुर्योधनका कभी पक्ष नहीं लिया। परंतु जब उन्होंने सुना कि मेरे सौ-के-सौ पुत्र मारे गये तो शोकके वेगसे उनका क्रोध उभड़ पड़ा और वे पाण्डवोंको शाप देनेका विचार करने लगीं। भगवान् वेदव्यास तो मनकी बात जान लेते थे। उन्हें जब इस बातका पता लगा तो उन्होंने गान्धारीके पास आकर उन्हें सान्त्वना दी और उनको असत्-सङ्कल्पसे रोका। उस समय पाण्डव भी वहाँ मौजूद थे।

गान्धारीने व्यासजीसे कहा—'भगवन्! पाण्डवोंके प्रति मेरे मनमें द्वेषभाव नहीं है। मैं इनका नाश नहीं चाहती हूँ। पुत्रशोकके कारण बलात् मेरा मन विह्वल हो रहा है। पाण्डवोंकी रक्षा कुन्तीके समान ही मुझे करनी चाहिये। आप जैसे उनकी रक्षा करना चाहते हैं, धृतराष्ट्रके द्वारा भी वे उसी प्रकार रक्षणीय हैं। मैं जानती हूँ कि कुरुवंशका नाश दुर्योधन, शकुनि, कर्ण और दुःशासनके द्वारा हुआ है; युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल-सहदेवका इसमें अपराध नहीं है। युद्धमें लड़ते हुए कौरव-मारे गये, इसमें कोई दुःखकी बात नहीं है; परंतु महात्मा वासुदेवके सामने गदायुद्धमें बुलाकर युद्ध करते हुए नाभिसे नीचे प्रहार करके भीमने जो दुष्कर्म किया, इसे याद करके मेरा क्रोध बढ़ रहा है।'

गान्धारीकी यह बात सुनकर भीमसेन डरते हुए विनयपूर्वक बोले—'माता! भयसे मैंने आत्मरक्षाके लिये जो अधर्म या धर्म किया, उसे आप कृपया क्षमा करें। वह तुम्हारा महाबली पुत्र धर्मसे किसीके द्वारा परास्त नहीं हो सकता था, इसी कारण मैंने वह विषम कृत्य किया। उसने पहले युधिष्ठिरको अधर्मसे ही जीतकर हमको विपत्तिमें डाला था। यह सोचकर ही वह विषम कृत्य मैंने किया। यह वीर्यवान् दुर्योधन अकेला बच गया है, कहीं गदायुद्धमें मुझे मारकर राज्य न ले ले, यह सोचकर ही मैंने वैसा किया। एकवस्त्रा, रजस्वला राजपुत्री पाञ्चालीके साथ उसने जो दुर्व्यवहार किया, वह आपको ज्ञात ही है। उसने जो द्रौपदीके सामने बायीं जङ्घा प्रदर्शित की थी, वह हमारे लिये असह्य था। तुम्हारे पुत्रने उसी समय वध करने योग्य काम किया था, किंतु धर्मराजकी आज्ञा न होनेके कारण वह बच गया था। हे महारानी! आपके पुत्रने ही महान् वैर करके संकट उपस्थित किया था, उसीके कारण हमको वनमें बड़ा कष्ट भोगना पड़ा, इसीलिये मैंने वैसा कर्म किया।'

भीमसेनके इस उत्तरको सुनकर गान्धारीने कहा—'हे वृकोदर! तुम्हारी सारी बातें मैं मानती हूँ, परंतु तुमने जो दुःशासनका रक्तपान किया, वह बड़ा ही निन्दनीय, भयङ्कर और अनार्योंके कर्म-जैसा है। यह क्रूर कर्म जो तुमने किया, वह ठीक नहीं था।' यह सुनकर भीमसेनने कहा—'माता! दूसरेका खून नहीं पीना चाहिये, अपना खून पीनेकी तो बात ही क्या? जैसा अपना खून है, वैसा ही भाईका! माँ! सोच न करो, सूर्यनारायण साक्षी हैं कि खून मेरे ओठोंके भीतर नहीं गया, केवल दोनों हाथ खूनसे लथपथ थे। हे महारानी, द्रौपदीके केश पकड़कर खींचे जाते समय क्रोधवश होकर जो प्रतिज्ञा मैंने की थी, उसे पूरा नहीं करता तो धर्म-च्युत होनेके कारण अनन्तकालतक निन्दाका पात्र बनता। आपने पहले अपने पुत्रोंको नहीं सँभाला, अब मुझ अपकार न करनेवालेपर आप क्यों शङ्का करती हैं?'

गान्धारीने कहा—'तात! मेरे सौ पुत्रोंमें अल्प अपराधी किसी एक पुत्रको भी तुमने नहीं छोड़ा, जो हमारे बुढ़ापेकी लकड़ी बनता।

'यदि तुम धर्मका आचरण करते तो मेरे पुत्रोंका वध करनेपर भी मुझे तुमको देखकर दुःख नहीं होता।'

भीम और गान्धारीके इस वार्तालापसे स्पष्ट हो जाता है कि गान्धारीका हृदय कितना विशाल था, तथा उसमें कितनी धर्मप्रियता थी। परंतु माताका हृदय था, पुत्रोंको कुमार्गी देखकर भी माता पुत्रहीना नहीं रहना चाहती। इसी कारण उसके मनमें बड़ा क्षोभ था। यदि उसका कोई एक भी पुत्र जीता बचा होता तो धर्माचारिणी गान्धारी अपने दुर्योधन आदि कुपुत्रोंके मरनेपर दुखी न होती। अपने सौ पुत्रोंको मारनेवाले भीमसे इस प्रकार नीति और प्रीतियुक्त धर्मकी चर्चा गान्धारी-जैसी सतीके सिवा दूसरी स्त्री नहीं कर सकती।

माता गान्धारीके मनमें क्षोभ देखकर युधिष्ठिर उनके पास गये और अपनेको धिक्कारते हुए ज्यों ही उनके चरणोंपर गिरने लगे कि गान्धारीकी क्रोधभरी दृष्टि पट्टीमेंसे होकर महाराज युधिष्ठिरके नखोंपर पड़ी। इससे उनके सुन्दर लाल-लाल नख उसी समय काले पड़ गये। यह देखकर उनके भाई भी मारे भयके इधर-उधर छिपने लगे। उन्हें इस प्रकार कसमसाते देखकर गान्धारीका क्रोध शान्त हो गया और उन्होंने माताके समान पाण्डवोंको धीरज दिया। उपर्युक्त घटनासे गान्धारीके अनुपम पातिव्रत्य-तेजका पता लगता है। अन्तमें गान्धारीने अपना क्रोध श्रीकृष्णपर निकाला। अथवा यों कहना चाहिये कि अन्तर्यामी श्रीकृष्णने ही उनकी मति पलटकर पाण्डवोंको उनके कोपसे बचा लिया और उनका अभिशाप अपने ऊपर ले लिया। देवी गान्धारीने कुरुक्षेत्रमें जाकर जब वहाँका हृदयविद्रावक दृश्य देखा तो वे अपने शोकको सँभाल न सकीं। वे क्रोधमें भरकर श्रीकृष्णसे बोलीं—'कृष्ण! पाण्डव और कौरव अपनी फूटके कारण ही नष्ट हुए हैं; किंतु तुमने समर्थ होते हुए भी अपने सम्बन्धियोंकी उपेक्षा क्यों कर दी? तुम्हारे पास अनेकों सेवक थे और बड़ी भारी सेना भी थी। तुम दोनोंको दबा सकते थे और अपने वाक्कौशलसे उन्हें समझा भी सकते थे। परंतु तुमने जान-बूझकर कौरवोंके संहारकी उपेक्षा कर दी। इसलिये अब तुम उसका फल भोगो। मैंने पतिकी सेवा करके जो तप संचय किया है, उसीके बलपर मैं तुम्हें शाप देती हूँ कि जिस प्रकार परस्पर युद्ध करते हुए कौरव और पाण्डवोंकी तुमने उपेक्षा कर दी, उसी प्रकार तुम अपने बन्धु-बान्धवोंका भी वध करोगे और स्वयं भी अनाथकी तरह मारे जाओगे। आज जैसे ये भरतवंशकी स्त्रियाँ आर्त्तनाद कर रही हैं, उसी प्रकार तुम्हारे कुटुम्बकी स्त्रियाँ भी अपने बन्धु-बान्धवोंके मारे जानेपर सिर पकड़कर रोयेंगी।'

गान्धारीके ये कठोर वचन सुनकर महामना श्रीकृष्ण मुसकराये और बोले—'मैं तो जानता था कि यह बात इसी तरह होनेवाली है। शाप देकर तुमने होनीको ही बतलाया है। इसमें संदेह नहीं वृष्णिवंशका नाश दैवी कोपसे ही होगा। इसका नाश भी मेरे सिवा और कोई नहीं कर सकता। मनुष्य क्या, देवता या असुर भी इनका संहार नहीं कर सकते। इसलिये ये यदुवंशी आपसके कलहसे ही नष्ट होंगे।'

देवी गान्धारीके सौ पुत्र मारे गये, एक भी उनमेंसे जीता न बचा, इसके शोकसे वह दुखी थी ही; परंतु जब उसने द्रौपदीको पृथ्वीपर शोकसे परिप्लुत होकर रोते देखा तो उसको अपना दुःख भूल गया, वह द्रौपदीको सान्त्वना देने लगी—'हे पुत्रि! इस प्रकार शोकार्त न हो। देखो, मैं भी तुम्हारी ही भाँति दुःखिता हूँ। मैं समझती हूँ कि यह जो जनसंहार हुआ है, दैवकी प्रेरणासे हुआ है। यह अवश्यम्भावी था, विदुरने इसके लिये पहले ही भविष्यद्वाणी की थी। हे कृष्णे! युद्धमें मरनेवालोंके लिये शोक नहीं करना चाहिये; क्योंकि वे स्वर्ग चले गये हैं, इसलिये अशोच्य हैं।

यथैवाहं तथैव त्वं को नावाश्वासयिष्यति।
ममैव ह्यपराधेन कुलमग्र्यं विनाशितम्॥

(स्त्रीपर्व १५। ४४)

'जो मेरी हालत है वही तेरी है। हमको कौन आश्वासन देगा। कृष्णे! मेरे ही अपराधसे इस श्रेष्ठ कुलका विनाश हुआ है।'—यह आश्वासन देवी गान्धारीके हृदयकी विशालताको व्यक्त करता है।

युधिष्ठिरके राज्याभिषेकके बाद देवी गान्धारी कुछ समयतक उन्हींके पास रहकर अन्तमें अपने पतिके साथ वनमें चली गयीं और वहाँ तपस्वियोंका-सा जीवन बिताकर तपस्वियोंकी भाँति ही उन्होंने अपने पतिके साथ दावाग्निसे अपने शरीरको जला डाला और पतिके साथ ही कुबेरके लोकमें चली गयीं। इस प्रकार पतिपरायणा गान्धारीने इस लोकमें पतिकी सेवा करके परलोकमें भी पतिका सान्निध्य एवं सेवा प्राप्त की—जो प्रत्येक पतिव्रताका अभीष्ट लक्ष्य होता है। प्रत्येक पतिव्रता नारीको गान्धारीके चरित्रका मननकर उससे शिक्षा लेनी चाहिये।

माँ कुन्तीदेवी

कुन्तीदेवी एक आदर्श महिला थीं। ये महात्मा पाण्डवोंकी माता एवं भगवान् श्रीकृष्णकी बूआ थीं। ये वसुदेवजीकी सगी बहिन थीं तथा राजा कुन्तिभोजको गोद दी गयी थीं। जन्मसे इन्हें लोग पृथाके नामसे पुकारते थे, परंतु राजा कुन्तिभोजके यहाँ इनका लालन-पालन होनेसे ये कुन्तीके नामसे विख्यात हुईं। ये बालकपनसे ही बड़ी सुशीला, सदाचारिणी, संयमशीला एवं भक्तिमती थीं। राजा कुन्तिभोजके यहाँ एक बार एक बड़े तेजस्वी ब्राह्मण अतिथि-रूपमें आये। इनकी सेवाका कार्य बालिका कुन्तीको सौंपा गया। इसकी ब्राह्मणोंमें बड़ी भक्ति थी और अतिथि-सेवामें बड़ी रुचि थी। राजपुत्री पृथा आलस्य और अभिमानको त्यागकर ब्राह्मणदेवताकी सेवामें तन-मनसे संलग्न हो गयी। उसने शुद्ध मनसे सेवा करके ब्राह्मण देवताको पूर्णतया प्रसन्न कर लिया। ब्राह्मण देवताका व्यवहार बड़ा अटपटा था। कभी वे अनियत समयपर आते, कभी आते ही नहीं और कभी ऐसी चीज खानेको माँगते, जिसका मिलना अत्यन्त कठिन होता। किंतु पृथा उनके सारे काम इस प्रकार कर देती मानो उसने उनके लिये पहलेसे ही तैयारी

कर रक्खी हो। उसके शीलस्वभाव और संयमसे ब्राह्मणको बड़ा संतोष हुआ। कुन्तीकी यह बचपनकी ब्राह्मण-सेवा उसके लिये बड़ी कल्याणप्रद सिद्ध हुई। और इसीसे उनके जीवनमें संयम, सदाचार, त्याग एवं सेवाभावकी नींव पड़ी। आगे जाकर इन गुणोंका उनके अंदर अद्भुत विकास हुआ।

कुन्तीके अंदर निष्काम भावका विकास भी बचपनसे ही हो गया था। इन्हें बड़ी तत्परता एवं लगनके साथ महात्मा ब्राह्मणकी सेवा करते पूरा एक वर्ष हो गया। इनके सेवामन्त्र-का अनुष्ठान पूरा हुआ। इनकी सेवामें ढूँढ़नेपर भी ब्राह्मण-को कोई त्रुटि नहीं दिखायी दी। तब तो वे इनपर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'बेटी! मैं तेरी सेवासे बहुत प्रसन्न हूँ। मुझसे कोई वर माँग ले।' कुन्तीने ब्राह्मणदेवताको बड़ा ही सुन्दर उत्तर दिया। श्रीकृष्णकी बूआ और पाण्डवोंकी भावी माताका वह उत्तर सर्वथा अनुरूप था। कुन्तीने कहा—'भगवन्! आप और पिताजी मुझपर प्रसन्न हैं, मेरे सब कार्य तो इसीसे सफल हो गये। अब मुझे वरोंकी कोई आवश्यकता नहीं है।' एक अल्पवयस्क बालिकाके अंदर विलक्षण सेवाभावके साथ-साथ ऐसी निष्कामताका संयोग मणि-काञ्चन-संयोगके समान था। हमारे देशकी बालिकाओं-को कुन्तीके इस आदर्श निष्काम सेवाभावसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। अतिथि-सेवा हमारे सामाजिक जीवनका प्राण रही है और उसकी शिक्षा भारतवासियोंको बचपनसे ही मिल जाया करती थी। सच्ची एवं सात्त्विक सेवा वही है, जो प्रसन्नतापूर्वक की जाय—जिसमें भार अथवा उकताहट न प्रतीत हो, और जिसके बदलेमें कुछ न चाहा जाय। आजकलकी सेवामें प्रायः इन दोनों बातोंका अभाव देखा जाता है। प्रसन्नतापूर्वक निष्कामभावसे की हुई सेवा कल्याण-का परम साधन बन जाती है। अस्तु,

जब कुन्तीने ब्राह्मणसे कोई वर नहीं माँगा तो उन्होंने उससे देवताओंके आवाहनका मन्त्र ग्रहण करनेके लिये कहा। वे कुछ-न-कुछ कुन्तीको देकर जाना चाहते थे। अबकी बार ब्राह्मणके अपमानके भयसे वह इन्कार न कर सकी। तब उन्होंने उसे अथर्ववेदके शिरोभागमें आये हुए मन्त्रोंका उपदेश दिया और कहा कि 'इन मन्त्रोंके बलसे तू जिस-जिस देवताका आवाहन करेगी, वही तेरे अधीन हो जायगा।' यों कहकर वे ब्राह्मण वहीं अन्तर्धान हो गये। ये ब्राह्मण और कोई नहीं, उग्रतपा महर्षि दुर्वासा थे। इनके दिये हुए मन्त्रोंके प्रभावसे आगे चलकर कुन्तीने धर्म, वायु, इन्द्रका आवाहन करके इनसे क्रमशः युधिष्ठिर, भीम और अर्जुनको पुत्ररूपमें प्राप्त किया। उसकी सपत्नी माद्रीको अश्विनीकुमारसे दो पुत्र प्राप्त हुए—नकुल और सहदेव।

कुन्तीका विवाह महाराज पाण्डुसे हुआ था। महाराज पाण्डु बड़े ही धर्मात्मा थे। इनके द्वारा एक बार भूलसे मृगरूपधारी किन्दम मुनिकी हिंसा हो गयी। इस घटनासे इनके मनमें बड़ी ग्लानि और निर्वेद हुआ और इन्होंने सब कुछ त्यागकर वनमें रहनेका निश्चय कर लिया। देवी कुन्ती बड़ी पतिभक्ता थीं। ये भी अपने पतिके साथ इन्द्रियोंको वशमें करके तथा कामजन्य सुखको तिलाञ्जलि देकर वनमें रहनेके लिये तैयार हो गयीं। तबसे इन्होंने जीवनपर्यन्त नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन किया और संयमपूर्वक रहीं। पतिका स्वर्गवास होनेपर इन्होंने अपने बच्चोंकी रक्षाका भार अपनी छोटी सौत माद्रीको सौंपकर अपने पतिका अनुगमन करनेका विचार किया। परंतु माद्रीने इसका विरोध किया। उसने कहा—'बहिन! मैं अभी युवती हूँ, अतः मैं ही पतिदेवका अनुगमन करूँगी। तुम मेरे बच्चोंकी सँभाल रखना।' कुन्तीने माद्रीकी बात मान ली और अन्ततक उसके पुत्रोंको अपने पुत्रोंसे बढ़कर समझा। सपत्नी एवं उसके पुत्रोंके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये, इसकी शिक्षा भी हमारी माता-बहिनोंको कुन्तीके जीवनसे लेनी चाहिये। पतिके जीवनकालमें इन्होंने माद्रीके साथ छोटी बहिनका-सा बर्ताव किया और उसके सती होनेके बाद उसके पुत्रोंके प्रति वही भाव रक्खा जो एक साध्वी स्त्रीको रखना चाहिये। सहदेवके प्रति तो उनकी विशेष ममता थी और वह भी इन्हें बहुत अधिक प्यार करता था।

पतिकी मृत्युके बादसे कुन्तीदेवीका जीवन बराबर कष्टमें बीता। परंतु ये बड़ी ही विचारशीला एवं धैर्यवती थीं। अतः इन्होंने कष्टोंकी कुछ भी परवा नहीं की और अन्ततक धर्मपर आरूढ़ रहीं। दुर्योधनके अत्याचारोंको भी ये चुपचाप सहती रहीं। इनका स्वभाव बड़ा ही कोमल और दयालु था। इन्हें अपने कष्टोंकी कोई परवा नहीं थी, परंतु ये दूसरोंका कष्ट नहीं देख सकती थीं। लाक्षाभवनसे निकलकर जब ये अपने पुत्रोंके साथ एकचक्रा नगरीमें रहने लगी थीं, उन दिनों वहाँकी प्रजापर एक बड़ा भारी संकट था। उस नगरीके पास ही एक बकासुर नामका राक्षस रहता था। उस राक्षसके लिये नगर-वासियोंको प्रतिदिन एक गाड़ी अन्न तथा दो भैंसे पहुँचाने पड़ते थे। जो मनुष्य इन्हें लेकर जाता, उसे भी वह राक्षस खा जाता। वहाँके निवासियोंको बारी-बारीसे यह काम करना पड़ता था। पाण्डवलोग जिस ब्राह्मणके घरमें भिक्षुकोंके रूपमें रहते थे, एक दिन उसके घरसे राक्षसके लिये आदमी भेजने-की बारी आयी। ब्राह्मण-परिवारमें कुहराम मच गया। कुन्तीको जब इस बातका पता लगा तो उनका हृदय दयासे भर आया। उन्होंने सोचा—'हमलोगोंके रहते ब्राह्मण-परिवारको कष्ट भोगना पड़े, यह हमारे लिये बड़ी लज्जाकी बात होगी। फिर हमारे तो ये आश्रयदाता हैं, इनका प्रत्युपकार हमें किसी-न-किसी रूपमें करना ही चाहिये। अवसर आनेपर

उपकारीका प्रत्युपकार न करना धर्मसे च्युत होना है । जब इनके घरमें हमलोग रह रहे हैं तो इनका दुःख बँटाना हमारा कर्तव्य हो जाता है ।' यों विचारकर कुन्ती ब्राह्मणके घर गयीं । उन्होंने देखा कि ब्राह्मण अपनी पत्नी और पुत्रके साथ बैठे हैं । वे अपनी स्त्रीसे कह रहे हैं, 'तुम कुलीन, शीलवती और बच्चोंकी माँ हो । मैं राक्षससे अपने जीवनकी रक्षाके लिये तुम्हें उसके पास नहीं भेज सकता ।' पतिकी बात सुनकर ब्राह्मणीने कहा—'नहीं, मैं स्वयं उसके पास जाऊँगी । पत्नी-के लिये सबसे बढ़कर सनातन कर्तव्य यही है कि वह अपने प्राणोंको निछावर करके पतिकी भलाई करे । स्त्रियोंके लिये यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि वे अपने पतिसे पहले ही परलोकवासिनी हो जायँ । यह भी सम्भव है कि स्त्रीको अवध्य समझकर वह राक्षस मुझे न मारे । पुरुषका वध निर्विवाद है और स्त्रीका संदेहग्रस्त, इसलिये मुझे ही उसके पास भेजिये ।' माँ-बापकी दुःखभरी बात सुनकर कन्या बोली—'आप क्यों रो रहे हैं ? देखिये, धर्मके अनुसार आप दोनों मुझे एक-न-एक दिन छोड़ देंगे । इसलिये आज ही मुझे छोड़कर अपनी रक्षा क्यों नहीं कर लेते ? लोग संतान इसीलिये चाहते हैं कि वह हमें दुःखसे बचावे ।' यह सुनकर माँ-बाप दोनों रोने लगे; कन्या भी रोये बिना न रह सकी । सबको रोते देखकर नन्हा-सा ब्राह्मण-बालक कहने लगा—'पिताजी ! माताजी ! बहिन ! मत रोओ ।' फिर उसने एक तिनका उठाकर हँसते हुए कहा—'मैं इसीसे राक्षसको मार डालूँगा ।' तब सब लोग हँस पड़े । कुन्ती यह सब देख-सुन रही थीं । वे आगे बढ़कर उनसे बोलीं—'महाराज ! आपके तो एक पुत्र और एक ही कन्या है । मेरे आपकी दयासे पाँच पुत्र हैं । राक्षसको भोजन पहुँचानेके लिये मैं उनमेंसे किसीको भेज दूँगी, आप घबरायें नहीं ।' ब्राह्मणदेवताने कुन्तीदेवीके इस प्रस्तावको सुनते ही अस्वीकार कर दिया । उन्होंने कहा—'देवि ! आपका इस प्रकार कहना आपके अनुरूप ही है; परंतु मैं तो अपने लिये अपने अतिथिकी हत्या नहीं करा सकता ।' कुन्तीने उन्हें बतलाया कि 'मैं अपने जिस पुत्रको राक्षसके पास भेजूँगी, वह बड़ा बलवान्, मन्त्रसिद्ध और तेजस्वी है; उसका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता ।' इसपर ब्राह्मण राजी हो गये । तब कुन्तीने भीमसेनको उस कामके लिये राक्षसके पास भेज दिया । भला, दूसरोंकी प्राणरक्षाके लिये इस प्रकार अपने हृदयके टुकड़ेको जान-बूझकर कोई माता बलिदान कर सकती है ? कहना न होगा कि कुन्तीके इस आदर्श त्यागके प्रभावसे संसारपर बहुत ही अच्छा असर पड़ा । अतएव सभीको इससे शिक्षा लेनी चाहिये ।

कुन्तीदेवीका सत्यप्रेम भी आदर्श था । ये विनोदमें भी कभी झूठ नहीं बोलती थीं । भूलसे भी इनके मुँहसे जो बात निकल जाती थी, उसका ये जी-जानसे पालन करती थीं । इस प्रकारकी सत्यनिष्ठा इतिहासके पन्ने उलटनेपर भी दूसरी जगह प्रायः नहीं देखनेमें आती । अर्जुन और भीम स्वयंवरमें द्रौपदीको जीतकर जब माताके पास लाये और कहा कि 'माता ! आज हम यह भिक्षा लाये हैं' इन्होंने उन्हें बिना देखे ही कह दिया—'बेटा ! पाँचों भाई मिलकर इसका उपयोग करो ।' जब इन्हें मालूम हुआ कि ये एक कन्या लाये हैं, तब तो ये बड़े असमंजसमें पड़ गयीं । इन्होंने सोचा—'यदि मैं अपनी बात वापस लेती हूँ तो असत्यका दोष लगता है; और यदि अपने पुत्रोंको उसीके अनुसार चलनेके लिये कहती हूँ तो सनातन मर्यादाका लोप होता है ।' पाँच भाइयोंका एक स्त्रीसे विवाह हो—यह पहले कभी नहीं देखा-सुना गया था । ऐसी स्थितिमें कुन्तीदेवी कुछ भी निश्चय न कर सकीं, वे किंकर्तव्यविमूढ हो गयीं । अन्तमें उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिरकी सम्मति पूछी और उन्होंने भी इन्हें सत्यपर कायम रहनेकी ही सलाह दी । पीछे राजा द्रुपदकी ओरसे आपत्ति होनेपर वेदव्यासजीने द्रौपदीके पूर्वजन्मोंकी कथा कहते हुए उन्हें समझाया कि शङ्करजीके वरदानसे ये पाँचों ही द्रुपदकुमारीका पाणिग्रहण करेंगे । इस प्रकार पाँचोंके साथ द्रुपदकुमारी विधिपूर्वक ब्याह दी गयीं । कुन्तीदेवीकी सत्यनिष्ठाकी विजय हुई । उनके मुखसे हठात् ऐसी ही बात निकली, जो होनेवाली थी । सत्यका दृढ़तापूर्वक आश्रय लेनेपर ऐसा होना किसीके लिये भी असम्भव नहीं है । अस्तु,

कुन्तीदेवीका जीवन शुरूसे अन्ततक बड़ा ही त्यागपूर्ण, तपस्यामय और अनासक्त था । पाण्डवोंके वनवास एवं अज्ञातवासके समय ये उनसे अलग हस्तिनापुरमें ही रहीं और वहींसे इन्होंने अपने पुत्रोंके लिये अपने भतीजे भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा क्षत्रियधर्मपर डटे रहनेका संदेश भेजा । इन्होंने विदुला और संजयका दृष्टान्त देकर बड़े ही मार्मिक शब्दोंमें उन्हें कहला भेजा—'पुत्रो ! जिस कार्यके लिये क्षत्राणी पुत्र उत्पन्न करती है, उस कार्यके करनेका समय आ गया है । * इस समय तुमलोग मेरे दूधको न लजाना ।' महाभारत-युद्धके समय भी ये वहीं रहीं और युद्ध-समाप्तिके बाद जब धर्मराज युधिष्ठिर सम्राट्के पदपर अभिषिक्त हुए और इन्हें राजमाता बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, उस समय इन्होंने पुत्रवियोगसे दुखी अपने जेठ-जेठानीकी सेवाका भार अपने ऊपर ले लिया और द्वेष एवं अभिमानरहित होकर उनकी सेवामें अपना समय बिताने लगीं । यहाँतक कि जब ये दोनों युधिष्ठिरसे अनुमति लेकर वन जाने लगे, उस समय ये चुपचाप उनके सङ्ग हो लीं और युधिष्ठिर

* एतद्धनञ्जयो वाच्यो नित्योद्युक्तो वृकोदरः ॥
यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः ।
(महा० उद्योग० १३६ । ९-१०)

आदिके समझानेपर भी अपने दृढ़ निश्चयसे विचलित नहीं हुईं। जीवनभर दुःख और क्लेश भोगनेके बाद जब सुखके दिन आये, उस समय भी सांसारिक सुख-भोगको ठुकराकर स्वेच्छासे त्याग, तपस्या एवं सेवामय जीवन स्वीकार करना कुन्तीदेवी-जैसी पवित्र आत्माका ही काम था। जिन जेठ-जेठानीसे उन्हें तथा उनके पुत्रों एवं पुत्रवधुओंको कष्ट, अपमान एवं अत्याचारके अतिरिक्त कुछ नहीं मिला, उन जेठ-जेठानीके लिये इतना त्याग संसारमें कहाँ देखनेको मिलता है। हमारी माताओं एवं बहिनोंको कुन्तीदेवीके इस अनुपम त्यागसे शिक्षा लेनी चाहिये।

कुन्तीदेवीको वन जाते समय भीमसेनने समझाया कि 'माता! यदि तुम्हें अन्तमें यही करना था तो फिर नाहक हमलोगोंके द्वारा इतना नर-संहार क्यों करवाया? हमारे वनवासी पिताकी मृत्युके बाद हमें वनसे नगरमें क्यों लायीं?' उस समय कुन्तीदेवीने उन्हें जो उत्तर दिया, वह हृदयमें अङ्कित करने योग्य है। वे बोलीं—'बेटा! तुमलोग कायर बनकर हाथ-पर-हाथ रखकर न बैठे रहो, क्षत्रियोचित पुरुषार्थको त्यागकर अपमानपूर्ण जीवन न व्यतीत करो, शक्ति रहते अपने न्यायोचित अधिकारसे सदाके लिये हाथ न धो बैठो—इसीलिये मैंने तुमलोगोंको युद्धके लिये उकसाया था, अपने सुखकी इच्छासे ऐसा नहीं किया था। मुझे राज्य-सुख भोगनेकी इच्छा नहीं है। मैं तो अब तपके द्वारा पतिलोकमें जाना चाहती हूँ। इसलिये अपने वनवासी जेठ-जेठानीकी सेवामें रहकर मैं अपना शेष जीवन तपमें ही बिताऊँगी। तुमलोग सुखपूर्वक घर लौट जाओ और धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते हुए अपने परिजनोंको सुख दो।' इस प्रकार अपने पुत्रोंको समझा-बुझाकर कुन्तीदेवी अपने जेठ-जेठानीके साथ वनमें चली गयीं और अन्तसमय-तक उनकी सेवामें रहकर उन्हींके साथ दावाग्निमें जलकर योगियोंकी भाँति शरीर छोड़ दिया। कुन्तीदेवी-जैसी आदर्श महिलाएँ संसारके इतिहासमें बहुत कम मिलेंगी।

देवी द्रौपदी

देवी द्रौपदी पञ्चालनरेश राजा द्रुपदकी अयोनिजा पुत्री थीं। इनकी उत्पत्ति यज्ञवेदीसे हुई थी। इनका रूप-लावण्य अनुपम था। इनके-जैसी सुन्दरी उस समय पृथ्वी-भरमें कोई नहीं थी। इनके शरीरसे तुरंतके खिले कमलकी-सी गन्ध निकलकर एक कोसतक फैल जाती थी। इनके जन्मके समय आकाशवाणीने कहा था—'देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये क्षत्रियोंके संहारके उद्देश्यसे इस रमणीरत्नका जन्म हुआ है। इसके कारण कौरवोंको बड़ा भय होगा।' कृष्णवर्णा होनेके कारण लोग इन्हें कृष्णा कहते थे। पूर्वजन्ममें दिये हुए भगवान् शङ्करके वरदानसे इन्हें इस जन्ममें पाँच पति प्राप्त हुए। अकेले अर्जुनके द्वारा स्वयंवरमें जीती जानेपर भी माता कुन्तीकी आज्ञासे इन्हें पाँचों भाइयोंने ब्याहा था।

द्रौपदी आदर्श पत्नी थीं। राजसूय यज्ञसे लौटनेपर दुर्योधनने धृतराष्ट्रसे कहा था—'राजन्! उस यज्ञमें द्रौपदी पहले स्वयं भोजन न करके इस बातकी देख-भाल करती थी कि कुबड़ों और बौनोंतक सब लोगोंमें कौन खा चुका और किसको भोजन नहीं मिला।' आर्यगृहिणीका यही आदर्श है। आज भी धर्मभीरु कुलाङ्गनाएँ सबको खिलाकर अन्तमें भोजन करती हैं।

द्रौपदी उच्च कोटिकी पतिव्रता एवं भगवद्भक्ता थीं। ये इनकी भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें अविचल प्रीति थी। ये उन्हें अपना रक्षक, हितू एवं परम आत्मीय तो मानती ही थीं, उनकी सर्वव्यापकता एवं सर्वशक्तिमत्तामें भी इनका पूर्ण विश्वास था। जब कौरवोंकी सभामें दुष्ट दुःशासनने इन्हें नंगी करना चाहा और सभासदोंमेंसे किसीकी हिम्मत न हुई कि इस अमानुषी अत्याचारको रोके, उस समय अपनी लाज बचानेका कोई दूसरा उपाय न देख इन्होंने अत्यन्त आतुर होकर भगवान् श्रीकृष्णको पुकारा—

> गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय ॥
> कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव।
> हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्त्तिनाशन ॥
> कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन।
> कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन ॥
> प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम्।
>
> (महा० सभा० ६८। ४१—४४)

'हे गोविन्द! हे द्वारकावासी! हे गोपीजन-प्रिय श्रीकृष्ण! हे केशव! क्या तुम नहीं जानते कि मैं कौरवोंके द्वारा अपमानित हो रही हूँ। हे नाथ! हे रमापति! हे व्रजेश! हे संकटोंका नाश करनेवाले जनार्दन! मुझ कौरव-रूपी समुद्रमें डूबती हुई अबलाका उद्धार करो। हे महायोगी हे विश्वात्मा! हे विश्वभावन श्रीकृष्ण! हे श्रीकृष्ण! कौरवोंके बीच विपन्नावस्थाको प्राप्त मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये।'

सच्चे हृदयकी करुण पुकार भगवान् बहुत जल्दी सुनते हैं। श्रीकृष्ण उस समय द्वारकामें थे। वहाँसे वे तुरंत दौड़े आये और धर्मरूपसे द्रौपदीके वस्त्रोंमें छिपकर उनकी लाज बचायी। भगवान्‌की कृपासे द्रौपदीकी साड़ी अनन्तगुना बढ़ गयी। दुःशासन उसे जितना ही खींचता था, उतना ही वह बढ़ती जाती थी। देखते-देखते वहाँ वस्त्रका ढेर लग गया। महाबली दुःशासनकी प्रचण्ड भुजाएँ थक गयीं

परंतु साड़ीका छोर हाथ नहीं आया। उपस्थित सारे समाजने भगवद्भक्ति एवं पातिव्रत्यका अद्भुत चमत्कार देखा। अन्तमें दुःशासन हारकर लज्जित हो बैठ गया। भक्तवत्सल प्रभुने अपने भक्तकी लाज रख ली। धन्य भक्तवत्सलता!

एक दिनकी बात है—जब पाण्डवलोग द्रौपदीके साथ काम्यक वनमें रह रहे थे, दुर्योधनके भेजे हुए महर्षि दुर्वासा अपने दस हजार शिष्योंको साथ लेकर पाण्डवोंके पास आये। दुर्योधनने जान-बूझकर उन्हें ऐसे समयमें भेजा जब कि सब लोग भोजन करके विश्राम कर रहे थे। महाराज युधिष्ठिरने अतिथिसेवाके उद्देश्यसे ही भगवान् सूर्यदेवसे एक ऐसा चमत्कारी बर्तन प्राप्त किया था, जिसमें पकाया हुआ थोड़ा-सा भी भोजन अक्षय हो जाता था। लेकिन उसमें शर्त यही थी कि जबतक द्रौपदी भोजन नहीं कर चुकती थीं, तभीतक उस बर्तनमें यह करामात रहती थी। युधिष्ठिरने महर्षिको शिष्यमण्डलीके सहित भोजनके लिये आमन्त्रित किया और दुर्वासाजी स्नानादि नित्यकर्मसे निवृत्त होनेके लिये सबके साथ गङ्गातटपर चले गये।

दुर्वासाजीके साथ दस हजार शिष्योंका एक पूरा-का-पूरा विश्वविद्यालय-सा चला करता था। धर्मराजने उन सबको भोजनका निमन्त्रण तो दे दिया और ऋषिने उसे स्वीकार भी कर लिया; परंतु किसीने भी इसका विचार नहीं किया कि द्रौपदी भोजन कर चुकी हैं, इसलिये सूर्यके दिये हुए बर्तनसे तो उन लोगोंके भोजनकी व्यवस्था हो नहीं सकती थी। द्रौपदी बड़ी चिन्तामें पड़ गयीं। उन्होंने सोचा—'ऋषि यदि बिना भोजन किये वापस लौट जाते हैं तो वे बिना शाप दिये नहीं रहेंगे।' उनका क्रोधी स्वभाव जगद्विख्यात था। द्रौपदीको और कोई उपाय नहीं सूझा। तब उन्होंने मन-ही-मन भक्त-भय-भञ्जन भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण किया और इस आपत्तिसे उबारनेकी उनसे इस प्रकार प्रार्थना की—

कृष्ण कृष्ण महाबाहो देवकीनन्दनाव्यय ॥
वासुदेव जगन्नाथ प्रणतार्त्तिविनाशन।
विश्वात्मन् विश्वजनक विश्वहर्तः प्रभोऽव्यय ॥
प्रपन्नपाल गोपाल प्रजापाल परात्पर।
आकूतीनां च चित्तीनां प्रवर्तक नतास्मि ते ॥
वरेण्य वरदानन्त अगतीनां गतिर्भव।
पुराणपुरुष प्राणमनोवृत्त्याद्यगोचर ॥
सर्वाध्यक्ष पराध्यक्ष त्वामहं शरणं गता।
पाहि मां कृपया देव शरणागतवत्सल ॥
नीलोत्पलदलश्याम पद्मगर्भारुणेक्षण।
पीताम्बरपरीधान लसत्कौस्तुभभूषण ॥
त्वमादिरन्तो भूतानां त्वमेव च परायणम्।
परात्परतरं ज्योतिर्विश्वात्मा सर्वतोमुखः ॥
त्वामेवाहुः परं बीजं निधानं सर्वसम्पदाम्।
त्वया नाथेन देवेश सर्वापद्भ्यो भयं न हि ॥
दुःशासनादहं पूर्वं सभायां मोचिता यथा।
तथैव सङ्कटादस्मान्मामुद्धर्तुमिहार्हसि ॥

(महा० वन० २६३। ८-१६)

'हे कृष्ण! हे महाबाहु श्रीकृष्ण! हे देवकीनन्दन! हे अविनाशी वासुदेव! हे प्रणत जनके दुःख दूर करनेवाले जगदीश्वर! हे विश्वात्मन्, विश्वके पिता, विश्वका संहार करनेवाले, शरणागत-रक्षक गोपाल! हे प्रभो! तुम अव्यय हो, प्रजापालक हो, परात्पर हो, तुम मन और बुद्धिके प्रेरक हो। हे परमात्मन्! तुझको मेरा प्रणाम! सबके वरण करने योग्य हे वरदाता! हे अनन्त! जिसकी कोई गति नहीं है उसकी गति (सहायक) बनो। हे पुराणपुरुष! हे प्राण, मन, बुद्धि आदिके अगोचर! सबके स्वामी, परम प्रभु! हम तुम्हारी शरणमें हैं। हे शरणागतवत्सल! हे देव! कृपया मुझे बचाओ। हे नीलकमलदलके समान श्यामवदन! कमल पुष्पके गर्भके समान अरुणनयन! हे पीताम्बरधारी! हे श्रीकृष्ण! तुम्हारे वक्षःस्थलपर कौस्तुभ सुशोभित है। तुम्हीं भूतोंके आदि और अन्त हो, तुम्हीं सबके परम आश्रय हो। तुम परात्पर हो, ज्योतिर्मय विश्वात्मा हो, सब ओर मुँहवाले परमेश्वर हो। ज्ञानीलोग तुमको ही इस जगत्का परम बीज तथा सम्पूर्ण सम्पदाओंकी निधि बतलाते हैं। हे देवेश! यदि तुम मेरे रक्षक हो तो मुझे समस्त आपदाओंसे भी भय नहीं है। जैसे तुमने पहले कौरवसभामें दुःशासनसे मेरी रक्षा की थी, उसी प्रकार तुम्हीं इस संकटमें मेरा उद्धार कर सकते हो।'

श्रीकृष्ण तो घट-घटकी जाननेवाले हैं। वे तुरंत वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखकर द्रौपदीके शरीरमें मानो प्राण आ गये, डूबते हुएको मानो सहारा मिल गया। द्रौपदीने संक्षेपमें उन्हें सारी बात सुना दी। श्रीकृष्णने अधीरता प्रदर्शित करते हुए कहा—'और सब बात पीछे होगी, पहले मुझे जल्दी कुछ खानेको दो। मुझे बड़ी भूख लगी है। तुम जानती नहीं हो मैं कितनी दूरसे हारा-थका आया हूँ।' द्रौपदी लाजके मारे गड़-सी गयीं। उन्होंने रुकते-रुकते कहा—'प्रभो! मैं अभी-अभी खाकर उठी हूँ। अब तो उस बटलोईमें कुछ भी नहीं बचा है।' श्रीकृष्णने कहा—'जरा अपनी बटलोई मुझे दिखाओ तो सही।' कृष्णा बटलोई ले आयीं। श्रीकृष्णने उसे हाथमें लेकर देखा तो उसके गलेमें उन्हें एक सागका पत्ता चिपका हुआ मिला। उन्होंने उसीको मुँहमें डालकर कहा—'इस सागके पत्तेसे सम्पूर्ण जगत्के आत्मा यज्ञभोक्ता परमेश्वर तृप्त हो जायँ।' इसके बाद उन्होंने सहदेवसे कहा—'भैया! अब तुम मुनीश्वरोंको भोजनके लिये बुला लाओ।' सहदेवने गङ्गातटपर

जाकर देखा तो वहाँ उन्हें कोई नहीं मिला। बात यह हुई कि जिस समय श्रीकृष्णने सागका पत्ता मुँहमें डालकर वह संकल्प, पढ़ा उस समय मुनीश्वरलोग जलमें खड़े होकर अघमर्षण कर रहे थे। उन्हें अकस्मात् ऐसा अनुभव होने लगा मानो उनका पेट गलेतक अन्नसे भर गया हो। वे सब एक दूसरेके मुँहकी ओर ताकने लगे और कहने लगे कि 'अब हमलोग वहाँ जाकर क्या खायेंगे ?' दुर्वासाने चुपचाप भाग जाना ही श्रेयस्कर समझा; क्योंकि वे यह जानते थे कि पाण्डव भगवद्भक्त हैं और अम्बरीषके यहाँ उनपर जो कुछ बीती थी, उसके बादसे उन्हें भगवद्भक्तोंसे बड़ा डर लगने लगा था। बस, सब लोग वहाँसे चुपचाप भाग निकले। सहदेवको वहाँ रहनेवाले तपस्वियोंसे उन सबके भाग जानेका समाचार मिला और उन्होंने लौटकर सारी बात धर्मराजसे कह दी। इस प्रकार द्रौपदीकी श्रीकृष्ण-भक्तिसे पाण्डवोंकी एक भारी बला टल गयी। श्रीकृष्णने आकर उन्हें दुर्वासाके कोपसे बचा लिया और इस प्रकार अपनी शरणागतवत्सलताका परिचय दिया।

× × ×

एक बार वनमें भगवान् श्रीकृष्ण देवी सत्यभामाके साथ पाण्डवोंसे मिलने आये। उस समय बातों-ही-बातोंमें सत्यभामाजीने द्रौपदीसे पूछा—'बहिन ! मैं तुमसे एक बात पूछती हूँ। मैं देखती हूँ कि तुम्हारे शूरवीर और बलवान् पति सदा तुम्हारे अधीन रहते हैं; इसका क्या कारण है ? तुम कोई जंतर-मंतर या औषध जानती हो ? अथवा तुमने जप, तप, व्रत, होम या विद्यासे उन्हें वशमें कर रक्खा है ? मुझे भी कोई ऐसा उपाय बताओ, जिससे भगवान् श्यामसुन्दर मेरे वशमें हो जायँ।' देवी द्रौपदीने कहा—'बहिन ! आप श्यामसुन्दरकी पटरानी एवं प्रियतमा होकर कैसी बात करती हैं। सती-साध्वी स्त्रियाँ जंतर-मंतर आदिसे उतनी ही दूर रहती हैं, जितनी साँप-बिच्छूसे। क्या पतिको जंतर-मंतर आदिसे वशमें किया जा सकता है ? भोली-भाली अथवा दुराचारिणी स्त्रियाँ ही पतिको वशमें करनेके लिये इस प्रकारके प्रयोग किया करती हैं। ऐसा करके वे अपना तथा अपने पतिका अहित ही करती हैं। ऐसी स्त्रियोंसे सदा दूर रहना चाहिये।'

इसके बाद उन्होंने बतलाया कि अपने पतियोंको प्रसन्न रखनेके लिये वे किस प्रकारका आचरण करती थीं। उन्होंने कहा—''बहिन ! मैं अहङ्कार और काम-क्रोधका परित्याग करके बड़ी सावधानीसे सब पाण्डवोंकी और उनकी स्त्रियोंकी सेवा करती हूँ। मैं ईर्ष्यासे दूर रहती हूँ और मनको काबूमें रखकर केवल सेवाकी इच्छासे ही अपने पतियोंका मन रखती हूँ। मैं कटुभाषणसे दूर रहती हूँ, असभ्यतासे खड़ी नहीं होती, खोटी बातोंपर दृष्टि नहीं डालती, बुरी जगहपर नहीं बैठती, दूषित आचरणके पास भी नहीं फटकती तथा पतियोंके अभिप्रायपूर्ण संकेतका अनुसरण करती हूँ। देवता, मनुष्य, गन्धर्व, युवा, धनी अथवा रूपवान्—कैसा ही पुरुष क्यों न हो, मेरा मन पाण्डवोंके सिवा और कहीं नहीं जाता। अपने पतियोंके भोजन किये बिना मैं भोजन नहीं करती, स्नान किये बिना स्नान नहीं करती और बैठे बिना स्वयं नहीं बैठती। जब-जब मेरे पति घर आते हैं, तब-तब मैं खड़ी होकर उन्हें आसन और जल देती हूँ। मैं घरके बर्तनोंको माँज-धोकर साफ रखती हूँ, मधुर रसोई तैयार करती हूँ, समयपर भोजन कराती हूँ, सदा सजग रहती हूँ, घरमें अनाजकी रक्षा करती हूँ और घरको झाड़-बुहारकर साफ रखती हूँ। मैं बातचीतमें किसीका तिरस्कार नहीं करती, कुलटा स्त्रियोंके पास नहीं जाती और सदा ही पतियोंके अनुकूल रहकर आलस्यसे दूर रहती हूँ। मैं दरवाजेपर बार-बार जाकर खड़ी नहीं होती तथा खुली अथवा कूड़ा-करकट डालनेकी जगहपर भी अधिक नहीं ठहरती, किंतु सदा ही सत्यभाषण और पतिसेवामें तत्पर रहती हूँ। पतिदेवके बिना अकेली रहना मुझे बिल्कुल पसंद नहीं है। जब किसी कौटुम्बिक कार्यसे पतिदेव बाहर चले जाते हैं तो मैं पुष्प और चन्दनादिको छोड़कर नियम और व्रतोंका पालन करते हुए समय बिताती हूँ। मेरे पति जिस चीजको नहीं खाते, नहीं पीते अथवा सेवन नहीं करते, मैं भी उससे दूर रहती हूँ। स्त्रियोंके लिये शास्त्रने जो-जो बातें बतायी हैं, उन सबका मैं पालन करती हूँ। शरीरको यथाप्राप्त वस्त्रालङ्कारोंसे सुसज्जित रखती हूँ तथा सर्वदा सावधान रहकर पतिदेवका प्रिय करनेमें तत्पर रहती हूँ।

''सासजीने मुझे कुटुम्बसम्बन्धी जो-जो धर्म बताये हैं, उन सबका मैं पालन करती हूँ। भिक्षा देना, पूजन, श्राद्ध, त्यौहारोंपर पकवान बनाना, माननीयोंका आदर करना तथा और भी मेरे लिये जो-जो धर्म विहित हैं, उन सभीका मैं सावधानीसे रात-दिन आचरण करती हूँ, मैं विनय और नियमोंको सर्वदा सब प्रकार अपनाये रहती हूँ। मेरे विचारसे तो स्त्रियोंका सनातनधर्म पतिके अधीन रहना ही है, वही उनका इष्टदेव है। मैं अपने पतियोंसे बढ़कर कभी नहीं रहती, उनसे अच्छा भोजन नहीं करती, उनसे बढ़िया वस्त्राभूषण नहीं पहनती और न कभी सासजीसे वाद-विवाद करती हूँ, तथा सदा ही संयमका पालन करती हूँ। मैं सदा अपने पतियोंसे पहले उठती हूँ तथा बड़े-बूढ़ोंकी सेवामें लगी रहती हूँ। अपनी सासकी मैं भोजन, वस्त्र और जल आदिसे सदा ही सेवा करती रहती हूँ। वस्त्र, आभूषण और भोजनादिमें मैं कभी उनकी अपेक्षा अपने लिये कोई विशेषता नहीं रखती। पहले महाराज युधिष्ठिरके दस हजार दासियाँ थीं। मुझे उनके नाम, रूप, वस्त्र आदि सबका पता रहता था और इस

बातका भी ध्यान रहता था कि किसने क्या काम कर लिया है और क्या नहीं। जिस समय इन्द्रप्रस्थमें रहकर महाराज युधिष्ठिर पृथ्वी-पालन करते थे, उस समय उनके साथ एक लाख घोड़े और उतने ही हाथी चलते थे। उनकी गणना और प्रबन्ध मैं ही करती थी और मैं ही उनकी आवश्यकताएँ सुनती थी। अन्तःपुरके ग्वालों और गड़रियोंसे लेकर सभी सेवकोंके काम-काजकी देख-रेख भी मैं ही किया करती थी।

''महाराजकी जो कुछ आय, व्यय और बचत होती थी, उस सबका विवरण मैं अकेली ही रखती थी। पाण्डवलोग कुटुम्बका सारा भार मेरे ऊपर छोड़कर पूजा-पाठमें लगे रहते थे और आये-गयोंका स्वागत-सत्कार करते थे; और मैं सब प्रकारका सुख छोड़कर उसकी सँभाल करती थी। मेरे पतियोंका जो अटूट खजाना था, उसका पता भी मुझ एकको ही था। मैं भूख-प्यासको सहकर रात-दिन पाण्डवोंकी सेवामें लगी रहती। उस समय रात और दिन मेरे लिये समान हो गये थे। मैं सदा ही सबसे पहले उठती और सबसे पीछे सोती थी। सत्यभामाजी! पतियोंको अनुकूल बनानेका मुझे तो यही उपाय मालूम है।'' एक आदर्श गृहपत्नीको घरमें किस प्रकार रहना चाहिये—इसकी शिक्षा हमें द्रौपदीके जीवनसे लेनी चाहिये।

× × ×

देवी द्रौपदीमें क्षत्रियोचित तेज और भक्तोचित क्षमा—दोनोंका अभूतपूर्व सम्मिश्रण था। ये बड़ी बुद्धिमती और विदुषी भी थीं। इनका त्याग भी अद्भुत था। इनके पातिव्रत्यका तो सभी लोग लोहा मानते थे। इन्हें जब दुष्ट दुःशासन बाल खींचते हुए सभामें घसीटकर लाया, उस समय इन्होंने उसे डाँटते हुए अपने पतियोंके कोपका भय दिखलाया और सारे सभासदोंको धिक्कारते हुए द्रोण, भीष्म और विदुर-जैसे सम्मान्य गुरुजनोंको भी उनके चुप बैठे रहनेपर फटकारा। इन्होंने साहसपूर्वक सभासदोंको ललकारकर उनसे न्यायकी माँग की और उन्हें धर्मकी दुहाई देकर यह पूछा कि 'जब महाराज युधिष्ठिरने अपनेको हारकर पीछे मुझे दाँवपर लगाया है, ऐसी हालतमें उनका मुझे दाँवपर लगानेका अधिकार था या नहीं?' सब-के-सब सभासद् चुप रहे। किसीसे द्रौपदीके इस प्रश्नका उत्तर देते नहीं बना। अन्तमें दुर्योधनके भाई विकर्णने उठकर सबसे द्रौपदीके प्रश्नका उत्तर देने और मौन भङ्ग करनेके लिये अनुरोध किया और अपनी ओरसे यह सम्मति प्रकट की कि 'प्रथम तो द्रौपदी पाँचों भाइयोंकी स्त्री है, अतः अकेले युधिष्ठिरको उन्हें दाँवपर रखनेका कोई अधिकार नहीं था। दूसरे उन्होंने अपनेको हारनेके बाद द्रौपदीको दाँवपर लगाया था, इसलिये भी यह उनकी अनधिकार चेष्टा ही समझी जायगी।' विकर्णकी बात सुनकर विदुरने भी उसका समर्थन किया और अन्य सभासदोंने भी उनकी प्रशंसा की। परंतु कर्णने डाँटते हुए उसे बलपूर्वक बैठा दिया। इस प्रकार भरी सभामें दुःशासनद्वारा घसीटी जाने एवं अपमानित होनेपर भी द्रौपदीकी नैतिक विजय ही हुई। उनकी बुद्धि सर्वोपरि रही। कोई भी उनकी बातका खण्डन नहीं कर सका। अन्तमें विदुरके समझानेपर धृतराष्ट्रने दुर्योधनको डाँटा और द्रौपदीको प्रसन्न करनेके लिये उनसे वर माँगनेको कहा। इन्होंने वरदानके रूपमें धृतराष्ट्रसे केवल यही माँगा कि मेरे पाँचों पति दासत्वसे मुक्त कर दिये जायँ।' धृतराष्ट्रने कहा—'बेटी! और भी कुछ माँग ले।' उस समय द्रौपदीने उन्हें जो उत्तर दिया, वह सर्वथा द्रौपदीके अनुरूप ही था। उससे इनकी निर्लोभता एवं धर्मप्रेम स्पष्ट झलकता था। इन्होंने कहा—'महाराज! अधिक लोभ करना ठीक नहीं। और कुछ माँगनेकी मेरी बिल्कुल इच्छा नहीं है। मेरे पति स्वयं समर्थ हैं। अब जब वे दासतासे मुक्त हो गये हैं तो बाकी सब कुछ वे स्वयं कर लेंगे।' इस प्रकार द्रौपदीने अपनी बुद्धिमत्ता एवं पातिव्रत्यके बलसे अपने पतियोंको दासतासे मुक्त करा दिया।

द्रौपदीके जिन लंबे-लंबे, काले बालोंका कुछ ही दिन पहले राजसूय यज्ञमें अवभृथ-स्नानके समय मन्त्रपूत जलसे अभिषेक किया गया था, उन्हीं बालोंका दुष्ट दुःशासनके द्वारा भरी सभामें खींचा जाना द्रौपदीको कभी नहीं भूला। उस अभूतपूर्व अपमानकी आग उनके हृदयमें सदा ही जला करती थी। इसीलिये जब-जब उनके सामने कौरवोंसे संधि करनेकी बात आयी, तब-तब इन्होंने उसका विरोध ही किया और बराबर अपने अपमानकी याद दिलाकर अपने पतियोंको युद्धके लिये प्रोत्साहित करती रहीं। अन्तमें जब यही तय हुआ कि एक बार कौरवोंको समझा-बुझाकर देख लिया जाय और जब भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवोंकी ओरसे संधिका प्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर जाने लगे, उस समय भी इन्हें अपने अपमानकी बात नहीं भूली और इन्होंने अपने लंबे-लंबे बालोंको हाथमें लेकर श्रीकृष्णसे कहा—'श्रीकृष्ण! तुम संधि करने जा रहे हो, सो तो ठीक है। परंतु तुम मेरे केशोंको न भूल जाना।' इन्होंने यहाँतक कह दिया कि 'यदि पाण्डवोंकी युद्ध करनेकी इच्छा नहीं है तो कोई बात नहीं; अपने महारथी पुत्रोंके सहित मेरे वृद्ध पिता कौरवोंसे संग्राम करेंगे तथा अभिमन्युके सहित मेरे पाँचों बली पुत्र उनके साथ जूझेंगे।' द्रौपदी वीर क्षत्राणी थी।

× × ×

काम्यकवनमें जब दुष्ट जयद्रथ द्रौपदीको बलपूर्वक ले जानेकी चेष्टा करने लगा, उस समय इन्होंने उसे इतने जोरसे धक्का दिया कि वह कटे हुए पेड़की तरह जमीनपर गिर पड़ा। किंतु वह तुरंत ही सँभलकर खड़ा हो गया और इन्हें जबर्दस्ती रथपर बैठाकर ले चला। पीछे जब भीम और

अर्जुन उसे पकड़ लाये और उसकी काफी मरम्मत बना चुके, तब इन्होंने दयापूर्वक उसे छुड़ा दिया। इस प्रकार द्रौपदी क्रोधके साथ-साथ क्षमा करना भी जानती थीं। इनका पातिव्रत्य तेज तो अपूर्व था ही। जिस किसीने इनके साथ छेड़-छाड़ अथवा दुश्चेष्टा की, उसीको प्राणोंसे हाथ धोने पड़े। दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण, जयद्रथ, कीचक आदि सबकी यही दशा हुई। भला, पतिव्रता-पीड़िता नारीकी हाय किसको नहीं खा लेगी। महाभारत-युद्धमें जो कौरवोंका सर्वनाश हुआ, उसका मूल सती द्रौपदीका अपमान ही था। द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंकी सुप्तावस्थामें जब अश्वत्थामाने हत्या कर डाली, उस अवसरपर द्रौपदीने द्रोणपुत्रको मारकर उसकी मणि ले आनेके लिये भीमसेनसे कहा। पाण्डवोंमें भीमसेनके पराक्रमपर ही द्रौपदीको अधिक विश्वास था। क्योंकि उसने उनको अनेक बार असाध्य कर्मको भी सम्पादन करते देखा था। भीमसेन अश्वत्थामाको मारनेके लिये गये, परंतु उसको बिना मारे ही व्यासजीके बीच-बचावसे वे मणि लेकर लौटे, और द्रौपदीसे बोले कि: 'देवि! द्रोणपुत्रको ब्राह्मण समझकर मैंने छोड़ दिया; अब उसका केवल शरीरमात्र बचा हुआ है; क्योंकि मणि ले लेनेपर उसका यश समाप्त हो गया। देवि! यह मणि तुम लो।'

द्रौपदीका क्रोध शान्त हो गया। उसने कहा—'अच्छा ही किया जो आपने अश्वत्थामाको छोड़ दिया। वह गुरुपुत्र है, मेरे गुरुके समान है। मणि ले लेनेसे बदला चुक गया। अब इस मणिको महाराज युधिष्ठिर सिरपर धारण करें।' उसके बाद द्रौपदीके कहनेसे गुरुका उच्छिष्ट समझकर युधिष्ठिर उस मणिको सिरपर धारणकर सुशोभित हो उठे। द्रुपदतनया द्रौपदीके उज्ज्वल चरित्रकी यह भी एक अलौकिक घटना है। अपने पाँच पुत्रोंका वध करनेवाले अश्वत्थामाको भी गुरुपुत्र समझकर उसके प्रति गुरु-भाव व्यक्त करना महामहिममयी रानी द्रौपदीका ही काम हो सकता है। ऐसी आदर्श क्षमाशीलता अन्यत्र कहीं देखनेको नहीं मिलती।

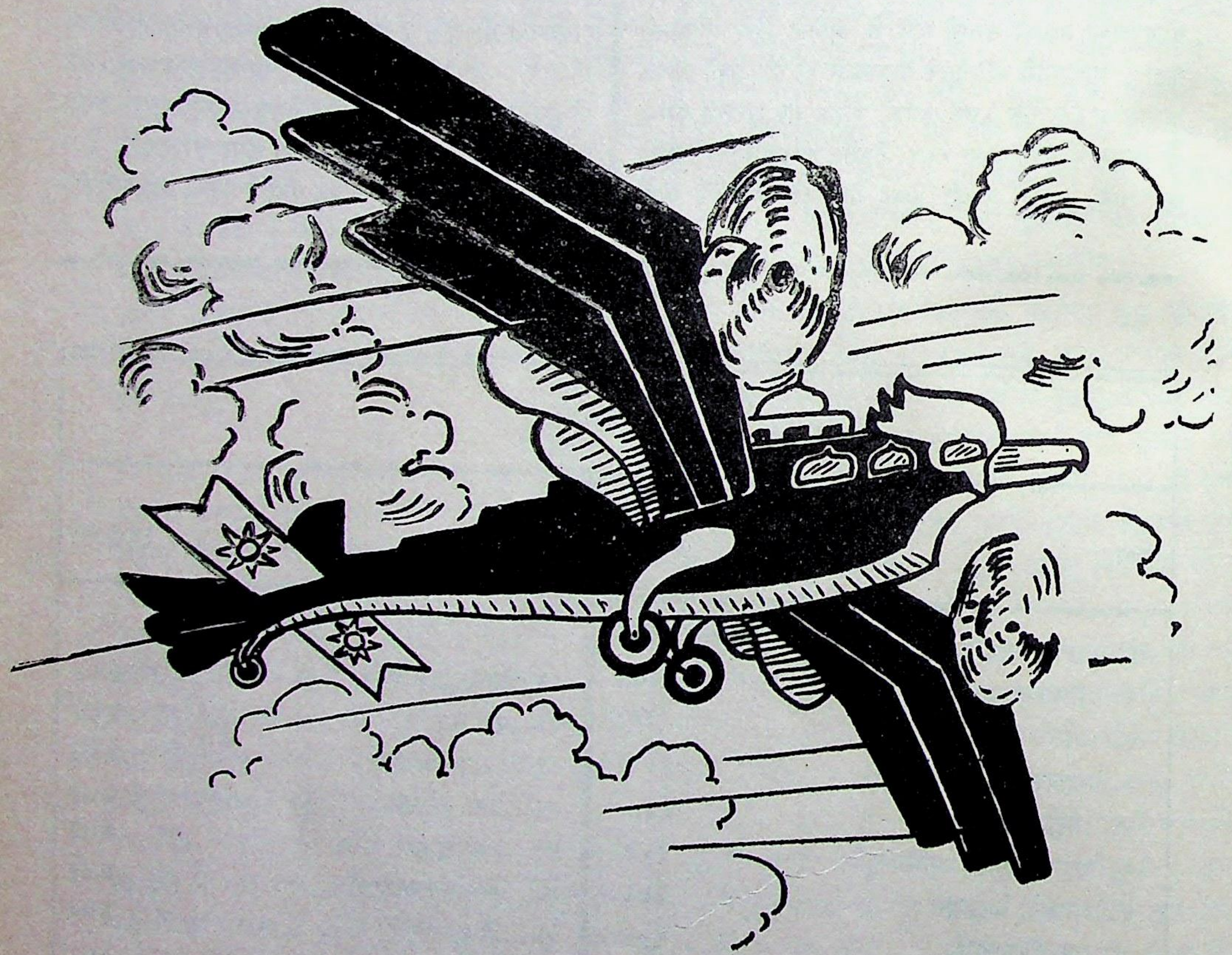


विषय-सूची



प्राचीन समय के युद्ध यन्त्र

चील गाड़ी (विमान) (१)



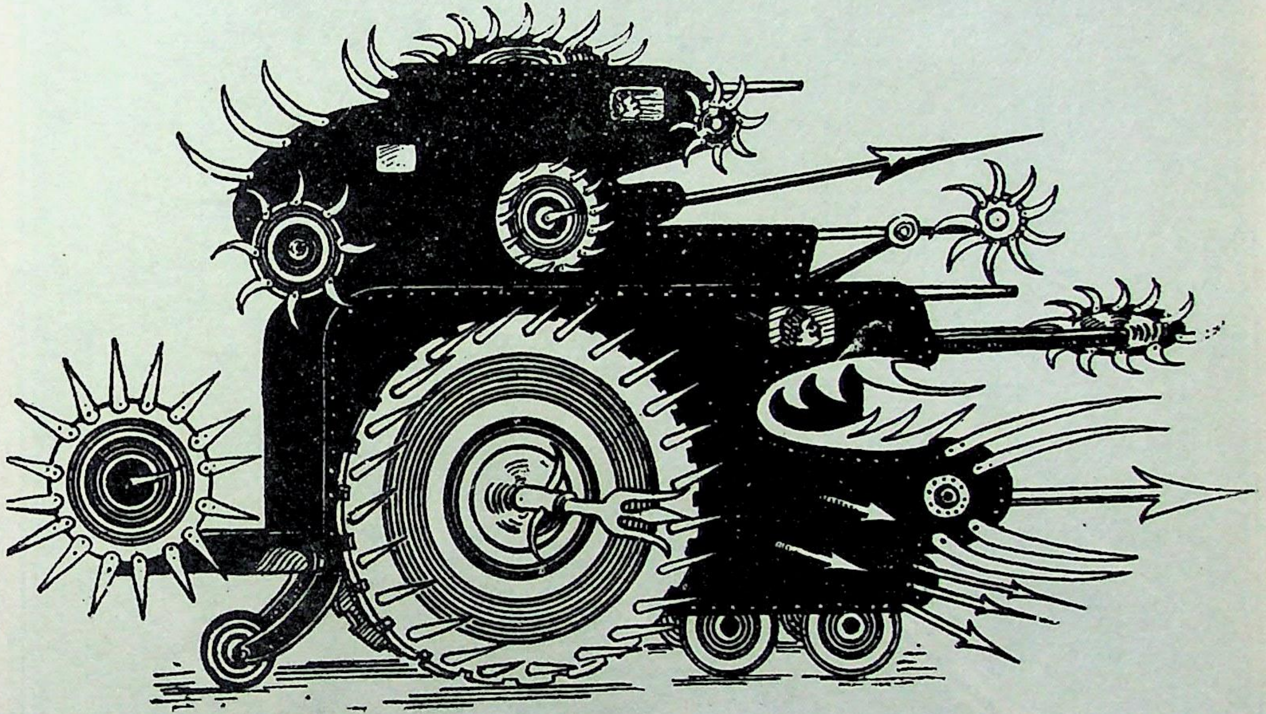
"सुपर्णो विविधावति"।

'साम'

आकाश में उड़कर इससे शस्त्र फैंके जाते थे।

प्राचीन समय के युद्ध यन्त्र

सहस्रार-चक्र (२)

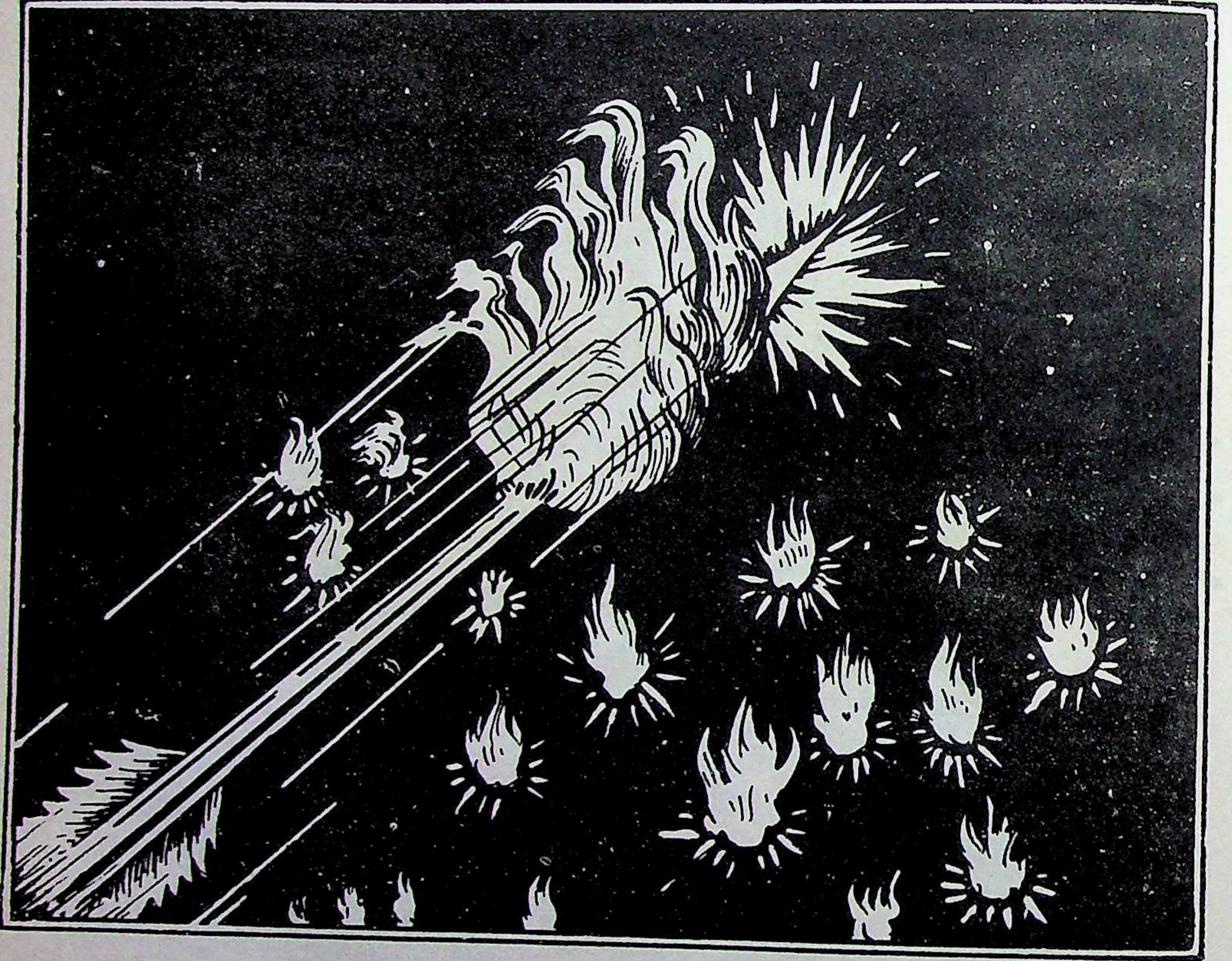


चक्रं दिव्यं सहस्रारं वज्रनाभमयस्मयम्।
क्षुरान्तं बालसूर्याभं मणिरत्न विभूषितम्॥
(म० भा० द्रोणपर्व)

यह सहस्रार चक्र हज़ारों तलवार खञ्जरों से युक्त था। इसके बीच में फौलाद का वज्र होता था। इसके चक्र सूर्य सम चमकते थे।

प्राचीन समय के युद्ध यन्त्र

आग्नेयास्त्र (३)

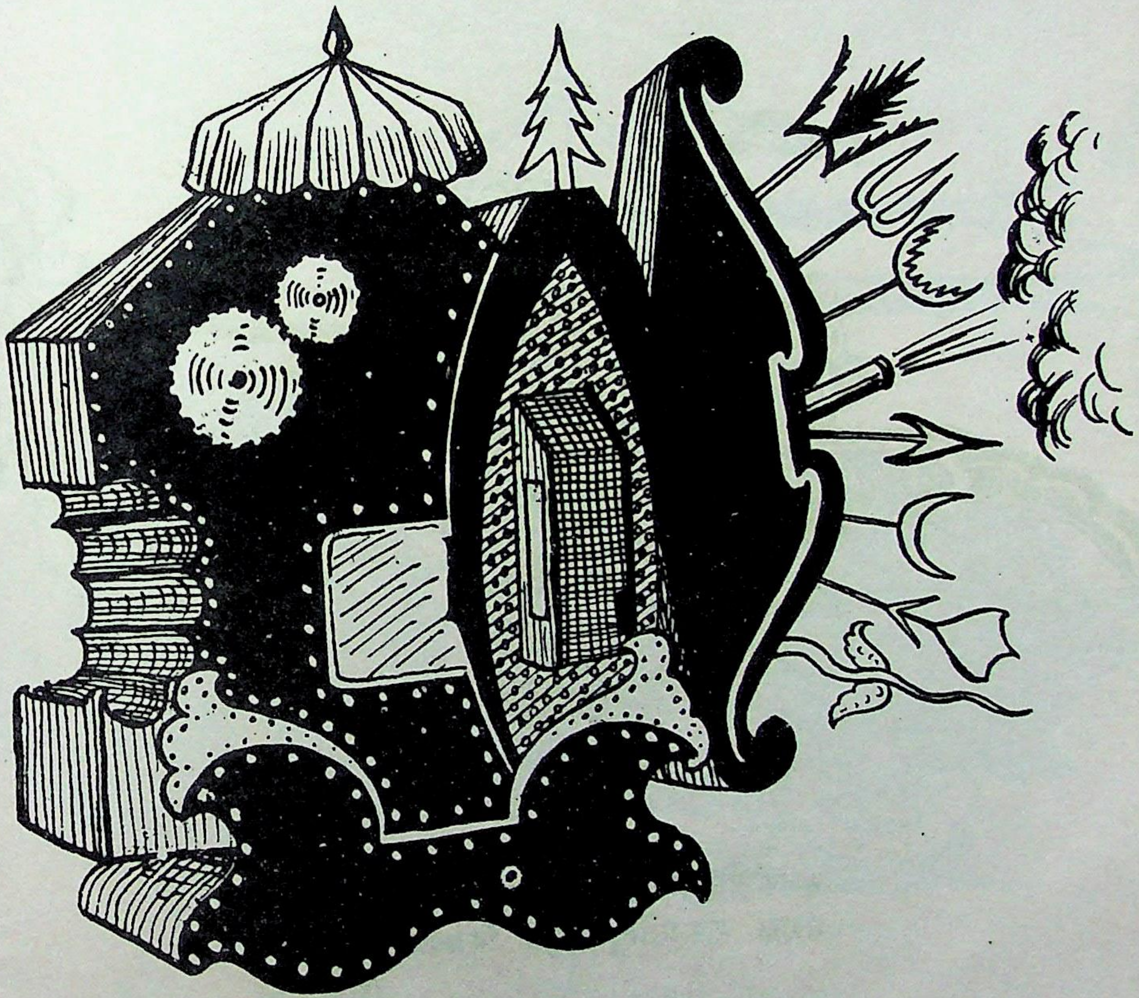


ततस्तुमुलमाकाशे शरवर्षमजायत ।
उल्काश्च गगनात्पेतुः दिशश्चनचकाशिरे ॥ म० भा० द्रो० प०)

यह आग्नेयास्त्र से निकला अग्निबाण, या अग्नि का Celender है। सलेण्डर में आग्नेय पदार्थ भरे होते थे। इसके साथ अग्नि बाणों की वर्षा होती थी और आकाश से उल्कायें गिरती थीं। और समस्त आकाश में प्रकाश हो जाता था।

प्राचीन समय के युद्ध यन्त्र

अर्जुन का गाण्डीव (४)

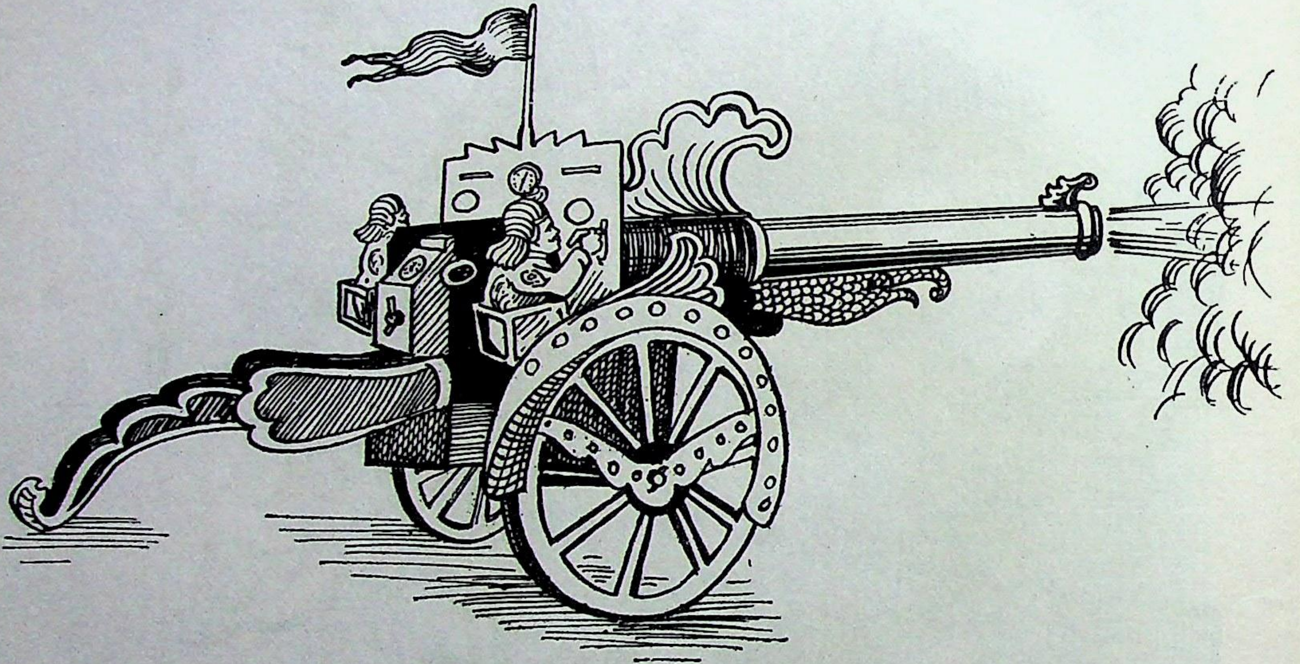


युगपद्दिक्षु सर्वासु सर्वतोऽस्त्राण्यदर्शयत् ।
एकच्छायमिवाकाशं बाणैश्चक्रे समन्ततः ॥
(म० भा० विराट् पर्व)

गाण्डीव अर्जुन का जगत् प्रसिद्ध धनुष था। इसकी विशेषता यह थी, कि इससे एक साथ ही नाना प्रकार के बाण निकलते थे। अर्जुन इसीसे आग्नेय बाण गोली आदि चलाता था, और इसकी सहायता से अन्य अस्त्रों को भी चलाता था।

प्राचीन समय के युद्ध यन्त्र

द्विचक्रा शतघ्नी (दो पहियों की तोप) (५)

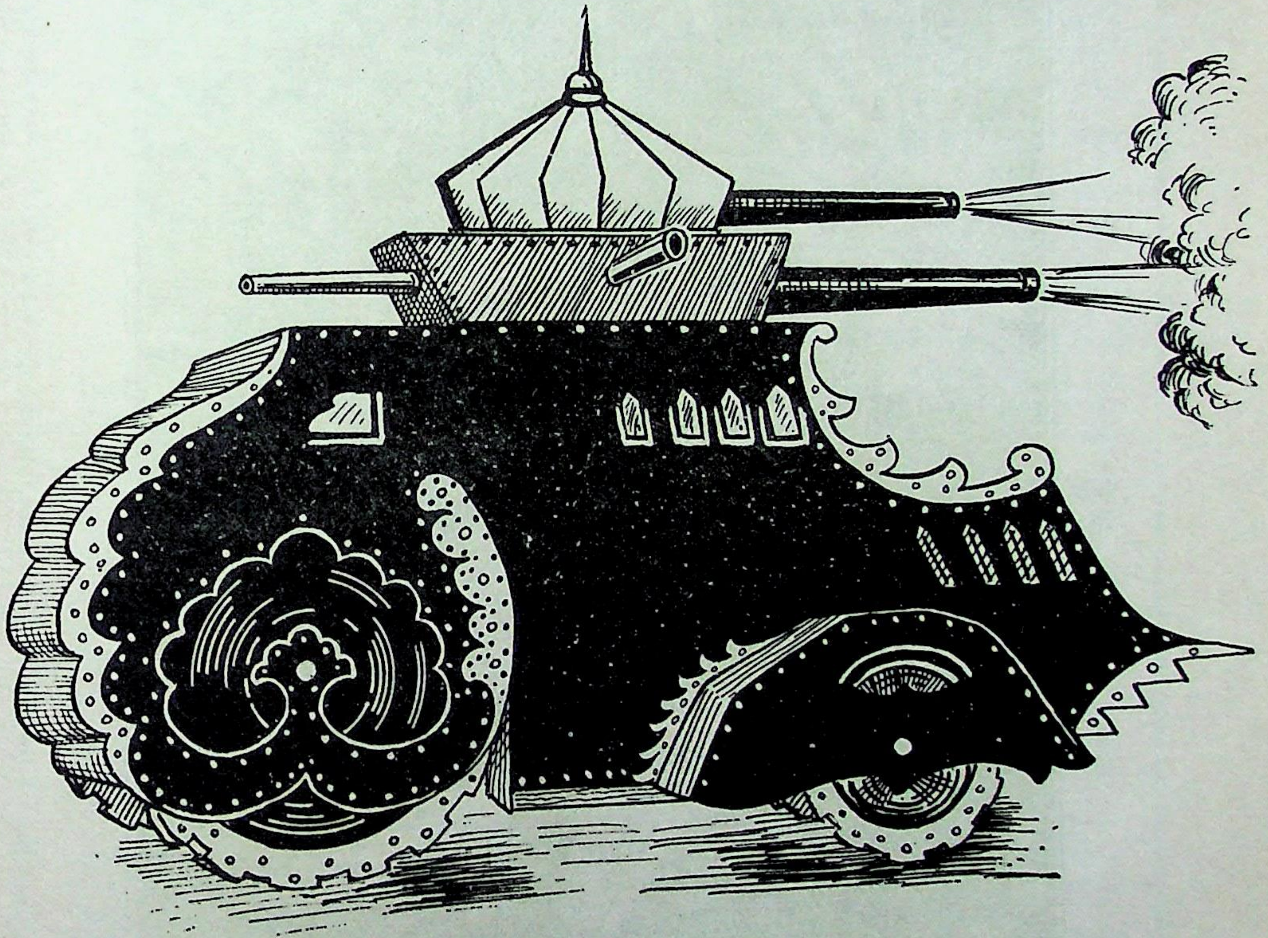


मूलकीलोद्गमाल्लक्ष्य समसंधान भाजियत्।
प्रवाह्यं शकटाद्यैस्तु सुयुक्तं विजयप्रदम्॥
(शुक्रनीति)

यह भारी होती है। दो पहियों की गाड़ी से ढोई जाती है। मूल की कील के निकालने पर फनर लक्ष्य सम पर लगता है।

प्राचीन समय के युद्ध यन्त्र

चतुश्चक्रा शतघ्नी (चार पहियों की तोप) (६)

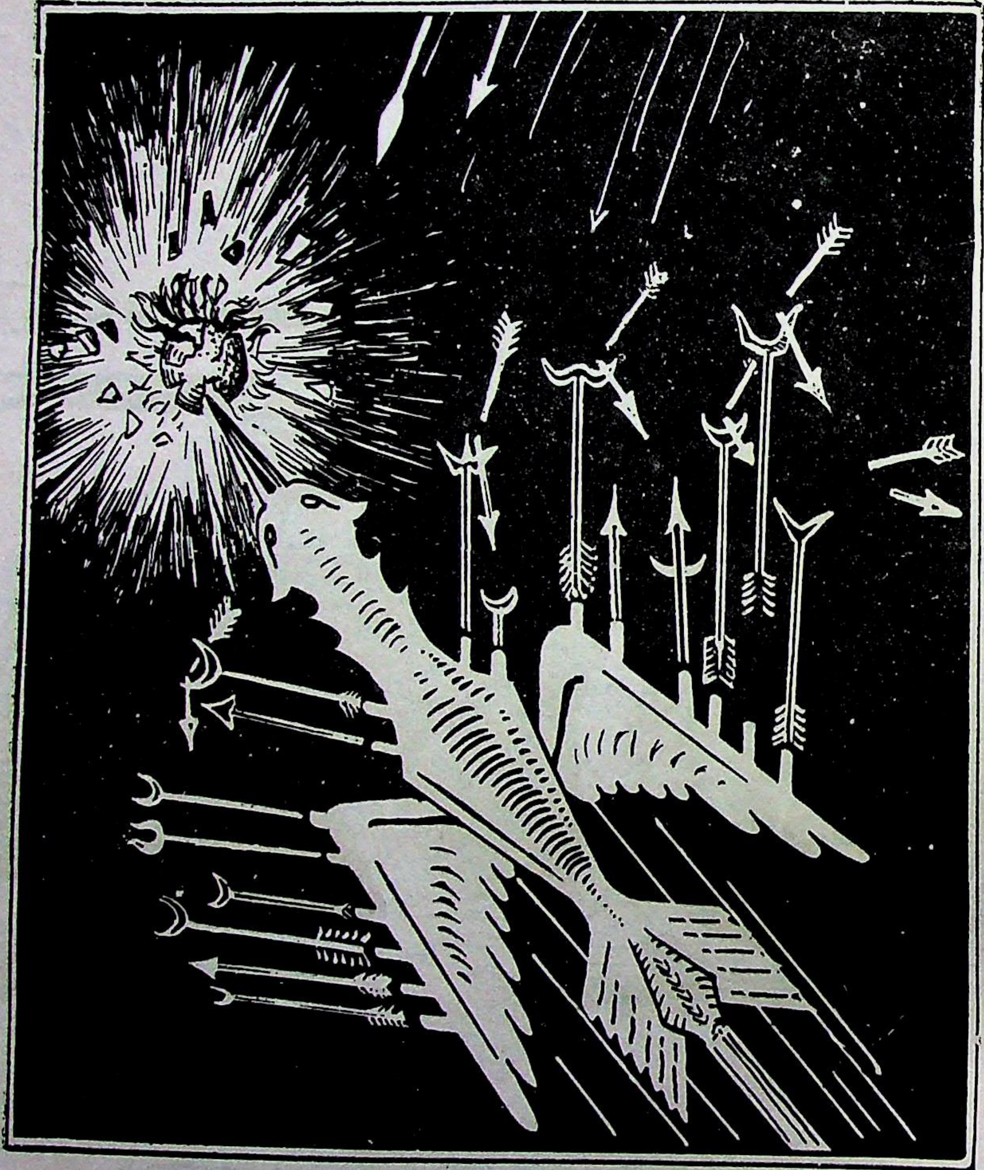


बृहन्नालीक संज्ञं तत् काष्ठबुध्न विवर्जितम् ।
क्षिपन्ति चाग्निसंयोगाद् गोलं लक्ष्ये सुनालकम् ।।
(शुक्रनीति)

इसका नाम बृहन्नालीक भी था। इसमें लकड़ी का दस्ता नहीं होता। अग्नि लगाने पर नाली वाले गोलों को लक्ष्य पर फेंकता है।

प्राचीन समय के युद्ध यन्त्र

खग-बाण (७)



तान्※ आशुगैरापततोऽह्रमाशु निवार्य हन्तुं खगमान् ख एव।
द्विधा त्रिधाचाच्छिन्नमाशुमुक्तस्ततोऽन्तरिक्षे निनदो बभूव॥ (म० भा०)

यह खगबाण आकाश से गिरते बाणों को काट देता है तथा गोलों को फोड़ देता है। गोले आकाश में ही छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। भूमि तक पहुँचते ही नहीं।

※अयोगुडान्।



शंकालु, अविश्वासी तथा नास्तिक-जन इस ग्रन्थ को मंगाने का कष्ट न करें।
संसार के प्रत्येक स्त्री-पुरुषों की जन्मकुण्डली का फलादेश बताने वाला



असली, प्राचीन, हस्तलिखित, वृहद् ग्रन्थ

भृगुसंहिता कुण्डली रहस्य

● भारत की 80,00,00,000 (अस्सी करोड़) जनता ही क्या, विश्व की 5,00,00,00,000 (पांच अरब) जनता में गहरा असन्तोष है, क्योंकि वास्तविक सुख-शांति के कहीं दर्शन नहीं हो रहे हैं। इस कारण मानव-समाज शांति की खोज में भटक रहा है। जन, धन, सुरक्षा, हिंसा, ईर्ष्या, द्वेष, पारिवारिक कलह, शादी-विवाह की चिन्ता, सन्तान, पति-पत्नी में मनमुटाव, नौकरी प्राप्त करने में अड़चनें, व्यावसायिक असफलता तथा सत्ता प्राप्ति आदि अनेक चिन्ताओं ने किसी-न-किसी रूप में प्रत्येक मनुष्य को जकड़ा हुआ है। इतना ही नहीं, बड़ी शक्तियों के आपसी टकराव तथा आणविक युद्ध द्वारा महा-विनाश की आशंका से मानवमात्र त्रस्त है।

● यदि मनुष्य को अपने वर्तमान तथा भविष्य में घटने वाली घटनाओं का पूर्वाभास हो जाये तो वह आने वाली विपत्तियों से छुटकारा पाने तथा सौभाग्यशाली समय का पूर्ण लाभ उठाने के लिये कटिबद्ध हो सकता है।

● सौभाग्यरूपी समुद्र सबके जीवन में एक बार अवश्य आता है। जिसके पास जितना बड़ा पात्र होता है, उतना उसमें भर लेता है। सौभाग्य-वृद्धि के समय का पूर्व ज्ञान हो तो उसका समुचित लाभ न उठा पाने का दुःख नहीं होता। इसी प्रकार आसन्न-संकट का पहले से पता चल जाये तो उससे मुक्ति पाने के उपाय भी प्रयोग में लाये जा सकते हैं।

● जन्मकुण्डली के आधार पर ऐसे सुख-दुःख आदि की सम्यक् जानकारी प्राप्त की जा सकती है और **'भृगुसंहिता कुण्डली रहस्य'** इसमें सबसे अधिक आपकी सहायता करने में समर्थ है।

● **'भृगुसंहिता कुण्डली रहस्य'** में विक्रम संवत् 1942 से 2100 वि० तक की सूर्य-कुण्डलीयां, संवत् 1967 विक्रमी से 2044 विक्रमी की अवधि में जन्म लेने वाले स्त्री-पुरूषों की जन्मकालीन सूर्य-कुण्डली और उनके फलादेश का उल्लेख है। इस ग्रन्थ के आधार पर कोई भी स्त्री-पुरुष अपनी जन्मकालीन सूर्य-कुण्डली के माध्यम से अपने जीवन में घटने वाली घटनाओं की जानकारी स्वयं सरलतापूर्वक प्राप्त कर सकता है। न किसी ज्योतिषी के पास जाने की आवश्यकता है और न किसी को भेंट-दक्षिणा देने की। ग्रन्थ में अपनी सूर्य-कुण्डली को निकाल कर उसका फलादेश स्वयं पढ़ लीजिए।

● **इस ग्रन्थ के द्वारा आप अपना, अपनी पत्नी, पुत्र, पुत्री अथवा परिवार के किसी भी सदस्य, मित्र तथा अन्य लोगों की जन्मकालीन सूर्य-कुण्डली का फलादेश सरलतापूर्वक ज्ञात कर सकते हैं। भृगु ऋषि के सिद्धान्त पर आधारित फलादेश का ऐसा विलक्षण ग्रन्थ इससे पहले कभी प्रकाशित नहीं हुआ।**

● **देहाती पुस्तक भंडार** द्वारा अथक परिश्रम, अनेक वर्षों की खोज, हजारों मील की यात्रा, भृगुसंहिता के मर्मज्ञ पंडितों, सैकड़ों विद्वानों के अध्यवसाय तथा लाखों रुपये व्यय करके, सर्वसाधारण जनता के हित के लिये यह ग्रन्थ सुलभ हो सका है।

● **गारंटी**—यदि संवत् 1967 वि० से 2044 वि० तक की अवधि में जन्मे किसी भी स्त्री-पुरुष की जन्मकालीन सूर्य-कुण्डली और उसका फलादेश इस ग्रन्थ में उपलब्ध न हो तो खरीददार को (कैशमीमो दिखाने पर उसके द्वारा प्रदत्त ग्रन्थ का पूरा मूल्य (पैकिंग व डाक खर्च काटकर) लौटा देने के लिए प्रकाशक वचनबद्ध हैं। इससे अधिक गारन्टी और क्या हो सकती है?

● उपर्युक्त अवधि की जन्मकालीन सूर्य-कुण्डलियों के फलादेश के अतिरिक्त किसी भी अवधि में जन्म लेने वाले स्त्री-पुरुष की जन्मकुण्डली का फलादेश, ग्रहों की अन्तर-प्रत्यन्तर एवं सूक्ष्म दशा और उनका फलादेश तथा ज्योतिष सम्बन्धी सैकड़ों अनुभूत योग भी इस ग्रन्थ रत्न में संकलित हैं। इस प्रकार यह ग्रन्थ सैकड़ों ज्योतिष ग्रन्थों की आवश्यकता को अकेला ही पूर्ति कर देता है।

● 20 × 30/6 (पुराण साइज) खुले पत्राकार, हस्तलिखित 2100 पृष्ठ, बढ़िया सफेद कागज पर छपे इस विशाल ग्रन्थ की भेंट केवल 1001/- (एक हजार एक रुपये), सजिल्द (क्लॉथ बाइंडिंग) के 71/- रुपये अधिक अर्थात् 1001+71=1072/-(एक हजार बहत्तर रु०)। पैकिंग व डाक खर्च 30/- (तीस रु०) पृथक्। Foreign countries (विदेशी सज्जन) £ 220 पौंड या $ 440 डालर एडवान्स भेजें। उनको ग्रन्थ रजिस्ट्री द्वारा भेजा जायगा।

● पंडितों एवं ज्योतिषियों के लिए आवश्यक रूप से संगृहणीय, प्रत्येक व्यापारी, मिल-मालिक, पूंजीपति, उच्चाधिकारी तथा कर्मचारी के लिए पठनीय; प्रत्येक घर एवं गद्दी के लिए पूजनीय; वर्तमान जीवन से परेशान और भविष्य जानने के इच्छुक सभी मत-मतान्तरों के अनुयायी, ज्योतिष में श्रद्धा एवं विश्वास रखने वाले आस्तिकजनों तथा सर्व-साधारण जनता के लिए समान रूप से उपयोगी यह ग्रन्थ सीमित संख्या में छपा है। अतः जो सज्जन 101/- रु० पेशगी (एडवांस) अथवा पूरी रकम 'देहाती पुस्तक भंडार, दिल्ली-6' के नाम M.O. या बैंक ड्राफ्ट द्वारा अग्रिम भेज देंगे, उन्हें ग्रन्थ सबसे पहले क्रमशः शीघ्र सप्लाई किया जायगा। (First come, First Serve our Motto)

● आर्डर देते समय स्पष्ट लिखें कि ग्रन्थ खुले पत्राकार भेजा जाय अथवा सजिल्द। एडवांस आये बिना ग्रन्थ भेजने का नियम नहीं है। जो सज्जन 101/- रु० पेशगी भेजेंगे उन्हें बाकी के 900/- रु० में खुले पत्राकार तथा 971/- रुपये में सजिल्द ग्रन्थ वी. पी. पी. द्वारा घर बैठे प्राप्त हो सकेगा। इस विज्ञापन की कटिंग भेजने वालों को 30/- (डाक खर्च) की स्पेशल रियायत दी जायगी।

● इस घोर कलिकाल में भाग्यवान ही इस ग्रन्थ को श्रद्धा एवं विश्वास पूर्वक प्राप्त कर सकेंगे।



DEHATI PUSTAK BHANDAR
(Publisher of Technical, Industrial, Religious and General Books)
CHAWRI BAZAR, DELHI-110006 (INDIA) Phone-261030

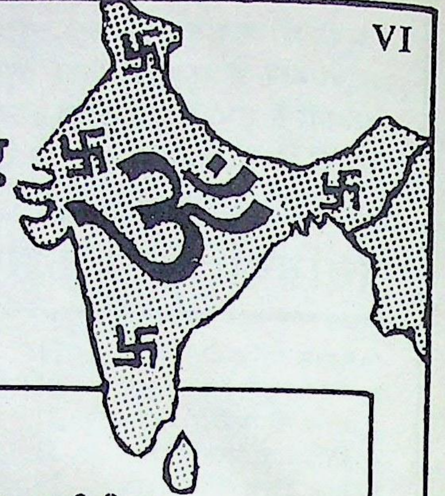
हमारे छपे 104 नवीन प्रकाशन

1. हनुमान प्रसाद का दृष्टान्त सागर (संपूर्ण भाग) 50/-
2. अकबर बीरबल हँसी दिल्लगी (रीप्रिंट) 50/-
3. गंगा उपासना (पूजा व महिमा) 25/-
4. ओ३म् उपासना (पूजा व महिमा) 25/-
5. ब्रह्मा उपासना (पूजा व महिमा) 25/-
6. नवग्रह उपासना (पूजा व महिमा) 25/
7. यमुना उपासना (पूजा व महिमा) 25/-
8. बगला उपासना (पूजा व महिमा) 25/-
9. सूर्य उपासना (पूजा व महिमा) 25/-
10. तिरुपति बालाजी उपासना (पूजा व महिमा) 25/-
11. राजस्थानी बालाजी हनुमान उपासना (पूजा) 25/-
12. सात दिन का तबला व कोंगो-बोंगो वादन कोर्स 25/-
13. भारतीय नृत्य-संगीत-डांस कला 50/-
14. बापू उपदेश भजनावली 12/-
15. गंगा लहरी (भा० टी०) 10/-
16. गजेन्द्र मोक्ष (भा० टी०) 10/-
17. ऋणमोचनी रामनाम माला 5/-
18. दुर्गा पूजन प्रयोग विधि 5/-
19. ओ३म् व गायत्री स्तुति (ॐ गायत्री मंत्र महिमा) 10/-
20. ओ३म् आराधना (ओंकार उपासना) 10/-
21. सरल ज्योतिष परिचय 12/-
22. मलूक भजनावली 5/- 23. महापुरुषों के दृष्टांत 51/-
24. नवनाथ चौरासी सिद्धियाँ 21/-
25. सोहं और प्राणायाम 21/- 26. यन्त्र चमत्कार 21/-
27. तन्त्र चमत्कार 21/- 28. मन्त्र चमत्कार 21/-
29. शक्तिशाली यन्त्र-मन्त्र-तन्त्रावली 21/-
30. संपूर्ण गायत्री साधना 41/-
31. नित्यकर्म-विधि व देव पूजा पद्धति 30/-
32. प्राणायाम द्वारा चिकित्सा (परिवर्द्धित संस्करण) 12/-
33. हरियाणवी एटम बम 10/-
34. पं० रामस्वरूप की पंचक शान्ति (भा० टी०) 10/-
35. सूर भजनावली (जीवन-परिचय सहित) 5/-
36. पंचदेव आराधना 12/- 37. पंचदेवी आराधना 12/-
38. पं० रामस्वरूप की हवन पद्धति (भा. टी.) 10/-
39. पं० रामस्वरूप की यज्ञोपवीत पद्धति (भा. टी.) 10/-
40. पं० रामस्वरूप की उपनयन पद्धति (जनेऊ संस्कार) 10/-
41. पं० रामस्वरूप की पंचनारायण बलि (भा. टी.) 10/-
42. पं० रामस्वरूप की मूल शान्ति (भा. टी.) 10/-
43. पं० रामस्वरूप की श्राद्ध पद्धति (भा. टी.) 10/-
44. पं० रामस्वरूप का नान्दीमुख श्राद्ध पद्धति 10/-
45. रामस्वरूप की एकोदिष्ट श्राद्ध पद्धति (भा. टी.) 10/-
45. पं० रामस्वरूप की पार्वण श्राद्ध पद्धति (भा.टी) 10/-
47. रामस्वरूप की सूतकदाहकर्म पद्धति (भा. टी.) 10/-
48. पं० रामस्वरूप की एकादशादि सपिण्डी (भा.टी.) 10/-
49. पं० रामस्वरूप की प्रेतमंजरी (भा. टी.) 10/-
50. संपूर्ण कर्मकाण्ड व ज्योतिष ग्रन्थ—रामस्वरूप 101/-
51. सन्तवाणी विलास 30/-
52. भक्तवाणी अनुभव प्रकाश 30/-
53. योग वाशिष्ठ सम्पूर्ण 300/-
54. हरिवंश पुराण 200/-
55. सुन्दरदास अनुभव प्रकाश 30/-
56. रहीम अनुभव प्रकाश 30/-
57. बिहारी अनुभव प्रकाश 30/-
58. गोरखनाथ अनुभव प्रकाश 30/-
59. मत्स्येन्द्रनाथ अनुभव प्रकाश 30/-
60. टीकाराम अनुभव प्रकाश 30/-
61. कल्याण भारती अनुभव प्रकाश 30/-
62. ब्रह्मानन्द अनुभव प्रकाश 30/-
63. दादूदयाल अनुभव प्रकाश 30/-
64. पल्टूदास अनुभव प्रकाश 30/-
65. गरीबदास अनुभव प्रकाश 30/-
66. अभिलाषदास अनुभव प्रकाश 30/-
67. बुल्लेशाह अनुभव प्रकाश 30/-
68. चरणदास अनुभव प्रकाश 30/-
69. सहजो अनुभव प्रकाश 30/-
70. गिरधर अनुभव प्रकाश 30/-
71. नानक अनुभव प्रकाश 30/-
72. रसखान अनुभव प्रकाश 30/-
73. सूर अनुभव प्रकाश 30/-
74. मोटमुक्त अनुभव प्रकाश 30/-
75. जीवादास अनुभव प्रकाश 30/-
76. शंकरदास अनुभव प्रकाश 30/-
77. बुन्दू अनुभव प्रकाश 30/-
78. रविदास अनुभव प्रकाश 30/-
79. सन्त अनुभव प्रकाश 30/-
80. तुलसी अनुभव प्रकाश 30/-
81. मीरा अनुभव प्रकाश 30/-
82. अन्त्येष्टि संस्कार पद्धति 15/-
83. हम और हमारे संगीतकार 15/-
84. संगीत द्वारा चिकित्सा 15/-
85. रहनुमाये सेहत 100/-
86. वाल्मीकि रामायण भाषा 101/-
87. महाभारत भाषा 101/- 88. पंचतन्त्र भाषा 15/-
89. हितोपदेश भाषा 15/- 90. 1000 पहेलियाँ 15/-
91. आलराउण्डर गाइड 15/- 92. वास्तुपूजा पद्धति 12/-
93. गृहप्रवेश पद्धति 10/- 94. तुलसी रामायण 120/-
95. शिव महापुराण भाषा 120/-
96. श्याम सुखसागर 120/-
97. श्रीमद्भागवत महापुराण 120/-
98. देवी भागवत पुराण 71/-
99. तुलसी रामायण आठों काण्ड उर्दू 150/-
100. इल्मे नजूम 21/-
101. चैन की नींद सोइये (कैप्स्यूल-गोलियाँ बन्द करो) 21/-
102. शिव महापुराण उर्दू 120/-
103. वाल्मीकि रामायण उर्दू 120/-
104. महाभारत उर्दू 120/-



पता—देहाती पुस्तक भण्डार, चावड़ी बाजार, चौक बड़शाहबुला, दिल्ली-6

वास्तविक सुख-शान्ति एवं आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन अवश्य करें...



1. तुलसीकृत रामायण (मोटा टाइप) दोहे, चौपाइयों में -------- 121/-
2. तुलसीकृत रामायण (मोटा टाइप) सबसे बड़ा साइज------- 231/-
3. योगवाशिष्ठ सरल भाषा (सम्पूर्ण दो खण्ड) -------300/-
4. श्री शिवमहापुराण सरल भाषा--121/-
5. श्री शिवमहापुराण भा०टी० (खुले पत्राकार) ------- 501/-
6. देवी भागवत सरल भाषा---- 71/-
7. देवी भागवत भा०टी० (खुले पत्राकार)-------- 501/-
8. महाभारत भाषा (मोटा टाइप)--101/-
9. महाभारत बड़ा-------1151/-
10. सुख सागर (श्रीमद्भागवत) सरल भाषा---------- 121/-
11. सुख सागर (श्रीमद्भागवत) बड़ा- 231/-
12. भक्तमाल सरल भाषा------ 121/-
13. श्रीमद्भागवत भा०टी० (खुले पत्राकार)------- 501/-
14. चारों वेद संपूर्ण भा०टी० (बड़ा साइज)-------- 601/-
15. निर्णयसिन्धु (दोनों खण्ड सम्पूर्ण) भा०टी०---------- 501/-
16. असली प्राचीन हस्तलिखित भृगुसंहिता महाशास्त्र---- 552/-
17. असली प्राचीन हस्तलिखित भृगुसंहिता कुण्डली रहस्य---1072/-
18. हरिवंश महापुराण भाषा--- 251/-
19. हरिवंश महापुराण भा०टी०---501/-
20. शतपथ ब्राह्मण सपूर्ण भा०टी० -2000/-
21. शतपथ ब्राह्मण मूल------ 501/-
22. वाल्मीकि रामायण सरल भाषा --101/-
23. वाल्मीकि रामायण भा०टी०-- 2000/-
24. अध्यात्म रामायण (खुले पत्राकार) 251/-
25. वृहद् मन्त्र महार्णव (हस्तलिखित) 202/-
26. वृहद् तन्त्र महार्णव (हस्तलिखित)-202/-
27. वृहद् यन्त्र महार्णव (हस्तलिखित)-202/-
28. असली प्राचीन शास्त्रोक्त यन्त्र-तन्त्र-मन्त्र शिरोमणि (दो जिल्दों में)--385/50
29. असली प्राचीन यन्त्र-मन्त्र-तन्त्र महाशास्त्र संपूर्ण --------225/-
30. असली प्राचीन हस्तलिखित वृहद् यन्त्र-तन्त्र-मन्त्र महार्णव (खुले पत्राकार)-------- 606/-
31. रणवीर ज्योतिष ------- 2001/-

नोट- उपर्युक्त पुस्तकों में से जो भी पुस्तकें मगानी हों, उनके सामने ऐरो (✓) का निशान लगाकर पूरे विज्ञापन की कटिंग तथा 25/- (पच्चीस रुपये) का M.O. पेशगी आने पर डाक खर्च माफ़ करके शेष रकम की वी.पी.पी. द्वारा घर बैठे प्राप्त करें।

मंगाने का पता:-



देहाती पुस्तक भण्डार

चावड़ी बाज़ार, देहली-110006, टेलीफ़ोन-261030



स्टेज पर खेलने योग्य विभिन्न लेखकों के
धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक व हास्य से परिपूर्ण लोकप्रिय

नाटक व ड्रामे

● रामलीला नाटक
नं० 1 से 8 व 11-12 (C)

1. कुशल रामलीला 20/-
2. „ „ (क्लाथ बाइं.) 30/-
3. „ रामलीला गायन 20/-
4. „ „ क्लाथ (बाइं.) 30/-
5. कीरतसिंह चौ० रामलीला 20/-
6. „ „ (क्लाथ बाइं.) 30/-
7. बेताब रामलीला 20/-
8. „ „ (क्लाथ बाइं.) 30/-
9. बेचैन रामलीला (E) 10/-
10. „ „ (क्लाथ बाइं.) 20/-
11. उफ़क़ रामलीला 20/-
12. „ „ (क्लाथ बाइं.) 30/-

● न्यादरसिंह बेचैन (G)

1. श्रवण कुमार 6/-
2. ईश्वर भक्ति 6/-
3. द्रोपदी चीरहरण 6/-
4. मोरध्वज 6/-
5. कृष्ण-सुदामा 6/-
6. भक्त प्रहलाद 6/-
7. भक्त पूरणमल 6/-
8. भक्त रविदास 6/-
9. भक्त ध्रुव 6/-
10. मीराबाई 6/-
11. भयंकर भूल 6/-
12. लैला-मजनूं 6/-
13. हिन्दू कोडबिल 6/-
14. नूरानी मोती 6/-
15. बी० ए० पास मजदूर 6/-
16. रक्षा बन्धन 6/-
17. धर्मपाल-शान्ता कुमारी 6/-
18. सरवर नीर 6/-
19. ग्रेजुएट पागल 6/-
20. रूप बसन्त 6/-
21. हरिश्चन्द्र 6/-
22. हक़ीक़त राय 6/-
23. नेताजी सुभाष 6/-
24. सत्यवान सावित्री 6/-
25. वीर अभिमन्यु 6/-
26. अमरसिंह राठौर 6/-
27. नल-दमयन्ती 6/-

● राजकुमार अनिल (C)

1. जरूरत है श्रीमती की 15/-
2. शादीशुदा ब्रह्मचारी 15/-

● न्यादरसिंह 'बेचैन' (E)

1. बेचैन रामलीला 10/-
2. भर्तृहरि 10/-
3. सौतेली माँ (ध्रुव, राम, पूरनमल, रूप बसन्त) 15/-
4. झाँसी की रानी 10/-
5. शकुन्तला दुष्यन्त 10/-
6. पृथ्वीराज चौहान 10/-
7. पद्मिनी 10/-
8. जलियाँवाला बाग 10/-
9. कृष्ण अवतार 10/-
10. चन्द्रशेखर आजाद 10/-
11. सरदार भगतसिंह 10/-

● जगदीश शर्मा (E)

1. डेढ़ रोटी 6/-
2. पगली 6/-
3. विधवा 6/-
4. दहेज 6/-
5. फूलमाला 6/-
6. धर्म-ईमान 6/-
7. इन्कलाब 6/-
8. अन्धेर नगरी 6/-
9. कन्यादान 6/-
10. विदाई 6/-
11. सुखी कौन 6/-
12. तड़प 6/-
13. फर्ज मुहब्बत 6/-
14. इल्जाम 6/-

● आगाहश्र काश्मीरी (E)

1. भक्त सूरदास 10/-
2. बिल्व मंगल 10/-
3. सीता बनवास 10/-
4. वीर लव-कुश 10/-
5. सीता का परित्याग 10/-
6. बग देवी 10/-
7. श्रीमती मंजरी 10/-

● नारायण प्रसाद 'बेताब' (C)

1. बेताब रामलीला 20/-
2. कृष्ण-सुदामा 15/-
3. महाभारत 15/-

● धर्मदत्त 'आजाद'

11. सत्य विजय 10/-

● सतीश डे (E)

1. संजोग 10/-
2. सुनहरे सपने 10/-
3. जय जवान जय किसान 10/-
4. इन्सान-शैतान 10/-
5. काँटा-दामन-फूल 10/-
6. शोला-तूफान 10/-
7. दो या तीन 10/-
8. हिमालय ने पुकारा 10/-
9. एक भगवान एक खुदा 10/-
10. सात प्रहसन 10/-
11. यह इश्क, इश्क है इश्क 10/-

● अमृत कश्यप (E)

1. चन्द्रमुखी 10/-
2. झूठ के पाँव 10/-
3. हमसफर 10/-
4. खून के बाद 10/-
5. शायर 10/-
6. इजेक्शन 10/-

● विश्वेश्वर दयाल 'कुशल'
नं० 1 (D) तथा 2 से 6 (E)

1. कुशल रामलीला (D) 20/-
2. विद्यार्थी नाटक माला 15/-
3. रूप बसन्त 10/-
4. दहेज 10/-
5. कफ़न 10/-
6. सोने की जंजीर 10/-

● पं० दलीली के नाटक

1. दहेज की लानत 10/-
2. भूखे भगवान (भक्तों के भगवान) 10/-
3. भक्त रावण (लंकेशपति) 10/-

● किशनचन्द जेबा (C)

1. श्रवण कुमार 10/-
2. दानवीर कर्ण 10/-

● बालभट्ट मालवीय (C)

1. बीसवीं सदी 10/-

● ए० एल० कपूर (E)

1. राम राज्य 10/-

● मुंशी दिल (E)

1. लैला मजनूं 10/-

● फिल्म ऐक्टर गोल्डी (C)

1. धोती खुल गई 10/-
2. पर्दे में रहने दो 10/-
3. धुरू के भुरू 10/-

पता—देहाती पुस्तक भण्डार, चावड़ी बाजार, चौक बड़शाहबुला, दिल्ली-110006


LIBRARY
No.
Date
JAMMU